सत्यार्थविवेक

ओ३म्

सत्यार्थविवेक

भाषा टीकासहित

"श्री भारत धर्म्म महामंडल" के महोपदेशक

श्रीयुत् सर्व शास्त्र विशारद पंडित वर्य्य श्री साधु सिंहजी महाराज विरचित

इस ग्रंथ में दो प्रकरण हैं - प्रथम प्रकरण मोक्ष, व मोक्ष पात्र जीव स्वरूप का निरूपण और द्वितीय में धर्म्म का निरूपण वैदिक प्रमाणों द्वारा सविस्तर किया गया है

जिसको

क़सबा डिभाई ज़िला बुलंदशहर निवासी सेठ जानकीप्रसाद, रामशरण, हरिशंकर, रामकिशोर, जानकीदास, रामचन्द्रादि धर्म्मानुरागियों ने

स्थान मथुरा

"मथुराप्रेस" में मुन्शी रामनारायण भार्गव के प्रबंध से छपा

मार्गशीर्ष सं० १९४६ वि०

प्रथमवार ७५० जिल्द } { मूल्य प्रति पुस्तक २)

श्रीहरिः

"सत्यमेवजयतिनानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः"

यह वार्त्ता पुरातत्त्ववेत्ताओं और बुद्धिमान लोगों के मत से भलीभांति स्पष्ट है कि जब २ समय के उलट फेर रूपी काले पीले बादलों की घनघोर घटाओं के उमड़ते हुए भानु के अस्त होने पर अंधकार का चारों ओर डंका बजजाता है और अविद्या की घटाटोप सांयसांय करनेवाली भयंकर अंधेरी में प्रकाशप्रिय सम्पूर्ण प्राणीमात्र असावधान और अचैतन्य होजाते हैं यहांतक कि उनको अपने वास्तविक स्वरूपज्ञान और देहानुसंधान का कुछभी ज्ञान नहीं रहता तब बहुत से खल खद्योत और उल्लूक अपनी प्रभुता बढाने को अपनी अलपचल चमाहट और अपना घुड़२ शब्द घोष करना प्रारंभ करदेते हैं किम्बहु एक प्रकार का पूरा उपद्रव मचादेते हैं बस ठीक इसी भांति जब किसी देश वा जाति के बिषें विद्या का भानु अंतर्ध्यान होने पर अज्ञान और अविद्या का घोरान्धकार छा जाता है तब उसके मध्य भी विरुद्ध भांति के आश्चर्यजनक नवीन२ घुड़२ घोषों को अद्भुत सुर तालों से गाते हुए विलक्षण प्रकृति के लोक उत्पन्न होके एक कुतूहल और धूम मचा देते हैं इस बात की सिद्धि के लिये किसी दूर देश तक जाने और हैरान होने की कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु यह आद्योपान्त घटना आपके भारतवर्ष परही प्रत्यक्ष देखलीजिये "महाराज विक्रम और भोजके पश्चात से ही विशेषकर यहां की सनातन विद्या संस्कृत की अवनति प्रारम्भ हुई और क्रमशः थोडे काल मे बहुत कुछ अविद्या देवी की जगह२ चौकियां बैठ गयीं ऐसे अवसर को पाय और देश में अंधाधुंध देख अर्हन्त जैनमत मदमत्त पुरुषों ने सनातन धर्म विरुद्ध धर्म खड़ा करदिया और जगह२ अविद्वान लोगों को मीठी२ बातों से बहकाने लगे इस युक्ति से अल्पकाल में एक बड़ा भारी यूथ मूर्ख लोगों का एकत्र होगया और यहांतक प्रबल होगया कि उस समय के कई बड़े२ राजा उनके मुंडित होगये और उन्होंने देश-२ में उपदेश देने और भोले लोगों को

वहकाने के लिये अपनी उपदेशकमंडलियां नियत कीं और सनातन धर्म की तिरोधानता बड़े बल के साथ की तब सत्यधर्म की पूर्णक्षति देख श्रीमहाराज परमहितोपदेशक श्रीशंकराचार्य्यजी ने नास्तिकों को नष्टकर सनातनधर्म की पूर्ण उन्नति की" इस समय में भी कई मतारक पुरुषों ने देश में संस्कृत की महाति क्षति और म्लेक्षभाषा की पूर्णोन्नति देखकर अपने प्रसिद्ध होने के निमित्त नये २ ढंग और नवीन२चालें निकालीं जिनमें से एक दयानन्द नामी ने विचारकिया कि अब कोई ऐसा नया ऊटपटांग गोरखधंधा निकालना और अद्भुत बहुरूपिये का स्वांग रचकर खेल खेलना चाहिये जिससे मेरा नाम देश में प्रसिद्धि हो और अपने गुप्त रक्षक का भी उपकार हो इस तमोगुणी विचारांश ने उसकी बुद्धि को दबाकर यही प्रेरणा की जो कि विरोधता से शीघ्र प्रसिद्धता होती है इसलिये सनातन धर्म्म और उसकी मर्य्यादा से विरुद्ध वेदों की छाया लेकर एक पुस्तक कीजावे तो अभीष्ट सिद्ध हो इसवास्ते वेदमंत्र शास्त्रादि के उलट फेर अर्थ करके एक पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के नाम से बनाई जिसमें मूर्त्ति अधिष्ठानक ईश्वर पूजा ईश्वरावतार श्राद्ध तीर्थादि की अत्यन्त निन्दा की है॥

इस मिथ्यार्थ प्रकाश से ऐसे लोगों को जोकि संस्कृत नहीं जानते और अपने धर्म के महत्त्व को बिलकुल नहीं पहँचानते बड़ा भारी भ्रम उत्पन्न होगया और बहुत से अदूरदर्शी नवीन युवक देश के बहुत से नगरों में उसके जाल में फंस कर सनातन धर्म से पतित होगये,, सत्यधर्म हितैषी विद्वानों और महात्माओं ने बहुत दिवस पर्य्यन्ततो इस उपद्रव को केवल खल खद्योत की चमक और कूप मंडूक की टर्र टर्र समझकर कुछ ध्यान न दिया परन्तु अब जब देखा कि इस अविद्या के समय में सहस्त्रों मनुष्य धर्म से च्युत होगये किन्च वे अपनी मूर्खता से सनातन धर्म के पूर्ण विरोधी होगये और नगर २ धर्म की निन्दा करके।

अपने पुरुषाओं ऋषिओं मुनिओं को सैकड़ो प्रकार की गाली तक देने लगगये हैं यदि अब भी इन धर्म्मनिन्दककुबुद्धिपन्थियों की पूर्ण चिकित्सा न कीजा वेगी तो यह विशूचिका (हैजे) की बीमारी देश का बड़ा अपकार करेगी इस वास्ते पंडित महात्माओं ने धर्म की उन्नति के लिये कटिबद्ध होकर (भारतधर्म्म महामण्डल) नामक समुदाय निर्माण किया और उसके महोपदेशकोंऔर शुभ चिंतकों ने पूर्व पश्चिम और दक्षिण उत्तर देशों में सनातन धर्म का उपदेश करके आधुनिकों के प्रपंच का भण्डा फोडके अनेक धर्मसभा स्थापन करी हैं। और कर रहे हैं इसके अतिरिक्त बहुत से महात्मा पुस्तकों व्याख्यानों और समाचारपत्रों द्वारा मिथ्यार्थियों का खण्डन कररहे हैं ऐसा देख और उनके बल को प्रबल करने की आकांक्षा करके मैंने क़सबा डिभाई जिला बुलन्दशहर की धर्मसभा के सम्पादक सेठ जानकीप्रसाद रामशरण हरिशंकर रामकिशोर जानकीदास रामचन्द्रादि सद्धर्मानुरागियों से चार वेद षट्शास्त्र निरुक्त निघण्टु आदि ग्रन्थ सम्पादन कराके और विधिपूर्वक देख के "सत्यार्थविवेक" नामक ग्रंथ मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, ईश्वरावतार, आदि वेद विहित कर्मों के मण्डन और विपक्षियों के खण्डन में बनाया,, दयानन्द के सत्त्यार्थ प्रकाश ने तीन बार के छपने में तीन प्रकार के गिरगट के से रंग बदले और सर्व परिवर्त्तन को प्रेस की अशुद्धता कहा गया इसवास्ते जोकि १८८७ अठारासौ सतासी सन् में तृतीयावृत्ति में छपा है तिसका खण्डन इस ग्रन्थ में कियागया है। इस ग्रन्थके दो प्रकरण हैं प्रथम प्रकरण में मोक्ष निरूपण और द्वितीय में धर्म का निरूपण सविस्तार कियागया है यह ग्रंथ केवल अपने उन भोले बान्धवों के हितार्थ निर्माण कियागया है जो अपनी बुद्धि के धोखे से प्रतारक और मिथ्या प्रशंसा चाहनेवाले प्रपंची पुरुष की बहकावट में फंस के अपना सनातन धर्म सर्वथा त्याग बैठे हैं इसलिये उनसे प्रार्थना है कि अब धोखे बाज़ का धोखा और

जाल खुलगया अब तो सोच समझ के स्वधर्म्म पर पूरा विश्वास कर सेवन करो और पक्षपात और दुराग्रह को छोड़कर कल्याण के पात्र बनो जिससे तुम्हारे देश का उपकार भी हो-महती आशा है कि भारत जननी के सच्चे सुपुत्र और धार्मिक आर्य पुरुषाओं की निर्मल संतानें हमारे श्रेष्ठ और न्यायकारी पक्षपाती आर्य्य भ्रातागण अब अवश्यही दुराग्रह को छोड़ अपने सत्य सनातन धर्म कोग्रहण कर महत यश के भागी होंगे,, देश के सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ता पण्डित महात्माओं से ग्रन्थकर्त्ता का सविनय यह निवेदन है कि यदि लेखदोष वा असावधानता दोष से जो २ अशुद्धियां ग्रन्थ में रहगई हों उन्हें क्षमा करें और उनकी सूचना मुझको कृपाकर दें जिससे आगे के लिये वे ठीक करदी जावें सनातन धर्मावलम्बियों का शुभाभिलाषी पंडित साधुसिंह अनियत स्थान निवासी।

अनुभूमिका

विदित्त हो समस्त सनातन धर्मा वलंबिओंको जो कि एक सत्यार्थ प्रकाश नामक ग्रंथ ऐसा है जिसको देखकर पुरुष भ्रम जाल में फस जाते हैं और अपने पित्रादि उपदिष्ट मार्ग को छोड़कर विपरीत मार्ग में चलते हैं और वो ग्रंथ प्रायः पूर्वा पर अपने लेखसे ही विरुद्ध है परंतु केचित् पुरुष शास्त्र संस्कार शून्य उसको देखकर अपने सनातन धर्म से प्रच्युत होकर कुतर्कजाल में फस जाते हैं और धर्म त्यागके प्रभाव से प्रतिदिन दुर्दशा को प्राप्त होकर मलीन चित्त और मलीन शरीर क्रान्ति करके सत्संगादि से विमुख होकर अश्वत्थ पत्रवत् अव्यवस्थित चित्त हो जात्ते हैं और जो उपनिषद् गीतादि प्रचलित धर्म पुस्तक हैं तिन सें विपरीत भावना समुद्भूत संस्कार के प्रति बंधक से धर्म का निश्चय नहीं कर सकते इस वास्ते मैने अनेक पुरुषों को कुतर्क जाल से प्रवल युक्ति सें छुड़ाना चाहा परंतु पुरुष दुराग्रह से प्रच्युत होते नहीं उलटा यह चाहिते हैं जो दूसरों को भी वैसे ही करलें फिर मैने यह विचार करा जो यह जैसी इनकी इच्छा होवैसे प्रवृत्त रहें परंतु जिन ग्रंथों को प्रमाण मानते हैं उनी ग्रंथों से मोक्ष व जीव स्वरूप व धर्म इन पदार्थो को निरूपण करना चाहिये और सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथकर कल्पित दूषणों का निवारण करना चाहिये जिसके संस्कार उत्तम हैं सो इन पदार्थों के स्वरूप को यथावत् जान कर अपने संशय को दूर करो। अब धर्मात्मा पुरुषों को चाहिये जो इस ग्रंथको विचार सर्वको श्रव

ण करावें जो कि कुमत संस्कार अपनी कुल में न फैलने पावें। और इस ग्रंथ के बनाने में मुख्य निमित्त तो मेरे मन में प्रादुर्भूत हुआ है मैंने अनेक स्थानो में देखा जो बहुत से सद्धर्मानुरागी सनातन धर्म के स्थापन में संनद्ध बद्ध कर लग रहे हैं और यथा शक्ति पुरुषार्थ भी कर रहे हैं केचित् उपदेशक देश विदेश में भ्रमण कर उपदेश करते हैं केचित् स्थित होकर उपदेश करते हैं केचित् समाचार पत्र द्वारा उपदेश करते हैं इस प्रकार मैंने देखकर यह विचार किया जो कि इन सत्पुरुषों के बल को प्रवल करना चाहिये इस वास्ते मैं ने डिभाई ज़िला बुलंदशहर की धर्म सभा सम्पादक सेठ जानकी प्रसाद। रामशरण। हरिशंकर। रामकिशोर। जानकीदास रामचंद्रादि सद्धर्मानुरागिओं से चार वेद षट् शास्त्र निरुक्त निघण्टु आदि ग्रंथों को संपादन कराके और विधि पूर्वक देखकर सत्यार्थ विवेक नामक ग्रंथ अत्यन्त यत्न से दुर्लभ पदार्थ विवेचन करके रचा है और आधुनिक प्रचलित कुतर्क जाल का विघातक युक्ति भी इस ग्रंथ में बहुत हैं ॥ और एक दूसरा भी सज्जन पुरुषों को विचार करना जो कि इस ग्रंथ में, प्रतिमा पूजन व तीर्थादि के महत्त्व का निरूपण वेद मंत्रादि प्रमाण से किया है परंतु जो कि शास्त्रीयमर्य्यादा से प्रतिमा पूजनादि हैं उनके प्रभाव का निरूपण किया है जो कि वर्त्तमान काल में प्रतिमा पूजन व तीर्थादि सेवकों की दुर्दशा है अधोगति प्राप्ति हेतु इसका महत्व तो वृहस्पति भी नही निरूपण कर सकता क्यों कि जिसके वास्ते यह प्रतिमा पूजनादि - शास्त्र में कहे हैं सो तो सर्वथा पूजारिओं से रागद्वेष व शास्त्र सं-

स्कारा भाव के प्रभाव से छूट गया है अब इसमें यदि मैं कुछ किसी प्रकार का आक्षेप वाक्य लिखूंगा तो किसी को बुरासा मालूम होगा इस वास्ते सर्व सज्जन जनों का इष्ट रूप श्रीमद्भागवत् वचन ही लिखता हूं जो कि श्रीकृष्ण ही अपने वचन से सर्व को शिक्षा करते हैं ॥

तथाहि ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कात्स्न्येन तत्फलम् ॥ देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वर दर्शनम् ॥ भागवत० दशम० उत्तर । अध्याय० ८४ । श्लोक ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ पूर्व प्रसंग यह है कुरुक्षेत्र यात्रा में श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन वास्ते जब व्यास नारदादि प्राप्त हुए तब श्रीभगवान् कहते हैं । बड़ा आश्चर्य्य है हमभी (जन्मभृतः) सफल जन्म वाले हैं क्यों कि संपूर्ण रूप करके जन्म का फल देवों को दुर्लभ योगेश्वर दर्शन को प्राप्त हुए हैं । ९ । अब इसी वार्त्ता को श्रीभगवान् स्पष्ट करते हैं ॥

श्लोक । किं स्वल्प तपसां नृणामर्चायां देव चक्षुषाम् ॥ दर्शन स्पर्शन प्रश्न प्रह्व पादार्चनादिकम् ॥ १० ॥

अर्थ ॥ अर्चा में देव दृष्टि और अत्यंत अल्प तप युक्त पुरुषों को क्या महद्दर्शन स्पर्शन प्रश्न प्रणाम पादार्चनादि सुलभ हैं अपितु नहीं किन्तु दुर्लभ हैं । भाव श्री भगवान् का यह है देव दृष्टि से प्रतिमापूजन का मुख्य फल महद्दर्शनादि हैं । अब इसी वार्त्ता को विस्तार करते हैं ।

श्लोक । न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ११ ॥

अर्थ,, जल मय तीर्थ और मृत्तिका मय तथा शिला मय देवता नहीं यह वार्त्ता नहीं किन्तु जल मय तीर्थ और मृच्छिला मय देवता हैं परंतु वे बहुकाल में पवित्र करते हैं और साधुजन दर्शन मात्र सें ही श्रद्धा पूर्वक दृष्ट हुए पवित्र करते हैं। वशिष्ट प्रणीत श्लोक॥ यस्यानुभव पर्य्यन्तंतत्त्वेबुद्धिः प्रवर्त्तते।

तद्दृष्टि गोचराः सर्वेमुच्यंतेसर्व किल्विषैः॥

अर्थ, जिसकी बुद्धि अनुभव पर्य्यन्त तत्त्व में प्रविष्ट है तिस सत्पुरुष की दृष्टि विषय सर्वजन सर्व पाप से विमुक्त होते हैं भाव यह है यदि इस प्रकार के सत्पुरुषों सें प्रीतिकरेगा तो अवश्य तत्त्व ज्ञान प्राप्तिद्वारा मुक्त होगा॥

श्लोक॥ नाग्निर्नसूर्य्यो नचचन्द्रतारकानभूर्जलंखं श्वसनोऽथवाङ्मनः॥ उपासिताभेदकृतोहरंत्यघं

विपश्चितोघ्नंतिमुहूर्त्तसेवया॥१२॥

अर्थ,, अग्नि १ सूर्य्य २ चन्द्रतारक ३ पृथिवी ४ जल ५ आकाश ६ वायु ७ वाक् ८ मन ९ यह संपूर्ण अग्नि आदि उपासना करे हुए शीघ्र भेद दृष्टि पुरुष के पाप को नहीं नाश करते और विपश्चित जो सत्पुरुष हैं वे मुहूर्तमात्र सेवन करे हुए शीघ्र ही पाप को नाश करते हैं। इस स्थान में महत्सेवा की प्रशंसा में तात्पर्य्य है कुछ अग्नि आदि की उपासना की निन्दा में तात्पर्य्य नहीं॥ अब चार भूमिका बांधकर सत्पुरुषों की सेवा कर्तव्य बोधन करते हैं एक श्लोक सें॥

श्लोक॥ यस्यात्मबुद्धिः कुणपेत्रिधातुकेस्वधीःकलत्रादिषुभौमइज्यधीः॥ यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेनकर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषुसएवगोखरः॥१३॥

अर्थ,, वात पित्त श्लेष्मा रूपतीन धातुजन्य जो यह शरीर है तिस में यथा आत्म बुद्धि होती है वैसे अभिज्ञजनों में आत्मबुद्धि चाहिये - भाव यह है जैसे सर्व से विशेष प्रीति शरीर में है इसी प्रकार अभिज्ञ जनो में चाहिये यह तो उत्तम भूमिका है और जैसे स्त्री पुत्रादि में ममता है वैसेही अभिज्ञजनो में ममता करें जैसे भूमि विकार में से व्यत्त्व बुद्धि है तद्वत् सत्पुरुषों में से व्यत्त्व पूज्यत्त्व बुद्धि करें और जैसे तीर्थ में पवित्र कर्त्तृत्त्व बुद्धि है तद्वत् अभिज्ञजनो में तीर्थ बुद्धि चाहिये जिसको इस चार भूमिका में से एक भी प्राप्त नहीं सो-तो गौओं के भार वाही गर्धभ तुल्य है ॥ अब इस स्थान में यह विचार कर्त्तव्य है यदि सत्संग वास च्छास्त्र संस्कार के प्रभाव सें कोई प्रतिमा पूजक पूजन से उपराम होकर भी अतिथि आदि का सत्कार करे तो कोई उसको प्रत्यवाय नहीं उलटा महत्पुण्य होगा, शास्त्र मर्य्यादा से यह प्रतीत होता है यदि वो देव पूजा सामग्री से-भी भगवद्रूप जानकर अतिथि सत्कार करे तो भी उसका महाभाग है और हच्छे २ मंदिरों में विद्या का पठन पाठनादि का मुख्यता से प्रचार होना चाहिये जो कि अविद्या तिमिर नाशक है ऐसा नहीं चाहिये जो किसी अनधिकारी को समर्पण करें जो कि वो केवल मंदिर में यथेष्टा चरण करे किन्तु धर्मज्ञ अधिष्ठाता होना चाहिये ॥ इस रीति से वेद प्रति पाद्य प्रतिमा पूजनादि से सर्वथा-उन्नति होगी ॥

॥ श्लोक ॥ ॥ ॥

तृणानि भूमि रुदकं वाक् चतुर्थी च सुनृता ॥ चत्वारि हि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १ ॥

अर्थ,, तृण निर्मित कटादि और स्वच्छ भूमि तथा जल और चौ

थी कोमल बाणी यह चार वस्तु तो कदापि सत्पुरुषों के गृह में सें नाश नहीं होती भाव यह है यदि और न मिले तो इन चार वस्तु-ओं से तो अवश्य अभ्यागत का सत्कार कर्त्तव्य है ॥

श्लोक ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टोभगवान्स्व यं । प्रणमेत् दण्डवद्भू मावाश्वचांडालगोखरम्

।१॥भागवत॥

अर्थ, भगवत् भक्ति का स्वरूप दिखलाते हैं जो कि ईश्वर ही स्वयं भगवान् ऐश्वर्य्य संपन्न जीव कला करके चराचर में प्रविष्ट है इस वास्ते श्वान चांडाल और गोखर पर्य्यन्त सर्व को भूमि में दण्डवत् प्रणाम करे भगवद्रूप जानकर । जब इस प्रकार की भक्ति प्रतिपादन करी है तो इस प्रकार की भक्ति सर्वथा भगवत्पू जकों को अवश्य कर्त्तव्य है जिस से उद्धार होना है जीवात्मा का,, और एक वार्त्ता यह भी विचारणीय है जो कि धर्म के उपदेशक भी आप यथावत् धर्म के अनुष्ठाता होवें तो उन से सर्व का उद्धार हो ता है क्यों कि पतिब्रत स्त्री ही पातिब्रत्य धर्म का उपदेश करे तो औरों को उपदेश का असिर हो सकता है यदि वेश्या पातिब्रत्य धर्म का उपदेश करे तो उपदेश निष्फल होता है और श्रवण कर नें वाली स्त्री ओं में व्यभिचार प्रसक्ति कर भी होगा क्यों कि वो जा-नेगी जो कि यह केवल मुखकी वार्त्ता है अनुष्ठान योग्य नहीं य-दि अनुष्ठान योग्य होता तो उपदेशक क्यों न सेवन करता इसी प्रकार उपदेशक यदि आपही प्रचलित बुद्धि मिथ्या भाषी सना तन धर्म में अश्रद्धक शास्त्र विचार शून्य भ्रान्त होगा तो तिसके उ पदेश से सर्वथा अवनति होगी कभी उन्नति नहीं होने की । जैसे

कि वर्त्तमान समय के साधु व ब्राह्मण पंडित आज सनातन धर्म के उपदेशक हैं और कल्हको इसी का खण्डन करने को उद्यत-होते हैं क्यों कि लोभ जाल में फसे हैं ऐसे उपदेशकों से कबीभी उन्नति होती नहीं ॥

श्लोक

त्रिविधंनरकस्येदंद्वारंनाशनमात्मनः ॥ कामःक्रो
धस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत् ॥

अर्थ ,, आसुरी सम्पत्ति का संक्षेप यह है तीन प्रकार का नरक-द्वार है जीवात्मा का नाशक काम क्रोध लोभ इस वास्ते श्रेयो अ-र्थी इन तीन का त्याग करे अब देखना चाहिये बहुत से धनिक पुरुष दान श्राद्धादि कर्म में धन का व्यय देखकर लोभ से सनात न धर्म को त्याग कर किसी नवीन मत में प्रविष्ट होगये परंतु य दि वो चाहें जो हमारी उन्नति हो सो कभी नहीं होनी किन्तु नरक द्वार के आश्रय करने से प्रति दिन अवनति होगी और बहुत से पुरुष प्रचलित बुद्धि करके काम व लोभ के वश होकर मतान्त-रावलंबी हुए हैं वे भी सर्वथा अवनति को प्राप्त होंगे ,, जो सर्वथा धर्म की कामना वाला स्वयं सत्य संभाषी धर्म सेवक होगा तिस के उपदेश से यदि भयानक काल विरुद्ध राज के दोष से उन्नति न होगी तो अवनति धर्म की कबी नहीं होगी ॥

(सत्यमितिसत्यवचाराथीतरः । तपइतितपो-
नित्यःपौरुशिष्टिः । स्वाध्याय प्रवचने एवेतिना-
कोमौद्गल्यः । तद्धितपस्तद्धितपः ॥ तैत्तिरीयोपनि
षद् । १ वल्ली ॥ अनु० ९ ॥

अर्थ,, इस स्थान में मत भेद से कल्याण साधनों का निर्धारण करते हैं सत्य वचा नाम क,र थीत्तर का पुत्र आचार्य्य तो सत्य को ही उत्तम साधन कहता है और तपोनित्य नामा पुरु शिष्ट का पुत्र आचार्य्य तो तप को सर्व उत्तम साधन कहता है और मुद्गल-का पुत्र नाक नामक आचार्य्य तो वेदाध्ययन और अध्यापन को ही उत्तम साधन कहता है क्यों कि वेदाध्ययनाध्यापन ही परमतप है भाव यह है यदि वेदाध्ययनाध्यापन करेगा तो सत्य संभाषणादि साधन स्वाभाविक ही रहेंगे। इस वास्ते यह सर्वथा होना उचित है जो कि उपदेशक स्वयं धर्म्मानुष्ठानी होवे,,

वेद मनूच्या चार्य्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यंवद धर्म्मञ्चरस्वाध्यायान्मा प्रमदः आचार्य्याय प्रियंधन माहृत्य प्रजातन्तुंभाव्यवच्छेत्सीः सत्यान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यैन प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यांनप्रमदितव्यम् ॥१॥ देवपितृकार्य्याभ्यां नप्रमदितव्यम्। मातृदेवोभव पितृदेवोभव। आचार्य्यदेवोभव अतिथि देवोभव यान्यनवद्यानिकर्माणितानि सेवितव्यानि नोइतराणि यान्यस्माकꣳ सुचरितानितानित्वयोपास्यानि ॥२॥ नोइतराणि। येकेचास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः। तेषांत्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रियादेयम्। ह्रियादेयम्। भियादेयम्। संविदादेयम्। अथयदितेकर्म्म विचिकित्सावावृत्त विचिकित्सावास्यात् ॥३॥ येतत्रब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षाधर्मकामाःस्युः। यथातेतत्रवर्त्तेरन् ॥ तथातत्रवर्त्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। येतत्रब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षाधर्म्मकामाःस्युः यथातेतेषुवर्त्तेरन्। तथातेषुवर्त्तेथाः। एषआदेशः। एषउपदेशः। एषावेदोपनिषत् एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम् ॥४॥ सम्मर्शिनोविचार

अथ विषय सूचक पत्र लिखते हैं

॥ द्वितीय प्रकरण विषयसूचक पत्रम् ॥

ओ३म्

प्रथम प्रकरण का शुद्धाऽशुद्धपत्रलि०

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	६	ओ	ओं	६३	१८	मूर्त्ति	पूर्त्ति
१	१०	ध्व	ध्व	५६	२१	नमःनमः	नमः
१	१७	त	त्	६५	१७	स्वद्यया	नद्यया
२	१८	शाखोप	शाखोप	६५	१६	स्रूपः	सूपः
२	२०	निषद	निषद्	६७	७	पश्चादि	पश्चादि
३	१	कथित हैं	अर्थ कथि-	८०	८	सूत्र	सूक्त
			त हैं	८०	७	चिञ्चनास	किञ्चनास
३	१५	विवक	विवेक	८६	८	बूयुः	ब्रूयुः
५	११	जिघ्रन	जिघ्रन्	८६	८	जामेंगे	जानेंगे
८	४	प्रकारसाम	प्रकारकी	६५	१५	अ २३	अ ३
		र्थ्यके ज्ञान	सामर्थ्य यु-	१०२	१४	रचमा	रचना
		युक्त	क्त	१०७	४	मेरी	भेरी
१६	८	विलक्षण	विलक्षणता	१०७	१५	विन्ना	विज्ञा
२१	१२	में	सें	१०७	१५	नमा	तसो
३२	१४	जीयीय	जातीय	१०७	२०	जानत्वात्	ज्ञानत्वात्
३३	८	नया	न नया	११२	१४	दी	दो
५८	२२	क्षिक्षा	शिक्षा	११३	६	त्तिसदेचान	त्तिसदेचान
५६	२३	अन्नैः	अन्यैः			णनेसवमेचा नणना	णेसवमेचा नणा

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२०	२३	यहैं	यहां	११५	१	कण्ठ	कठ
१२२	२	प्रकृतिकी	प्रकृतिको	१३७	७	प्रवेदयेते	प्रवेदयते
१२५	२०	वाय्वाग्न्यु	वाय्वग्न्यु-	१३७	१४	हिरण्य-	हिरण्यग-
		दक	दक			गर्भ	र्भ
१२४	५	छादोग्य	छांदोग्य	१५८	५	आरूद	आरूढ
१३२	७	श्रोत्	श्रोत्त	१६०	२	रूपत्या-	रूपन्यासा
१४५	१९	प्राणदि	प्राणादि			सादि	दि
१५५	१७	जी	जो	१६०	१६	औडुलोमिः	औडुलोमिः
१५६	६	मृत्यना	मृत्युना	१६४	१८	शाका	शंका
१५७	५	शरीर	सशरीर	१६५	३	भवस्य	भावस्य
११७	१३	मुष्यन्ति	तुष्यन्ति	१६६	५	यहहैदोनो	यहहैं
१२१	७	प्रोक्तं	प्रोतं	१४६	२३	सम्राडिन्द्र	सम्राडिन्द्र
१२५	७	आकारादि	अकारादि	१४७	१	हिण्मयेन	हिरण्मयेन
१२८	२२	का	को	१७४	१९	तदध्येण	तदध्यक्षे-
१३२	१९	प्रथस	प्रथम				ण
१२२	८	उद्गात्	उदगात्	१७७	२२	सीलोक	सोलोक
१३३	१९	ससाम्नांलो	सस म्नाम-	१७७	२२	एष	एषं
		को	ण्डल७७स	१७९	२२	रौरव	रौरवमहा
			साम्नांलोको				रौरव
१४०	६	मध्यमाग	मध्यभाग	१८०	२०	देकस्य	देवस्य
१४१	५	औरऔर	और	१७८	१३	स्वर्गचतु-	स्वर्ग
						र्थे	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८२	३	दीर्घनील श्वेतशृंगोवाले	विस्तृतनील श्वेतशृंगवान्	१९३	२३	सर्वदिशाओं में लंबेपनमें हैं और तिससे	सर्वदिशाओं में है और तिससे
१८२	५	नीलशृंग	नील	१९४	१	चौड़ाई में है	सुमेरु से संक्षिप्त अर्थात् निरुद्ध है
१८२	६	युक्तहोनेसेनीलऔर श्वेतशृंगपर्वत	औरश्वेतपर्वत	१९१	२१	रुचावा	रुवाचा
१८२	७	औरश्वेतशृंगपर्वतों	औरश्वेतशृंगवान् पर्वतों				

इति प्रथम प्रकरण शुद्धिपत्रम्

अथ द्वितीय प्रकरण शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
३	१६	प्रवात	प्रवृत्त	५०	५	तजाना	नजाना
३	२०	प्रवात	प्रवृत्त	१५	१४	कम्पतइव	कम्पन्तइव
२	१	दृह·शद्द·	गृह·सद्द·	३८	१२	जक्षिरे	जज्ञिरे
२०	१	भागना	भावना	३८	१४	जक्षिरे	जज्ञिरे
२५	७	माहः	मोहः	३९	१६	प्रतिमादक	प्रतिपादक
२६	१३	ईश्वरमी	ईश्वरभी	६७	२२	सत्यस्यापिहितं	सत्यस्यापिहितं
२६	२३	ब्रह्मकी	ब्रह्मका				
४९	१	अये	अगे	८६	१०	अवय	अवयव

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
९१	६	अस्कमायत्	अस्कभायत्	१७६	१२	तत्त्वंम्	तत्त्वम्
१०२	११	पदिच्छिन्न	परिच्छिन्न	१८७	१८	सोभी	सोभी
११०	१	तंडलु	तंडुल	२०४	१	स्वरःसौष्ठवा	स्वरसौष्ठ-वा
१२३	१६	अन्यंथा	अन्यथा				
१३१	२१	माव	भाव	५१	२	शकाक	शाशाक
१३६	७	परिभाशि-क	पारिभाषि-क	६४	३	भगद्रूप	भगवद्रूप
				६७	१	सन् १८८६	सन् १८८८
१४०	११	भावश्यक	मावश्यक			पृ० ४ पंक्ति ८	आर्य्यागज्ञ पृ० ४ पंक्ति ८
१५७	२०	जोव	जीव				
१६१	१२	होतु	हेतु				
१३१	२	अवेत्	अवेदम्	१५५	७	अनुरव्यान	अनुव्यारव्यान
अनुभूमिका पृ०२		सद्धर्षा	सद्धर्मा				

इति द्वितीयप्रकरणशुद्धिपत्रम् ॥

सत्यार्थविवेक

अथमंगलाचरणमोक्ष
निरूपणप्रतिज्ञा
हरिः ओम्
श्रीगणेशायनमः॥ श्रीगुरुवेनमः
ओंतत्सत्

प्रमाणभावमापन्नस्तमोहरति हृद्गतम॥ नमस्कुर्म्मो न्रसिंहाय पूर्णानन्दचिदात्मने

प्रमाण भाव मापन्नो यो न्रसिंहो हृद्गतं तमो हरति पूर्णानन्द चिदात्मने तस्मै न्रसिंहाय नमस्कुर्म्म इत्यन्वयः! नाचासौ सिंहश्च न्रसिंहः प्रत्यगभिन्नः परमात्मा - आनन्दश्चासौ चिच्च आत्मा च आनन्द चिदात्मा पूर्णश्चासा वानंद चिदात्मा पूर्णानन्द चिदात्मा तस्मै - वेदप्रमाण जन्य प्रमाण त्वयारूढो न्रसिंहो हृद्गतं तमो हरति नाशयतीति फलितम्॥ यद्वान्द्रणां वस्तुतः सर्वव्यापकानां जीवानां सिं बन्धनं स्वरूपाज्ञानं स्वोपदेशेन हरतीति न्रसिंहः श्रीगुरु गोविन्दसिंहः - सयो हवै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवतीति श्रुत्याचार्य्यस्यापि ब्रह्मरूपत्वात श्रीमच्छंकरपादैरपि न्रसिंहपदं व्या च क्षाणैः न्रसिंहोत्तर तापिनी द्वितीय२ खण्डे न्रृ नयाविति धातो रूपेण न्रशब्देन त्रिविध परिच्छेद रहित आत्मा

च्यते - षिञ् बन्धने - इति धातोः सिमिति तद्बंधकम विद्यालक्षणं द्वैतं इमिति च तत्सं हर्त्तृत्व मुच्यत इत्युक्तम् ॥ एतेन यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मन इति श्रुत्युक्तस्य विद्याप्राप्ता वन्तरंगस्येश्वर गुरुभक्ति रूपस्य साधनस्य स्वस्मिन् सद्भावो ध्वनित इति बोध्यम्

भाषार्थ — जो परमात्मा प्रमाण वृत्ति में प्रादुर्भूत होकर हृदय में वर्त्तमान कर्त्तव्य साधन के अज्ञान का और स्वरूपाज्ञान का नाशक है जैसे दीपक वर्त्तिका में स्थित अग्नि अन्धकार का नाशक है वैसे पूर्णचिदात्मा भी अंतःकरण वृत्ति ज्ञान में स्थित होकर साधनाज्ञान तथा स्वरूपाज्ञान का नाशक है उस पूर्ण परब्रह्म नृसिंह को नमस्कार करता हूं ॥ जो कि नृ नाम व्यापक प्रत्यगात्मा त्वं पद लक्ष्य से अभिन्न सिंह नाम सर्व संहार करता है इसी रीति से आचार्य्य को भी प्रणाम जानना क्योंकि आचार्य्य भी अपने उपदेश जन्य ज्ञान से जीवाज्ञान के नाशक हैं और जो परब्रह्म को जानता है सो ब्रह्म होता है इत्यर्थक मुण्डक श्रुति से ब्रह्मरूप हैं नृ गतौ धातु मेंसेव्यापक जीव चैतन्य के सिं नाम स्वरूपाज्ञान को जो नाश करे सो नृसिंह है इसी रीति का नृसिंह शब्दार्थ परमात्मा और आचार्य्य है - ऐसेही शंकराचार्य्यजी ने नृसिंह उत्तर तापनी नामक अथर्वण वेद की भृगु शाखोपनिषद् के द्वितीयखण्ड की व्याख्या में नृसिंह पद का अर्थ किया है इस कथन से जो श्वेताश्वतर यजुर्वेद की उपनिषद् के षष्ठाध्याय के अन्त के मंत्र में ईश्वर गुरुभक्ति को विद्या प्राप्ति में अन्तरङ्ग साधनता निर्णीत है तिसका भी सद्भाव ग्रन्थकार ने अपने में जनाया श्रुति का अर्थ,, जिसकी देव नाम ईश्वर में परमभक्ति है और वैसेही गुरु में भक्ति है तिस

महात्मा को जितने वेद में कथित हैं वे अपने आपही ईश्वर गुरु कृपा से प्रकाशित होते हैं ॥ इदानीं स्वोपकारकाणां माता पित्राचार्य्य विद्या गुरूणां बहुत्वात् एकोक्त्या सर्वान् प्रणम्य प्रकरण प्रयोजनं प्रदर्शयन् तदारम्भं प्रति जानीते मान्यान् प्रणम्येत्यादिना ।

मान्यान् प्रणम्य विधिवत् करोम्येतत्सु विस्तरम्
पूर्ववाद्यज्ञानच्छित्त्यै सुसत्यार्थ विवेचनम् २

विधिवन्मान्यान् प्रणम्य पूर्व वाद्यज्ञानच्छित्त्यै सुसत्यार्थ विवेचन मेतत्सुविस्तरं करोमीत्यन्वयः ॥ पूर्व वादिनो मोक्ष तत्साधन विषयाज्ञानस्य छित्तिः छेदनं तदर्थमेत त्प्रकरणं सुसत्यार्थ विवेचनं नाम शोभन सत्यार्थ विवेचन जनकं सत्यार्थ विवेक नामकं सुविस्तरं यथास्यात् तथा करोमीत्यर्थः ।

भाषार्थ — अब स्वोपकारक माता पिता और सम्प्रदाय प्रद आचार्य्य और विद्याप्रद गुरू आदि को एक उक्ति कर सर्व को प्रणाम कर सत्यार्थ विवेक के आरम्भ करने की प्रतिज्ञा करते हैं ग्रन्थकार विधिपूर्वक मान्यवर्ग को प्रणाम कर विस्तृत सत्यार्थ विवेकरूप प्रकरण को मोक्ष और मोक्ष साधन में वादी के अज्ञाननिवृत्ति के अर्थ करता हूं क्योंकि वादी का यह नियम है सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग करने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये । इस वास्ते मैं भी इस नियम को उत्तम मानकर असत्य के त्याग वास्ते और सत्य के ग्रहण वास्ते यथामति सत्यार्थ विचार करता हूं । इस ग्रन्थ की रचना गंगा यमुना के मध्य करण वास क्षेत्र से दक्षिण की तरफ़ डिमाई नामक ग्राम में रामशरण दास जानकी प्रसाद हरिशंकर रामकिशोर जानकीदास रामचंद्र

आदि धर्म्मात्मा पुरुषों कर संग्रहीत चतुर्वेद निरुक्त निघंटु व्याकरण महाभाष्य षट् शास्त्रादि ग्रन्थों के विधि पूर्वक विचार से हुई है सज्जन पुरुष इच्छी तरहँ से विचार वा श्रवण करेंगे तो सत्यार्थ स्पष्ट प्रतीत होगा । इस ग्रन्थ में अपनी स्वतंत्र कल्पना नहीं किन्तु पतंजलि व्यासादि ऋषियों का निर्णीत अर्थही लिखा है स्वकपोल काल्पित नहीं यह वार्त्ता उनको स्पष्ट प्रतीत होगी जिनके शास्त्ररूप चक्षु हैं चार प्रकार का पुरुषार्थ प्रसिद्ध है धर्म्म और अर्थ काम और मोक्ष इसमें अर्थ और काम में पुरुषार्थत्व भ्रम सिद्ध है। क्योंकि शरीर यात्रा वा धर्म्मकार्य्य का असाधक जो अर्थ है सो केवल तापक है और धर्म्म विरुद्ध अधिक काम भी दुःखरूप है इसवास्ते वे दोनों तो अपुरुषार्थ हैं परिशेष ते धर्म्म और मोक्ष ही पुरुषार्थ हैं मोक्ष कारण कर्म और उपासना वा ज्ञान वैराग्यादि धर्म रूप हैं अब इन दोनों में से मुख्य प्रीति का विषय मोक्ष है जिस वास्ते किसी अन्य पदार्थ की इच्छा होती है सो मुख्य प्रीति का विषय होता है जैसे अपने सुख वास्ते यावत् पदार्थों की इच्छा होती है वे पदार्थ गौण प्रीति के विषय हैं और सुख मुख्य प्रीति का विषय है वैसेही धर्म्म की इच्छा वास्ते मोक्ष के होती है इससे मोक्ष मुख्यप्रीति का विषय है जब मुख्य प्रीति का विषय मोक्ष है तो प्रथम तो मोक्ष का निर्णय कर्त्तव्य है और पश्चात् धर्म्म का निर्णय कर्तव्य है इसवास्ते इस ग्रन्थ में वादि स्वीकृत मोक्ष विचार पूर्वक मोक्ष का निरूपण करते हैं **अथ दयानन्द स्वीकृत मुक्तजीव स्वरूप तथा तिसके मत में दूषणाभिधान निरूपण करते हैं।** और जो वादी ने मुक्ति में जीव की व्यवस्था मानी है तिसको लिखकर दिखलाते हैं।

तयाहिंप्रश्न। मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है उत्तर। विद्यमान रहता है। प्रश्न। कहां रहता है। उत्तर। ब्रह्म में प्रश्न। ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है। उत्तर। जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्त जीव अव्याहत गति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतंत्र विचरता है। प्रश्न। मुक्त जीव का स्थूल शरीर होता है वा नहीं। उत्तर। नहीं रहता। प्रश्न। फिर वह सुख और आनन्द भोग कैसे करता है। उत्तर। उसके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं भौतिक संग नहीं रहता जैसे

शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसनो भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयँश्चित्तं भवत्यहं कुर्वाणोऽहंकारो भवति।

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा देखने के संकल्प से चक्षु स्वाद के अर्थ रसना गंध के लिये घ्राण संकल्प विकल्प करने समय मन निश्चय करने के लिये बुद्धि स्मरण करने के लिये चित्त और अहंकार के अर्थ अहंकार रूप अपनी शक्ति से जीवात्मा मुक्ति में होजाता है और संकल्प मात्र शरीर होता है जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक द्वारा जीव स्वकार्य्य करता है वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनंद भोग लेता

है॥सत्या० समु०९। पृ २३६ वा २३७।

यह मिथ्यावादी वादी का लेख है इसमें सारार्थ वादी को विवक्षित केवल इतना है जो कि मुक्ति में स्थूल शरीर रहित होता है और अपनी शक्ति से श्रोत्रादि रूप होकर आनन्द को भोक्ता है और उसको भौतिक पदार्थ का संग नहीं रहता। परन्तु इस अर्थ का बोधक प्रमाण भूत जो श्रुति वाक्य लिखा है सो मोक्ष प्रकरण का नहीं और इस अर्थ का साधक भी नहीं। तथाहि॥

स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यो यथाक्षुरः क्षुरधाने ऽवाहितः स्याद्विश्वंभरो वा विश्वंभर कुलाये तं न पश्यन्त्य कृत्स्नो हि स प्राणन्नेव प्राणो नाम भवति वदन् वाक् पश्यं श्चक्षुः शृण्वन् श्रोत्रं मन्वानो मनस्तान्यस्यैतानि कर्मनामान्येव स यो ऽत एकैक मुपास्ते न स वेदा कृत्स्नो ह्येषो ऽत एकैकेन भवत्यात्मेत्येवोपासीतात्र ह्येते सर्व एकं भवन्ति। वृह० उप० अ ३ ब्रा ४।

इस श्रुति के उपक्रम को त्यागकर कुछ इस श्रुति में से लेकर और कुछ अपनी मिलावट करके श्रुतिवादी ने लिखी है और यदि शाखा भेदकर पाठ का भेद होवे तब भी उपक्रम की श्रुति से बिना इन श्रुति बचनों से किसी अर्थ की सिद्धी होती नहीं इसवास्ते समग्र श्रुति के अर्थ को लिखते हैं सो यह आत्मापूर्व जो अव्यक्त का अधिष्ठान रूप ते निर्णीत है वह अव्यक्त कार्य्य शरीर में नखाग्र पर्य्यन्त प्रविष्ट हुआ और प्रवेश भी विशेष रूप ते तथा सामान्यरूप ते हुआ तिसमें दृष्टान्त कहते हैं (यथाक्षुरधानेक्षुरो ऽवहितःस्यात्

जैसे (क्षुरधाने) नापित के पात्र में क्षुर अवहित अर्थात् प्रविष्ट होता है भाव यह है जैसे नापित के शस्त्रों के पात्र में छुरा आदि एक देश में प्रविष्ट होते हैं वैसेही परमात्मा प्राणादि विशेष स्थान में प्रविष्ट होकर भान हुआ वा अथवा (विश्वंभरकुलाये) काष्टों में जैसे(विश्वंभर) अग्नि प्रविष्ट होती है सामान्य रूप से इसी प्रकार सामान्यरूप से सर्व देह में प्रविष्ट हुआ तिस स्पष्ट प्रविष्ट को भी नहीं जानते (हि) जिस कारण से वो आत्मा का रूप (अकृत्स्न) सम्पूर्ण नहीं क्योंकि वो आत्मा प्राण उपाधिक होकर प्राणन क्रिया को करता हुआ प्राण नाम वाला होता है और बदन क्रिया को वागुपाधिक होकर करता हुआ वाग् नाम वाला होता है और चक्षु उपाधिक होकर दर्शन क्रिया का करता चक्षुनाम वाला इसी प्रकार मनन क्रिया का करता होकर मन नाम वाला होता है इसी प्रकार जब शाखान्तरीय पाठ होवे तो रसना घ्राण बुद्धि चित्त अहंकार नाम वाला होता है परन्तु यह सम्पूर्ण इस आत्मा के कर्म नाम हैं अर्थात् औपाधिक क्रिया जनित नाम हैं इसवास्ते जो इस एक२ को आत्मरूप से उपासना करता है सो नहीं जानता क्योंकि इन एक२ करके वो आत्मा असंपूर्ण होता है इस वास्ते सर्व को आत्मा इस रीति से ध्यान करे क्योंकि इस आत्मा में ही सर्व प्राणादि नाम वाले एकता को प्राप्त होते हैं अब देखना चाहिये मिथ्यावादी वादी कल्पित मोक्ष में शरीराभाव अथवा अपनी शक्ति से मुक्त जीव को श्रोत्रादि रचकत्व इस श्रुति से कहां सिद्ध होसकता है।

वादिकृत ग्रन्थ। प्रश्न। उसकी शक्ति के प्रकार की और कितनी

है। उत्तर। मुख्य एक प्रकार की शक्ति है परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन दर्शन, स्वादन, और गंधग्रहण तथा ज्ञान इन चौबीस प्रकार के ज्ञान युक्त जीव है इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है॥ सत्या० समु० ९ पृ० २३७।

इस वादी की उक्ति में यह विचार कर्त्तव्य है क्रिया शब्दार्थ यदि गमन है तो गति का पृथक् ग्रहण व्यर्थ है यदि धात्वर्थ मात्र का नाम क्रिया है तो जैसे बल प्राण ने इस धातु का अर्थ बल है वैसे ही पराक्रमादि सर्वही किसी न किसी धातु के अर्थ हैं उनका पृथक् ग्रहण करना असंगत है औरभी विचारना यदि ज्ञान का ग्रहण किया था तब निश्चय स्मरण श्रवणन स्पर्शन दर्शन स्वादन गन्धग्रहण इन सप्त का ग्रहण होगया था फिर इनका ग्रहण करना निष्फल है और एक और भी विचार करना जो कि दुःख से छूटने का नाम मुक्ति वादी को विवक्षित है (पृ० २३६) में देखो॥ जब मुक्ति में वादी ने भीषण १ इच्छा २ प्रेम ३ द्वेष ४ यह चार गुण माने तब इनका यह अर्थ है किसीसे भयभीत होना अथवा किसीको भय देना इसका नाम भीषण है वे दोनों भी दुःख रूप हैं और इच्छा तृष्णा का नाम है सो महा क्लेशकारी सर्वथा प्रसिद्ध है यद्यपि अपनी इच्छाको मुक्त आत्मा निवृत्त करसकता है तथापि। है दुःख रूप, प्रेम नाम राग का है और द्वेष नाम क्रोध का है सो यह बद्ध जीव में होसकते हैं मुक्त जीव में तो सर्वथा संभव नहीं इसवास्ते वादी को बंध में मोक्ष भ्रम है वो भ्रम-

विपर्य्यय ज्ञान रूप अविद्यारूपी क्लेश है और राग द्वेष भी क्लेश रूप हैं इनको मुक्तात्मा में मानना मिथ्यावादी वादी का महामोह है।

अथ पातंजल मत से पंचक्लेश और भौतिक सम्बन्धाभाव साधक श्रुत्यर्थ तथा वादि काल्पितार्थ खण्डन निरूपण करते हैं। ३

अब इस स्थान में मुक्त में क्लेशाभाव दिखाने वास्ते और बद्ध जीव में क्लेशों के दिखाने वास्ते क्लेशों का निरूपण करते हैं तथाहि।

अविद्याऽस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः।योग।पा २।सू ३।

अर्थ—क्लेश पांच हैं अविद्या १ अस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ इन भेद से।

अविद्यालक्षणम्

अनित्याशुचि दुःखानात्म सुनित्य शुचि सुखात्म ख्यातिरविद्या।यो० पा० २ सू० ५॥

अर्थ—अनित्य में नित्य बुद्धि तथा तुल्ययुक्ति से नित्य में अनित्य बुद्धि भी अविद्या है १ और अशुचि में शुचि बुद्धि वा शुचि में अशुचि बुद्धि भी अविद्या है।२।दुःख में सुख बुद्धि वा सुख में दुःख बुद्धि अविद्या है।३। अनात्मा में आत्म बुद्धि वा आत्मा में अनात्म बुद्धि अविद्या है।४। यह चार प्रकार की अविद्या पतंजलि ऋषि लिखते हैं परन्तु यह ऋषि बचन उपलक्षण है क्यो-

कि अविद्या अनन्त प्रकार की है विपर्य्यय ज्ञानरूप होने से यथा पिता माता में शत्रु बुद्धि और हितोपदेशक में अहितोपदेशक बुद्धि और अहितोपदेशक में हितोपदेशक बुद्धि और पंडित में मूर्ख बुद्धि मूर्ख में पंडित बुद्धि कहां तक कहें यावत् विपर्य्यय ज्ञान हैं वे अविद्या हैं।

अथविपर्य्ययज्ञानलक्षणम्

विपर्य्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्। यो० पा०१ सू०८।

अर्थ—वस्तु के अन्यथा भाव का नाम अतद्रूप कहा जाता है। तिसमें जिस ज्ञान की स्थिति है सो मिथ्या ज्ञान है और मिथ्या ज्ञा नही विपर्य्यय का लक्षण है सो विपर्य्यय ही अविद्या है इसवास्ते चार प्रकार की अविद्या उपलक्षित जो अनन्त प्रकार की अविद्या है सो सम्पूर्ण विपर्य्यय ज्ञान के उदाहरण हैं सो पूर्व वादी में तिस२ स्थान में दिखलाते जाते हैं बुद्धि और पुरुष के अभेदाभिमान कानाम अस्मिता है इससे प्रथम जीव चेतन रूप पुरुष का स्वरूप निर्णतव्य है। तथाहि

द्रष्टादृशिमात्रः शुद्धोपि प्रत्ययानुपश्यः॥ यो० पा०२ सू०२०।

अर्थ—द्रष्टा जो पुरुष जीव चेतन है सो (दृशिमात्र) केवल ज्ञान रूप है मात्र पद से सुख दुःखादि धर्म्म विशिष्ट बुद्धि की निवृत्ति बोधन करी इससे वो बुद्धि जीव चेतन के स्वरूप में प्रविष्ट नहीं। यद्यपि वो चेतन शुद्ध है तथापि बुद्धि प्रत्ययों को देखता है भाव यह है आपतो सर्वथा निर्विकार है परन्तु बुद्धि के विकारोंका

साक्षि होकर प्रतीत होता है

दृक्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। यो० पा०२ सू० ६।

अर्थ - दृक् शक्ति पुरुष और दर्शन शक्ति बुद्धि इन दोनों की एक स्वरूप अस्मिता है इसमें आत्मबुद्धि भी मोहरूप संसार हेतु क्लेशान्तर्गत है इसी वार्त्ता को इस सूत्र के भाष्य में व्यासऋषि पंच शिखाचार्य्य के वाक्य से दृढ़ करते हैं-

तथाचोक्तं ॥ बुद्धितः परमंपुरुष माकारशीलविद्यादिभिः विभक्तमपश्यन् कुर्य्यात् तत्रात्मबुद्धिं मोहेन ॥

अर्थ - आकार १ शील २ विद्या ३ आदि पद से सत् स्वरूप परम पुरुष को बुद्धि से (विभक्त) पृथक् भूत नजानकर अस्मिता में आत्मत्त्व बुद्धि यदि करेगा तब अज्ञान से ही करेगा सर्वदा विशुद्ध स्वरूप का नाम आकार है १ असंग उदासीन स्वभाव का नाम शील है २ और चैतन्य का नाम विद्या है ३ और आदि से (सतस्वरूपता) नाश रहितत्त्व जानना भाव यह है पुरुष सर्वदा विशुद्ध है और बुद्धि सर्वदा अविशुद्ध है और पुरुष असंग उदासीन है बुद्धि ससंग अनुदासीन है आत्मा चैतन्य है और बुद्धि जड़ है आत्मा नाश रहित है और बुद्धि विनाशी है इस प्रकार आत्मविवेक के अभाव से ही अस्मिता में आत्मत्त्व बुद्धि होती है और विवेक से दूर होती है। **यद्यपि**। अस्मिता समाधि से संज्ञा संज्ञि नाम देव भाव प्राप्ति रूप ऐश्वर्य्य होता है। **तथापि**। अस्मिता में आत्मत्त्वाध्यास कैवल्य मोक्ष का विरोधि है इसवास्ते सूत्रकार अस्मिता क्लेश

रूप से निरूपण करते हैं ॥

सुखानुशयीरागः ॥ यो० पा २ सू० ७ ।

अर्थ — सुखात् (अनु) पश्चात् शेतुं स्थातुं शीलं यस्य सम्सुखानुशयी) सुख के भोग हुए के पश्चात् जिसका होने का स्वभाव है सो राग है। साधन सामग्री शून्य भी मेरे को सर्व सुख होवे ऐसे विपर्य्यय विशेष राग है।

दुःखानुशयीद्वेषः। यो० पा २ सू० ८

अर्थ — दुःख साधन के होते भी मेरे को कोई भी दुःख नहो ऐसे विपर्य्यय विशेष का नाम द्वेष है।

स्वरसवाहीविदुषोपि तथारूढो ऽभिनिवेशः ॥
यो० पा० २ सू० ९।

अर्थ — आयु के अभाव होते भी इन शरीरादि के साथ से मेरा वियोग नहो इस प्रकार का स्वाभाविक प्राणिमात्र को मरण त्रास रूप विपर्य्यय विशेष ही अभिनिवेश है। इस प्रकार सर्व क्लेशों का निरूपण होगया मिथ्यावादी वादी का मुक्त में क्लेश मानना अज्ञान है और जो यह कहा मुक्त जीव को भौतिक संग नहीं रहता सो भी असंगत है क्योंकि जब मन और प्राण तथा वाक् का संबन्ध मुक्तजीव को माना तब भौतिकसंग वादी के मुख से सिद्ध होता है मन और प्राण तथा वाक् को भौतिकत्त्व श्रुतिसिद्ध है। तथाहि।

अन्नमयं हिसोम्यमन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागइति। छां उप० अ ६।

अर्थ — (अन्नमय) अन्न विकार (आपोमय) अब्विकार (तेजोमयी) तेजोविकार। इस प्रकार हे सोम्यश्वेत के तो यह मन और

प्राण तथा वाक् विकाररूप हैं जब यह तीनों भूत विकार रूप होगये और इनका संग मुक्त जीव में वादी ने माना तब भौतिक संग का अभाव कैसे होसकता है और सर्वत्र अव्याहत गति माना तो भौतिक संग कैसे नहीं होगा इसवास्ते वादी की कल्पना मिथ्या है। और जो मोक्ष में शरीर संबन्धाभाव का साधक छन्दोग्य श्रुति वादी ने लिखी है तिसके लिखने में (कहीं की ईंट) इत्यादि अपनी हांसी का आपही विषय होता है उस श्रुति में तीन श्रुति भिन्न २ प्रकरणकी मेल करलालवुझक्कड ने लिखी हैं। तथाहि।

य आत्मा ऽ पहत पाप्मा विजरोविमृत्यु र्विशोको ऽविजिघत्सो ऽ पिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सो ऽ न्वेष्टव्यः सविजिज्ञासितव्यः ससर्व्वां श्च लोकानाप्नोति सर्व्वां श्च कामान् यस्तमात्मान मनुविद्यविजानातीति (छां० अ० ८ खं० ७। श्रुति १॥ सवाएषएतेन दैवेनचक्षुषामन सैता न् कामान् पश्यन् रमते यएते ब्रह्मलोके तं वा ए तं देवा आत्मान मुपासते तस्मात्तेषां सर्वेचलो का आत्ताः सर्वेच कामाः ससर्व्वां श्चलोका नाप्नोते सर्व्वां श्च कामान् यस्तमात्मान मनु विद्य विजानातीति (छां० अ० ८ खं० १२। श्रु० ६ मघवन्मर्त्त्यं वा इदथं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्या शरीरस्यात्मनो ऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रिया प्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रिया प्रिययो र पहति रस्त्य शरीरं वा वसन्तं नप्रिया प्रिये स्पृ

शतः (छां०अ८ खं१२। श्रुति १। सत्या०समु०९ पृ०२३८॥

इस श्रुति बचनों में देखना चाहिये प्रथम श्रुति सप्तम खण्ड की पहली श्रुति है और दूसरी श्रुति चारवें खंड की छीवीं श्रुति है और तीसरी श्रुति द्वादश खंड की प्रथम श्रुति है अब देखना चाहिये जब इन श्रुति बचनों का क्रम ही नहीं तो एक किसी अर्थ को कैसे बोधन करेगी इसवास्ते प्रकरण के अनुकूल इनका अर्थ लिखते हैं ॥ इस वाक्य प्रविष्ट प्रथम श्रुति से पूर्व दहर ब्रह्मविद्या का फल ब्रह्मलोक के द्वारभूत आदित्त्य मंडल की प्राप्ति कही है और पश्चात् इन्द्र विरोचन के प्रति प्रजापति उपदेश की प्रस्तावना रूप यह वादी वाक्य प्रविष्ट प्रथम श्रुति है॥ श्रुत्यर्थ॥ जो आत्मा पाप जरा मृत्यु शोक (विजिघत्सा) भक्षण की इच्छा और पिपासा रहित है और (सत्त्यकाम) असत्य काम वर्जित (सत्यसंकल्प असत्य संकल्प वर्जित है सो आत्मा गुरूपसत्ति करके भालना योग्य है और भालकर (विजिज्ञासितव्य) विचारणीय है जो तिस आत्मा को (अनुविद्य) भाल कर जानता है सो सर्वलोक और सर्व काम को प्राप्त होता है इस प्रकार आत्मज्ञान की प्रशंसा कर के आत्मज्ञान में कारण गुरूपसत्ति पूर्वक श्रवणादि में प्रवृत्ति कराता है। इस वाक्य का मुक्त के स्थूल शरीर के भाव अथवा अभाव में तात्पर्य्य नहीं और वादि वाक्य प्रविष्ट द्वितीय श्रुति का पूर्व भाग श्रुतिभाग को लिखकर अर्थ करते हैं।

सतत्रपर्य्येति जक्षन् क्रीडन्न ममाणः स्त्रीभिर्वायानैर्वाज्ञातिभिर्वानोपजनं। स्मरन्निदं। स

शरीरस्थं सयथाप्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवा य मास्मिञ्छरीरे प्राणोयुक्तः । ३ । अथयत्रैतदा काशमनु विषणंचक्षुः सचाक्षुषः पुरुषोदर्श नाय चक्षुरथयो वेदेदं जिघ्राणीति सआत्मागं न्धाय घ्राण मथयो वेदेदमभिव्याहराणीति स आत्मा ऽभि व्याहाराय वागथयो वेदेदं श्टएवा नीति सआत्मा श्रवणाय श्रोत्रं । ४ । अथयो वेदे दं मन्वानीति सआत्मा मनो ऽस्य दैवं चक्षुः)

इतनी श्रुति इसका पूर्वभाग है ॥ श्रुत्यर्थ ॥ सो उतम पुरुषभाव को प्राप्तविद्वान अपने स्वरूप भूतलोक में सर्वतो विचरता है। स्त्रीओं के साथ में हास क्रीडा रमण करता हुआ वा बाहनों के सा थ वा ज्ञातिवर्ग के साथ वर्त्तमानही जन समीप वर्त्तमान शरीर को भी न स्मरण करता हुआ स्थित होता है उसके व्यवहार में दृ ष्टान्त यह है जैसे सीक्षित अश्व अपने आपही इष्टदेश को अस वार को प्राप्त करता है वैसेही इस विद्वान के शरीर में प्राणयुक्त है इष्टदेश में प्राप्त करने वाला (अथ) इस दशा में इस विद्वान् का जो चक्षु आकाश को संलग्न है सो चाक्षुष पुरुष दर्शन के वास्ते चक्षु है और जब यह विद्वान ऐसे जानता है जो मैं इसको सूंघता हूं सो आत्माघ्राण गन्ध ग्रहण वास्ते है और जब यह जा नता है जो मैं (अभिव्याहार) उच्चारण करता हूं तब सो वागरूप आत्मा उच्चारण वास्ते है और जब यह जानता है जो मैं सुनता हूं तब सो आत्मा श्रोत्र श्रवण के वास्ते है और जब यह जा नता है जो मैं मनन करता हूं तब वो आत्मा मन इसका दैव

चक्षुः है सो यह विद्वान जीवन्मुक्त। इस दैव चक्षु रूप मन कर के इन कामों को देखता हुआ रमण करता है जो यह ब्रह्मलोक में वर्तमान हैं क्योंकि विद्वान सर्वात्मारूप है तिस सर्वात्मानुभवी विद्वान् को ही सर्व देवता आत्मरूप कर उपासना करते हैं इसीवास्ते उन देवताओं को सर्वलोक तथा सर्वकाम (आत्ताः) प्राप्त हैं इसी प्रकार विद्वान के आत्मरूप ब्रह्म को भालकोजोजानता है सो भी सर्व लोक तथा सर्व काम को प्राप्त होता है अब देखना चाहिये इस स्थान में अश्व के दृष्टान्त से जब शरीर में प्राणयुक्त कहा तब सशरीर विद्वान की प्रशंसा प्रतीत होती है शरीर के भावाभाव की चिन्ता इस श्रुति में नहीं और वादि वाक्य प्रविष्ट तृतीय श्रुति से पूर्व प्रसंग यह है इन्द्र विरोचन शिष्य प्रजापति के पास ब्रह्मविद्या के उपदेश वास्ते निवास करते हुए तब द्वात्रिंशत वर्ष के पश्चात प्रजापति ने अक्षि पुरुष नाम से जाग्रत द्रष्टा का उपदेश किया परन्तु इन्द्र विरोचन को देह की छाया में आत्मत्त्व भ्रम हुआ तब विरोचन तो देहछाया उपलक्षित देह आत्मा को निश्चय करके अपने स्थान को चलागया परन्तु इन्द्र छायात्मा में दोष समझकर फिर प्रजापति गुरु के पास आकर अपना संशय प्रकाशित किया फिर प्रजापति ने स्वप्न द्रष्टा का उपदेश किया। फिर तृतीयवार सुषुप्ति के द्रष्टा का उपदेश किया परन्तु इन्द्रको तीन वारही स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर में आत्मत्त्व भ्रम हुआ अब इन्द्र को स्पष्ट करके प्रजापति उपदेश करते हैं हे (मघवन्) इन्द्र यह शरीर तीनही प्रकार का जो तैंने आत्मरूप कर माना है सो (मर्त्य) विनाशी है और मृत्यु करके (आत्त) ग्रस्त है॥

और वो शरीर तीन प्रकार का शरीर रहित अमृत आत्मा का अधिष्ठान आश्रय है और जब तक वो आत्मा (सशरीर) शरीर सहित है तब तक (प्रिय) सुख (अप्रिय) दुःख कर (आत्त) ग्रस्त है शरीर सहित विद्यमान इस आत्मा के सुख दुःख की (अपहति) निवृत्ति नहीं होती और अशरीर विद्यमान होते सुख दुःख नहीं स्पर्श करते,, अब देखना चाहिये वादि स्वीकृत सूक्ष्म शरीर के सद्भाव होते ही सुख भोग अवस्थारूप मोक्ष का प्रतिपादक यह वाक्य नहीं है यदि सुखभोग वादी ने माना तो तिसकी निवृत्ति कैसे हो सकती है इसवास्ते यह वाक्य विदेह कैवल्य रूपमोक्ष का साधक है

अथ दयानन्द लिखित व्यास सूत्रार्थ निरूपण पूर्वक दयानन्द कृतार्थ खण्डन पूर्वक तिन सूत्रों को स्वतःप्रमाणत्व निरूपण और दयानन्द लिखित जीवस्वरूप खण्डन करते हैं

और जो वादी ने व्यास सूत्रों से मुक्त के स्थूल शरीर का अभाव बोधन किया है सो भी असंगत है क्योंकि तीन सूत्रों में यह सिद्धान्त है ब्रह्मलोक प्राप्त उपासक का स्थूल शरीर नहीं होता यह तो बादरि मत है और स्थूल शरीर होता है यह जैमिनि का मत है और स्थूल होता है उपासक की इच्छा से और नहीं भी होता उपासक की इच्छा से यह सिद्धान्त कोटि बादरायण का मत है यह अर्थ तो सिद्धान्त व्याख्यान में निर्धार होगा परन्तु वादिकृत सूत्रार्थ का खण्डन कर्तव्य है इसवास्ते

सूत्र लिखकर वादि व्याख्यान को प्रथम दिखलाते हैं पश्चात् उसका खण्डन भी होगा। तथाहि। वादिकृत ग्रन्थ॥

अभावंबा दरि राहह्येवम्। शा० अ० ४ पा० ४ सू० १०॥

जो वादरि व्यासजी का पिता है वह मुक्ति में जीव का और उस के साथ मन का भाव मानता है अर्थात् जीव और मन का लय पराशरजी नहीं मानते। सत्या० समु० ९ पृष्ठ २३७॥ यह वादी ने इस सूत्र का अर्थ लिखा है यह अर्थ प्रकरण वा श्रुति विरुद्ध तो सर्वथा है परन्तु सूत्र के अक्षरों से भी विरुद्ध है। तथाहि। पद॥ अभावम् वादरिः आह हि एवम्॥ अब इस सूत्र के अक्षरों के अर्थ को देखना वादरि कर्त्ता और अभाव कर्म्म मन्यते क्रिया का अध्याहार होता है तब यह अर्थ हुआ (वादरिः अभावं मन्यते) वादरि आचार्य्य अभाव मानते हैं सो किसका अभाव मानते हैं इस वार्त्ता का इस सूत्र का विषय वाक्य जो श्रुति है तिससे निर्णय होगा (हि) यस्मात् कारणात् (एवम्) ऐसे (आह) श्रुति कहती है इसवास्ते इस सूत्र में जीव और मन का भाव अर्थ नहीं और आह १ हि २ एवम् ३ इन तीन पदों के अर्थ की तो गन्ध भी नहीं वादी की सूत्र व्याख्या में केवल वादरि पद को लेकर और संपूर्णही मिथ्या कल्पना करी है॥ वादि ग्रंथ॥ और वैसेही।

भावंजैमिनिर्विकल्पा मननात्। अ ४। पा ४ सू० ११।

और जैमिनि आचार्य्य मुक्त पुरुष का मन के समान सूक्ष्म शरी

र इन्द्रिय और प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं यह वादी का लेख भी असंगत है काहेते इस सूत्र में सूक्ष्म शरीर इन्द्रिय प्राण आदि का सद्भाव माना इसमें यह असंगत है जो सूक्ष्म से भिन्न इन्द्रिय प्राण को कहनाक्योंकिइन्द्रियप्राण तो सूक्ष्मान्तर्गत हैं और मन भी सूक्ष्म अंतर्गत है और पूर्व सूत्र में जब मनका सद्भाव माना और मन प्राण इन्द्रिय से बिना रह नहीं सकता तब पूर्वमत में इन्द्रिय प्राण भी मानने होंगे तो पूर्व बादरि मत से जैमिनि मत में विलक्षणताक्या है इससे मतभेद निरूपण असंगत होगा क्या वादी की तरहँ व्यासजी विक्षिप्त थे अब देखना चाहिये जिस वादी को सूक्ष्म शरीर की खबर नहीं सो व्यास सूत्रों के अर्थ लिखने में असमर्थ्य कैसे नहीं अन्यथा कल्पना करेगा और इस सूत्र में विकल्पा मननात् इस पद का अर्थ नहीं लिखा समग्र पदों के अर्थ लिखे बिना किसी अर्थ की सिद्धी होती नहीं ॥ वादि कृत ग्रन्थ ॥

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः। अ० ४ पा० ४ सू० १२॥

व्यासमुनि मुक्ति में भाव और अभाव दोनों को मानते हैं अर्थात् शुद्ध सामर्थ्य जीव मुक्ति में बना रहता है अपवित्रता पापाचरण दुःख अज्ञानादि का अभाव मानते हैं यह वादी का लेख भी सूत्र को अस्पर्श करता तो स्पष्ट है काहेते द्वादशाहवत् उभयविधं बादरायणः अतः इतने पद हैं सूत्र में वादी के व्याख्यान में आदि अन्त पद का तो अर्थ है नहीं उभय विध पद का अर्थ यह करा जो शुद्ध सामर्थ्य युक्त होना और पापाचरणादि वि

शिष्ट नहोना सो यह कथन भी पूर्व दो मतों से भेद का साधक नहीं क्योंकि पूर्व मतों में भी पापाचरणादि नहीं माने और शुद्ध सामर्थ्यही मानेंगे काहे ते बादरि जैमिनि वैदिक आस्तिक शिरोमणि मुक्त में पापाचरण कैसे मानेंगे जब पूर्व मतों में भी यह अर्थ हुआ तो तीन मतों का निरूपण करना असंगत है इससे केवल अज्ञान से विना और कुछ भी वादी के लेख में प्रतीत नहीं होता और यह भी देखना चाहिये वादी के मत में मुक्त में प्रेम द्वेष इच्छादि क्लेश माने हैं सो अपवित्रता है वा कुछ और है और तो नहीं कहसकते किन्तु अपवित्रता है तो अपवित्रता का मोक्ष में अभाव कथन करना बादरायण के मत से असंगत है क्योंकि तुम खुद अपवित्रता माना है अब देखना चाहिये सज्जन पुरुषों को जिसको पूर्वापर अपने लिखने काअनुसंधान नहीं जो मैंने पूर्व तो प्रेम द्वेष रूप अपवित्रता माना है और आगे निषेध करता हूं ॥ सो वादी कैसे नहीं ऋषि के भाव को विगाड़ेगा प्रेम द्वेष ही कुकर्म में प्रवृत्ति हेतु प्रसिद्ध हैं इससे अपवित्रता हैं और यहां यहभी प्रष्टव्य है जो यह सूत्र स्वतःप्रमाण हैं वा परतःप्रमाण हैं यदि परतःप्रमाण हैं तोइस का मूलमंत्र रूप स्वतः प्रमाण कहना चाहिये था और मंत्र मूल प्रमाण न लिखकर सूत्र प्रमाण माने हैं वादी ने इससे वादी के मुख सें सूत्र स्वतः प्रमाण सिद्ध होते हैं और। स० पृ० ६०१। में देखो..वेद मंत्र ही स्वतःप्रमाण मानता हूं और को परतःप्रमाणमानता हूं यह वादी की प्रतिज्ञा अपने वाक्य से भंग होती है स्वतः नाम अपने आप से जो प्रमाण हो सो स्वतः प्रमाण है स्वप्रमाणे प्रमाणान्तरानपेक्षत्वं स्वतः प्रमाणत्वं यह स्वतः प्रमाण का लक्षण है स्वप्रमाणे प्रमा

णान्तरा पेक्षत्त्वं परतः प्रमाणत्वं
यह परतः प्रमाण का लक्षण है अर्थ यह है अपने प्रमाण में प्रमाणान्तर की जो अपेक्षा करे वह परतः प्रमाण है वादी ने जब सूत्र वा उपनिषद् बचन वा ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्य को अपने ग्रन्थ में प्रमाण लिखा तो स्वतःप्रमाणत्व वादी के मुख से इन को सिद्ध होता है क्योंकि प्रमाणान्तर की अपेक्षा न दिखाकर प्रमाण माने हैं इससे इनको परतः प्रमाण कहना केवल अज्ञान है वादी का और वादी अद्वैत वेदान्ती को नवीन वेदान्ती नाम से लिखकर ऐसी हांसी करता है (कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा सो यह बादी को ही लज्जित करती है क्योंकि वादी ने सर्व प्रकरण के मुक्ति प्रतिपादक सूत्रोंको छोड़कर अपने काल्पित अर्थ में मुक्ति बोधक तीन सूत्रों को लिखा पूर्व प्रकरण त्यागकर और विषय वाक्य लिखा नहीं तो देखना चाहिये विषयवाक्य वा प्रकरण में बिना सूत्र कैसे स्वार्थ बोधन करसकते हैं यथा पूर्व सूत्र सहित और विषय वाक्य सहित सूत्रों का अर्थ है तथा निरूपण करेंगे परन्तु अबी तो जीव के स्वरूप का निर्णय कर्त्तव्य है जो कि मुक्तिरूप फल का भागी है ॥ सत्या ० पृ०६०१॥ में देखो। वादी ने तो जीवका स्वरूप यह लिखा है ॥ वादिकृत ग्रन्थ ॥ जो इच्छा द्वेष सुख दुख और ज्ञानादि गुण युक्त है और अल्पज्ञ नित्य है उसीको जीव मानता हूं इस स्थान में यह निर्णेतव्य है जो कि जीव क्षेत्ररूप है अथवा क्षेत्रज्ञ रूप है यदि क्षेत्रज्ञरूप है तो क्षेत्र धर्म्म इच्छादि का आश्रय कैसे होसकता है इसीवास्ते व्यास

जी इच्छादि क्षेत्र के धर्म्म लिखते हैं यदि क्षेत्रज्ञ के धर्म्म इच्छादि होते तो क्षेत्रस्वरूप के अन्तर्गत इच्छादि नलिखते इस से इच्छादि युक्त जीवस्वरूप व्यासवाक्य विरुद्ध है ॥ तथाहि ॥

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेवच ॥ इन्द्रियाणिदशैकञ्च पञ्चचेन्द्रियगोचराः ॥ इच्छा द्वेषः सुखंदुःखं संघातश्चेतनाधृतिः ॥ एतत्क्षेत्रंसमासेन सविकार मुदाहृतम् ॥ गीता अ० १३ श्लोक ५-६

अर्थ — महाभूत और अहङ्कार बुद्धि अव्यक्त दश इन्द्रिय और मन और शब्दादि विषय पांच और इच्छा द्वेष सुख दुःख शरीर ज्ञान धृति यह विकार सहित क्षेत्र है और यह भी विचारणीयहैजोकि इच्छादि गुणाकार परिणाम को प्राप्त होता है वो जीव है वा इच्छादि परिणामी से न्यारा है इच्छादि परिणामी कहेंगे तो अनित्यत्व की आपत्ति होगी । तथाहि ॥

जीवोअनित्यः परिणामित्वात दुग्धवत यत्रयत्र परिणामित्वं तत्र अनित्यत्वं यथा दुग्धे ॥

अर्थ — जीव अनित्य है परिणामी होने से दुग्धवत जहां २ परणामिपन है तहां अनित्यपन है और यह भी देखना चाहिये परिणामी सत्त्वादि गुण हैं जब इच्छादि परिणामवाला जीव कहेंगे तो गुणरूपही सिद्ध होगा गुणों से पृथक जीवस्वरूप नसिद्ध होसका और जेकर इच्छादि परिणामी से पृथक जीव का स्वरूप है तो जिसके इच्छा सुख दुःखादि परिणाम हैं सोई इच्छादि का आश्रय है जीव नहीं तब तो वादी निर्णीत इच्छा द्वेष सुख दुःखादियुक्त

जीवस्वरूप अज्ञान मूलक है यह सिद्ध होगया और यह बी कहना चाहिये वादी से जो ऐसे इच्छादि युक्त जीवस्वरूप का बोधक वेद मंत्र कहना था। ऋग्वेदादि भू० पृ० १९९ में देखो॥ तार के बोधक तो मंत्र होगये और जीवस्वरूप बोधक मंत्र नमिला वादी को बड़ा आश्चर्य्य है। वादिग्रन्थ॥ प्रश्न॥ इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥ न्याय। अ १ सू १०॥ जिसमें (इच्छा) राग द्वेष' वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ सुख दुःख (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा कहाता है वैशेषिक में इतना विशेष है

प्राणापान निमेषोन्मेष जीवनमनोगतीन्द्रियान्त रविकाराः सुखदुःखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्चात्म नोलिङ्गानि। वै० अ० ३। आ २। सू ४।

प्राण बाहर से वायु को भीतर लेना अपान भीतर से वायु को निकालना· निमेष आंख को नीचे ढांकना उन्मेष आंख को ऊपर उठना जीवनप्राण का धारण करना मनः मनन विचार अर्थात् ज्ञान गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना उनसे विषयों का ग्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुधा तृषा ज्वर पीड़ा आदि विकारों का होना सुख दुःख इच्छा द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं। सत्या० पृ ६०॥ इन सूत्रों से इच्छादिमान् जीव का स्वरूप कहते हैं। उत्तर। मूलमंत्र विना सूत्रों से जीव के स्वरूप का निरूपण करोगे तो केवल मन्त्रों को स्वतः प्रमाणत्त्व प्रतिज्ञा भंग तो स्पष्टही है और यह सूत्र जीव के इच्छादि मान् स्वरूप के साधक नहीं किन्तु देहादि से भिन्न आत्मा के बोधक हैं जैसे देहादि से भिन्न आत्मा

के अनुमान करानेवास्ते हैं तैसे निर्णय होगा परन्तु वादी की सूत्र-व्याख्या की समीक्षा करते हैं प्रथम पश्चात् सूत्र भाष्य लिखकर यथार्थ सूत्रार्थ विचार करेंगे प्रथम न्यायसूत्र में आत्मनोलिङ्ग मिति यह जो वाक्य है इसका अर्थ यह है इति आत्मनो लिङ्गम् ऐसा अन्वय करने से यह अर्थ होता है इति नाम इच्छादि पूर्व उक्त आत्मा के लिङ्ग नाम देहादि भिन्न आत्मा के अनुमान करानेवाले हैं जैसे धूम वन्हिका लिङ्ग है और यह नहीं कहा जाता जो धूम युक्त है वो वन्हि है क्योंकि वन्हि विना धूम काष्ट लोह पिंडादि में भी है ऐसेही इच्छादि जब आत्मा के अनुमापक होगये तब इतने से यह नहीं होसकता जो इच्छादि मान् है सो आत्मा है क्योंकि आत्मा समाधि सुषुप्ति में भी है और इच्छादि है नहीं इससे इस सूत्र से इच्छादि गुण वाला आत्मा कहना वादी की अविद्या है और वैशेषिक सूत्र व्याख्यान में प्राण वाहर से वायु को भीतर लेना अपान भीतर से वायु को निकालना यह अर्थ स्वस्थ प्रमाणापान पद का पूर्व वादी ने लिखा है सो तो ऐसाहैजैसे दिन को रात्रि और रात्रि को दिन कहना मिथ्या प्रलाप है वैसे यह प्रलाप है। क्योंकि प्राण अपान के स्वरूप को मैत्र्युपनिषद् के अ० २ कां० ६ में देखो

अथायंयऊर्द्ध मुत्क्रामत्येषवावसप्राणोऽथ योऽयमवाङ् सङ्क्रामत्येषवावसोऽपानः॥पद।
अथ अयंयः ऊर्द्धम् उत्क्रामाति एषः वावसः प्राणः अथयः अयम् अवाङ् सङ्क्रामाति एषः वावसः अपानः॥

अर्थ – जो भीतर से बाहर को गमन करता है सो प्राण है और जो बाहर से भीतर को गमन करता है सो अपान है और कहना चाहिये वादी को ऐसा अर्थ प्राणापान पद का कहां से लिखा कदाचित् ऐसे वादी के भक्त कहें जो वैशेषिक सूत्रों का गौतम मुनि कृत भाष्य माना है। सत्यार्थ० पृ ७०। में देखो॥ तिसमें से लिखा है तब तिसका पृष्ठ पंक्ति प्रकरण कोई भी लिखना योग्य था परन्तु ऐसी श्रुति विरुद्ध कल्पना तो सिवाय वादी के कोई लिख नहीं सकता। भला गोत्तमऋषि श्रुति पारगामी श्रुति विरुद्ध कैसे लिखेंगे और जीवन पद का अर्थ प्राणका धारण करना यह लिखा है वादी ने सो भी असत् है क्योंकि प्राण अपान कहने से ही प्राण का धारण निर्णीत है धारण करे से बिनाही क्या प्राण अपान व्यापार होसकता है नहीं होसकता इससे प्राण अपान कहने से ही जीवनका लाभ होसकता था और जीवनपद का यथावत् अर्थ सिद्धान्त व्याख्यान में होगा और मनः पद का अर्थ मनन विचार अर्थात् ज्ञान यह बादी ने लिखा है। सो भी अशुद्ध है काहेते वैशेषिक शास्त्र में मन को द्रव्य कहा है। तिससें ज्ञान का ग्रहण करना शास्त्र विरुद्ध है और ज्ञान जैसे सिद्धान्त अर्थ में आत्मा का ज्ञापक है सो मनो निरूपण में पूर्व वैशेषिक में ही निर्णीत है तथाहि॥

आत्मेन्द्रियार्थ सन्निकर्षे ज्ञानस्यभावोऽभा
वश्च मनसो लिङ्गम्॥ वै० अ ३ आ २ सू० १।

अर्थ – आत्मा इन्द्रिय अर्थ इनके सन्निकर्ष होने भी जिसके संयोग से ज्ञान होता है और जिसके असंयोग से ज्ञान नहीं-

होता सो मन है ऐसे मन को सिद्ध करा है जब मन सिद्ध हुआ तो जिसकी इच्छा और सावधानता नाम ज्ञान मन को प्रेरणा करते हैं सो आत्मा है ऐसे विशिष्ट आत्मा का अनुमान होता है और इस सूत्र में ज्ञानरूप अर्थ मन पद का करे से पूर्व प्रकरण पुनरुक्ति तथा शास्त्रवाह्य कल्पना होगी सो वादी में ही शोभा को प्राप्त होते हैं और गति पद का अर्थ यथेष्ट गमन करा और अंत में यह भी लिखा जो ये सब आत्मा के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं ऐसे लिखने से यह प्रतीत होता है जो कि वादी ने आत्मा में गमन क्रिया कणादसूत्र से सिद्ध करा सो यह कथन वादी का कणाद सूत्रों के अज्ञान का सूचक है क्योंकि कणादऋषि अपने सूत्रों में आत्मा को विभु लिखते हैं तो विभु में कणादमुनि के सूत्र व्याख्यान में गमन क्रिया कहना वादी का अज्ञान है आत्मा के विभुता का बोधक सूत्र यह है।

विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा। वैशेषिक अ०७। आ१। सू २२। पद। विभवात् महान् आकाशः तथा च आत्मा।

अर्थ- विभवात् नाम सर्व मूर्त्त संयोग रूप विभुत्व होने से आकाश महान् नाम परम महत् है च पुनः तथा तैसेही सर्व मूर्त्त संयोगित्व रूप विभुत्व होने से आत्मा भी परम महान् है जब इस सूत्र से आत्मा विभु होगया तो आत्मा में यथेष्ट गमन कथनकरना कणाद सूत्र व्याख्यान में वादी की वड़ी भूल है और इन्द्रिय पद का अर्थ इन्द्रियों को विषयों में चलाना करा है। और अन्तर विकार पद का अर्थ क्षुधा तृषा ज्वर पीड़ा आदि-

विकारों का होना करा है सो भी अज्ञान मूलक है काहेते जो वैशेषिक सूत्रों पर गौतममुनि कृत भाष्य माना है। सत्या० पृ ७० में देखो ॥ तिस गौतममुनि के सूत्र सें विरुद्ध है क्योंकि गौतममुनि इन्द्रियान्तर विकारात् ऐसे एक सूत्र में इन्द्रियान्तर विकार पद से आत्मा का अनुमान प्रकार प्रतिपादन करते हैं सो जैसे इन्द्रियान्तर विकार आत्मा का अनुमापक होगा तथा सिद्धान्त अर्थ निरूपण में प्रगट होगा इस रीति से वादी लिखित सूत्रों का अर्थ अनन्त दोष ग्रस्त होने से किसी अर्थ का साधक नहीं

अथ दयानन्द लिखित जीव स्वरूप निरूपक न्याय वैशेषिक सूत्रार्थ का वात्स्यायन भाष्य से निरूपण और दयानन्दाभिमत अर्थ में सर्बथा सूत्रभाष्य का असमन्वय निरूपण ॥५॥

अब सूत्रों का अर्थ पूर्वसूत्र तथा वात्स्यायन मुनि कृत भाष्य को लिखकर दिखाते हैं क्योंकि सूत्र का अर्थ स्वकपोल कल्पित है ऐसा किसीको भ्रम होगा तिसकी निवृत्ति वास्ते भाष्य लिखकर अर्थ दिखलाते हैं। इन दोनों सूत्रों से आत्मा को देहादि सें भिन्न करके दिखाते हैं सूत्रकार, सो जैसे देहादि भिन्न आत्मा को बोधन करें तथा प्रकार को एक सूत्र दूसरा और तथा भाष्य लिखकर विस्तार करते हैं।

आत्मशरीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः प्रवृत्ति दोष प्रे

त्यभावफल दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम ।। न्याय। अ १। आ १। सू ९। पद। आत्मशरीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः प्रवृत्तिदोष प्रेत्यभाव फल दुः खा पवर्गाः तुप्रमेयम्।

आत्मा च शरीरं च इन्द्रियाणिच अर्थाश्च बुद्धिश्च मनश्च प्रवृत्तिश्च दोषाश्च प्रेत्यभावश्च फलंच दुःखञ्च अप वर्गश्च यह विग्रह है प्रथम पद का अब इस सूत्र केअ र्थ को भाष्य में दिखलाते हैं।

भाष्य। तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता स र्वज्ञः सर्वानुभावः

टीका। शास्त्र के प्रथम सूत्र में जो प्रमेय पदार्थ कहा है तिस प्रमेय के विभाग का बोधक यह सूत्र है बारहं प्रकार के प्रमेय में से प्रथम अत्मा का स्वरूप लक्षण भाष्यकार वात्स्यायन ऋषि दिखलाते हैं जो सर्व का द्रष्टा है और सर्व का भोक्ता नाम सर्व पदार्थ जन्य सुख दुःख का ज्ञाता है और सर्व पदार्थ के जानने वाला है और सर्व पदार्थों को जानकर पश्चात् अनुभव करता है यह आत्मा का स्वरूप लक्षण है सुखादि का आश्रय आत्मा है यह स्वरूप लक्षण आत्मा का नहीं क्योंकि दुःख सुखादि का आश्रय बुद्धि है आत्मा तो बुद्धि तथा तिसके धर्म्म सुखादि इन सर्व का द्रष्टा है इसी वास्ते पूर्व योगसूत्र में दृक् शक्ति मात्र आ त्मा का स्वरूप निर्णय कराहैयदिऔर कहीं सुखादि विशिष्टमें आत्म शब्द प्रयोग है तो पूर्वयोग सूत्र निर्णीत अस्मिता में है- जो दृकशक्ति और दर्शनशक्ति बुद्धि का एक भावापत्ति रूपनि

र्णय करा है सो आत्मा का स्वरूप लक्षण नहीं संसारमार्ग वर्त्ती संसारी जीव क्लेशयुक्त जो कर्मफल का भोक्ता है तिसका लक्षण है ॥

भाष्य। तस्यभोगायतनं शरीरं भोगसाधनानी न्द्रियाणि भोक्तव्या इन्द्रियार्थाः भोगोबुद्धिः सर्वार्थोपलब्धौ नेन्द्रियाणि प्रभवन्तीति स र्वविषयमन्तः करणंमनः

अर्थ — तिस आत्मा का भोगायतन नाम भोगस्थान शरीर है। भोगसाधन इन्द्रिय हैं भोग के योग इन्द्रियार्थ नाम शब्दादि विषय हैं भोग नाम बुद्धि का है अर्थात् सुख दुःख साक्षात्कार जो है सो यहां बुद्धि है सर्व पदार्थ के ज्ञान में इन्द्रियों की सामर्थ्य नहीं इसवास्ते सर्व सुख दुःखादि ज्ञान साधन सर्व को विषय करनेवाला अन्तः करण मन है।

भाष्य। शरीरेन्द्रियार्थ बुद्धि सुख वेदनानां नि र्वृत्ति कारणं प्रवृत्तिर्दोषाश्च नास्य शरीरम पू र्वमनुत्तरञ्च पूर्वशरीराणामादिर्नास्ति उत्तरे षामपवर्गो ऽन्त इति प्रेत्यभावः।

अर्थ — प्रवृत्ति नाम विहित निषिद्ध क्रिया और दोष नाम राग द्वेष यह दोनों शरीर इन्द्रिय (अर्थ) शब्दादि विषय भोग्यवर्ग बुद्धि, ज्ञान, और सुख, वेदना, दुःख इन सर्व की निर्वृत्ति नाम निष्पत्ति के कारण हैं। भाव यह है कि रागद्वेष से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति सें धर्म्म अधर्म्म और धर्म्म अधर्म्म सें शरीरादि अवश्य होते हैं अस्य दोष युक्तस्य जीवस्य इस राग द्वेष रूप दोषयुक्त

जीव का शरीर अपूर्व और अनुत्तर नहीं अर्थात् अबी हुआ हो और जिससे उत्तर नहो ऐसाबी नहीं अपने आपही भाष्यकार विस्तार करते हैं पूर्व शरीरों का आदि नहीं और उत्तर शरीरों का अपवर्ग अन्त हैं इति नाम इस हेतु से प्रेत्यभाव होगा भाव यहहै रागद्वेष की निवृत्ति विना मोक्ष होता नहीं और जो जीव राग द्वेष प्रबन्ध में आरूढ़ है तिसका मर के जन्म अवश्य होगा इससे प्रेत्यभाव पदार्थ सिद्ध होगया॥

भाष्य॥ससाधनसुखदुःखोपभोगः फलंदुःखमितिनेदमनुकूलवेदनीयस्य सुखस्यप्रतीतेः प्रत्याख्यानम्।किन्तर्हिजन्मतरावेदम ससुखसाधनस्य दुःखानुखङ्गाद्दुःखेनाविप्रयोगाद्विविधबाधनायोगाद्दुःखमिति समाधिभावनमुपदिश्यते समाहितोभावयतिभावयन्निर्विद्यते।निर्विसस्य वैराग्यम विरक्तस्यापवर्ग इति जन्ममरण प्रबन्धोच्छेदः सर्वदुःखप्रहाणमपवर्गइति॥ अन्यदपिद्रव्यगुणकर्मसामान्य विशेषसमवायाःप्रमेयम्।तद्भेदेनचाऽपरि संख्येयम्।अस्यतु तत्वज्ञानादपवर्गः मिथ्याज्ञानात् संसारइत्ये तदुपदिष्टं विशेषेणेति तत्रात्मा तावत प्रत्यक्षेन गृह्यते सकिमाप्तोपदेश मात्रादेव प्रतिपद्यते इति नेत्युच्यते।अनुमानाच्च प्रतिपत्तव्य इति।

अर्थ—साधन सामग्री सहित जो सुख दुःखोप भोग सो फल है।शंका।जब साधन सामग्री सहित सुख दुःख का भोगही फल है तो

फलरूप प्रमेय के अन्तर्गत ही दुःख है तो दुःख का पृथक् ग्रहण क्यों करा समाधान ॥ दुःख अनुकूल वेदनीय सुख प्रतीति के निषेध सुख प्रतीति विषय मात्र को ही नहीं जानना किन्तु जन्म से लेकर साधन सामग्री सहित जो कुछ यह सुख है सो दुःख संपृक्त होने से नानाप्रकार की पीड़ा युक्त होने से दुःख है ऐसे समाधि भावना के वास्ते सूत्रकार दुःख का पृथक् ग्रहण करते हैं जब साधन सामग्री सहित सुख को दुःख भावना करेगा तब विषय सुख में ग्लानि होगी ग्लानियुक्त पुरुष को वैराग्य होगा विरक्त का मोक्ष होगा जन्म मरण प्रबन्ध का नाश सर्व दुःख निवृत्ति रूप यहां यह विचारणीय है भाष्यकार वात्स्यायन ऋषि का तो यह मत है जो सामग्री सहित जन्ममात्र के सुख को दुःख भावना पूर्वक वैराग्य और वैराग्य से जन्म मरण जन्य यावत् दुःख निवृत्तिरूप मोक्ष होता है और वादी मुक्त का जन्म तथा मुक्त में रागद्वेषादि बतलाता है सो कहना चाहिये कौन सतपुरुष उसके वाक्य पर श्रद्धा करेगा जिस ऋषि के ग्रन्थ को आपही ॥सत्या० पृ० ७०॥ में देखो। माने और तिस ग्रन्थ में विरुद्ध बके। इनसे भिन्न द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय रूप भी प्रमेय है और मिथ्या ज्ञान से संसार होता है। सो मिथ्याज्ञान विपर्य्यय ज्ञान का नाम है और मिथ्याज्ञान की निवृत्ति पूर्वक मोक्ष साधन तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति वास्ते इस शास्त्र का नाम न्यायशास्त्र का उपदेश करा है गोतमऋषि ने तिन सर्व पदार्थों में आत्मा का प्रथम विचार कर्त्तव्य है सो आत्मा प्रत्यक्ष नहीं होता तो क्या आप्त उपदेश मात्र से ज्ञात होता है तिसमें कहते हैं नहीं अनुमान से भी जाना जाता है। इस स्थान में वात्स्यायन ऋषि ने आत्माको अप्रत्यक्ष कहने से सुखादि अधिकरण से आत्मा न्यारा इच्छा मात्र जो

धन करा अन्यथा जो सुखादि आश्रय यही आत्मा होता तो तिसका सुखादि प्रत्यक्ष में सुखादि आधाररूप से प्रत्यक्ष होसकता था तो अप्रत्यक्ष कथन असंगत होता इससे वात्स्यायन को दृशिमात्र आत्म अपने मन में विविक्षित है अब आत्मा को अनुमान प्रमाण गम्यता जैसे है तथा सूत्र से प्रश्न पूर्वक सिद्ध करते हैं।

कथम् ॥ इच्छाद्वेषप्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥ न्या० अ १ आ १ सू १० ॥ पद इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानानि आत्मनः लिङ्गम् इति ॥

इच्छाच द्वेषश्च प्रयत्नश्च सुखंच दुःखञ्च ज्ञानञ्च तानि इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानानि ऐसा प्रथम पद का विग्रह जानना।

भाष्य ॥ यज्जाती यस्यार्थस्य सन्निकर्षात सुखमात्मोपलब्धवान् तज्जातीयमेवार्थं पश्यन्नुपादातु मिच्छति सेयमादातु मिच्छा एकस्यानेकार्थदर्शिनो दर्शनप्रति सन्धानाद् भवति लिङ्गमात्मनः॥

अर्थ ॥ यादृश अर्थ संयोग से आत्मा सुख को जानता हुआ तादृश पदार्थ को देखकर ग्रहण करने की इच्छा करता है सो यह ग्रहण की इच्छा अनेक अर्थ दर्शी एक वस्तु के अनुभव स्मरण से होती हुई आत्मा का लिङ्ग नाम ज्ञापक होती है पूर्व दृष्ट पदार्थ सदृश पदार्थ दर्शन जन्येच्छा अनेकार्थ दर्शी स्थाप्याश्रिता विलक्षणेच्छ त्वात्यन्नैवं तन्नैवं यथा शब्दः यह अनुमान फलित हुआ अर्थ

इस अनुमान का यह है पूर्वदृष्ट जो पदार्थ तिसके सदृश पदार्थ दर्शन जन्य जो इच्छा है सो इच्छा अनेक वस्तु दर्शी और स्थायी के आश्रित है ऐसी विलक्षण इच्छात्ववत् होने से जो अनेकार्थ दर्शी स्थायी के आश्रित नहीं सो विलक्षण इच्छात्ववत् भी नहीं जैसे शब्द है यद्यपि स्थायी के आश्रित तो शब्द है तथापि वो स्थायी आकाश अनेकार्थ दर्शी नहीं किन्तु जड़ है और नचेयं तथा यह इच्छा ऐसी नहीं जो विलक्षण इच्छात्ववत् शब्द की तरह नहो किन्तु विलक्षण इच्छात्ववत् है तस्मान्नथा तिसहेतु से तैसी नहीं अर्थात् अनेकार्थ दर्शी स्थायी के आश्रित शब्दवत् न हो ऐसी नहीं किन्तु अनेकार्थ दर्शी स्थायी के आश्रित है इस रीति से इच्छास्थायी अनेकार्थ द्रष्टा जो आत्मा तिसका अनुमापक है।

भाष्य ॥ नियतविषयेहि बुद्धिभेद मात्रेन संभवति देहान्तर वदिति।

अर्थ — इस भाष्य पंक्ति से इच्छा का कारण जो ज्ञान तिसका पूर्व ज्ञान से समान विषयकत्व और समानाश्रयत्व रूप अभेद होतेही एक विषय में ग्रहण की इच्छा होती है अन्यथा नहीं होती जैसे प्रथम इष्ट पदार्थ ज्ञान से जिसको सुख की उपलब्धि हुई है पश्चात् तिसीको इष्ट पदार्थ का दर्शन होते ग्रहण की इच्छा होती है यहां इच्छा कारण जो पूर्व दर्शन तथा पश्चात् दर्शन ते दोनों एक होवें अर्थात् एक अधिकरण में होवें तो ग्रहण की इच्छा होती है और भिन्न २ अधिकरण में होवें तो ग्रहण की इच्छा नहीं होती देहान्तरवत् यह दृष्टान्त है यथा एक देह वर्त्तिव्यष्टि आत्मा को इष्ट दर्शन जन्य सुख प्रतीत हो और द्वितीय

देह वर्त्तिव्यष्टि आत्मा को पश्चात् उसी पदार्थ का ज्ञान होतो ग्रहण की इच्छा नहीं होती इतने से आत्मा को स्थिर बोधन करके क्षणिक विज्ञान वाद का निराकरण करा काहेते क्षणिकविज्ञान वादि बौद्ध के मत में उत्तर विज्ञान व्यक्ति की उत्पत्ति में पूर्व विज्ञान व्यक्ति नाश होगयी तब जिस विज्ञान व्यक्ति को इष्टदर्शन होया था सो तो नाश होगयी सुख विज्ञान की उत्पत्ति से पश्चात् इष्ट दर्शन रूप विज्ञानव्यक्ति भिन्नाधिकरण है तो ग्रहण की इच्छा नहीं होनी चाहिये देहान्तर वत् यह इसमे दृष्टान्त है और ग्रहण की इच्छा स्वानुभव सिद्ध है इससे आत्मा स्थायी है यह अभिप्राय इस भाष्यपंक्ति का है।

भाष्य। एवमेकस्यानेकार्थ दर्शिनोदर्शन प्रति संधाना दुःखहेतौ द्वेषः।

अर्थ — ऐसेही दुःख हेतु पदार्थ के दर्शन जन्य जिसको दुःख हुआ है तिसीको पश्चात् अनिष्ट पदार्थ ज्ञान से द्वेष नाम क्रोध होता है सो भी अनेक अर्थ दर्शी स्थायी द्रष्टा का अनुमापक है अनुमान प्रकार पूर्ववत् द्वेष अनेकार्थ दर्शी स्थायी आश्रितः द्वेषत्वात् यन्नैवंतन्नैवं यथा शब्दः यह व्यतिरेकि दृष्टान्त पूर्ववतजानना और प्रयत्न को भी स्थिर आत्मा की अनुमापकता जैसे है सो भी दिखलाते हैं।

भाष्य। यज्जातीयो यस्यार्थः सुखहेतुप्रसिद्धस्तज्जातीय मर्थस्यश्य न्नादातुम् प्रयतते सोऽयम् प्रयत्नएक मनेकार्थदर्शिनं दर्शनप्रति संधातार मन्तरेण नस्यात् नियत विषये बुद्धिभेद मात्रेन

संभवति देहान्तर वदिति।

अर्थ – जैसा पदार्थ जिस पुरुष को सुख का हेतु प्रसिद्ध है तैसे पदार्थ को देखकर ग्रहण में प्रयत्न करता है पुरुष,, सो यह प्रयत्न अनेक अर्थ दर्शी दर्शन अनुसंधान कर्त्ता से विना नहीं होता एक विषय में पूर्व उत्तर ज्ञान के अधिकरण भेद से भेद हुए नहीं होता यथा एक देह वर्त्ति व्यष्टि जीवात्मा को एक विषय का पूर्व दर्शन हो और सुख भी प्राप्त उसीको हो पश्चात् द्वितीय देह वर्त्ति व्यष्टि जीवात्मा को दर्शन ही केवल हो सुख भोग वा पूर्व दर्शन नहो तो प्रयत्न ग्रहण वास्ते होता नहीं इसवास्ते दर्शन सुख भोग पश्चात् दर्शन जन्य जो प्रयत्न है सो भी अनेक अर्थ दर्शी स्थायी के आश्रित है विलक्षण प्रयत्नत्वात् यन्नैवंतन्नैवं यथा शब्दः।

भाष्य। एतेन दुःख हेतौ प्रयत्नो व्याख्यातः।

अर्थ – सुख हेतु में प्रयत्न को अनेक अर्थ दर्शी स्थायी आत्मा के अनुमापक कथन से दुःख हेतु में अर्थात् किंचित् सुख और दुःख अधिक के कारण विषय में प्रयत्न है सो भी स्थायी अनेक अर्थ दर्शी आत्मा का अनुमापक व्याख्यात होगया।

भाष्य। सुखदुःखस्मृत्या चायं तत्साधनमाददानः सुखमुपलभते दुःख मुपलभते सुखदुःखे वेदयते पूर्वोक्त एव हेतुः

अर्थ – जिस पुरुष ने पूर्व सुख वा दुःख किसी पदार्थ के अनुभव से अनुभूत है सुख दुःख स्मृति के सहवर्त्त मान पश्चात् वोही पुरुष सुख दुःख साधन को ग्रहण करता हुआ

सुख वा दुःख को प्राप्त होता है वहां सुख दुःख ज्ञान में पूर्वउक्त ही हेतु है भाव यह है जिस पुरुष को किसी पदार्थ ज्ञान से सुख वा दुःख हुआ है पश्चात् वो पुरुषही तत्सदृश पदार्थ कोदेखे तो उस पुरुष को पूर्व सुख दुःख की स्मृति करके सुख वा दुःख होता है और जिस पुरुष ने पूर्व सुख वा दुःख किसी पदार्थ से नहीं पाये तिसको उस पदार्थ के देखे भी सुख दुःख नहीं होते इससे पदार्थ के दर्शन जन्य जो सुख दुःख हैं सो अनेकार्थ दर्शी स्थायी आत्मा के अनुमापक हैं सुख दुःखं अनेकार्थ दर्शी स्थायी आश्रितम् सुख दुःखत्वात् यन्नैवंतन्नैवं यथा शब्दः अबज्ञान को जैसे स्थायी अनेक अर्थ दर्शी आत्मा की अनुमापकता है तैसे दिखलाते हैं।

भाष्य। बुभुत्समानः खल्वयं विमृशति किंस्विदिति विमृशन् जानीते इदमिति तादिदं ज्ञानं बुभुत्सा विमर्शाभ्याम भिन्नकर्त्तृकं गृह्यमाण मात्मलिङ्गम् पूर्वोक्त एवहेतुरिति।

अर्थ — यह पुरुष ज्ञान की इच्छा करता हुआ यह क्या है ऐसा विचार कर पश्चात् यह वस्तु है ऐसे जानता है सो यह ज्ञान बोधेच्छा और विमर्श का जो कर्त्ता तिससे अभिन्न कर्त्तृवत् है ऐसा ग्रहण हुआ वो ज्ञान आत्मा का लिङ्ग नाम अनुमापक होता है और हेतु पूर्व उक्तही है। भाव यह है जिस पुरुष को बोधेच्छा विमर्श होता है तिसी पुरुष को यह वस्तु अमुक है ऐसा ज्ञान होता है और जिस पुरुष को बोधेच्छा विमर्श नहीं होते तिसको विशिष्ट ज्ञान भी नहीं होता क्योंकि यह नियम है इ-

च्छा सामान्यज्ञान विशेष ज्ञान यह तीनों एक कर्तृक होते हैं। यांते वो विशेष ज्ञान स्थायी अनेक अर्थ दर्शी आत्मा का अनुमापक है तब यह अनुमान फलित हुआ विशिष्टज्ञानं स्थायी अनेक अर्थ दर्शी आश्रितम् विशिष्टज्ञानत्वात् यन्नैवंतन्नैवं यथा शब्दः॥

भाष्य॥ तत्र देहान्तर वदिति विभज्यते। यथाऽनात्मवादिनो देहान्तरेषु नियत विषया बुद्धि भेदान प्रतिसन्धीयन्ते तथैकदेह विषया अपि नप्रति संधीयेरन् अविशेषात् सोऽयमेक सत्त्वस्य समाचारः स्वयंदृष्टस्य स्मरणं नान्यदृष्टस्येति॥

अर्थ — यहां देहान्तरवत् इस दृष्टान्त का विभाग करते हैं जैसे अनात्मवादि नाम स्थायी आत्मा का अनंगीकार वादी के मत में एक विषय ज्ञानभेद जो हैं वे देहान्तरों में नहीं अनुसन्धान करे जाते वैसेही एक देह में भी नहीं अनुसन्धान होने चाहिये तुल्यता से यथा देहभेद से आत्मा भेद है तथा क्षणिकवादि के मत में क्षणभेद से एक देह में भी आत्मा का भेद है सो यह एक पुरुष का समाचार नाम व्यवहार है आपने देखे का स्मरण होता है अन्य के देखे का नहीं होता भाव यह है अनुभव और संस्कार तथा स्मरण यह तीनो समान अधिकरण में होवें तो इनका कारण कार्य्य भाव संवन्ध होता है अन्यथा नहीं इससे स्थायी आत्मा बौद्ध को मन्तव्य है॥

भाष्य॥ एवंखलुनाना सत्त्वानां समाचारोऽन्य

दृष्टमन्येन स्मरन्तीति। तदेतदुभय मशक्य मनात्म वादिना व्यवस्था पयितु मिति। एवमुपपन्नमस्त्यात्मेति।

अर्थ–ऐसेही नाना पुरुषों का व्यवहार है अन्यों के देखे को अन्य पुरुष स्मरण करते नहीं यह दो प्रकार का जो व्यवहार है सो आत्मा के अनंगीकार वादि करके असमाध्येय है भाव यह है जो वादि बौद्ध क्षणिक विज्ञानरूप ही आत्मा को मानता है सो आत्मा तो बहु कालस्थायी नहीं तो जैसे दूसरे करके दृष्ट का दूसरे को स्मरण नहीं होता किन्तु आपने देखे का ही स्मरण होता है। तैसे आपने देखे का भी स्मरण नहीं होना चाहिये क्योंकि द्रष्टा से स्मरण करनेवाला और है याते स्मरण होना चाहिये नहीं और स्मरण होता है याते आपने अनुभव से भी बौद्ध को आत्मास्थायी मानना उचित है। ऐसे पूर्व उक्त विचार से आत्मा देह जड़ से अथवा क्षणिक बुद्धि से भिन्न है यह निश्चय हुआ परन्तु आत्मा का स्वरूप तो पूर्वसूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने जो प्रतिपादन करा है सर्वस्यद्रष्टा सर्वस्यभोक्ता सर्वज्ञः सर्वानुभावः। इत्यादि से ई जानना सो भी आत्मा विशिष्ट रूप है शुद्धरूप केवल दृशिमात्र है जोकि योगसूत्र में निर्णीत है यह दोनों प्रकार का वात्स्यायन मुनि तथा पतंजलि निर्णीत आत्मा का स्वरूप श्रुति प्रतिपाद्य है यह आगे श्रुतिप्रमाण से निर्णीत होगा अब वैशेषिक सूत्र का यथार्थ अर्थ संक्षेप ते दिखलाते हैं।

प्राणापाननिमेषोन्मेष जीवनमनोगतीन्द्रि या र विकाराः सुख दुःखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्चात्म

नोलिङ्गानि। वै०। अ ३। आ २। सू ४।
प्राणापनेच निमेषोन्मेषौ च जीवनञ्च मनोगतिश्च इन्द्रियान्तर विकारश्चते तथा सुखञ्च दुःखञ्च इच्छा च द्वेषश्च प्रयत्नश्चते तथा आत्मनो लिङ्गानि यह विग्रह तथा पदच्छेद है।

अर्थ — यह है देह मध्यवर्त्ति वायु के ऊर्द्धगमन वत् रूप प्राणहै और अधोगमन वत् रूप अपान है सो यह दोनों प्राणापान वायु चेष्टा चेतनाधीना जड़ चेष्टा त्वात् रथ चेष्टावत् इससे आत्मा देह प्राणभिन्न चेतन है यह सिद्ध हुआ ऐसेही निमेषोन्मेष व्यापार भी नियत है सो भी चेतन का अनुमापक है जीवन पद से वृद्धि होना शरीर का तथा शरीर में घाव का भरजाना यह दोनों का ग्रहण है सो जीवित शरीर में देखे जाते हैं वे भी शरीर भिन्न चेतन के अनुमापक हैं। अनुमान प्रकार यह है इदं शरीरं सात्मकं वृद्ध्यादि मत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा मृत शरीरम्। मनोगति नाम मन का इष्टार्थग्राही इन्द्रिय में प्रवेश करना सो भी आत्मा का अनुमापक है जिसकी इच्छा वा सावधानता मन को प्रेरणा करते हैं सो आत्मा है अनुमान प्रकार यह है मनोगतिः चेतनाधीना जडानिष्ट गातित्वात् रथगति वत् जिस पुरुष ने निम्बुफल का स्वाद जाना है कबी पूर्व तिसको वह फल देखकर जो दांतों के मध्य जिव्हा में से जल प्रस्रवण होता है तिसका नाम इन्द्रियान्तर विकार है सो इन्द्रियान्तर विकार भी आत्मा का अनुमापक है इस स्थान में यह समझना प्रथम फल को देखकर रस की अनुमिति होकर रसना में से जल प्रस्रवण होता है और वो अनुमिति ज्ञान भी रस और फल के रूप वा

गन्ध की जो व्याप्ति तिसकी स्मृति बिना होता नहीं और व्याप्ति स्मृति संस्कार बिना नहीं होती और संस्कार व्याप्ति के अनुभव बिना हो नहीं सकते और व्याप्ति का अनुभव सहचार दर्शन बिना होता नही सहचार दर्शन नाम हेतु साध्य के एकत्र बारंबार दर्शन का है अनुमान प्रकार यह है इन्द्रियान्तर विकारः सहचार दर्शनादि ज्ञान संस्काराश्रय स्मृति जन्यः तदन्वय व्यतिरेकानु विधायित्वात् यदेवं तदेवं यो यदन्वय व्यतिरेकानु विधायी सतज्जन्यः यथा दण्डाद्यन्वय व्यतिरेकानु विधायी घटो दण्डादि जन्यः) भाव यह है इन्द्रियान्तर जो विकार है सो सहचार दर्शन व्याप्ति अनुभव और व्याप्ति संस्कार तथा व्याप्तिस्मृति और रसानुमिति का आश्रय जो स्थायी अनेक अर्थ दर्शी आत्मा तिसको जो रसस्मृति तिससे जन्य है तिसके अन्वय व्यतिरेक के अनुविधा यित्वात् नाम पश्चात् भावित्वात् रसस्मृति के होते इन्द्रियान्तर विकार होता है यह तो अन्वय है और जिसको रसस्मृति नहीं होती तिसको इन्द्रियान्तर विकार भी नहीं होता यह व्यतिरेक है जैसे दण्डादि होते घट होता है और दण्डादि नहीं तो घट होता नहीं यह घट तथा दण्डादि का अन्वय व्यतिरेक है । इस रीति से इन्द्रियान्तर विकार आत्मा का अनुमापक है और इन्द्रियान्तर विकार में जो वादी का प्रलाप सो तो पूर्वही खण्डित है और यहही अर्थ इन्द्रियान्तर विकार का है इस अर्थ की दृढ़ता के अर्थ गोतमसूत्र और वात्स्यायन भाष्य को लिखते हैं।

इन्द्रियान्तर विकारात । न्याय · अ ३। आ १। सू १२॥ भाष्य ॥ कस्यचिदम्ल फलस्य गृहीत

साहचर्ये रूपेगन्धेवाकेनचिदिन्द्रियेण गृह्य माणेरसनस्येन्द्रियान्तरस्य विकारः रसानुस्मृतौ रसगार्द्धि प्रवर्त्तितो दंतोदकसंप्लव भूतोगृह्यते तस्येन्द्रिय चैतन्येऽनुपपत्तिःनान्यदृष्टमन्यःस्मरति॥

अर्थ — किसी अम्लफल के रूप में वा गन्ध में जिस पुरुष को रस के सहचार का ज्ञान है तिसके रसना इन्द्रिय में रसस्मृति से जो रसग्रहण की इच्छा तिससे प्रवृत्त होता है तिस जल प्रस्रवणरूप विकार की इन्द्रिय चैतन्य वादि के मत से अनुपपत्ति है क्योंकि अन्यदृष्ट पदार्थ की अन्य को स्मृति होती नहीं यहां रस दर्शन तो रसना इन्द्रिय से हुआ है और रसस्मृति चक्षु वा घ्राण को फल का रूप देख वा गन्ध ग्रहण कर के कैसे होगी इससे इन्द्रियों से सर्व अर्थ का ग्रहण करनेवाला आत्मा भिन्न है यह मन्तव्य है यह इन्द्रिय आत्म वादि के मत को खण्डन करके इन्द्रिय से भिन्न आत्मा सिद्ध करा है और सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न ये पांचों तो जैसे अनेक अर्थ दर्शी स्थायी आत्मा के अनुमापक हैं तथा प्रकार गौत्तम सूत्र व्याख्यान में वात्स्यायन भाष्य प्रमाण से निर्णीत है यहां यह विचारना चाहिये वादी लिखित अर्थ में सर्वथा ऋषि के अभिप्राय का लेश भी नहीं उलटा श्रुति ऋषि बचन विरोध स्पष्ट है परन्तु वादी को ऋषिवचन श्रुति विरोध से क्या काम है उसको तो आपने सेवकों को बहकाना जो कि मैं षट्शास्त्र का भी पण्डित हूं ऐसा जनाने वास्ते षट्शास्त्र के सू

त्र लिखकर अस्तव्यस्त बकना ऐसे गौतम कणाद तथा भाष्यकार वात्स्यायन मुनि ने देह इन्द्रिय प्राण आदि से भिन्न आत्मा सामान्य ते निरूपण करा परन्तु वो विशिष्ट आत्मा है और जो पतंजलि ऋषि बचन से द्रष्टा दृशिमात्र निर्णीत है सो शुद्ध आत्मा है इन दोनों ऋषि बचनों का जो मूल है श्रुति प्रजापति बालखिल्य ऋषि सम्बादरूप सो दिखलाते हैं

अथ श्रुति लेख पूर्वक पतंजलि गोतम कणादसूत्र वात्स्यायन भाष्य इन सर्ब की जीव स्वरूपनिरूपण में एक वाक्यता निरूपण॥ ६॥

श्रुति॥ अथापहत पाप्मानास्तिग्म तेजसा ऊर्द्ध्वरेतसो वालखिल्या इति श्रूयन्ते॥ अथक्रतु प्रजापति मब्रुवन्। भगवन्शकटमिवाचेतन मिदं शरीरंकस्यैष खल्वीदृशो महिमा ऽतीन्द्रिय भूतस्यये नैतद्विधमेत च्चेतनवत प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वा अस्ययद् भगवन् वेत्सितदस्माकंब्रूहीतितान्होवाचेति॥ पद॥ अथ अपहृत पाप्मानः तिग्मतेजसः ऊर्द्धरेतसः वालखिल्याः इति श्रूयन्ते अथ क्रतुम् प्रजापतिम् अब्रुवन् भगवन् शकटम् इव अचेतनम् इदम् शरीरम् कस्यएषः खलु ईदृशः महिमा अतीन्द्रिय। भूतस्ययेन एतद्विधम् एतत् चेतनवत् प्रतिष्ठापितम् प्रचोदयिता वै अस्ययत् भगवन् वेत्सि

तत् अस्माकम् ब्रूहि इतितान् ह उवाच इति।
अर्थ — कथा प्रसंग यह है शाकायन्य महर्षि को बहुत से वृहद्र य राजा ने तप से प्रसन्न कर उपदेश ब्रह्मविद्या का अपने वास्ते वर मांगा तब शाकायन्य महर्षि ने अनेक प्रकार से विद्या का उ पदेश करा तिसी प्रसंग में चेतन के स्वरूप निश्चय वास्ते बाल खिल्य ऋषि प्रश्न करेंगे प्रथम बालखिल्य प्रजापति के संवाद का प्रारंभ करते हैं अथ शब्द प्रकरणान्तर का बोधक है नि ष्पाप तीव्र तेजस्वी ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान करने वाले बालखिल्य ऋषि सुने जाते हैं अथ नाम कदाचित् क्रतु नामक प्रजापति को पूछते हुए हे भगवन् यह शरीर अचेतन शकटवत् है सो यह प्रभाव किस अतीन्द्रिय वस्तु का है जिसकर ऐसा अचेतन शक टवत् भी यह शरीर चेतनवत् स्थापन कररक्खा है और प्रेरक भी निश्चय करके इसका कौन है हे भगवन् जो आप इसका चेतन कर्त्ता तथा प्रेरक जानते हो सो कहो हमारे प्रति कृपाक रके ऐसे पूछे हुए प्रजापति ऋषिओं के प्रति कहते हैं

श्रुति ॥ योह खलुवावोपरिस्थः श्रूयतेगुणेष्वि वोर्द्धरेतसः ॥ पद ॥ यः ह खलुवाव उपरिस्थः श्रू यते गुणेषु इव ऊर्द्धरेतसः।

अर्थ — जो परमात्मा असंग स्वभाव प्रपंच में वर्त्तमान भी उपरि स्थ नाम अपने असंग स्वभाव से उपरि जो अपना आप तिसी में स्थित है यथा योगिजन गुणों में वर्त्तमान भी असंग रहते हैं तथा परमात्मा भी अपने असंग स्वभाव से प्रपंच में वर्त्तमान भी अवर्त्त मान वत् है।

श्रुति ॥ सवाएषशुद्धः पूतः शून्यः शान्तोऽप्राणो निरात्मा ऽनन्तो ऽक्षय्यः स्थिरः शाश्वतोऽजः स्वतंत्रः स्वेमहिम्नितिष्ठति।

सः वै एषः शुद्धः पूतः शून्यः शान्तः अप्राणः निरात्मा अनन्तः अक्षय्यः स्थिरः शाश्वतः अजः स्वतंत्रः स्वेमहिम्नि तिष्ठति।

अर्थ — सो पूर्व उक्त असंग स्वभाव परमात्मा शुद्ध रागादि मल रहित पूत सर्व को पवित्र करने वाला शून्य नाम निर्धर्मिक शांत निर्विकार अप्राण प्राणनादि क्रिया रहित निरात्मा मनो रहित अनंत नाशरहित अपक्षय रहित का नाम अक्षय्य है स्थिर वृद्धि रहित शाश्वत सर्वदा एक रूप अज जन्म रहित स्वतंत्र नाम जन्म से अनन्तर भावी अस्तित्त्व रूप काल सम्बन्ध से रहित स्वेमहिम्नि तिष्ठति अर्थ यह आधारान्तर रहित है इतने श्रुति बचन से जो पतंजलि निर्णीत आत्मा का स्वरूप है सो इस श्रुति मूलक है यह कहा अब गोत्तम कणाद वात्स्यायन निर्णीत आत्मस्वरूप का मूल श्रुति भाग दिखलाते हैं।

श्रुति ॥ अनेनेदं शरीरं चेतनवत् प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैषोऽप्यस्येति

अर्थ — यह है इस परमात्मा करके यह शरीर चेतनवत् स्थापन होरहा है और प्रेरक भी इस शरीर का परमात्मा ही है

श्रुति ॥ तेहोचुर्भगवन् कथमनेनेदृशेनानिष्टेनैताद्विधमिदं चेतनवत् प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैषोऽस्यकथमिति।

अर्थ – ऋषि पूछते हैं हे भगवन् इष्ट नाम इच्छा ता से रहिनतित आत्मा ने अचेतन शरीर को चेतनवत् कैसे स्थापन करा और वो इच्छादि सर्व धर्म रहित इस शरीर का प्रेरक भी कैसे होसकता है।

श्रुति॥ तानहोवाचसवाएष सूक्ष्मोऽग्नाह्योऽ
दृश्यः पुरुषसंज्ञोऽबुद्धि पूर्वमिहे वावर्त्ततेऽ
शेनेतिसुप्तस्ये वा बुद्धि पूर्वं विबोधा एवमिति

पद। तान् ह उवाच सः वै एषः सूक्ष्मः अग्नाह्यः अदृश्यः पुरुषसंज्ञः अबुद्धि पूर्वं इह एव आवर्त्तते अंशेन इति सुप्तस्य इव अबुद्धि पूर्वं विबोधाः एवम् इति

अर्थ – ऋषियों को प्रजापति कहते हैं सो यह सूक्ष्म अग्नाह्य अदृश्य पुरुष संज्ञा वाला परमात्मा वास्तव असंग स्वभाव (अबुद्धि पूर्वं) बिनाही संकल्प इस देह में ही अंश करके वर्त्तमान है पाद तल से लेकर मस्तक पर्यन्त अहं ऐसा अभिमान करके भाव यह है। संघात से अभिन्न हुआ वर्त्तमान अंश कहा जाता है वास्तव ते निरंश भी है परन्तु अंशवत् प्रतीत होता है स्वमायाकार्य विशिष्ट होकर चित् सदानन्द अनन्त स्वरूपही अहं मनुष्यःसुखी दुःखी च ऐसे अकस्मात् ही मानता है तिसमें दृष्टान्त जैसे सुप्त पुरुष को बिनाही संकल्प जाग्रत् होजाती है तैसे स्वाभाविक अहं मनुष्यः ऐसा मानता है इस स्थान में यह जानना जैसे सुषुप्त के आश्रित अज्ञान सुषुप्त पुरुष से अपृथक् रूप ते प्रतीयमान है। तैसे परमात्मा की विचित्र शक्ति परमात्मा सेअपृथक् रूप ते प्रतीयमान ही जीवरूप से प्रतीतिमें हेतु है कार्य्य विशिष्ट जो परमात्मा

का रूप सोई अंश है।

श्रुति॥ अथयोह खल्वुवावै तस्यसोऽशोऽयं यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः संकल्पाध्य वसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिर्विश्वाख्यश्चे तनेनेदं शरीरं चेतनवत् प्रतिष्ठापितं प्रचोदयि ता वैषोऽप्यस्येति॥ मैत्र्युपनिषद्।अ २।का ण्ड ३।४।५।

पद॥ अथ यः ह खलु वाव एतस्यस: अंशः अयम् यः चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः संकल्पाध्यवसायाभिमान लिङ्गः प्रजापतिः विश्वाख्यः चेतनेन इदं शरीरम् चेतनवत् प्रतिष्ठापितम् प्रचोदयिता वै एषः अपि अस्य इति।

अर्थ ॥ ऐसे स्थित होते जो इसका अंश है चेतनमात्र नाम सुख दुःखादि विकार वर्ज्जित प्रति पुरुष नाम व्यष्टि रूप से प्रति शरीर भिन्न क्षेत्रज्ञ नाम महाभूत अहंकार बुद्धि अव्यक्त इन्द्रिय मन शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इच्छा द्वेष सुख दुःख (संघात) महाभूतादि समुदाय रूप कार्य्य (वृत्ति ज्ञान धृति यह जो संपूर्ण क्षेत्र है धर्म सहित) तिसका प्रकाशक है (संकल्प) यह है ऐसे सामान्य कल्पना (अध्यवसाय) अमुक वस्तु है ऐसी निश्चय रूप वृत्ति अभिमान अहं ममग्रहादि ऐसे स्वस्वामिभाव प्रतीति इतने जिसके लिङ्ग अर्थात् देह में तिसके सद्भाव के साधक हैं सोई समष्टि शरीराभिमानी होकर प्रजापति ब्रह्मा वैश्वानर नाम से कहा जाता है चतुर्विध अण्डजादि व्यष्टि शरीराभिमानी होकर विश्वः ऐसे कहा जाता है इस चेतन ने यह जड़

शरीर चेतनवत् स्थापन करा है और प्रेरक भी शरीर का चेतन ही है। इस स्थान में ऐसा विचार कर्त्तव्य है। श्रुति और गौतम कणाद ऋषि प्रणीत सूत्र वात्स्यायन ऋषि प्रणीत भाष्य इन सर्व की एक वाक्यता है क्योंकि श्रुति में संकल्पादि लिङ्ग से आत्मा देह प्राणादि विलक्षण बोधन करा और सूत्रों में इच्छादि हेतु से देहादि विलक्षण अनेक अर्थ का द्रष्टा स्थिर स्वभाव बोधन करा वात्स्यायन भाष्य में सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वानुभावः इत्यादि रीति से आत्मा का स्वरूप लिखा है सो व्यष्टि जीव में तो सर्वद्रष्टृपना असंभव है इस कारण से समष्टि तात्पर्य्य से जानना और कणाद सूत्र में। अ ७। आ १। सू २२। जो आत्मा को आकाशवत व्यापक कहा है सो भी समष्टि तात्पर्य्य से समझना क्योंकि श्रुति विरुद्ध सिद्धान्त ऋषि मुनि का नहीं होसकता सर्व ऋषिमुनि श्रुति पारगामी हैं

अथ जीव परभेद को औपाधिकत्व और अभेद को वास्तत्व प्रतिज्ञा पूर्वक मंत्रप्रमाणादि करके जीव को परमेश्वरांशता निरूपण और ब्रह्मा विष्णु रुद्र को को भी परमेश्वरांशता निरूपण करते हैं॥७।

जहां कहीं ऋषि मुनि बचन में भेद प्रतीत हो सो औपाधिक भेद का बोधक है और औपाधिक भेद वास्तव अभेद का बाधक नहीं अन्यथा आकाश का मठादि उपाधि कृत भेद भी वास्तव एकत्व का बाधक होजायगा और जो ऐसी व्यवस्था को

नहीं मानेगा तिसके मत में अभेद बोधक वाक्यों का बाध हो गा सो आस्तिक वैदिक को बाध होना उचित नहीं।

त्वंस्त्रीत्वंपुमानसि त्वंकुमारो उत वा कुमारी त्वंजीर्णोदण्डन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्व तोमुखः॥ अथर्व ॥ कां० १०। ८। मंत्र २८।

पद। त्वम् स्त्री त्वं पुमान् असि त्वम् कुमारः उत वा कुमारी त्वम् जीर्णः दण्डेन वंचसि त्वम् जातः भवसि विश्व तो मुखः।

भावार्थ — सर्वात्म रूप से स्तुति परमात्मा की करते हैं हे भगवन स्त्री पुरुष कुमार कुमारी रूप आपही हैं तथा जीर्णभाव वृद्ध अवस्था को प्राप्त आपही दण्डकर चलते हो और आपही विराटरूप से उत्पन्न होकर सर्वतो मुख प्रतीत होते हो इस मंत्र में व्यष्टि जीव तथा समष्टि जीव का परमात्मा से अभेद कहा है इसवास्ते।

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मान वेद यस्यात्मा शरीरम्। वृह० उप० अ०५।

अर्थ — जो जीवात्मा में स्थित जीवात्मा से अन्तर है जिसको जीवात्मा नहीं जानता और जिसका जीवात्माही शरीर है इत्यादि वाक्य आत्मा के औपाधिक भेद के बोधक हैं कारण उपाधि अन्तर है और कार्य्य उपाधि का स्वरूप बाह्य है कारण उपाधि विशिष्ट अंश प्रेरक है और शरीरी है और कार्य्य उपाधि विशिष्ट प्रेर्य्य और शरीर है इससे कारण कार्य्य उपाधि कृत भेद को लेकर यह वाक्य प्रवृत्त है और पूर्व वाक्य अ

यर्व मंत्र प्रमाणान्तरा ज्ञात वास्तवाभेद का बोधक है

अंशोनानाव्यपदेशादन्यथाचापिदाशकितवा दित्वमधीयत एके।शारीर। अ २। पा ३।सू ४३

पद। अंशः नानाव्यपदेशात् अन्यथा च अपि दशाकितवादित्वम् अधीयते एके।

अर्थ—जीव परमेश्वर का अंश है निरवयव में मुख्य अंश असंभव है इससे उपाधि विशिष्ट रूप अंशवत् अंश है यथा महाकाशस्य घटाकाशो अंशः नाम उपाधि विशिष्ट रूप है नानाव्यपदेशात् अर्थ यह है भेद का उपदेश होने से यथा।

योविज्ञानेतिष्ठन् विज्ञानमन्तरोयमयति यस्य विज्ञानं शरीरम्। यआत्मनि तिष्ठन्नात्मानमन्तरोयमयतीति।

अर्थ—जो विज्ञान में स्थित होकर विज्ञान को अन्तरस्थित ही प्रेरणा करता है जिसका विज्ञान शरीर है जो आत्मा में स्थित आत्मा को अन्तरस्थित ही प्रेरणा करता है) इन श्रुतिओं में विज्ञान तथा आत्मा पद का भेद है अर्थ एकही है पाठभेद भी शाखाभेद से है यजुर्वेद की काराव शाखा में विज्ञान पद और माध्यंदिनीय शाखा में आत्म पद है अर्थ दोनों का बुद्धि उपाधि विशिष्ट जीव है केचित् शाखी च पुनः अन्यथा नाम और प्रकार से ब्रह्म को दाशकित वादित्व रूप ते अध्ययन करते हैं।

तथाहि आथर्वणिका ब्रह्मसूक्ते।

ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा ब्रह्मेवेमे कितवा। इत्यादि

अर्थ—यह है अथर्वण वेद पाठी ब्रह्मसूक्त में यह कहते हैं।

दाश नाम कैवर्त्त धीवर (दास) सेवक शूद्र जाति (कितव) द्यूत क
र्मादि करनेवाले यह सर्व ब्रह्म हैं। भाव यह है जब हीनजाति जी
व ब्रह्म हैं तब यह कहा यावत् स्थूल सूक्ष्म संघात प्रविष्ट जीव
हैं वे सम्पूरण ब्रह्म का ही उपाधि विशिष्ट रूप हैं

मंत्रवर्णात्।शा।अ१पा३सू४४।

अर्थ—यह मंत्र भी इसी अर्थ को वर्णन करता है। तथाहि।

एतावानस्यमहिमा ततोज्यायाँश्च पूरुषः।
पादो अस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्या मृतं
दिवि। य०अ ३१। मं०३।

अर्थ—तिस परमेश्वर सर्वान्तरयामी की यावत् प्रपंच है सो सं
पूर्ण महिमा नाम विभूति है भाव यह है परमेश्वर विभूतिमान् है
और प्रपंच विभूति है। **प्रश्न**। विभूति नाम किस वस्तु का है॥
उत्तर॥ जो कि भोक्ता के आनंद का हेतु होता है पदार्थ तिसका
नाम विभूति है। **प्रश्न**। तो विभूतिमान् कौन है। **उत्तर**। भोक्ता
का नाम विभूतिमान् है जो अपनी विभूति को पालन करे और भ
क्षण करे अर्थात् तिससे किसी प्रकार के आनन्द को हासिल करे
सो भोक्ता है इस प्रपंच से जो आनंद को प्राप्त करता है सोई भो
क्ता है और यावत् प्रपंच तिसका भोग्य है वोही विभूति कहला
ता है तब यह निश्चय हुआ भोक्ता परमात्मा है इससे परमात्मा
भिन्न है। और भोक्ता जीवरूप तिस परमात्मा से भिन्न है यह नि
श्चय वेदमंत्र से विरुद्ध है। **प्रश्न**। परमात्मा तो सत्य काम
है और भोक्ता असत्य काम प्रतीत होता है। **उत्तर**। भोक्ता सर्व
त्र असत्यकाम है वा कहीं सत्य काम भी है हां है सत्यकाम

ऋषि मुनि देवता प्रजापति हिरण्यगर्भ विष्णु शिवादि में,, तब यह निर्णेतव्य है शिवादि में सत्यकामता स्वतः सिद्ध है वा पुरुशार्थ से हुई है स्वतः सिद्ध मानें तो ईश्वर नानात्वापत्ति होगी और पुरुषार्थ जन्य सत्यकामता मानें तो यह बिचारना सत् कार्य्य वादहै वा असत्कार्य्यवाद है। **प्रश्न**। सत्कार्य्यवाद क्या है। **उत्तर**। सत्कार्य्यवाद नाम इसका है जो उत्पत्ति से प्रथम सूक्ष्म रूप से कार्य्य को मानता यथा तेल के उत्पत्ति से प्रथम सर्षों में सूक्ष्म रूपसे तेल है पीछे उपाय से प्रादुर्भाव होता है। **प्रश्न**। असत्कार्य्य वाद क्या है। **उत्तर**। उत्पत्ति से प्रथम कार्य्य का प्रागभाव मानना और कारण समुदाय से कार्य्य की नवीन उत्पत्ति माननी असत्कार्य्यवाद है। **प्रश्न**। वेद सिद्धान्त में कौन माना है। **उत्तर** वेद सिद्धान्त में सत्कार्य्यवाद है अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति होती नहीं अन्यथा वंध्यापुत्र की उत्पति होनी चाहिये इसीवास्ते उत्पत्ति काल सें पूर्व सर्व प्रपंच का कारण के साथ अभेद कहा है श्रुति वचन में जब सत्कार्य्यवाद सिद्धान्त हुआ तो सत्यकामता सर्वज्ञता पुरुषार्थ साध्य हुई तो प्रथम सूक्ष्मरूप से सद्भाव है पश्चात् पुरुषार्थ से प्रादुर्भाव होती है उलटा स्वतः सिद्ध है सत्यकामता सर्वज्ञता प्रतिवन्ध से तिरोभूति थी पश्चात् प्रतिवन्ध निवृत्त होतेही प्रादुर्भाव होगयी इससे भोक्ताही परमात्मा है और तिसकी विभूति प्रपंच है सत्यकामतादि कार्य्य विशिष्ट रूप में तिरोभूत हैं पुरुषार्थ से प्रादुर्भाव होते हैं। भाव इस स्थान में यह है कारण कार्य्य के गुण सदृश होते हैं यथा बीज में जो वृक्षप्रादुर्भाव करने की सामर्थ्य है सोई सामर्थ्य कार्य्यरूप बीज मेंभी है

उतना विस्तारयुक्त वैसेही गुणयुक्त वृक्ष को बीजकार्य्य वृक्षफल में जो बीज है तिसमें सामर्थ्य है तथा कारण उपाधि विशिष्ट परमात्मा में जो सत्यकामता सर्वज्ञता आदि गुण हैं वैसेही गुणकार्य्य उपाधि विशिष्ट अंश में हैं परन्तु देहादि में आत्मत्व बुद्धि करकेतिरोभूत हैं योगाभ्यासादि उपाय से प्रादुर्भाव होसकते हैं अन्यथा व्यासादि में सर्वज्ञता सत्यकामता आदि देखी जाती है तो जेकर सूक्ष्मरूप ते विद्यमानता नमानेंगे तो असत्कार्य्य वाद तो असंगत है कैसे प्रादुर्भाव होगी इससे यह वार्त्ता स्वीकर्त्तव्य है यावत् कार्य्य उपाधि विशिष्ट अंश हैं तिनमें तिरोभूत सर्वज्ञता सत्कामता हैं पुरुषार्थ से प्रगट होते हैं प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध हुई जोकि भोक्ता परमात्मा रूप है और यावत् भोग्य प्रपंच तिस भोक्ता की विभूति है। अब परमात्मा का रूप केवल भोक्तृभावापन्न ही नहीं किन्तु निर्विकार मुक्तरूप है यह कहते हैं·

ततोज्यायांश्च पूरुषः

अर्थ— तिस भोग्यवर्ग से अत्यन्त अधिक परमात्मा का रूप है। (अस्य परमेश्वरस्य विश्वा सर्वाणि भूतानि प्राणिनः पादः अंशः भाग इत्यनर्थान्तरम्) अर्थ सर्वप्राणि वर्ग जीव परमात्मा का अंश हैं अंश भाग पाद यह एकार्थ शब्द हैं और त्रिपाद परमात्मा का रूप अमृत है भाव यह है कार्य्य कारणोपाधि वर्ज्जित शुद्ध है। अपनी महिमा में स्थित है यथा कार्य्य उपाधि विशिष्ट अंश को जीव रूपता इस मंत्र से सिद्ध होती है तैसे कारण उपाधि भेद सेभी परमात्मा के रुद्रादि अंश श्रुति में कहे हैं

तथाहि

मैत्र्युपनिषद् । अ ५ । का० २ । तमोवाइदमग्र आसीदेकंतत् परेस्यात् तत्परेणेरितं विषमत्वं प्रयात्येतद्रूपं वैरजस्तद्रजः खल्वीरितं विषमत्वं प्रयात्येतद्वैसत्त्वस्य रूपम् ।

पद ॥ तमः वैइदम् अग्रे आसीत् एकं तत् परे स्यात् तत् परेण ईरितम् विषमत्वम् प्रयाति एतत् रूपम् वैरजः ततरजः खलु ईरितम् विषमत्वम् प्रयाति एतत् वैसत्त्वस्य रूपम्

टीका । इदं ब्रह्म विष्णु रुद्रादिक मग्रे सृष्ट्युपक्रमात्प्राक् तमो वैतम एव तमो गुण प्रधान मायामात्र मेवासी देकमेकी भूत मनभिव्यक्त नाम रूपम खण्ड तमोमात्र मासीदित्यर्थः एतेना सत्कारण वादो ऽसत्कार्य्यवादश्च व्युदस्तः । इदं तम इति सामा नाधि करण्योक्ते रग्र आसीदिति सत्त्वोक्तेश्च तत् किं स्वतंत्रं नेत्याह

तत्परेस्यादिति

तत् तमः परे कार्य्य कारणत्वातीते तत्कल्पना धिष्ठाने स्याद् भवतीति यावत् अचेतनस्य तस्य स्वातंत्र्यानुपपत्ते रित्यर्थः एवं जगतः प्रागवस्थां चेतन पराधीनता मुक्त्वातत्प्रवृत्ते रपि चेतनाधीनता माह । तत्परेणेति । तत् विलीन कार्य्यावस्थं तमः परेण चिदात्मना ईरितं प्रेरितं सत् सलिल व्याप्त्या बीजमिव विषमत्वं पूर्वावस्था प्रच्युति रूप मुच्छून मिवबीजम् साम्यावस्था त्यागेन तद्विलक्षणात्वं प्रयाति कार्य्योन्मुख भवतीत्यर्थः यदिदं परेरितस्य तमसो विषमत्व गमनमे तद्रूपं वै प्रसिद्धं रजो रजो गुणाख्यं कारण मित्यर्थः । तत

खलु रजः पूर्ववत् परेणेरितंसत् विषमत्वं प्रयाति यादिदं रजसो विषमत्व गमनमेतद्वै सत्त्वस्य सत्त्वगुण प्रधान कारणस्य रूपं प्रकार भेद इत्यर्थः

भावार्थ— अज्ञादि रूप जो यह यावत् जगत है सो पूर्वकाल में तमोगुण प्रधान मायामात्र रूप तथा नाम रूप रहित एक भावापन्न कारण मात्र होता भया इस कहने से असत्कारण वाद तथा असत् कार्य्यवाद भी निरस्त जानते क्योंकि इदं जगत् तम होता भया जब ऐसे कहा तो जगत्का कारण में सूक्ष्मरूप से होना बोधन करा और आसीत् कहने से कारण को सत्रूप कहा क्योंकि असत् वस्तु नास्ति शब्द से बोधन कराजाता है अस्ति शब्द से नहीं सो तम क्या स्वतंत्र है नहीं किन्तु पर जो कार्य्य कारण कल्पना रहित चिदात्मा सर्वाधिष्ठान तिसमें तादात्म्य सम्बन्धसें स्थितहै इस कहने से वादि कल्पित स्वतंत्र अनादि प्रकृति पक्ष श्रुति बाह्य है यह भी कहा क्योंकि अचेतन को स्वतंत्रता अनुपपन्न है ऐसे जगत् प्रागवस्था को चेतनाधीनता कहकर जगत्प्रवृत्ति को चेतनाधीनता कहते हैं। सो तम परमात्मा करके प्रेरित हुआ यथा विलीन कार्य्यावस्थापन्न बीज जल के संयोग से फूल आता है वैसे विषमावस्था को प्राप्त वो तमोगुण होता भया अर्थात् कार्य्य करने को सन्मुख होगया। सो तमोगुण जो विषमभाव को प्राप्त हुआ सो रजोगुण है कारणरू सो रजोगुण भी पूर्ववत् प्रेरित होकर विषमभाव हुआ सोई सत्त्व गुण का रूप है अर्थात् सत्त्वगुण प्रधान कारण का प्रकार विशेष है ऐसे गुणों की विषमता होगयी

श्रुति॥ तत्सत्त्वमेवेरितंरसः सम्प्रास्त्रवत् सो

ऽंशोऽयं यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः संकल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिर्विश्वेत्यस्य प्रागुक्ता एतास्तनवः।

पद। तत् सत्त्वम् एव ईरितं रसः सम्प्रास्त्रवत् सः अंशः अयम् यः चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः संकल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिः विश्वा इति अस्य प्राक् उक्ताः एताः तनवः।

अर्थ—सो सत्त्वगुण प्रधान कारण परमात्मा करके प्रेरित हुआ। जब तिसमें रस जो आनन्द रूप परमात्मा है सो सम्प्रास्रवत् नाम अभिव्यक्त होता भया सो जो परमात्मा का सत्त्वगुण में अभिव्यक्त अंश है चेतनमात्र सो प्रतिपुरुष नाम सर्व व्यष्टि बुद्धि में अनुस्यूत सामान्यज्ञान निश्चय अहंकार करके वोध्य क्षेत्रज्ञ प्रजापति है अर्थात् समष्टि विराट पिण्डाभिमानि देव है और विश्वा नाम व्यष्टि पिण्डाभिमानिनी देवता है इसीके पूर्व उक्त आगे वक्ष्यमाण ब्रह्मादि मूर्त्ति हैं।

श्रुति॥ अथयोह खलु वावास्यतामसोंशोऽसौस ब्रह्मचारिणा योऽयं रुद्रोऽथ योह खलु वावास्य राजसोंशोऽसौस ब्रह्मचारिणा योऽयं ब्रह्माथयोह खलु वावास्य सात्त्विकोंऽशोऽसौस ब्रह्मचारिणोयोऽयं विष्णुः सवा एष एकस्त्रिधाभूतोऽष्टधैकादशधा द्वादशधाऽपरिमितधावोद्भूतः।

पद। अथ यः ह खलुवाव अस्य तामसः अंशः असौसः

ब्रह्मचारिणः यः अयम् रुद्रः अथयःहखलुवाव अस्य रा
जसः अंशः असौसः ब्रह्मचारिणः यः अयम् ब्रह्मा अथयः
ह खलुवाव अस्य सात्त्विकः अंशः असौ सः ब्रह्मचारिणः
यः अयम् विष्णुः सः वै एषः एकः त्रिधाभूतः अष्टधा ए
कादशधा द्वादशधा अपरमितधा वा उद्भूतः

अर्थ — प्रजापति क्रतु नामक बालखिल्य ऋषिओं को उपदेश क
रते हैं जो पूर्व उक्त समष्टि पिण्डाभिमानी देव है तिसका जो ताम
स अंश है सो हे ब्रह्मचारिओ यह रुद्र है तैसे जो राजस अंश है
सो ब्रह्मा है और जो सात्त्विक अंश है सो विष्णु है सो एकहीरुद्र
ब्रह्मा विष्णु रूप से त्रिधाभूत है और प्राण आदित्य और नक्षत्र स
हित चन्द्र और पंचभूत रूप से अष्ट प्रकार का है और दश इन्द्रि
य एक मन मिलकर एकादश प्रकार का है और बुद्धि मन के भे
द से दश इन्द्रिय मिलाकर द्वादश प्रकार का है और रुद्रादि के अ
वान्तर भेद से अपरिमितधा नाम अनन्त प्रकार से प्रादुर्भूत है अब
रुद्र के भेद निरूपण करते हैं।

मंत्र॥नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्चवोनमो ऽश्वेभ्यो ऽश्वपतिभ्यश्चवो नमोनम आव्या धिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्चवोनमो नम उ गणाभ्यस्तृ ᳫं हतीभ्यश्चवोनमः॥यजु०। अ०१६ अनु ३८।मं०२४।

पद। नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यः चवः नमः नमः अश्वे
भ्यः अश्वपतिभ्यः चवः नमः नमः आ व्याधिनीभ्यः
विविध्यन्तीभ्यः चवः नमः नमः उ गणाभ्यः तृंहतीभ्यः

चवः नमः।

अर्थ — रुद्रलोक में जात संज्ञावाले रुद्र हैं अर्थात् पुरुषाकार वा स्त्री आकार रूद्रों के समूहों को नमस्कार करते हैं सभारूप रुद्रों के वास्ते सभापति रूप तुम्हारे वास्ते वा अश्वरूप अश्वपति रूप तुमारे वास्ते वा आताम सर्ब तरफ़ से व्याधिनी नाम ताड़न करने वालि देविओं के वास्ते और विशेष करके वीधिने वालिओं के वास्ते वा गण नाम उत्कृष्ट भृत्य समूह जिनके हैं ऐसी या तृंह ती नाम दुष्टजनों की हिंसा करने वाली ब्राह्म्यादि माताओं के वास्ते नमस्कार हो समूहरूप जो जातसंज्ञा वाले रुद्र हैं इसमें यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण की श्रुति प्रमाण है॥ तथाहि॥

अथो ऽ एवथं हैतानि रुद्राणां जातानि। श०९। १।१।१९।

अर्थ — पूर्व प्रकरण से अनन्तर ऐसे इतने रुद्रों के जात संज्ञा वाले समूह हैं तिनमें सभारूपी रुद्रगण ५७ और सभापाति नामक रुद्रगण ५८ और अश्वरूप रुद्रगण ५९ और अश्वपति नामक गण ६० और आव्याधिनी नामक गण ६१ और विविध्यन्ती नामक गण ६२ और गणा नामक गण ६३ और तृंहती नामक गण ६४ और मारने को समर्थ जो दुर्गाओं का गण है तिसका नाम तृंह ती है यह गणसंख्या शतपथ श्रुति जो मंत्र की व्याख्या रूप है तिसमें प्रतीत होती है।

मंत्र। मीढुष्टमशिवत मशिवोनः सुमनाभव। परमेवृक्ष ऽ आयुधं निधायकृत्तिं वसान आचर पिनाकं विभ्रदागाहि। यजुर्वेद। अ०१६। अनु ४४। मं०५१।

पद। मीढुष्टम शिवतम शिवः नः सुमनाः भव परमेवृक्षे आयुधम् निधायकृत्तिं वसानः आचर पिनाकम् बिभ्रत् आ गहि।

अर्थ— हे शिवतम हे मीढुष्टम अत्यन्त कल्याण रूप अत्यन्त धन की वृष्टि कर्त्ता शिव हमारे प्रति शान्त और हृष्ट चित्त हो और हे भगवन् आप परम वृक्ष जो वटादि हैं तिनमें आयुध जो आपके शत्रुओं को भयानक शस्त्र हैं तिनको स्थापन कर कृत्ति नाम मृगचर्म वा भूर्जपत्र को धारण कर शोभा के वास्ते पिनाक नामक जो आपका धनुष तिसको धारण कर हमारी तरफ़ विचरते हुए आईए इससे लेकर सर्बही षोड़श अध्याय यजुर्वेद संहिता का रुद्र की विभूति को वर्णन करता है।

अथ नमः पद को अन्नादि वाचकता खण्डण कररुद्र को देवत्वाक्षेप पूर्व्वक प्रमाण से रुद्र को देवत्त्व निरूपण और इन्द्रादि विग्रह निरूपण और नमः पद को अन्नादिवाचकता में निघण्ट्वादि प्रमाण निरूपण और वाहगुरु शब्दार्थ निरूपण और नमस्ते वाक्यार्थ निरूपण करते हैं। ८।

प्रश्न। इस स्थान में रुद्र देवता प्रतिपाद्य नहीं किन्तु कोई सेनापति धनुषधारी की स्तुति वा तिसको शिक्षा है इससे रुद्रनाम वाला ईश्वर का अंशावतार देवता मंत्र प्रतिपाद्य नहीं और पूर्ब मंत्र में भी सभा

वा सभापति देवता रुद्रगणों को नमस्कार बोधन नहीं करा किन्तु सभासद वा सभापति मनुष्यों के वास्ते अन्न की वा वज्र के होने की प्रार्थना करी है क्योंकि निघण्टु।अ०२। खं०७। में नमः अन्न नाम है यह कहा है तथा।अ०२।खं०२०। निघण्टु में वज्र नाम नमः शब्द को कहा है इससे मंत्रों से मूर्त्तिमान् ईश्वर विग्रह वा देवता विग्रह सिद्ध नहीं होसकता यह वादी वा वादी के भक्तों की शंका है। **उत्तर।** प्रथम तो इस मंत्र में मनुष्य प्रतिपाद्य कहना महा अविद्या है क्योंकि तुमने आपने ग्रन्थ में ही इन मंत्रों का रुद्र देवता लिखा है और परमेष्ठि देव आदिक ऋषि लिखे हैं तब समझना चाहिये ऋषि देवता क्या वस्तु हैं आश्वलायन ऋषि ऋषि देवता का लक्षण करते हैं। सूत्र से।

यस्य वाक्यं स ऋषिर्याते नोच्यते सा देवता

अर्थ = जिसने मंत्र को देखा है सो तो ऋषि है और जो मंत्र कर के कहा जाता है सो देवता है और तुमारे मत में तो सेनापत्यादि प्रतिपाद्य हैं इन मंत्रों से तो सेनापति सभासद्द सभापति ही देवता लिखने योग्य थे रुद्र देवता लिखना इन मंत्रों का केवल अज्ञान है। और निरुक्त दैवत काण्ड में देखो रुद्र नाम सेनापति का है वा देवता का है। तथाहि॥

इमारुद्रायस्थिर धन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधान्ने॥ अषाल्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरताश्टणोतुनः इमारुद्राय दृढधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवायान्नवते ऽषाढायान्नैः सहमानायाविधात्रे तिग्मायुधाय

भरतश्टणोतुनास्तिग्मन्तेजते रुत्साह्वकर्म्मण आयुधमायोधनात्तस्यैषापराभवाति ॥ निरुक्त देवकाण्डे । अ०१०। पा०१। खं०६।

भाष्यं ॥ इमारुद्राय इति । वसिष्ठस्यार्षम् । उत्तरा ७८ ए । च । श्ऊलगवेविनियोगः ॥ हेस्तोतारः । यूय मुच्यध्वे । इमाः गिरः स्तुतीः । भरत रुद्राय । किंस्त्वक्षणाय स्थिरधन्वने । दृढ़ धन्वने । दृढ़ धनुषे क्षिप्रेषवे देवाय दानादि गुण युक्ताय स्वधान्वे स्वधावते अन्नवते आषाल्हाय आषाढाय अनभि भूताय केन चित् सहमानाय नित्यमभि भवते शत्रून् वेधसे विधात्रे तिग्मायुधाय तीक्ष्णायुधाय सचइमागिर उच्यमानाः श्टणोतु नः अस्माकम् । इत्येतदाशास्महे । तथा तस्मिन्नेव खण्डे ऽग्न उक्तं यास्केन अग्निरपि रुद्र उच्यते ।

भावार्थ — इमा रुद्राय इस मंत्र का वशिष्ट ऋषि और रुद्र देवता है श्ऊलगव नामक कर्म में विनियोग है हे स्तुति करने वालो तुम स्तुति रूप वाणी कथन करो भरत नाम रुद्र के वास्ते कि रुद्र कैसे हैं दृढ़ धनुष वाले और शीघ्र वाणों को चलाने वाले और देव नाम दानादि गुण युक्त अन्न वाले अर्थात् जिनके वास्ते हमने आपनी कल्याण वास्ते आहुति रूप अन्न दिया है आषाल्ह नाम किसीसे भी न तिरस्कृत होने वाले और शत्रु को तिरस्कार करने वाले विधाता सर्व पालक तीक्ष्ण शस्त्र वाले वे हमारी स्तुति रूप वाणियों को श्रवण करो ऐसी आशा हम करते हैं । और पश्चात् उसी खण्ड में यास्क ऋषि कहते हैं आग्नि का नाम भी रुद्र कहीं मंत्र में कहाजाता है इसवास्ते सेनापति

का नाम रुद्र कहना शास्त्र विरुद्ध है। जेकर सेनापति का नाम रुद्र मंत्र प्रतिपाद्य होता तो जैसे महादेव का और अग्नि देवता का नाम रुद्र यास्कमुनि लिखते हैं तैसे सेनापति का भी नाम रुद्र लिख जाते इससे सेनापति का नाम रुद्र कहकर देवता का लोप करना वादी का धूर्त्तता से बिना और कुछ भी अर्थ नहीं। और भी समझना जो पिनाक नाम वाला धनुष तथा वज्र नामक शस्त्र कौनसे सेनापति का है यह तो कहना चाहिये जो इतिहासादि में शूरबीर मनुष्य लिखे हैं तिनका पिनाक धनुष या वज्र शस्त्र कहीं लिखा नहीं। यथा अर्जुन का गाण्डीव नाम धनुष प्रसिद्ध है ऐसा पिनाक नाम धनुष वा वज्र नाम शस्त्र किसी मनुष्य का नहीं सुना जाता कि तुम इतिहासादि बाह्य ही किसी सेनापति का मंत्रों से निरूपण करते हो इसवास्ते पिनाक नाम धनुष रुद्र का ही प्रसिद्ध है सो देवता है अन्यथा यास्कमुनि दैवतकाण्ड निरुक्त में कैसे मानते क्योंकि देवता तो है नहीं तो मनुष्यकाण्डही कहना चाहिये था इससे पिनाक धनुष वाला रुद्र देवता और वज्र नामक शस्त्र वाला इन्द्र देवताही मंत्र प्रतिपाद्य है इसी वास्ते सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण में तिस २ देवता के शस्त्र कहकर देवताओं को हवन कहा है। तथाहि।

इन्द्रायस्वाहा शचीपतयेस्वाहा वज्रपाणयेस्वाहा ईश्वरायस्वाहा सर्वपापशमनायस्वाहा। प्र०५। खं०३। यमायस्वाहा प्रेताधिपतयेस्वाहा दण्डपाणयेस्वाहा ईश्वरायस्वाहा सर्वपापशमनायस्वाहा। प्र०५ खं०५। वैश्रवणायस्वाहा। यक्षाधिपतयेस्वाहा हिरण्यपाणये

स्वाहा ईश्वरायस्वाहा सर्वपापशमनायस्वा
हा।५प्र० खं० ६।अग्नयेस्वाहा हविष्पतये
स्वाहा अर्चिष्पाणयेस्वाहा ईश्वरायस्वाहा
सर्वपापशमनायस्वाहा।५प्र० खं० ७।वाय
वेस्वाहा महद्भूताधिपतयेस्वाहा शीघ्रपाण
येस्वाहा ईश्वरायस्वाहा सर्वपापशमनाय
स्वाहा ५ अ० खं० ८। सोमायस्वाहा नक्षत्रा
धिपतयेस्वाहा शीतपाणयेस्वाहा ईश्वराय
स्वाहा सर्वपापशमनाय स्वाहा।५ प्र० खं० ९
विष्णवेस्वाहा सर्वभूताधिपतयेस्वाहा च
क्रपाणयेस्वाहा ईश्वरायस्वाहा सर्वपापश
मनायस्वाहा।५ प्र० खं० १०। रुद्रायस्वाहा
पशुपत येस्वाहा शूलपाणयेस्वाहा ईश्वरा
यस्वाहा सर्वपापशमनाय स्वाहा।५ प्र० खं०११
सूर्य्यायस्वाहा सर्व्वग्रहाधिपतये स्वाहा।
किरणपाण ये स्वाहा ईश्वरायस्वाहा सर्वपा
पशमनाय स्वाहा।५प्र० खं० १२।

भावार्थ। इन्द्र १ यम २ वरुण ३ वैश्रवण ४ अग्नि ५ वायु ६ सोम ७ विष्णु ८ रुद्र ९ सूर्य्य १० इन देवताओं को क्रम से वज्रपाणि दण्डपाणि पाशपाणि हिरण्यपाणि अर्चिष्पाणि शीघ्रपाणि शीतपाणि चक्रपाणि शूलपाणि किरणपाणि कहा है और सर्व को ईश्वर कहा है और शचीपति प्रेताधिपति अपाम्पति यक्षाधिपति हविष्पति महद्भूताधिपति नक्षत्राधिपति सर्वभूताधिप

ति पशुपति सर्वग्न इाधिपाति कहा है इससे यह जाना जाता है इन के अपने २ शस्त्र असाधारण तथा लोक निवास स्थान असाधारण है और सर्वही ईश्वरअंश हैं इससे ईश्वर हैं और ईश्वर के विलक्षण अधिकारि पुरुष देवता हैं इससे सर्वपाप शमनता भी सर्व में है मनुष्यों को वज्र होने की प्रार्थना मंत्रों में कहना केवल व्यर्थ है और मंत्रों से भी वज्रपाणि आदि स्वरूप प्रतीत होते हैं। तथाहि।

सामवेद आरण्यसंहिता मंत्र ॥ इन्द्रज्येष्ठन्न आभर ओजिष्ठम्पुपुरिश्रवः। यद्दिधृक्षेम वज्र हस्तरोदसी उभेसुशिप्रपप्राः। मं०१।

पद। इन्द्र ज्येष्ठम् नः आभर ओजिष्ठम् पुपुरि श्रवः यत् दिधृक्षेम वज्रहस्त उभे रोदसी सुशिप्र प्रपाः

टीका — हे इन्द्र ज्येष्ठं प्रशस्य तमम् ओजिष्ठम् अतिशयेन बल करम् पुपुरि पूरकम् श्रवः अन्नं नः अस्मभ्यम् आभर आहर प्रयच्छ हे वज्रहस्त वज्रबाहो हे सुशिप्र शोभन हनुक रावम्भूत हे इन्द्र यत् अन्नं दिधृक्षेम धारयितु मिच्छेम॥ यच्चान्नम् इमे परिदृश्यमाने उभे रोदसी द्यावा पृथिव्यौ आपप्राः आपूरयासि तदन्नमा हरेत्यन्वयः

भावार्थ — हे इन्द्र अत्यन्त बलकार और अत्यन्त प्रशस्त मूर्त्तिकर जो अन्न है तिसको हमारे वास्ते प्राप्त करो और हे बज्रबाहो शोभन हनुवाले इन्द्र जिसको हम धारण करने की इच्छा करते हैं और जिस अन्न को पृथिवी स्वर्गलोक में पूर्ण करते हो तिसको प्राप्त करो इस स्थान में यह वार्त्ता निर्णय होगयी जो जीव को परमेश्वर का अंश तुल्य अंशता तथा ब्रह्मा विष्णु रुद्र को गुणत्रया

तावतार रूप परमेश्वर अंशता तथा रुद्र विभूति तथा पिनाकधारी शूलपाणि विग्रह रुद्र का इसी प्रसंगमें इंद्रको वज्रपाणित्वादि यम को दण्डपाणित्वादि और परमेश्वर के अंश रूपता का निरूपण होगया अब नमः शब्द के तीन अर्थ हैं अन्न वज्र तथा परिचरण नाम प्रणाम करना तिनमें शब्द भी दो हैं एकतो प्रथम अध्याय में स्वरादिगण पठित नमस् शब्द है दूसरा स्वरादिगण पठित अव्यय संज्ञक नहीं किन्तु णम् धातु से असुन प्रत्यय होकर बना है सो कौन स्थान में अव्ययनमः शब्द का प्रयोग है और कौन स्थान में अनव्यय नमः शब्द का प्रयोग है यह निर्णय कर्त्तव्य है। जब नमः शब्द को अन्न की बाचकता है तब तो यह व्युत्पत्ति होती है जो (उपनतं जात मात्रेभ्यो भूतेभ्यः पूर्व जन्म कृत कर्म वशादिति नमः वा नम्यते देवतात्वादिति नमः वान मन्त्यने नेति नमो ऽन्नम्) भावार्थ यह है जो उत्पन्नमात्र भूतों के अर्थ पूर्व जन्म कृत कर्मवश से उपनत नाम प्राप्त हो सो नमः है अर्थात् ऐसा अन्न है अथवा जो न मन का कर्म हो अर्थात् जिसको प्रणाम करा जाय सो नमः है देवता होने से अन्न को प्रणाम करा जाता है इससे अन्न का नाम नमः है अथवा नमन करें जीव जिस हेतु कर सो नमः ऐसा भी अन्न है इससे अन्न का नाम नमः है ।नमयति शत्रूनीति नमो वज्रम्

अर्थ—शत्रुओं को जो नमन करावे सो भी नमः है ऐसा वज्र है।

प्रश्न। उत्पत्ति मात्र से प्राणिओं को और वस्तु भी जाति आयु धनादि बहुत से प्राप्त होते हैं और शत्रु केवल वज्र से ही नहीं नमन होते किन्तु बल विद्यादि से भी नमन होते हैं तो जाति बलादि

नामही नमः क्यों नहो। उत्तर। ऐसे २ स्थान में

व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहिसंदेहादल क्षणम्।

इस परिभाषा सें व्यवस्था होती है अर्थ परिभाषा का व्याख्यानत: विशेष प्रतिपत्तिः नहिसन्देहात् अलक्षणम् विशेषस्य एकार्थस्य प्रतिपत्तिः निश्चयः विशेषप्रतिपत्तिः सन्देहात् संशयात् अलक्षणम् अबोधकम् नहि नभवति) एक किसी विलक्षण अर्थ की प्रतीति व्याख्यान से होती है संशय होने से पद अबोधक नहीं होसकता सो इस स्थान में पूर्वउक्त व्युत्पत्ति से जाति बलादि भी प्राप्त हुए परन्तु अन्न और वज्र का ग्रहण इष्ट है ऐसा व्याख्यान करेंगे। इसी वास्ते व्याकरण महाभाष्य में यह लिखा है।

कथंपुनरिदं भगवतः पाणिनेराचार्य्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्। सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे॥ सिद्धे शब्दे ऽर्थे सम्बन्धेचेति। अथ सिद्धशब्दस्य कः पदार्थः। नित्य पर्य्यायवाची सिद्ध शब्दः। कथंज्ञायते। यत्कूटस्थेष्व विचालिषुभावेषु वर्त्तते। तद्यथा। सिद्धाद्यौः सिद्धा पृथिवी सिद्ध माकाशमिति। ननुचभोः कार्य्येष्वापि वर्त्तते। तद्यथा सिद्ध ओदनः सिद्धः सूपः सिद्धाय वागूरिति। यावता कार्य्येष्वापि वर्त्तते तत्र कुत एतान्नित्त्य पर्य्याय वाचिनो ग्रहणं नपुनः कार्य्येयः सिद्ध शब्द इति व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहिस न्देहाद लक्षण मिति नित्त्य पर्य्याय वाचिनो ग्र

इणामिति व्याख्यास्यामः॥ म० अ१। पा१। आ१।

भाष्यकाभावार्थ॰ पाणिनि भगवान् आचार्य्य का जो लक्षण नाम दर्शन व्याकरण शास्त्र है सो कैसे प्रवृत्त हुआ है क्या नूतन शब्द रचना करने को प्रवृत्त हुआ है अथवा स्वतः सिद्ध शब्दों का ज्ञापक है इस प्रश्न का उत्तर भाष्यकार लिखते हैं शब्द तथा अर्थ और शब्द अर्थ का तादात्म्य लक्षण सम्बन्ध के सिद्ध में शास्त्र प्रवृत्त हुआ है भाव यह है स्वतः सिद्ध शब्दों का बोधक है शास्त्र नवीन शब्दों की उत्पत्ति नहीं करता। **प्रश्न**। सिद्ध शब्द का क्या अर्थ है। **उत्तर**। नित्य शब्द का जो पर्य्याय है सिद्ध शब्द तिसका ग्रहण है। **प्रश्न**। कैसे निश्चय होसकता है जो नित्य शब्द के अर्थ का बोधक सिद्ध शब्द है। **उत्तर**। जिस हेतु से क्रिया रहित कूटस्थ एक रस पदार्थाओं में वर्तता है सिद्ध शब्द इस हेतु से नित्य शब्द के अर्थ का वाचक जो सिद्ध शब्द है तिसका ग्रहण है। यथासिद्धाद्यौः सिद्धा पृथिवी सिद्धम् आकाशम्। ऐसी प्रतीति होती है। स्वर्ग तथा पृथिवी और अकाश सिद्ध हैं अर्थात् नित्य हैं यहां नित्यत्व बहु कालस्थायिता रूप व्यावहारिक जानना। **प्रश्न**। कार्यों में भी सिद्ध शब्द प्रवृत्त होता है जैसे सिद्ध ओदनः सिद्धः सूपः सिद्धा यवागू ऐसी भी प्रतीति होती है अर्थ यह है ओदन नाम चावल सिद्ध हुए नाम उत्पन्न होगये सूप नाम दाल होगया यवागू नाम यव का दलिया होगया है जब कार्य्य में भी सिद्ध शब्द प्रवृत्त होता है तो नित्य पर्य्याय का ग्रहण है और जो कार्य्य में वर्त्तमान सिद्ध शब्द है तिसका ग्रहण नहीं होता यह निश्चय कैसे हो। **उत्तर**। व्याख्यान से विशेष अर्थ की प्रतीति होती है संदेह से

शब्द अबोधक नहीं होसकता इससे यहां नित्यवाचक का ग्रहण है ऐसा व्याख्यान करेंगे। अब प्रसंग से एक और भी कुतर्क वादी की निवृत्त होगयी जो गुरु मत में वाह यान्ति जगत्कार्य्य मुत्पत्ति पालना संहार रूप मिति वाहा ब्रह्मादयस्तेषां गुरुरुपदेष्टा परमेश्वरो वाहगुरुः ऐसी व्युत्पत्ति करके वाहगुरु शब्द का अर्थ परमेश्वर माना है तिसमें गुरु मतानभिज्ञ वादी यह कुतर्क करता है वाहयान्ति भारमिति वाहा पश्चादयस्तेषां गुरुर्वाहगुरुः ऐसा अर्थ कर पश्चादिभारवाहकों के स्वामी का नामही वाहगुरु कैसे नहीं होसकता इसमें दयानंद से यह प्रष्टव्य है तुमने प्र० स० पृ० १४ सत्या। वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् सविष्णुः ऐसी व्युत्पत्ति कर विष्णु शब्द परमेश्वर का नाम माना है वहां वेवेष्टि सर्वेषु प्राणिषु सविष्णुः कामादि इस प्रकार काम क्रोधादिही विष्णु शब्द का अर्थ कैसे नहीं होता इसशंका का पूर्व उक्त ही उत्तर कहना होगा व्याख्यान तो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि सन्देहाद लक्षणम् यह परिभाषाही सर्व सन्देह का निवर्त्तक है ऐसे विष्णु शब्द से जैसे परमेश्वर का ग्रहण व्याख्यान से होगा तैसे वाहगुरु शब्द से भी परमेश्वर का ग्रहण होगा प्रकारान्तर की संभावना नहीं होसकती और वाहगुरु शब्द को परमेश्वर में पूर्व उक्त व्युत्पत्ति करके प्रवृत्त करने में पतंजलि सूत्र भी प्रमाण है। तथाहि।

सएषः पूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात्।यो।
पा०१।सू०२६।

पद। सः एषः पूर्वेषाम् अपि गुरुः कालेन अनवच्छेदात्।
अर्थ – जो पूर्व निरतिशय सर्वज्ञ परमेश्वर कहा है सो यह पर

मेश्वर पूर्व जो ब्रह्मादि हैं तिन सर्व का गुरु नाम उपदेष्टा है क्योंकि
काल करके अनवच्छेद होने से अर्थात् उत्पत्ति नाश रहित अना
दि सिद्धही परमेश्वर उत्पत्ति नाशवाले हिरण्यगर्भादि का गुरु स
र्व विद्या का उपदेष्टा है। इससे जगच्चक्र निर्वाहक हिरण्यगर्भा
दि वाहा तिन सर्व का उपदेशक होने से परमेश्वर वाहगुरु शब्द
का वाच्य है पतंजलि ऋषि संमत होने से इससे दयानन्द वा द
यानन्द के भक्तों की शंका दयानन्द कृत विष्णु आदि शब्द व्युत्प
त्ति को ग्रसती है तिनसें सर्वथा निस्तार पूर्व उक्त हमारे समाधान से
ही होगा व्याख्यान तो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि सन्देहाद लक्षणम्॥अ
व प्रकरण में यह वार्त्ता सिद्ध होगयी नमः शब्द के दो अर्थ अन्न
और वज्र तो निघण्टु प्रमाण से निर्णय होगये। **प्रश्न**। नमः शब्द
का जो नति नाम आयने में निकृष्टपना बोधन करना अर्थ है सो क
हां से निश्चय होता है। **उत्तर**। सो भी निघण्टु वा महाभाष्य सेनि
श्चय होता है। **तथाहि**। निघण्टु में अ०३। खं०५। नमस्यति प
रिचरणकर्मा लिखा है अर्थ यह है नमस्यति जो नाम धातु है सो
परिचरणकर्म नाम क्रिया है तिसमें एकतो नमस् शब्द है तिससें
क्य च् प्रत्यय होकर नमस्य नाम धातु है एक शब्द तथा प्रत्यय
दूसरा तिन दोनों को नामधातु कहते हैं सो यहां नमस् शब्द और
क्यच् प्रत्यय का परिशेष रहा यकार मिलकर नमस्य इतना नाम
धातु है तिनमें परिचरण नाम पूजन वा प्रणातितो नमस् इस नाम
का अर्थ है और कर्म नाम क्रिया प्रत्यय का अर्थ है इस स्थान में
जो नमस् पद का अर्थ परिचरण नहोता तो नमस् शब्द तथा
क्यच् प्रत्यय के समुदाय का मिलकर परिचरण कर्म इतना अर्थ

कैसे होता इससे नमस् शब्द का नति भी अर्थ निघण्टु से निश्चय होता है।

नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ।३।१।१९

नमसः क्यचि द्वितीयानुपपत्तिः ॥२॥ नमसः क्यचि द्वितीया नोपपद्यते । नमस्यति देवान् । किंकारणम् । नमः शब्दे नयोगे चतुर्थी विधीयते सा प्राप्नोति । प्रकृत्यन्तरत्वात्सिद्धम् । २। नमः शब्देन योगे चतुर्थी विधीयते नमस्यति शब्दश्चायम् ननु च नमस्यति शब्दे नमः शब्दोऽस्तितेन योगेप्राप्नोति नैषदोषः। अर्थवतो नमः शब्दस्य ग्रहणं नच नमस्यति शब्दे नमः शब्दोऽर्थवान् । अथवोप पद विभक्तेः कारक विभक्तिर्बलीयसीति द्वितीया भविष्यति । म० अ० ३ पा० १ अ २ सू० १९।

भावार्थ — नमस वरिवस् चित्रङ् इन शब्दों से क्रिया सामान्य अर्थ में क्यच् प्रत्यय हो तिस क्यच् में से ककार चकार की इत संज्ञा होकर लोप होजाता है यकार मात्र परिशेष रहता है। नमस्यति देवान् वरिवस्यति गुरून् चित्रीयते विस्मयत इत्यर्थः तिन उदाहरणों में इतनी विशेषता है भाष्य पठित नमसः पूजायाम् वरिवसः परिचर्य्यायाम् चित्रङ आश्चर्ये । इन वार्त्तिकों से नमः शब्द से पूजा में और वरिवस शब्द सें परिचर्य्या में और चित्रङ् शब्द से आश्चर्य्य अर्थ में प्रत्यय होता है। इसीवास्ते नमस्यति देवान् इस उदाहरण में देवों का पूजन करता है यह अर्थ होता है और वरिवस्यति गुरून् इसका अर्थ यह है गुरुवों की परिचर्य्या करता है और चित्रीयते इसका अर्थ यह है विस्मय ते नाम आ

श्चर्य्य होता है प्रश्न। नमस्यति देवान् इस प्रयोग में देवान् ऐसे द्वितीया विभक्ति कर्म्मणि द्वितीया।२।३।२। इस सूत्र से नहीं होनी चाहिये। क्योंकि।

नमः स्वस्तिस्वाहा स्वधाऽलं वषट् योगाच्च।२।३।१६

इस सूत्र करके नमः शब्द के साथ योग नाम संबंध से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त है तब नमस्यति देवेभ्यः। ऐसा शब्द प्रयोग होना चाहिये भाव भाष्यकार का यह है जहां दो सूत्र एक स्थान में प्राप्त होते हैं भिन्न २ कार्य्य विधायक वहां परसूत्र का कार्य्य होता है और यहां कर्मणि द्वितीया द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद का दूसरा सूत्र है और नमः इत्यादि सूत्र उसी अध्याय और उसी पाद में सोलहं का सूत्र है इससे पर है तब चतुर्थी विभक्ति होना चाहिये। सूत्रों का अर्थ यह है कर्म कारक में द्वितीया हो और नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलं वषट् इनके योग से चतुर्थी विभक्ति हो और यहां नमस्यति नाम धातु में नमः शब्द है इससे चतुर्थी की प्राप्ति है॥ उत्तर। नमः शब्द के योग में चतुर्थी बोधन करी है और इस स्थान में नमस्यति प्रकृति और है प्रश्न। नमस्यति शब्द में भी नमः शब्द प्रविष्ट है तिसके योग में चतुर्थी होना चाहिये। उत्तर॥ व्याकरण शास्त्र में जहां अनेक शब्द मिलकर एक शब्द होजाता है वहां दो पक्ष हैं जहत्स्वार्था वृत्ति और अजहत्स्वार्था वृत्ति जहां पद अपने २ अर्थको त्याग करके मिलकर किसी अपूर्व अर्थ का बोधन करें वहां जहत्स्वार्था वृत्ति कहते हैं जैसे इसि स्थान में नमस् अव्यय का नति अर्थ है जो कि अपने में किसी दूसरे आचार्य्य आदि सें नीचता बोधन करना और क्यच् पद का अर्थ भाष्यवार्त्ति

क तथा सूत्र से बोधित क्रिया है यहां इन दोनों ने अपने २अर्थ को त्यागकर नति पूर्बक पूजन क्रिया ऐसे एक अर्थ बोधन करा है और जहां एक २ पद का जो अर्थ है सोई विशिष्ट अर्थ है ऐसा माना जाता है वहां अजहत्स्वार्थावृत्ति होती है अब यहां प्रथम पक्ष को लेकर तो यह समाधान है नति अर्थ वाले नमःशब्द का ग्रहण है सूत्र में और यहां नमस्यति शब्द में नमः शब्द का जहत्स्वार्थावृत्ति को लेकर कुछ अर्थ है नहिं इससे चतुर्थी विभक्ति नहीं होती परिशेष सें द्वितीया होगी और जेकर अजहत्स्वार्थावृत्ति रूप द्वितीय पक्ष मानें तो द्वितीया का बाधकर चतुर्थी होनी चाहिये तिस पक्ष में प्रकारान्तर से भाष्यकार समाधान करते हैं उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति अत्यन्त बलवाली है इस परिभाषा रूप बचन से चतुर्थी का बाध कर द्वितीया होती हैजो किसी पद के संयोग निमित्त से विभक्ति होती है सो उपपद विभक्ति कही जाती है ऐसे चतुर्थी है नमः आदि पद संयोग से विधान करी हुई इतने प्रबंध से यह निर्णय होगया जो निघण्टु तथा भाष्य प्रमाण से नमः पद के तीन अर्थ हैं और पद हैं दो एकतो णम् धातु से असुन् प्रत्यय होकर बना है तिसके व्युत्पत्ति भेद से दो अर्थ हैं अन्न तथा बज्र और अव्यय जो प्रथमाध्याय के प्रथम पाद में गणपाठ में पाणिनि ऋषि ने पढ़ा है सो स्वतः सिद्ध प्रातिपदोक्त है अर्थात् किसी धातु वा प्रत्यय से बना नहीं अब यह विचार और कर्त्तव्य है जो चतुर्थी विभक्ति विधायक सूत्र में कौनसे नमः शब्द का ग्रहण हैं अन्न और वज्र का बाचक जो नमः शब्द है तिसका ग्रहण है वा अव्यय जो नति अर्थ

का बाचक है तिसका ग्रहण है तिसमें निर्णय तो यह है अव्ययका ग्रहण है नति अर्थ के बोधक का,, और जो अन्न वा वज्र का वाच है तिसका ग्रहण नहीं। प्रश्न। नमः शब्दमात्र का सूत्र में उच्चारण करा है कुछ किसी प्रकार की विशेषता तो प्रतीत होती नहीं एक का ग्रहण करना और एक का नकरना इसमें क्या प्रमाण है। उत्तर प्रथमाध्याय के प्रथमपाद के पंचदशमे सूत्र — महाभाष्य के पंच मान्हिक में

लक्षणप्रति प्रदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणं

इस परिभाषा से स्वतः सिद्ध अव्यय का ग्रहण है परिभाषा का भावर्थ यह है दो प्रकार के शब्द होते हैं एक तो लक्षण नाम सूत्र कार के प्रकृति प्रत्यय समुदाय से जो बना है सोतो लक्षण नाम से कहा जाता है और जो प्रकृति प्रत्यय समुदाय से बिना गणपाठ में पठित है सो प्रतिपदोक्त नाम से कहा जाता है और जिस सूत्र में दोनों प्रकार का शब्द स्वरूप ग्रहण करा है वहां प्रतिपदोक्त का ग्रहण होता है इससे इस भाष्य प्रमाण से अव्यय जो नमस् पद स्वरादि गण में पठित है तिसका ग्रहण है दूसरे का नहीं इससे यह निश्चय होता है जहां २ चतुर्थी विभक्ति नमः शब्द के संयोग से देखी जाती है वहां नमः शब्द नति अर्थवाला अव्यय है। उदाहरण।

नमस्ते रुद्रमन्यवे उतोत इषवे नमः॥ यजु०। सं अ० १६। मं० १।

इत्यादि समग्र अध्याय है क्योंकि यहां सर्वत्र चतुर्थी विभक्ति ते मन्यवे। इषवे इत्यादि देखी जाती है। इसवास्ते इस स्थान में नति अर्थ का बोधक है नमः शब्द,, अन्न वा वज्र का बोधक नहीं

इससे इस अध्याय में सभासद वा सभापति वा सेनापति का निरूप
ण करना अनभिज्ञता का सूचक है।

अथ वादी का मतान्तर प्रवेश तथा निरुक्त मंत्र प्रमाण करके देवता प्रभाव तथा निरूपि तार्थानुवाद और ऋग्वेद मंत्रादि क रके शंकरमत को वैदिकत्व नि रूपण पूर्वक वादिमत को अवैदिकत्व निरूपण करते हैं।८।

प्रश्न। क्या दयानन्द ऐसा अव्युत्पन्न तो नथा जो नमः शब्द के वि
वेचन को भी नजानता क्योंकि दयानन्द ने तो व्यवहार में भी पर
स्पर बड़े छोटे में नमस्ते शब्द प्रयोग कराया है और नमस्ते शब्द
का अर्थ तो महाभाष्यकार पतंजलिजी के मत से यह होता है जो मैं
तेरे से निकृष्ट नाम नीचा हूं तो क्या दयानन्द के अनुयायी संपूर्ण
अपने मुख से नीच बनते हैं क्योंकि अन्न आदि अर्थ तो नमस्तेश
ब्द में हो नहीं सकता क्योंकि चतुर्थी विभक्ति नमः शब्द के नति
अर्थ का बोधक देखी जाती है उत्तर। है तो वार्त्ता अवचनीय
परन्तु प्रश्न का उत्तर तो लिखना चाहिये दयानन्द जब किसीकेजा
ल में फँसगया तब उसने कहा जो तुम हमारे मत का प्रचार करो
तब दयानन्द ने कहा जो मैं स्पष्ट होकर तुमारे मत का प्रचार क
रूंगा तो संपूर्ण लोक एकसंग चोंककर मेरे उपदेश में से प्रच्युत
हो जायँगे धीरे २ होगा तब उसने कहा तो हम कैसे जानेगे।
जो हमारा मत तू प्रचार करेगा तो दयानन्द ने उस मतान्तरवाले

पुरुष से पूछा जो तुम अपना आशय कहो तुमारे मत में जैसे प्रविष्ट होजायँ तो उस मतान्तर वर्त्ति पुरुष ने कहा जो हम यह चाहते हां जो इनका तीर्थ देवता श्राद्ध तर्पण आदि से चित्त उत्थान होजाय तब दयानन्द ने कहा जो तीर्थ आदि से उत्थान करदूंगा क्योंकि जब अपने मुख से ही नीचता का अनुसंधान करेंगे तो कहां तक नहीं छोडेंगे इसवास्ते सर्व छोटे बडे यवनादि तक नमस्ते प्रयोग कराया यह वार्ता मैंने अनुमान से उहा करी है क्योंकि दयानन्द के मुख से मैंने सुना है जो यह कहता था गंगातीरं नत्यजामि और शिवः कैलाशे तिष्ठति और नमस्ते भी उस समय में नथा पीछे पांच शरीर का पास रेल की सवारी वास्ते होगया सोभी मैंने देखा और वेद पुस्तक देखकर भी देवताओं का निषेध करा क्योंकि वेद में तो अनन्त मंत्रो में देवता प्रतीत होते हैं सो पूर्व दिखलाय दिये और एक मंत्र और भी दिखलाता हूं जिससें देवता स्पष्ट प्रतीत हो।

यद्यद्रूपंकामयते तत्तद्देवताभवाति। रूपंरूपंमघवाबोभवीतीत्यपि निगमोभवाति॥ निरुक्त। अ १०। पा० २। खं० ४। अथ निरुक्त भाष्यं। यद्यद्रूपं कामयते तत्तद्देवताभवति। अस्त्येतदैश्वर्य्यं देवतायाः यद्यदिच्छति रूपं तत्तत् करोति निगमोऽपिहि भवत्यैश्वर्य्यं प्रख्यापकः रूपंरूपं मघवावो भवीतिमायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम्। त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्त्तमागात् स्वैर्मंत्रैरनृतु पाऋतावा॥ ऋ०। सं०। मण्ड ३। अ० ४।

सू०५३। मं०८।

इति विश्वामित्रस्यार्षम् । यावन्तिकानि चिद्रूपाणि मघवा इन्द्रो भवितु मिच्छति तानि सर्वाण्य प्रतिबन्धेन वो भवीति पुनः पुनर्भवतीति । कथम् । मायाः कुरवानः । इदम्भवामी दम्भवामीत्त्येवम् । तन्वंपरिरवां तनुं तत्तदाकृत्या नेक विधां विकुर्वाणः त्रिर्यद्दिवः परिमुहूर्त्तमागात दिवः परि दिवः अधि द्युलोकात् मुहूर्त्तं मुहूर्त्तकालं प्रतियत् यः त्रिः) आगात् आगच्छति स्वैर्मंत्रैः हूयमानो वा स्तूयमानो वा युगपद्यजमानानां यज्ञेषु अनृतुपाः अनियत सोमपान कालः सर्वदा यागोत्पत्तेः ऋतावा ऋतवान् यज्ञवान् येनासावे व मात्मानं विक रोत्येवं च दिवो मुहूर्त्तं त्रिरागच्छति । तेनासावचिन्त्य प्रभावत्त्वाच्छक्नोति तत्तद्रूपमावेष्टुम्

भावार्थ — निरुक्त तथा तिसके भाष्यकार कहते हैं देवता जिस२ रूप के धारण करने की इच्छा करता है सो२ होता है। और इसमें।

ऋ०। मं ३। अ४। सू५३। मं८।

मंत्र भी प्रमाण है इन्द्र देवता जिस२ रूप की कामना करता है तिस तिस रूप को प्रतिवन्ध रहित धारण करता है और पुनः२ रूप को प्रादुर्भाव करता है। क्योंकि माया नाम अपने संकल्प को करता हुआ अपने तनु नाम शरीराकृति को अनेक प्रकार से प्रगट करता है और देरवना चाहिये तिस इन्द्र देवता का प्रभाव जो कि एक मुहूर्त्त काल परिमाण में तीन वार स्वर्ग से अपने मंत्रों करके हूयमान तथा स्तूयमान हुआ आता है और यजमानों के यज्ञों में सर्वदा काल नियम बिनाही सोमपान करता है ऋतावा नाम ऋतवान

अर्थात् यज्ञवान है जब ऐसे अचिन्त्य प्रभावयुक्त है इससे तिस २ रूप के धारण करने में समर्थ है इस स्थान में यह वार्त्ता निश्चय होगयी जोकि मंत्रों करके स्तूयमान देवता अपने भक्तजन के समीप पूजा के आधार यज्ञकुण्ड वा मृण्मयादि मूर्त्ति में अवश्य आते हैं ॥ इसीवास्ते महाभाष्यकार पतंजलि ऋषिने पूजा का वाचक नमस्यति देवान् ऐसा कहकर द्वितीयादि विभक्ति होनेवास्ते विचारकरा है। क्योंकि भाष्यकार जानते हैं जो मंत्रों से आवाहन करके देवपूजा होती है इससे नमस्यति देवान् यह शब्द प्रयोग करते हैं। यहां यह प्रकरण पूर्व था जो परमात्मा के अंश ब्रह्मादि हैं उसमें रुद्र विभूति निर्णय में दयानन्द की शंका निरास वास्ते नमः शब्द का विचार प्रसंग प्राप्त होगया ॥ और जगत् की पूर्व अवस्था परमेश्वर के आधीन है यह निर्णय करा। यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा की उपनिषद् से और परमेश्वर के आश्रित विचित्र शक्ति तमः शब्द प्रतिपाद्य जगत् रचना कराने में हेतुरूप का भी स्वतंत्र जड़ प्रकृति कारण वाद के निरास वास्ते निर्णय करा क्योंकि परमेश्वर में अंश अंशीभाव का निर्वाहक विचित्र शक्ति ही है और वास्तव तो अद्वैत है अर्थात् जीव परमात्मा का अभेद है और औपाधिक द्वैत है व्यावहारिक कर्म उपासना में उपयोगी यह भी निर्णय होगया श्रुतिसूत्र से, अब इसी अर्थ को फिर मंत्रों से निर्णय करते हैं।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजोनो व्योमा परोयत्। किमावरीवः कुहकस्यशर्मन्नंभः किमासीद्गहनंगभीरं ॥ ऋ०। मण्ड।१०। अ ११। सू

।१२९।मं०१।

पद। न असत् आसीत् नो सत् आसीत् तदानीं न आसीत्। रजः नो व्योम अपरः यत् किम् आवरीवः कुह कस्य शर्म्मन् अभः किम् आसीत् गहनम् गभीरम्

भाष्य। यदा पूर्व सृष्टिः प्रलीना उत्तर सृष्टिश्च नोत्पन्ना तदानीं सदसती द्वे ऽपि नाभूतां। नाम रूप विशिष्टत्वेन स्पष्ट प्रतीय मानं जगत् सत् शब्दे नोच्यते नर विषाणादि समानं शून्यम् असत् इत्युच्यते तदुभयं नासीत् किन्तु काचिद् व्यक्तावस्था सीत् साच विस्पष्ट त्वा भावान्न सती जगदुत्पादक त्वेन सद्भावात् नाप्य सती। नो सदासीत् इति यत् संग्रहेणोक्तं तदेव प्रपञ्च्यते नासीद्रजः रजः शब्देन सत्व रजस्तमो गुणत्रय मुपलक्ष्यते तदपि नासीत् यथोक्त गुणत्रय पञ्चभूतापेक्षया अपरः पदार्थः अन्यो गिरि नदि समुद्रादिकः यत् यः दृश्यते सो ऽपि नासीत् यथा भूतानि नासन् तद्वद्भौतिक मपिनासीदि त्यर्थः। अनेन भूत भौतिक गुणत्रय निषेधेन ब्रह्माण्डस्य निषेधः सम्पन्नः। अण्डाद्बाहिर्महत्तत्वाद्या वरणानि पौराणिका वदन्ति तदे तदावरण जात माक्षेप वाचिना किं शब्द त्रयेण निषिध्यते। आवरणस्य दृष्टि विषय भूतं किञ्चिदा व्रियमाणम पेक्षितं। तत्र। अण्डाभावात् किमावरीवः किन्नाम वस्तुतै रा वरणै रा व्रियेत्। अतः सावरण कस्या सम्भवा दावरण मपि न सम्भवतीत्यर्थः कुहेति देशाक्षेपः कस्य शर्मन् इति निमित्ताक्षेपः कुत्रदेशे कस्य भोक्तुः सुख निमित्तं इदमा वरणंस्यात्।

नत्वास्ति तदा कश्चिद्द्देशः नापि सुखस्य भोक्ता कश्चिद्वि
द्यते। अत्र कश्चिन्मन्दो ऽवान्तर प्रलये विषयाम् आपो
वा इदमग्रे सलिल मासीदिति श्रुतिं श्रुत्वा महा प्रलये ऽ
पि तथाविधं जलमस्तीति भ्राम्यति तद्भ्रम व्युदासाय जलं
निषिध्यते। गहनं प्रवेष्टु मशक्यं गभीरं अगाधत्वेनावस्था
तु मप्यशक्यं यत् अम्भः तत् किमासीत् तदपि नासी दि
त्यर्थः

भावार्थ — महा प्रलय काल में जब पूर्व सृष्टि लीन होगयी
और उत्तर सृष्टि उत्पन्न हुई नहीं तब सत् और असत् दोनों वस्तु
नहोते भये नामरूप विशिष्ट जगत् सत् है क्योंकि स्पष्ट प्रतीतहो
ने से और नर श्टंगादि तुल्य श्टून्य को असत् कहते हैं सो दोनों
वस्तु नहोते भये किन्तु कोइ अव्यक्त अवस्था होती भयी सो अव्यक्त अ
वस्था स्पष्ट व्यवहार का अकारण होने से सत नहीं और प्रपंच
कारण होने से असत् भी नहीं अब जो नो सदासीत इसवाक्य
से संक्षेप से अर्थ कहा है तिसको विस्तार करते हैं। नासीद्रज
इत्यादि मंत्रभाग से रजः शब्द से रजोगुण तमोगुण सत्वगुण इन
गुणत्रय को बोधन करते हैं। अर्थ यह तीनों गुण भी नहोते भये
और नो व्योम इस कहने से पंचभूत का निषेध जानना क्योंकि
व्योम शब्द आकाशादि पंचभूत का उपलक्षण है और प्रपर अ
पंचभूत तीन गुण की अपेक्षा से भिन्न पदार्थ गिरि नदि समुद्रादि
रूप हैं ते भी नहोते भये अर्थात् जैसे भूत नहोते भये तैसे भूतका
र्य्य भी नहोते भये इससें भूत तथा तिनके कार्य्य के निषेध से ब्र
ह्माण्ड का भी निषेध सिद्ध होगया और ब्रह्माण्ड से वहिर्भूत म

तत्वादिको का आवरण पौराणिक मानते हैं। तिन आवरणों का निषेध आक्षेपवाचक किम् शब्दत्रय करके कहते हैं। किमावरीवः कुह कस्य शर्म्मन् अर्थ यह है कुह नाम किस देश में कस्य नाम किस भोक्ता के शर्म्मन् नाम सुखवास्ते किम् नाम किस वस्तु को आवरीवः नाम आवरण करें भाव यह है देश तथा भोक्ता और भोगरूप निमित्त हो तो ब्रह्माण्ड के आवरण करने वाले महत्तत्वादि आवरण करें और जब देश वा भोक्ता और तिसका भोगरूप निमित्तही नहीं तो आवरण किसका किसवास्ते किस देश में करेंगे इससे आवरण करनेयोग्य वस्तु सहित प्रपंच का अभाव होने से आवरण भी नहीं है इस स्थान में कोई मन्दमति यह कहता है महाप्रलय में जलही केवल रहता है क्योंकि आपो वा इ दमग्रे सलिल मासीत् इस श्रुति प्रमाण से श्रुति का अर्थ यह है यहजो सम्पूर्ण दृश्यमान वस्तु हैं सो पूर्वकाल में सलिल नाम जलही होता भया ऐसे तिसके भ्रम दूर करने वास्ते जल का निषेध करते हैं। अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्। अर्थ यह है गहनं नाम प्रवेश करने को अयोग्य —— और गभीर नाम अगाध जो अम्भः नामजल है सोभी नहोता भया और जो श्रुति प्रलयकाल में जल का होना बोधन करती है सोअवान्तर प्रलय का बोधक है और यह मंत्र महा प्रलयकाल का बोधक है इस स्थान में यह भी समझना जो दयानन्द स्वीकृत प्रकृति जीव ईश्वर अनादि पक्ष भी असंगत है क्योंकि गुणत्रय के निषेध से त्रिगुण प्रकृति ईश्वर भिन्न स्वतंत्र अनादि पक्ष का निषेध करा मंत्र से। और जो भोक्तारूप जीव है उपाधि विशिष्टरूप तिसका भी कार्य्य उपाधि के निषेध सो निषेध

है और चेतनमात्र जीव स्वरूपतो ब्रह्मरूप होने से अनादि है औ
र जो कहीं प्रकृति को अनादि कहा है सो भी भिन्न प्रकृति को अ
नादि नहीं कहा किन्तु ब्रह्म आश्रित ब्रह्म में तादात्म्य सम्बन्ध से व
र्तमान प्रकृति को अनादित्व कहा है

मंत्र ॥ नमृत्युरासीदमृतं नतर्हि न रात्र्या अह्न आ
सीत्प्रकेतः। आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्य
न्नपरः किंचनास ॥ ऋ० मण्ड १०। अ० ११। सू
क्त १२९। मं० २।

पद। न मृत्युः आसीत् अमृतम् न तर्हि न रात्र्याः अह्नः
आसीत् प्रकेतः आनीत् अवातम् स्वधया तत् एकम् तस्मा
त् ह अन्यत् न परः किंचन आस।

भावार्थ ~ (तर्हि न मृत्युरासीत् न अमृतं आसीत रात्र्याः प्रकेतः
न आसीत् अह्नः प्रकेतः न आसीत् तदेकं स्वधया सहितं अवातं
आनीत्) प्रलय काल में प्राणियों का मारक जो मृत्यु है सो भी
नहोता भया क्योंकि प्राणियों के अभाव होने से तथा अमृत जो प्रा
णि जीवन है सोभी नहोता भया। रात्रिओं का प्रकेतरूप नाम चि
न्ह रूप जो चन्द्र है सो भी नहोता भया तथा अह्न नाम दिन का
चिन्ह जो सूर्य्य है सो भी नहोता भया तत् एकं ब्रह्म सो एक ब्र
ह्म ही स्वधा नाम अपनी शक्ति सहित वायु वर्जित आनीत् नाम हो
ता भया तिससे पृथक् वस्तु कोई भी नहोती भई। इस स्थान में आ
नीत् कहने से चेष्टा की प्रसक्ती भयी तब अवातं यह विशेषण क
हा तो चेष्टा रहित केवल सद्भावमात्र को बोधन करा और स्वधाना
म निघण्टु के प्रथम अध्याय के बारवें खण्ड में उदक का है परंतु

इस प्रकरण में उदक का तो पूर्व निषेध करा है इससे स्वधानाम परमेश्वर की शक्ति का है। स्वमात्मानं परमेश्वरे तादात्म्येन धारयतीति स्वधा ऐसी व्युत्पत्ति से शक्तिही विवक्षित है।

मंत्र॥ तमआसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदं। तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्तमसस्तन्महिनाजायतैकम्॥ ऋ०। मण्ड १०। अ०११ सू०१२९। मं०३।

पद। तमः आसीत् तमसा गूढम् अग्रे अप्रकेतं सलिलम्। सर्वम् आ इदम् तुच्छेन आभू अपिहितम् यत् आसीत् तमसः तत् महिना अजायत एकम्

भावार्थ– इस मंत्र में तमःशब्द से अविद्या माया शक्ति आदि शब्द प्रतिपाद्य जगद्विकार का उपादान रूप मूल प्रकृति का ग्रहण है सो तम ही होता भया यथा अन्धार घटोनास्ति घटोनभाति ऐसे व्यवहार का हेतु होता है तथा यह मूलाज्ञान ब्रह्म के होतेही तथा भान होते भी ब्रह्मनास्ति ब्रह्मनभाति ऐसे व्यवहार का हेतु होता है इससे तमः शब्द से कहा जाता है। **शंका**। जेकर तमही होता भया तो जगत् का सूक्ष्मरूप से सद्भाव नहुआ तो असत्कार्यवाद की प्रसक्ती होगयी इस शंका के समाधान वास्ते कहते हैं। (इदं सर्वं तमसा गूढम् अप्रकेतम् अग्रे आसीत् सलिलम् आ) ऐसा अन्वय है अर्थ यह है सर्व जगत् अप्रकेत पृथकता से जानने को अशक्य तम करके गूढ नाम आच्छादित होता भया जैसे मृत्पिण्ड करके घट आच्छादित होता है तैसे तमः शब्द वाच्य मूल प्रकृति करके सर्व जगत् पूर्वकाल में आच्छादित होता भया

सलिलम् आयह दृष्टान्त है आ शब्द का इव अर्थ है तब यह अर्थ भया जैसे वर्षाकाल में जो ओले वर्षे थे वे लीन होकर जलमात्र रूप सें स्थित होते हैं तैसे यह जगत् भी महाप्रलयकाल में मूल प्रकृति रूप से स्थित होता है मूल प्रकृति ब्रह्म का तादात्म्य सिद्ध है (यत् आभू तुच्छेन अपिहित मासीत् तत् तमसो महिना अजायत) यह अन्वय है। आ समन्तात भवतीति आभू जगत् यत् आभू नाम जगत् तुच्छ नाम मूलाज्ञान करके अपिहित नाम आच्छादित होता भया तत् जगत् तमसः नाम मूलाज्ञान सें महिना नाम महत्त्व अभिव्यक्त रूप करके अजायत नाम उत्पन्न होता भया एकं नाम नामरूप विभाग और नाम रूप बिभाग काल रहित में दो प्रकार की प्रपंच अवस्था में सर्वाधिष्ठान ब्रह्मतत्त्व एक है अथवा द्विविध अवस्था सहित जगत् एकं नाम ब्रह्मैव न ततोऽन्यत् अर्थात् अनभिव्यक्त अवस्था तथा अभिव्यक्त अवस्था में ब्रह्मसत्ता अतिरिक्त सत्ता शून्य है प्रपंच ॥ यहही प्रपंच में मिथ्यात्व है कुछ व्यवहारसाधकत्त्व रूप मिथ्यात्व नहीं जैसे घट आदि वस्तु को मृतिका सत्ता अतिरिक्त सत्ता शून्यत्व रूपही मिथ्यात्व है व्यवहार का असाधकत्व रूप मिथ्यात्व नहीं।

मंत्र ॥ कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्। सतोवन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्याकवयो मनीषा ॥ ऋ० । मण्ड । १० । अ० ११ सू० १२९ । मं० ४ ।

पद। कामः तत् अग्रे समवर्त्तत अधि मनसः रेतः प्रथमम्। यत् आसीत् सतः वन्धुम् असति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्य

कवयः मनीषा।
भावार्थ — इस मंत्र में जगत् उत्पत्ति क्रम तथा मूल प्रकृति में जगत स्थिति प्रकार को निरूपण करते हैं प्रजापति जो इस मंत्र तथा पूर्वमंत्र के ऋषि हैं　(मनसोयत् प्रथमं रेत आसीत तत् अग्ने कामो अधि समवर्त्तत) यह अन्वय है।
अर्थ मूलप्रकृति से जो जगत सर्जन इच्छा ईक्षण संकल्पादि का आश्रय प्रथम मन उत्पन्न भया है तिस मन का जो प्रथम रेता नाम् कार्य्य होता भया सो पूर्वकाल में कामरूप होकर अधि नाम अधिकता करके समवर्त्तत नाम होता भया इतने मंत्रभाग से यह कहा जो प्रथम ईक्षण संकल्प विशिष्ट मन होता भया पश्चात् उस मन में काम इच्छा उत्पन्न होती भयी॥ जैसे इस मंत्र में प्रथम कार्य्य मन कहा है तैसे यजुर्वेद की काण्व शाखा की बृहदारण्यक उपनिषद् में भी कहा है। तथाहि।

नैवेहकिञ्चनाग्र आसीन्मृत्यु नैवेदमावृत मासीत। अशनायया शनायाहि मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वीस्यामिति। बृह० उप०। अ० ३। ब्रा० २

पद। नएव इह किञ्चन अग्ने आसीत् मृत्युना एव इदम् आवृतम् आसीत अशनायया अशनाया हि मृत्युः तत् मनः अकुरुत आत्मन्वी स्याम् इति।
भावार्थ — पूर्वकाल में जो कुछ इस संसार में प्रतीयमान नामरूप विशिष्ट आकाशादि प्रपंच है सो नहोता भया यह सर्व प्रपंच मृत्यु नाम मंत्र उक्त तमः शब्द प्रतिपाद्य मूल प्रकृति करके आवृत होता भया अशनाया नाम भी उसी मृत्यु का है क्योंकि अशनाया

नाम भक्षण की इच्छा का है साइच्छा बुद्ध्यात्मक इस मंत्र में मनो नाम से कहे हिरण्यगर्भ का धर्म है उस कार्य्य के धर्मवाचक पद से मूलप्रकृति का ग्रहण है सा मूलप्रकृति रूप मृत्यु आत्मन्वी अहं स्याम् ऐसे संकल्प करके मन को उत्पन्न करती भयी आत्मन्वी नाम आत्मवाली। अर्थात् अपना कार्य्यरूप जो आत्मा पुत्रस्थानापन्न तिसवाली हों ऐसा संकल्प करके मन को पैदा करा पश्चात् मन को प्रथम कामना होती भयी जो।

सोऽकामयत बहुस्यांप्रजायेयेति।

इस तैतरीय श्रुति में प्रसिद्ध है।

भावार्थ— सो मनोभावापन्न मूल प्रकृति कामना करती भयी मैं बहुरूप होकर प्रजा रूप से अपने स्वरूप को वैसेही स्थित कर प्रतीत हों अब मंत्र के उत्तरार्द्ध में परमात्मा में जगत् स्थितिप्रकार कहते हैं (कवयो मनीषा हृदि प्रतीष्य असति सतो बन्धुम् निरविन्दन्) यह अन्वय है अर्थ जो कि मेधावी पुरुष हैं वे अपने हृदि हृदय कमल में प्रतीष्य नाम विचार करके असति नाम पूर्व उक्त अनभिव्यक्त नाम रूपमूल प्रकृति में सतः नाम सत्त्वरूप करके प्रतीयमान जगत् का बन्धुम् नाम बन्धन हेतु पूर्व उक्त काम को निरविन्दन् नाम निश्चय करते भये। भाव यह है वेदान्त पारगामी पुरुषों ने बहुतसा विचार करा जो इस जगत का परमात्मा में बन्धन हेतु कौन है ऐसा विचार कर केवल काम ही बन्धन हेतु विचार करा सो देखना चाहिये स्वप्न में यावत् प्रपंच प्रतीयमान है सो संपूर्ण कामना रूप चित्त वृत्ति करके संबद्ध होकर सुख दुःख का हेतु अनुभव सिद्ध है तथा मनो राज्य व्यवहार दशा जाग्रत में भी

यावत् प्रपंच सुख दुःख हेतु प्रतीत होता है सो भी चित्तवृत्ति रूप कामना से संबद्ध है इससे यह ही वेद सिद्धान्त है इससे अन्यथा परमाणु प्रधान स्वतंत्र प्रकृति में जगत् स्थिति कल्पना वेद बाह्य है इस मंत्र में कामना को ही जगतहेतु कहा इससे यह सिद्धान्त है जो परमात्मा की संकल्पादि रूप लीलाही सृष्टि है। इसी अर्थ को व्यास मुनि अपने सूत्रों में कहते हैं। तथाहि॥

सूत्र॥ नप्रयोजनवत्त्वात्। शा०। अ०२। पा०१। सू०३२।

अर्थ — शंका सूत्र का। प्रश्न। ईश्वर की सृष्टि रचना में प्रयोजन से प्रवृत्ति कहना चाहिये क्योंकि चेतन प्रवृत्ति को प्रयोजन वत्व होने से और जेकर प्रयोजन कहोगे तो परमेश्वर को आप्त कामता का बाध होगा इससे परमेश्वर में सृष्टि कहना असंगत है इस शंका के समाधान का सूत्र।

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥ शा०। अ०२। पा०१। सू०३३।

अर्थ — तु शब्द से पूर्वपक्ष का निषेध करते हैं सृष्टि में प्रवृत्त होना परमेश्वर की केवल लीला है और अपने में कोई प्रयोजन नहीं लोकवत् यथा लोक में कोई राजा पूर्ण कामही क्रीड़ा में प्रवृत्त होता है अथवा जैसे प्राणापानादि बाह्य प्रयोजन को न अनुसंधान कर प्रवृत्त होते हैं वैसे परमेश्वर की लीलाही सृष्टि है। राजादि के क्रीड़ा में प्रवृत्ति से किञ्चित प्रयोजन होतो हो परन्तु परमेश्वर का किञ्चित भी प्रयोजन नहीं क्योंकि आप्त काम होने से और अप्रवृत्ति भी नहीं होसकती वेद प्रतिपाद्य होने से परमेश्वर

प्रवृत्ति को,,। इस स्थान में यह वार्त्ता विचारने योग्य है (सत्यार्थ प्र० स०११ पृ०२९० में देखो) दयानन्द का जीव ब्रह्म की एकता जगत् मिथ्यात्व में प्रलाप है। जेकर यह शंकराचार्य्य का मत अपना है तो इच्छा नहीं और जैनमत खण्डन वास्ते स्वीकृत है तो कुछ इच्छा है। इस वार्त्ता के कहने से यह दयानन्द ने बोधन करा जो जगत मिथ्यात्व जीव ब्रह्म की एकता सृष्टि को माया मयत्व शंकराचार्य्य ने जैनमत निराकरण वास्ते ग्रहण करे हैं वेद सिद्धान्त नहीं किन्तु पर मत निराकरण वास्ते मिथ्याही शंकराचार्य्य का प्रलाप है तो दयानन्द से यह प्रष्टव्य है जो शंकराचार्य्य के गुरु गोविन्दाचार्य्य और गोविन्दाचार्य्य के गुरु गौडपादाचार्य्य की माण्डूक्य कारिकाओं में किस मत के निराकरण वास्ते अद्वैत मत का प्रतिपादन करा है और व्यास भगवान ने अपने सूत्रों में परमेश्वर की लीला सृष्टि कही है और पूर्व उक्त तृतीय मंत्र में द्विविध अवस्था विशिष्ट प्रपंच का ब्रह्म से अभेद कहकर मिथ्यात्व बोधन करा परन्तु सो मिथ्यात्व व्यवहार का विरोधी नहीं और दयानन्द को तो जैसा मिथ्यात्व अद्वैत में विवक्षित है तिसका बोध ही नहीं तो खण्डन करना केवल अज्ञान है। अब सृष्टि को मायिकत्व मंत्रों से निरूपण करते हैं। तथाहि।

मंत्र। तिरश्चीनो विततोरश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरिस्विदासी ३त्। रेतोधाआसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयातिः परस्तात्। ऋ०। मण्ड १०। अ०११। सू०१२९। मं०५।

पद। तिरश्चीनः विततः रश्मिः एषाम् अधः स्वित् आसीत्

उपरिस्वित् आसीत् रेतोधाः आसन् महिमानः आसन् स्वधाः अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् यएषां रश्मिः तिरश्चीनो विततोऽस्तिस अधः स्वित् आसीत् उपरिस्वित् वा आसीत् इत्यध्याहृत पदान्वयः।

अर्थ — जो इन भूत भौतिक पदार्थों के मध्य में रश्मिवत् स्वयम् प्रकाश चैतन्य है तिरश्चीन नाम तिर्यग् वर्त्तमान और वितत नाम व्याप्त है स अधः नाम नीचे वर्त्तमान है वा उपरि नाम ऊपर वर्त्तमान है स्वित् शब्द द्वय विकाल्पित जो पक्षद्वय हैं तिसके सूचन वास्ते हैं आसीत् शब्द में जो सी ३ ऐसे त्रिमात्र प्लुत का उच्चारण करा है सो विचारण वास्ते है अर्थात् ऐसा विचार करना चाहिये। भाव यह है स्वयंप्रकाश चैतन्य पदार्थ सर्व पदार्थों में प्रतीयमान तिर्य्यग् भूतवस्तुमात्र में दीर्घ तन्तुवत् व्याप्त होकर भासमान है तिर्य्यग नाम से अल्पवस्तु जानना जैसे अल्प२ और कुटिल तंतु में दीर्घ जो सूधी तन्तु हैं वे व्याप्त हैं तैसे स्वयं प्रकाश चैतन्य वस्तु यावत् अल्प पदार्थों में व्याप्त है सो चैतन्य ज्योति नीचे पदार्थों में देखा हुआ नीचे प्रतीत होता है और ऊपर पदार्थों में देखा हुआ ऊपर प्रतीत होता है इससे एक स्थान में स्थित है ऐसा निश्चय नहीं होसकता जैसे घटादि कार्य्य में मृत्तिका सर्बत्र ही प्रतीत होती है तैसे सर्वबस्तु का उपादान भूत चैतन्य ज्योति सर्बत्र वर्त्तमान है एक स्थान में कहना असंभव है क्योंकि व्यापक होने से उत्तरार्द्ध मंत्र का यह अर्थ है यह सम्पूर्ण भूत भौतिक वस्तु केवल रेतोधा नाम परमात्मा के सार रूप को धारण करनेवाली है अर्थात् सर्वाधिष्ठान परमात्मा के

सच्चिदानन्द रूप सहित वर्त्तमान हैं। वे सम्पूर्ण परमात्मा के सत् चित् आनन्द रूप को धारण करकेही महिमानः आसन् अर्थात् महान होकर स्थित हैं स्वधा नाम परमेश्वर की शक्ति अवस्तात् नाम अधमकारण है प्रयति नाम परमात्मा का है सा शक्तिः प्रयतते यस्मिन् परमात्मनि तादात्म्येन वर्त्तमाना स परमेश्वरः प्रयतिः परस्तात् नाम उत्तमं कारणम्। अर्थ जिस परमेश्वर में अभेद संबंध करके वर्त्तमान माया शक्ति प्रयत्न करे सो प्रयति है मायाधिष्ठान चैतन्य सो उत्तम कारण है इन दोनों को ही प्रकृतिपुरुष नाम से कहते हैं परन्तु यह प्रकृति सांख्यादि प्रकृति की तरहँ स्वतंत्र जड़ नहीं किन्तु चेतनाधिष्ठित होने से चेतन रूपहै इसीको कहीं शबल नाम से बोला जाता है इसीका विवर्त्त सर्व जगत् है इससे स्वतंत्र प्रकृति जड़रूप को उपादानता कथन दयानन्द का मंत्रार्थानभिज्ञता का बोधक है

मंत्र॥ कोअद्धावेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता
कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जने
नाया वेद यत आ बभूव। ऋ०। मण्ड०१०। अ
११। सू०१२९। मं०६।

पद। कः अद्धा वेद कः इह प्रवोचत् कुतः आजाता कुतः इयं विसृष्टिः अर्वाक् देवाः अस्य विसर्जनेन अथा वेदयत आबभूव॥ कुतो निमित्तादयं विसृष्टिः कुतः उपादान कारणात् आजाता तं को अद्धा वेद अविदित्वा इह कः प्रवोचत इत्यध्याहृत पदान्वयः।

अर्थ — किस निमित्त कारण से यह नाना प्रकार की सृष्टि

उत्पन्न हुई तथा किस उपादान कारण से उत्पन्न हुई तिस निमित्त वा उपादान को कौन साक्षात जाने और न जानकर कैसे कहे। प्रश्न। देवता सर्वज्ञत्त्वादि गुण विशिष्ट हैं इस वास्ते जगत निमित्त उपादान को जानेंगे और जानकर कथन भी करेंगे जगत् उपादान निमित्त का अज्ञान कैसे। उत्तर। अस्य जगतो विसर्जनेन विसर्जनात् अर्वाक् अर्वाचीना देवाः कथं जानीयुः कथञ्च ब्रूयुः यत इदं जगत् आ बभूव। अर्थ इस जगत् रचना से पश्चात् काल में वर्त्तमान देवता कैसे जानेंगे और उस उपादान निमित्त को कथन कैसे करेंगे जिस उपादान निमित्त से यह जगत् उत्पन्न हुआ है।

मंत्र॥ इयंविसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वान। यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अंग वेद यदिवान वेद॥ ऋ०। मण्ड० १०। अ० ११। सू० १२९ मं० ७।

पद। इयं विसृष्टिः यतः अबभूव यदि वा दधे यदि वा न यः अस्य अध्यक्षः परमे व्योमन सः अंग वेद यदि वा न वेद। यतः परमेश्वरात इयं विविधा सृष्टिः आबभूव स तांसृष्टिं यदि वा दधे यदि वान दधे यो ऽस्य जगतो ऽध्यक्षः परमेव्योमन् परमाकाशः स हे अंग तां सृष्टिं वेद यदिवान वेद इति निर्णयो ऽत्र दुर्लभः सृष्टेर्मायिकत्वादिति भावः। भावार्थ – जिस परमेश्वर से यह नाना प्रकार की सृष्टि हुई है सो इस सृष्टि को धारण करता है अथवा नहीं धारण करता यह निर्णय नहीं होसकता क्योंकि सृष्टि को मायामय होने से तथा जो इस जगत् का परमाकाश रूप अधिष्ठान है सो हे अंग प्रिय तिस

सृष्टि को जानता है वा नहीं जानता यह निर्णय भी दुर्लभ है। सृष्टि मायामय है इसी अर्थ में मंत्र का तात्पर्य्य है और यह अभिप्राय नहीं जो परमेश्वर जगत् को धारण नहीं करता वा नहीं जानता इस अर्थ में तात्पर्य्य नहीं क्योंकि धारण करता है वा नहीं धारण करता और जानता है वा नहीं जानता इस कहने से सृष्टि को विचित्रत्व ही बोधन करा है और पूर्व मंत्र में सृष्टि निमित्त उपादान को वेद प्रमाण से अतिरिक्त प्रमाण कर अगम्यता बोधन करा है। इस स्थान में जब ऋग्वेद के संपूरण सूक्त कर सप्तमंत्रों से सृष्टि से पूर्वकाल में भोक्ता भोग्य वर्ग का सर्वशक्तिमत परमात्मा से तादात्म्य और यावत् प्रपंच की परमात्मा में स्थिति का बोधन हेतु काम और प्रपंच का उत्तम कारण चैतन्य ज्योति और अधम कारण माया और सृष्टिमूल कारण को केवल वेद प्रमाण वेद्यत्व और सृष्टि को माया मयत्व निर्णय होने पर जीव ब्रह्म की एकता और प्रपंच को पारिभाषिक मिथ्यात्व रूप शंकरमत स्पष्ट होगया और दयानन्द का जो यह कथन है नवीन वेदान्तिओं का यह मत है। भाव उसके कहने का यह है हमतो प्राचीन वेदान्ति वैदिक हैं और जीव ब्रह्म की एकता प्रपंच मायिकत्त्व कहनेवाले अवैदिक हैं इसीवास्ते छल करके अपने निन्दक पंथ सर्वदा वेदबाह्य को वैदिक समाजादि नाम से पुकारते हैं और देखो उनका प्राचीन वेदान्तीपना जिनको जीव के स्वरूप निरूपण करने वास्ते भी कोई वेदमंत्र नामिला और जीवस्वरूप के निर्णय वास्ते जो सूत्र न्यायशास्त्र वा वैशेषिक शास्त्र के लिखे तिनका अर्थ भाष्यकार वात्स्यायन ऋषि तथा गोतम सूत्र कणाद सूत्र से विरुद्ध लि

खा ऐसेही प्राचीन वेदान्ती होते हैं क्या कहना है ऋषि विरोध पूर्व निर्णीत हैं।

अथ अद्वैत सिद्धान्त में प्रमाण यजुर्मंत्रार्थ और भेद बोधक वाक्य व्यवस्था और अभेद में तात्पर्य निरूपण करते हैं।१०।

और एक यजुर्वेद का मंत्र और लिखता हूं जिस मंत्र में स्पष्ट ही अद्वैत सिद्धान्त वेद प्रतिपाद्य प्रतीत हो सज्जन पुरुषों को। तथाहि।

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषद् तिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसद्दृत सद्व्योमसदब्जा गोजाऽ ऋतजाऽ अद्रिजा ऋतम्बृहत्। यजुः। अ॰१०। मं॰२४

पद। हंसः शुचिषत् वसुः अन्तरिक्षसत् होता वेदिषत् अतिथिः दुरोणसत् नृषत् वरसत् ऋतसत् व्योमसत् अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत्।

अर्थ॰ इस स्थान में आदित्य मण्डलाभिमानी देव जो कि

य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व्व एव सुवर्णः। तस्ययथा कप्यासं पुण्डरीक मेव मक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्व्वेभ्यः पाप्मभ्यः उदितः छां॰प्र॰१। खं॰६।

इस श्रुति करके प्रतिपाद्य है और जो सर्व जीवोपाधि प्राण बुद्ध्यादि में स्थित है अर्थात् कार्य्य उपाधि वाला जीव है और जो निरुपाधिक परमात्मा है सो एक तत्त्व रूप हैं यह प्रति पादन मंत्रसे करते हैं।

छान्दोग्य श्रुति का अर्थ आदित्य मण्डल के अन्तर जो यह हिरण्मय पुरुष उपासक जनों को प्रतीत होता है हिरण्यवर्ण तुल्य श्मश्रुवाला तथा हिरण्यवर्ण केशवाला नख से लेकर शिखा तक सर्व ही सुवर्णवत् प्रकाशमान है तिस देव के अत्यन्त तेजस्वी कमलवत नेत्र हैं और तिस देव का उद् यह नाम है और यह देव सर्व्व पापों से रहित है अब मंत्र का अर्थ जो सर्वत्र सर्वात्मा रूप से।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। यजु०।अ० ४०मं०१७।

इस मंत्र प्रतिपाद्य उपास्य है सो हंस है अर्थात् उपासक पुरुष जिसको अपने आत्मा से एकता करके देखते हैं सो परमात्मा हंस नाम से कहाजाता है सोई परमात्मा इस मंत्र में आदित्यरूप से प्रतिपाद्य है और शुचि नाम पवित्र जो द्युलोक है तिसमें आदित्यरूप से स्थित है इससे शुचिषत् है और वसु नाम सर्व को अपने आत्मा में निवास कराता है इससे वसु है। और वायु रूप से अन्तरिक्ष में स्थित है इससे अन्तरिक्षसत् है और अग्निरूप से वर्त्तमान होकर होता है अग्निर्वैहोतेति श्रुतेः वेदि में गार्हपत्य अग्निरूप से स्थित होने से वेदिषत् है अतिथिवत् पूज्य होने से अग्नि अतिथि है वा अतिथिरूप भी परमात्मा है सर्वात्मा होने से इसि वास्ते दुरोणसत् है दुरोण नाम गृहों में अतिथिरूप से स्थित है नृषु मनुष्य शरीरेषु जीव रूपेण सीदति इति नृषत् मनुष्य शरीरों में जीवरूप से स्थित है इससे नृषत् है वर जो देवता तिनमें स्थित है इससे वरसत् है ऋत नाम यज्ञ में स्थित है इसवास्ते ऋतसत् है आकाश में आदित्य चन्द्रनक्षत्रादि रूप से स्थित होने से व्योम

सत् है अब नाम जलों में शक्ति शंखादि रूप से उत्पन्न होता हैं इ
स वास्ते अब्जा गो नाम पृथिवी में ब्रीह्यादि रूप से उत्पन्न होने
से गोजा है ऋत नाम सत्यरूप से अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से जो होता
है आदित्य सो ऋतजा है पर्वतों से गंगादि नदी रूप से उत्पन्न हो
ता है इसवास्ते अद्रिजा है ऐसे पूर्व उक्त प्रकार से सर्वात्मा भी
है तथापि ऋतं नाम सत्य स्वभाव है सर्व कारण होने से बृहत
है यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के श्रुति बचन का अर्थ
जो यह आदित्य मण्डल में वर्त्तमान पुरुष नाम पूर्व वर्णित पुरु
षाकार देव है सो देव अहमस्मि मैं हूं ऐसे अहंग्रह रूप से उपा
स्य है वो देव ॥ जब इस मंत्र के अर्थ को सज्जन पुरुष विचारें
गे तो निर्विवाद होकर निर्णय करेंगे जो शंकरमत में वेद का ता
त्पर्य्य है वा केवल शब्द मात्र से प्राचीन वेदान्तीमानी द्वैत अ
द्वैत मतानभिज्ञ कपटभिक्षु के मत में वेद का तात्पर्य्य है इस
मंत्र से तो अद्रिजा परमात्मा को कहने से यावत् पर्वत से जन्य
शालग्राम शिलामूर्त्ति नर्मदेश्वर आदि परमात्मा का रूप हैं तथा
गंगा यमुनादि नदी भी परमात्मा रूप हैं यथेष्ट शालग्राम आदि
मूर्त्तिपूजा परमात्मा की पूजा है तथा अतिथि रूप परमात्मा काबो
धन करने से अतिथि पूजन भी परमात्मा का पूजन है इससे
शालग्राम नर्मदेश्वर तथा राम कृष्णादि मूर्त्ति पूजन निंदक पंथ
वालों को वेदार्थानभिज्ञता सिद्ध होगयी।

प्रश्न। पूर्व उक्त वेदमंत्रों से अद्वैत प्रतिपादन करा परन्तु द्वैत
प्रतिपादक मंत्रों की क्या व्यवस्था करोगे। तथाहि।

द्वासुपर्णासयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व

जाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति। ऋ०। मण्ड०१। सू०१६४ मं०२।

यह मंत्र द्वैत को प्रतिपादन करता है। उत्तर। इस मंत्र में यह प्रष्टव्य है जो यह मंत्र चेतन में भेद सिद्ध करता है वा भोक्ता तथा अभोक्ता रूप पक्षिओं के भेद को सिद्ध करता है चेतन में भेद साधक कहें तो बनता नहीं क्योंकि चेतन में भेद का साधक कोई पद ही नहीं इस मंत्र में तो चेतन में भेद को मंत्र कैसे सिद्ध करेगा किन्तु दो सुपर्णों को बोधन करता है सो भी सुपर्ण वेदप्रतिपाद्य होने चाहियें अन्यथा यथार्थ अर्थ का निर्णय नहीं होगा मंत्र का अर्थ दो सुपर्ण हैं सयुजा नाम परस्पर संबंध वाले और सखाया नाम समान प्रतीतिवाले अर्थात् जिन दोनों का प्रतीत होना तुल्य है वे दोनों समान नाम एक वृक्ष को परिषस्वजाते नाम आश्रय कर रहे हैं तिन दोनों में अन्य नाम एक पिप्पल स्वादु नाम वृक्ष फल को भोक्ता है और दूसरा वृक्षफल को नभोक्ता हुआ अभिचकशीति नाम प्रकाश करता है सो देखो जो प्रकाश करने वाला सुपर्ण है सो मंत्र प्रतिपाद्य है। तथाहि।

एकः सुपर्णः ससमुद्रमाविवेश सइदं विश्वं भुवनं विचष्टे। तंपाकेन मनसा पश्यमन्तित स्तंमातारेळ्हि सउरेळ्हि मातरम्। ऋ०। मण्ड० १०। सू०११४। मं०४।

पद। एकः सुपर्णः सः समुद्रम् आ विवेश सः इदम् विश्वम् भुवनम् विचष्टे तम् पाकेन मनसा अपश्यम् अन्ति

तः तम् माता रेह्लि सः उरेह्लि मातरम्।

अर्थ— एक जो सुपर्ण नाम प्राणवायु उपाधिक सुपर्णवत् सुपर्ण है समुद्र नाम समुद्रवत् विस्तृत अन्तरिक्ष को आविवेश नाम प्रवेश करता है सोई प्राणोपाधिक परमात्मा इस विश्व भुवन नाम सर्व लोक को विचष्टे नाम पश्यति प्रकाश करता है तिस प्राण देव को पाक नाम परिपक्व मन करके मैं उपासक अन्तिम नाम अपने हृदय कमल में अपश्यं नाम देखता भया किस प्रकार से जो तिस प्राणदेव को अध्ययन काल में माता जो वाक है सो रेह्लि नाम अपने आप में लीन करलेती है और तूष्णीभाव काल में वा स्वापकाल में वो प्राण देव मातरं नाम वाक् को अपने आप में लीन करलेता है एकतो सुपर्ण इस मंत्र करके प्राणोपाधिक ईश्वर चेतन प्रतिपाद्य है यहां जो लीनता कही है सो केवल उपाधि धर्म्म का व्यवहार विशिष्ट में करा है और जो प्राण उपाधिक ईश्वर प्रतिपाद्य इस मंत्र से नहोता तो सर्व जगत् प्रकाशकता कैसे कहते वेद निघण्टु के अ० २३। खं० ११। तृतीयाध्याय के ग्यारवे खण्ड में विचष्टे पश्यति कर्म्मा कही है इससे केवल जड़ प्राण इस मंत्र प्रतिपाद्य नहीं और केवल चेतन भी प्रतिपाद्य नहीं क्योंकि वाक् में लीनता कही है इससे प्राणोपाधिक चित् प्रतिपाद्य है। यह सुपर्ण तो केवल प्रकाशक अभोक्तारूप से पूर्व मंत्र प्रतिपाद्य है। और भोक्तारूप सुपर्ण बुद्ध्युपाधिक जीव चित् है

तथाहि। तद्यथास्मिन्ना काशेश्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्त्य श्रान्तः। स ध्ं हत्य पक्षौ सल्लयायैव ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ता

यथावति यत्र सुप्तोन कञ्चन कामं कामयते
न कञ्चन स्वप्नं पश्यति। ॥ बृ० उ०। अ० ६। ब्रा०३

पद। तद्यथा अस्मिन् आकाशे श्येनः वा सुपर्णः वा विप
रिपत्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ सन्नयाय एव ध्रियते। एवम्
एव अयं पुरुषः एतस्मै अन्ताय धावति यत्र सुप्तः न कञ्च
न कामम् कामयते न कञ्चन स्वप्नम् पश्यति।

भावार्थ — जैसे इस प्रसिद्ध आकाश मे श्येन बड़े शरीर वाला वा सुपर्ण नाम अल्प शरीर वाला बाज है सो विशेष करके भ्रमण कर श्रम को प्राप्त होकर पक्षों को संहत्य नाम विस्तार कर सन्नय जो अपना नीड है तिसको ध्रियते नाम अनवस्थित हो गमन करता है तैसे यह पुरुष नाम जीव बुद्ध्युपाधिक अन्त नाम अन्तर स्थान जो हृदय कमल है तिसके वास्ते धावन करे है। जहां सोता हुआ कुछ भी काम नाम विषय को नहीं चाहता और कुछ स्वप्न भी नहीं देखता। इस श्रुति में सुपर्ण दृष्टान्त से जो बुद्ध्युपाधिक जीव सुपर्णवत् जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति में गमन करने वाला द्वितीय सुपर्ण कर्मफल भोक्ता प्रतिपादन करा है सो यह दो सुपर्ण वाक्यान्तर प्रतिपाद्य ही द्वा सुपर्णा इत्यादि मंत्र में कहे हैं तिन दोनों का प्राणबुद्धि उपाधि भेद कर भेद हमारे सिद्धान्त में स्वीकृत है चेतन जो ब्रह्म चैतन्य पूर्व हंस मंत्र में सर्वात्मारूप से प्रतिपादन करा है तिसके भेद का साधक कौन है अर्थात तिसके वास्तव भेद का साधक कोई नहीं और भी मंत्र अभेद प्रतिपादक अनन्त हैं। तथाहि।

अनेजदेकंमनसोजवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्

पूर्वमर्षत ॥ तद्धावतोऽन्यान्त्येतितिष्ठत्तस्मिन्न
योमातरिश्वादधाति ॥ यजु०। अ०४०। मं०४।

पद। अनेजत् एकम् मनसः जवीयः न एनत् देवाः आप्नु
वन् पूर्वम् अर्षत् तत् धावतः अन्यान् अत्येति तिष्ठत् त
स्मिन् अपः मातरिश्वा दधाति।

अर्थ— जो कम्पनक्रियावत् वस्तु होता है सो एजत ऐसे कहा जाता है और आत्मतत्त्व में कम्पन क्रिया है नहीं इससे अनेजत् नाम अचल है अर्थात् सर्व प्रकार की क्रिया वर्जित है और एक नाम पूर्व उक्त इस मंत्र प्रकार करके सर्वभूतों में एकरूप से स्थित है। **प्रश्न**। जो आत्मतत्त्व क्रिया वर्जित एक है तो कोई नारकी और कोई स्वर्गी इत्यादिक सांसारिक व्यवहार कैसे होगा। **उत्तर**। मन सो जवीयः सो आत्मतत्त्व मन से अत्यन्त अधिक गमन करनेवाला है अर्थात् मन जब एक क्षणमात्र में ब्रह्मलोक में गमन करता है तब आत्मतत्त्व आगेही प्राप्त होता है जो दो पदार्थ गमन करनेवाले होते हैं लोक में तिनमें से जो एक को पीछे छोड़कर आप आगे प्राप्त होवे सो पीछे रहने वाले से जवीय कहा जाता है सो यहां मन तथा मन उपहित आत्मतत्त्व दो पदार्थ गमन करनेवाले हैं **यद्यपि** आत्मतत्त्व अचल है **तथापि** मनोरूप उपाधि से गमन करता वत् है अब इन दोनों में यह विचारो जो जवीय कौन है मन तो जवीय हो नहीं सकता क्योंकि आत्मतत्त्व को पीछे छोड़कर आगे प्राप्त होवे तो जवीय कहा जाय सो तो होनहीं सकता आत्मतत्त्व को व्यापक होने से किन्तु आत्मतत्त्व ही व्यापक होने से मन से जवीय है भाव इस स्थान में यह है जैसे क्रिया शून्यही आत्मतत्त्व में मनो

रूप उपाधि करके क्रिया प्रतीत होगयी तैसे मनोरूप उपाधि को नारकी होने से तथा स्वर्गी होने से आत्मा में नारकी स्वर्गी व्यवहार होता है नारकी स्वर्गी के अभाव होते ही (यस्मात् मनसः पूर्व मर्षत तस्मात् एनत् आत्मतत्त्वं देवानामुवन्) भाव यह है चक्षुरादि इन्द्रियगण से मन जवीय है और पूर्व उक्त प्रकार से मन से आत्मतत्त्व जवीय है तब यह अर्थ हुआ जिस कारण से मन से पूर्वही आत्मतत्त्व अर्षत् नाम प्राप्त है तिस कारण से देवा नाम इन्द्रिय ए नत् इस आत्मतत्त्व को नहीं प्राप्त होसकते धावतो ऽन्यान् तिष्ठत सत् अत्येति अर्थ शीघ्रगमन करने वाले जो मन तथा इन्द्रिय हैं तिन सर्व की स्थित हुआ ही अतिक्रमण करजाता है भाव यह है सर्व इन्द्रिय रूप उपाधि सहित सर्व क्रिया का आश्रय प्रतीत होता भी है परन्तु वास्तव ते सर्व क्रिया रहितहैऐसेही और श्रुति में इसी अर्थ को स्पष्ट करा है।

अथ अपाणि इत्यादि श्रुत्यर्थ और वाद्यभिमत श्रुत्यर्थ का श्रुत्यन्तरानुसारता से खण्डन निरूपण करते हैं।११।

तथाहि। अपाणिपादो जवनो ग्रहीता । पश्यत्य चक्षुः सश्टणोत्यकर्णः। सवेत्ति वेद्यं नच तस्या ऽस्तिवेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषंमहान्तम्। यजुर्वेदीयश्वेताश्वतर शाखोपनिषद्। अ०३ मं०१९

पद। अपाणिपादः जवनः ग्रहीता पश्यति अचक्षः सः शृणोति अकर्णः सः वेत्ति वेद्यम् नच तस्य अस्ति वेत्ता तम् आहुः अग्र्यम् पुरुषम् महान्तम्।

भावार्थ — पाणि तथा पाद से बर्जित है आत्मा और जवन तथा ग्रहीता नाम ग्रहण करनेवाला है भाव यह है हस्त पाद उपाधि सहित होकर वेगवान तथा ग्रहण करता है परन्तु स्वरूप सें हस्तपाद उपाधि रहित है इसि रीति से वास्तव करके चक्षु कर्ण रहित है परन्तु चक्षु कर्ण उपाधि सहित होकर देखता तथा सुनता है सो आत्मा वेद्य वस्तु को जानता है और तिसके जानने वाला दूसरा नहीं स्वयंप्रकाश होने से तिस महान् पुरुष सर्व नामरूप प्रपंच से आगे होनेवाले को वेदबचन कथन करते हैं और दयानन्द ने सत्या० स० ७ पृष्ठ १०८। में देखो,, इस श्रुति का पाठ भेद कर वेद्यं पद के स्थान विश्वपद और महान्त पद के स्थान में पुराण पद और नच तस्यास्ति इसमें से अस्ति पद को त्याग कर यह श्रुति लिखकर पश्चात् यह लिखा है यह उपनिषद् का बचन है परन्तु पता इस बचन का नहीं लिखा जो अमुक उपनिषद् के अमुक अध्याय का बचन है। और अर्थ इसका यह लिखा है परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सब का रचन करना पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान् चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को यथावत देखता श्रोत्र नहीं तथापि सब की बातें सुनता अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत को जानता है और उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं इस स्थान में भी सत्यासत्य विचार करना चाहिये सज्जन पुरुषों को।

यः पृथिव्यांतिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोयं पृथिवीन वेद यस्य पृथिवी शरीरं योप्सुतिष्ठन्नद्भ्यो

ऽन्तरोयमापोन विदुर्यस्यापः शरीरम् इत्यादि
अधि दैवत मथाधिभूतम् ॥ यः सर्वेषु भूतेषु ति
ष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ऽन्तरोयꣳ सर्वाणिभूतानि
नाविदुर्यस्य सर्वाणि भूतानिशरीरम्।

अर्थ—जो पृथिवी में स्थित होकर पृथिवी के अन्तर है जिसको पृथिवी देवता नहीं जानता जिसका पृथिवी शरीर है और जो आपों में स्थित होकर आपों के अन्तर है जिसको आप देवता नहींजानते जिसका आपही शरीर हैं इससे आदि लेकर अग्नि अन्तरिक्ष वायु द्युलोक आदित्य दिशा चन्द्र तारक आकाश तम तेज यह संपूर्ण अग्नि आदि परमात्मा के शरीर कहे यह देवताओं में अन्तर्यामि का दर्शन कहकर अथ नाम इससे अनन्तर भूत जो प्राणि शरीर हैं मनुष्यादि इनमें अन्तर्यामि का उपदेश करते हैं जो सर्वभूत नाम व्यष्टि शरीरों में स्थित होकर इनसे अन्तर है जिसको सर्वभूत नहीं जानते और जिसका सर्वभूत ही शरीर हैं।

यह। वृ० उ०। अ० ५। ब्रा० ७। में देखो,, लिखा है। तथा।

यश्चक्षुषितिष्ठꣳश्चक्षुषो ऽन्तरोयंचक्षुर्नवेद
यस्य चक्षुः शरीरम्। यः श्रोत्रेतिष्ठञ्छ्रोत्रा दन्त
रोयꣳ श्रोत्रंनवेदयस्य श्रोत्रꣳ शरीरम्। यो म
नसितिष्ठन्मनसो ऽन्तरोयं मनोन वेदयस्य मनः
शरीरम्। तथानान्यो ऽतो ऽस्ति द्रष्टा नान्यो ऽस्ति
श्रोता नान्यो ऽतो ऽस्तिमन्ता नान्यो ऽतो ऽस्ति
विज्ञाता।

अर्थ—यह श्रुति बचन भी पंचमाध्याय के सप्तम ब्राह्मण में वृह

दारण्यक उपनिषद् में लिखे हैं। अर्थ इन श्रुति बचनों का जो चक्षु में स्थित होकर चक्षु से अन्तर है जिसको चक्षु नहीं जानता जिस का चक्षुही शरीर है तथा जो श्रोत्र में स्थित होकर श्रोत्र के अन्तर है जिसको श्रोत्र नहीं जानता जिसका श्रोत्र ही शरीर है और जो मन में स्थित होकर मन से अन्तर है और जिसको मन नहीं जानता जिसका मन शरीर है और इस परमात्मा से भिन्न न द्रष्टा है न श्रोता है न मन्ता है न विज्ञाता है भाव यह है सर्व शरीरों में द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता परमात्मा है इस वास्ते वृहदारण्यक चतुर्थाध्याय में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी के सम्बाद में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं॥

येनेदंसर्वंविजानाति तंकेनविजानीयात् विज्ञातारमरे केन विजानीयात्।

अर्थ— जिस आत्म चैतन्य ज्योति करके यह सर्व जाना जाता है तिसको दूसरे किस करके जानेगा इसवास्ते अरे मैत्रेयी सर्व के विज्ञाता चैतन्य को कोई जानवे को समर्थ नहीं भाव यह है याज्ञवल्क्य का चैतन्य ज्योति से भिन्न वस्तु जड़ हैं वे चैतन्य को सर्वथा नहीं जान सकते। अब दयानन्द के श्रुति अर्थ में दृष्टि देना चाहिये। दयानन्द ने यह कहा परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु शक्तिरूप हाथ से सर्व को रचना कर सक्ता है तहां यह प्रष्टव्य है शक्ति परमात्मा से भिन्न है वा अभिन्न है वा भिन्न अभिन्न से विलक्षण विचित्रता वाली अनिर्वचनीय है भिन्न कहो तो अनादि ही मानना होगा तो स्वमत भंग होगा क्योंकि दयानन्द ने तीन पदार्थ अनादि माने हैं जीव ईश्वर प्रकृति जडरूप। सत्या० समु० ८। पृ० (२०९) में

देखो। यह तीन पदार्थ अनादि हैं यह दयानन्द का मत है। अब शक्ति भी एक अनादि पदार्थ माना ईश्वर जीव जड़ प्रकृति से पृथक जो सादि माने तो सादि शक्ति रूप शरीर से ईश्वर शरीरि हो जायगा इससे शरीर सादि ईश्वर का नहीं है यह कथन असंगत होगा और जो अभिन्न ईश्वर से शक्ति को मानें तो शक्ति जड़ है और जड़ चेतन का अभेद वास्तव बाधित है और भिन्न अभिन्न से विलक्षण मानेंगे तो तिससे भिन्न जड़ प्रकृति मानना निष्फल है क्योंकि ऐसा अद्भुत शक्तिमान ईश्वर जड़ प्रकृति की सहायता नहीं चाहता और उस शक्ति के कार्य्य रचना करने का क्रम तो पूर्व। ऋ०मण्ड०१०। अ०११। सू०१२९। मं०४। ऋग्वेद के मंत्र में मन तथा कामना द्वारा प्रपंच रचना प्रकार निर्णीत है शक्ति रूप हस्त से शाक्षात् रचना कहना वेद विरुद्ध है और इस मंत्र में तो ग्रहीता यह पद है तिसका अर्थ तो पूर्व रचित पदार्थ का ग्रहण है कुछ रचना शब्दार्थ नहीं इससे ग्रहीता पद का अर्थ रचना

जो दयानन्द ने कहा है सो व्यर्थ है और इसवास्ते इस स्थान में यह अर्थ पूर्व बृहदारण्यक श्रुति के अनुरोध से करना चाहिये जो यावत् प्राणिओं के शरीर हस्त पाद चक्षु श्रोत्र मन आदि हैं वेही सम्पूर्ण परमात्मा के शरीरादि हैं और वास्तव दृष्टि से केवल ही स्वरूप है इससे तिस२ उपाधि सहित होकर सर्व क्रिया करता है परन्तु वास्तव सर्व क्रिया रहित है यह सर्व श्रुति बचनों का अभिप्राय है और व्यापक होने से जो दयानन्द ने अत्यन्त वेगवान कहा है सो भी व्यापक वस्तु में गमन उपाधि विना प्रतीत नहीं होता तब जवनः नाम अत्यन्त वेगवान् यह शब्द प्रयोग

कैसे हो इससे सोपाधिकत्त्व कल्पना विना दूसरी गति हो नहीं सकती और जो यह कहा तिसको अवधि सहित कोई नहीं जान सकता इस कहने का भाव दयानन्द का यह है जो परमेश्वर तो दूसरे करके जाना जाता है परन्तु तिसकी अवधि नजानने कर नच तस्यास्ति यह कहना बन सकता है परन्तु यह अर्थ करेंगे तो परमेश्वर को वेद्यत्त्व प्रसक्त होगा और वेद्यत्त्व प्रसक्ति से जड़त्वादि दोष होंगे स्वयंप्रकाशत्त्व बोधक श्रुति का बाध होगा इससे इस श्रुति में परमात्मा को अवेद्यत्व बोधन कर सर्व का वेत्ता कहने से स्वप्रकाश ही बोधन करा है इसीवास्ते बृहदारण्यक श्रुति में मैत्रेयी सम्वाद में तथा अन्तर्यामी ब्राह्मण में सर्व का द्रष्टा एक कहा है नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा इत्यादि इससे यह निश्चित अर्थ है बिना उपाधि से द्रष्टा में भेद नहीं इससे दयानन्द का द्रष्टा का वास्तव भेद स्वीकार करना वेदार्थानभिज्ञता का सूचक है अब सर्व जगत् प्रशासकत्त्व रूप परमात्मा को बोधन करते हैं।

तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति

इस वाक्य से अर्थ यह है मातरिश्वा वायु तस्मिन् परमश्वरे प्रशास्तरि सति अपो दधाति भाव यह है परमात्मा की आज्ञा में स्थित होकर वायु अप जो ब्रह्माण्ड मध्य वर्त्ति जल है तिनको धारण करता है। तथाच। श्रुत्यन्तरं।

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्य्यः। भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पंचमः। तैत्तरीय उपनिषद्द तथा। भयादस्याग्निस्त पति

भयात्तपतिसूर्य्यः। भयादिंद्रश्चवायु श्चमृत्युर्धा
वतिपञ्चमः। क०३। व०६। मं०३।

भावार्थ — इन श्रुति बचनों का यह है इस परमात्मा की आज्ञा में वर्त्तमान वायु सूर्य्य अग्नि इन्द्र मृत्यु अपने २ कार्य्य में सावधानता से वर्त्तमान हैं।

अथ श्रुत्यर्थानुसारी गुरु नानक बचनों का अर्थ और दयानन्द कृत गुरु नानक मत में आक्षेप खण्डन निरूपण करते हैं॥१२॥

इन श्रुति बचनों के अर्थ को गुरुजी ने भी विस्तार करके लिखा है। तथाहि।

भैविच पउण वहै सद वाउ। भै विच चलहिं
लख दरीआऊ। भै विच अग्नि कढ़ै वेगार।
भै विच धरती दबी भार। भै विच इन्द्र फिरै
सिर भार। भै विच राजा धरम दुआर। भै विच
सूर्य्य भै विच चन्द। कोह करोडी चलत न
अन्त। भै विच सिद्ध बुद्ध सुरनाथ। भै विच
आडाणे आकाश। भै विच योध महाबल शूर
भै विच आवहिं जावहिं पूर। सगलियां भै लि
खिया सिर लेख। नानक निरभउ निरंकार स
च एक॥

अर्थ — तो गुरु वाक्य का स्पष्ट है सदवाउ नाम सर्बदा काल। कोह करोड़ी चलत न अन्त। अर्थ। अनन्त कोटि क्रोश चलते हैं।

सूर्य्य चन्द्र कुछ अन्त नहीं अडाणे नाम विस्तार को प्राप्त होरहा है आकाश इस स्थान में यह सिद्धान्त होगया जो औपाधिक भेद को लेकर प्रशास्य प्रशासक भाव तथा उपास्य उपासक भाव और द्रष्टृ द्रष्टव्य भाव और वास्तव चैतन्य एकता अब एकता को बोधन वास्ते परमात्मा को सर्वात्मता दो मंत्रों से निर्णय करते हैं।

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। सभूमि थं सर्व्वतस्पृत्वा ऽत्यतिष्ठद्दशा ङ्गुलम्। य० अ०३१। मं०१।

पद। सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् सः भूमिम् सर्वतः स्पृत्वा अत्यतिष्टत् दशाङ्गुलम्।

अर्थ – सहस्र नाम अनन्त हैं शिर जिसके तथा अनन्त हैं नेत्र जिसके तथा सहस्र नाम अनन्त हैं पाद जिसके ऐसा पुरुष है सो पुरुष भूमि नाम यावत् ब्रह्माण्ड को सर्व तरफ़ से बाहिर भीतर से स्पृत्वा नाम व्याप्त होकर नाभि से लेकर दश अंगुल प्रमाण जो हृदय कमल है तिसमें अपने जीव रूप से स्थित होता भया

पुरुषएवेद थं सर्वंयद्भूतं यच्चभाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति। य०।अ०३१ मं०२।

पद। पुरुषः एव इदम् सर्वम् यत् भूतम्। यत् च भाव्यम् उत् अमृतत्त्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अति रोहति।

भावार्थ – भूत तथा भाव्य नाम भविष्यत् अन्न नाम भोग्य वर्ग से जो अतिरोहति नाम प्रादुर्भूत है अर्थात् वर्त्तमान प्रपंच (इदंसर्वं पुरुष एव) यह सम्पूरण पुरुष नाम परमात्मारूप

है और परमात्मा अमृतत्त्व जो मोक्ष है तिसका ईशान नाम ईश्व
र है अर्थात् अपने ज्ञान से दाता हैं ज्ञात होकर मुक्ति कारण है
इस मंत्र में भी पूर्व उक्त हंस मंत्रवत् सर्वात्मा रूप से परमात्माको
प्रतिपादन करा है इन मंत्रों से दयानन्द कल्पित जड़ प्रकृतिको
उपादानता पक्ष वेदवाह्य है क्योंकि प्रकृति जेकर प्रपंच का उ
पादान कारण होती तो पुरुष के साथ प्रपंच का अभेद कैसे क
हते इससे प्रपंच का जड़ प्रकृति को उपादान मानना दयानन्द
का वेदार्थानभिज्ञता का बोधक है। इन मंत्रो से प्रथम मंत्र का
अर्थ गुरूजी ने भी एक शब्द में प्रकाश करा है।

राग धनासरी ॥ गगन मय थाल रवि चन्द दी
पक वनै तारका मण्डला जनक मोती। धूप म
लियान लो पवन चवरो करै सगल बनराइ फू
लंत ज्योति ॥१॥ कैसी आरती होइ भव खण्डना
तेरी आरती। अनाहता शब्द बाजंत भेरी। १॥र
हाउ ॥ सहंस तव नैन नना नैन हहं तोहि कोस
हंस मूर्त्ति नना एक तोही। सहंस पद बिमल नना
एक पद गन्ध बिन सहंस तव गन्ध इव चलत
मोही ॥२॥ सबमाहि जोत ज्योति है सोइ। तिसदे
चानणे सब मंहि चानणा होइ। गुरु साखी जोति
प्रगट होइ। जोति सभावे सु आरती होइ। ३। हरि
चरण कमल मकरन्द लोभत मनो अनदिनो मो
हि आही पियासा। कृपाजल देहु नानक सारंग
को होइ जाते तेरे नाइ वासा ॥४॥

अर्थ॰ हे भव खण्डना नाम हे भगवन् संसार दुःख नाश करने वाली तेरी आरती कैसी आरती होइ आपकी आरती नाम दीपज्वाला प्रकाश किस प्रकार की आरती है सो मैं हे भगवन् वर्णन करता हूं प्रथम लौकिक आरति समय पर भेरी बजाई जाती है सो यहां पारमार्थिक आरती समय में भेरी क्या है जो अनाहत ध्वनि में चित्त को स्थिर करना अनाहत नाम नाद रूप ॐङ्कार का है सो नाद का निरूपण तो पश्चात् होगा प्रथम भवखण्डन का निरूपण कर्त्तव्य है (भवं कार्य्यकारण रूपां मायांस्वमहिम्नैव खण्डयति नाशयतीति भव खण्डनः निर्विशेषः परमेश्वरः) अर्थ कार्य्य कारण रूप माया को अपनी महिमा से निवृत्त करे सो भवखण्डन है परमात्मा इसी अर्थ का प्रतिपादक श्रुति है। तथाहि॥

प्राज्ञेसैषाविद्या जगत् सर्वमात्मा परमात्मैव स्वप्रकाशोऽप्य विषयज्ञानत्वा ज्जानन्ने वह्यत्र न विज्ञानाति। अनुभूतेर्माया च तमोरूपानु भूतेस्त देतज्जडं मोहात्मक मनन्तं स्वच्छमिदं स्वरूप मस्य अस्यव्यंजिका नित्त्यनिवृत्तापि मूढे रात्मेव दृष्टा। न्रसिंह: उ० खं० ९।

पद। प्राज्ञेसा एषा अविद्या जगत् सर्वम् आत्मा परमात्मा एव स्वप्रकाशः अपि अविषय ज्ञानत्वात् जानन् एवहि अत्र न विजानाति अनुभूतेः माया च तमोरूपा अनुभूतेः तत् एतत् जडम् मोहात्मकम् अनन्तम् स्वच्छम् इदम् स्वरूपम् अस्य अस्य व्याञ्जिका नित्त्यनिवृत्ता अपि मूढैः

आत्मा इव दृष्टा।

अर्थ – प्राज्ञ नाम सुषुप्ति के साक्षि आत्मा में प्रतीयमान यह माया शब्द वाच्य अविद्या वा अविद्या शब्द वाच्य माया अर्थात् माया आविद्या शब्द प्रतिपाद्य भगवद् विचित्र शक्ति जगत् सर्वं दर्शयति सम्पूर्ण जगत् को प्रतीत कराती है और (आत्मा परमात्मा एव) आत्मा सुषुप्ति साक्षि जीवात्मा परमात्मा ही है परब्रह्म से भिन्न नहीं (यतः स्वप्रकाशः) अर्थ जिस कारण से आत्मा स्वप्रकाश है इससे परमात्मा रूप है स्वप्रकाश नाम प्रकाशान्तर की अपेक्षा नहीं करता सोई परमात्मा का लक्षण है इससे आत्मा परमात्मा ही है। अबिषय ज्ञानत्त्व रूप होने से जानता हुआ ही सुषुप्ति में नहीं जानता भाव यह है ज्ञान दो प्रकार का होता है निर्विकल्प और सविकल्प जो अन्तःकरण की वृत्ति रूप ज्ञान है सो सविकल्प है अर्थात् स्पष्ट प्रतीत होता है अहं घटं जानाति ऐसे प्रतीति होती है और साक्षिरूप ज्ञान निर्विकल्प है इसलिये अविषय ज्ञानत्त्व कहा जाता है इससे सुषुप्ति में स्फूरण रूप चैतन्य माया साक्षिरूप है जानता हुआही नहीं जानता क्योंकि अहंकार हो तो वृत्तिज्ञान सविकल्प होवे तो त्रिपुटि का साक्षिरूप से स्पष्ट प्रतीत हो अनुभूतेः नाम अपने अनुभव सिद्ध है यह अर्थ कदाचित् सुषुप्ति में ज्ञानस्वरूप आत्मा नहो तो सुषुप्ति की प्रतीति नहीं होनी चाहिये और अज्ञान नहो तो स्मृति अज्ञान की नहीं होनी चाहिये और माया तमोरूप है अनुभव होने से क्योंकि तम का यह स्वभाव है होते तथा भान होतेही पदार्थ में नास्तिनभाति इस व्यवहार का हेतु होता है तैसेही माया चेतन के होते और भान हो

ते ब्रह्मनास्ति ब्रह्मनभाति ऐसे व्यवहार का हेतु है इससे तमोरूप है और यह माया जड़ नाम पर प्रकाश्य है अनुभव प्रमाण से मोहात्मक है अनन्त नाम इस विचित्र शक्ति का अन्त नहीं किसीको आता और (स्वच्छामिदं स्वरूपमस्य) अस्य चेतनस्य इदं जडं मोहात्मकं स्वच्छं स्वरूपम्) अर्थ इस चेतन की यह जड़ मोहात्मक शक्तिरूप वस्तु स्वच्छ स्पष्ट स्फटकवत् उज्ज्वल है क्योंकि इसके कार्य्य ब्रह्मादि मूर्त्ति में उज्ज्वता प्रतीत होती है इससे शक्ति में भी स्वच्छता है। **प्रश्न**। जब चेतन में अविद्या का सम्बन्ध माना तो चेतन में निर्दोषता का भंग होगा। **उत्तर**। अस्यव्यञ्जिका,, अर्थ जैसे काष्ठ और घृत पिण्ड अग्नि के द्योतक हैं तथा यह कार्य्य कारणरूप माया इस परमात्मा का व्याञ्जिक है माया का साक्षि होकर परमात्मा का स्फुरण होता है कुछ परमात्मा में दोष कर नहीं परमात्मा का स्वरूप ऐसा नहीं जिसको माया दूषित करसके। **प्रश्न**। तब परमात्मा माया में प्रज्वलित होकर माया का दाह करदेगा। **उत्तर**। (नित्यनिवृत्तापि मूढै रात्मेवदृष्टा) अर्थ सर्वथा निवृत्त भी है परन्तु परमात्म ज्ञानशून्य मूढों ने कार्य्यरूप माया को आत्मवत् देखा है भाव यह है कार्य्य कारण रूप माया से जो आत्मा का अविवेक है तिसके प्रभाव से ही सुखी दुःखी संसारी अहमस्मि ऐसे मानता है विद्वान अनुभव रूप श्लोक।

नित्यबोधपरिपीडितं जगद्विभ्रमं तुदतिवाक्यजामतिः। वासुदेव निहतं धनंजयो हन्ति कौरवकुलं यथा पुनः।

अर्थ — नित्यज्ञान रूप आत्मा करके जगद्विभ्रमं नाम जगतरूप

भ्रम परिपीड़ित नाश हुआ ही वाक्यजन्य ज्ञान से पीछे नाश होता है। जैसे वासुदेव श्रीकृष्ण करके निहत नाश हुई कौरव कुल को पुना पश्चात् धनंजय हनन करता है इतने प्रबंध से परमात्मा का नाम भव खण्डन सिद्ध होगया। यह परमात्मा का स्वरूप निर्गुण ॐकार का लक्ष्य है। और तिसमें जो शक्ति है सोई सगुणरूप है,, परमात्मा की सो शक्ति शब्द सृष्टि द्वारा अर्थ सृष्टि को करती है। तथाहि। शक्ति से नाद तिसी को कालरूप कर के निर्णय करते हैं तिस नाद से बिन्दु होता भया जोकि क्रियाप्रधान शक्ति का रूप शब्द है तिस बिन्दु से शब्दमात्र स्वरूप शब्द ब्रह्म होता भया जब शक्ति भावापन्न परमात्मा ने नादरूप काल की सहकारता से भूत भौतिक प्रपंच रचना करी तब वो शब्दब्रह्म जब मूलाधार में अभिव्यक्त हुआ तब तो परा नाम से कहा जाता है। और स्वाधिष्ठान चक्र में पश्यन्ती नाम से कहा जाता है और हृदय में मध्यमा और जिह्वा में वैखरी नाम से कहा जाताहै इस वार्त्ता को अथर्व वेद की ध्यानविन्दूपनिषद् से निर्णय करते हैं। तथाहि।

यदिशैलसमंपापं विस्तीर्णयोजनान् बहून्भिद्यते ध्यानयोगेननान्यो भेदः कदाचन॥ ध्यानविन्दु उ०। मं०३।

अर्थ— पर्वत के समान अनन्त क्लेश का कारण होने से विस्तीर्ण बहु योजन पाप को ध्यान योग करके भेदन करा जाता है। और कोई भेद नाम भेदक कदापि नहीं होसकता।

श्रुति॥ बीजाक्षरात्परं बिन्दुंनादं बिन्दोःपरे

स्थितम्। सुशब्दञ्चाक्षरेक्षीणे निःशब्दं परमं पदम्। अथर्ववेदीय ध्यान विन्दू म ४

अर्थ — वीजाक्षर जो शब्द ब्रह्मरूप प्रणव है यहां वीजाक्षर कहने से वैखरी मध्यमा पश्यन्ती परावाणी पर्य्यन्त जो शब्द ब्रह्म है तिसका ग्रहण है तिससे परविन्दु को जानना चाहिये और नादविन्दु से परस्थित है और सुशव्दञ्च परेस्थितम्। अर्थ सुष्टु शब्दो नादरूपो यस्मात् शक्तिरूपात् तत् शक्तिरूपं सुशब्दं तदपि परे निर्गुणोस्थितम्) श्रेष्ठ नादरूप शब्द हुआ है जिस शक्तिरूप से सो सुशब्द है सो भी पर जो निर्गुण परमात्मा का रूप है तिसमें स्थित है तादात्म्य सम्बन्ध से नाद से लेकर वैखरी पर्य्यन्त जो अक्षर है तिसके क्षीण नास तिरोधान होते परमपद परमात्मा निःशब्द है शान्तरूप परब्रह्म है। अब इसि अर्थ को एक वाक्य से विस्तार करते हैं।

अनाहतञ्चयच्छब्दं तस्यशब्दस्ययत्परम् तत्परंचिन्तयेद्यस्तु सयोगीछिन्न संशयः। अथर्ववेदीय ध्यानविन्दू। मं०५।

अर्थ — अनाहत जो नाद रूप शब्द है तिसका परशक्ति रूप तिस शक्ति रूप से पर निर्गुण ब्रह्म को जो योगीजन चिन्तन करता है आत्मारूप से सो छिन्न संशय है अर्थात् अविद्या ग्रंथि भेदन करके परब्रह्म रूप से स्थित है। प्रकरण में गुरूजी ने यह जनाई जो निर्गुण परब्रह्म है तिस देव के सामने शक्ति नगारची ने अनाहत शब्दरूप जो नाद है सो बादन कराहै यह ध्यान का प्रकार कहा। साशक्ति पुनः गगनरूप थाल को बनाकर

सूर्य्य चन्द्र दीपक बनाए और तारामण्डल जनक नाम उत्तम जाति के थाल में मोति धरे आरती की अधिक शोभावास्ते और जो मलयगिरि पर्वतादि में सुगन्धियुक्त बन हैं सो देव के सामने शक्ति पूजारी ने धूप करा है सकल बनस्पति जो ज्योतिमय प्रकाश समान प्रफुल्लित होरही हे सो फूल हैं थाल में रक्खे हुए अब देव का स्तवन करते हैं हे भगवन् आपही विराट रूप को प्राप्त भये हो तब सहस्र तुमारे नेत्र हैं परन्तु वास्तव आपके निर्गुण रूप में कोई भी नैन नाम नेत्र नहीं और सहस्र ही आपकी मूर्त्ति हैं परन्तु वास्तव निर्गुण में कोई भी मूर्त्ति नहीं और विमल आप के पाद भी सहस्र ही हैं परन्तु वास्तव रूप में एक भी नहीं और गंध से बिनाही अर्थात् आपके वास्तव रूप में किंचित् भी गन्ध नहीं तथापि अनन्त प्रकार की गंध है। **प्रश्न**। एक पदार्थ में भाव तथा अभाव दो पदार्थ नहीं रह सकते विरोधी होने से। **उत्तर**। सत्य है एक पदार्थ में समसत्ता वाले दो पदार्थ नहीं रह सकते जैसे ताल में वृक्षों का जो अभाव है व्यावहारिक तिस ताल में व्यावहारिक वृक्ष कबी नहीं होसकता परंतु प्रातिभासिक भ्रम सिद्ध वृक्षों से व्यावहारिक वृक्षाभाव का विरोध नहीं तैसे प्रकरण में सहस्र नेत्रादि व्यावहारिक हैं तो पारमार्थिक तिनका अभाव भी बनसक्ता है इस तात्पर्य्य को प्रगट करते हैं। इव चलत मोही। अर्थात् मोही नाम अपनी विचित्र शक्ति रूप जो मोह है तिसके सहित होकर इव चलत नाम ऐसे प्रतीत होता है और वास्तव निर्गुण रूप से सर्व भावातीत एक रस है। **प्रश्न**। सूर्य्य चन्द्र दीपक कल्पना करे तो दीपक से ने

त न्यारी होती है जैसे लोक में व्यवहार होता है दीपक जगा वो दीपक शान्त होगया दीपक चेतन होगया इस व्यवहार से जिस्के स्थापन करे से दीपक चेतन होता है तथा शान्त होता है जिसके अभाव से सो जोत है और यहां सूर्य्य चन्द्र स्वयं ज्योति रूप हैं तो जोत कौन है। उत्तर। सब मह जोत ज्योति है सोइ। तिस दे चानणने सबमेंचानणनाहोय ॥ भाव यह है सूर्य्य चन्द्र में ज्योति ब्रह्मही जोतरूप है उसके प्रकाश करके सर्व प्रकाशित होरहे हैं।

श्रुति ॥ नतत्रसूर्यो भातिनचन्द्रतारकं नेमा वि द्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेवभान्त मनुभा तिसर्वं तस्यभासासर्वमिदं विभाति। कठ०उ० अ०५ मं०१५।

भावार्थ — तिस स्वयंज्योति परमात्मा विषय सूर्य्य चन्द्र तारागण नहीं प्रकाश कर सकते और यह विद्युत भी नहीं प्रकाश कर सकते और यह अल्प प्रकाश अग्नि तो कैसे प्रकाश करसकता है किन्तु तिस प्रकाशमान ज्योति को अनु लक्ष्य अर्थात् आश्रय कर तिसके प्रकाश कर सर्व जगत प्रतीत होता है सामान्य औरविशेष पदार्थ के तादात्म्य संबन्ध में षष्ठी है अर्थात् सामान्य चेतन सम्बन्धी जो कार्य्य गत विशेष प्रकाश है तिस करके सारा जगत् प्रकाशित होता है। गुरु साखि जोत प्रगट होइ। इस पद का भाव यह है साखि नाम है मध्यस्थ का जब गुरु अधिकारी तथा शब्द ब्रह्म के मध्यस्थ होवें तो स्वयं ज्योति स्वरूप आत्मा की प्रतीतिहोती है। तथाच।

श्रुति ॥ परीक्ष्यलोकान् कर्म्मचितान् ब्राह्मणो

निर्वेदमायान्नास्त्य कृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् सामित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्। मुण्ड०उ०प्र०।खं०मं०१२।

अर्थ– कर्म चित जो स्वर्गादि लोक हैं तिनको परीक्ष नाम विचार करके अनित्य स्वरूप से निश्चय कर ब्राह्मण जो मुमुक्षु है सो निर्वेद नाम वैराग्य को आयात् नाम कुर्यात् करे ब्रह्माधीते ब्राह्मणः इस अर्थ को लेकर् अधीत वेद अधिकारी ब्राह्मण शब्द का अर्थ है जेकर वेद अध्ययन नहीं करा होगा तो स्वर्गादि लोककी परीक्षा ही कैसे करेगा स्वर्गादि लोक के स्वरूप गुण दोष जाने विना परीक्षा संभव नहीं इससे अधीत वेद सामान्य ज्ञान वाला अधिकारी यह निश्चय कर् जो अकृत नाम कर्म से अजन्य वस्तु कृत नाम कर्म्म करके नास्ति नहीं होसकती तिस नित्य अक्षर के विज्ञान वास्ते गुरु की शरण होवे समित् नाम शुद्ध पदार्थ को हाथ में लेकर समित् होमीय काष्ट का नाम है तथा शुद्ध वस्तु का नाम है सो प्रकरण में गुरु कर्म्मकाण्डी तो नहीं इससे कुछ भी फल पुष्पादि द्रव्य को लेकर गुरु की शरण प्राप्त होवे श्रोत्रिय अधीत वेद तथा ब्रह्मनिष्ट अर्थात् अपने आत्मा को ब्रह्म जानने वाला जो आचार्य्य है तिससे वो ज्योति स्वरूप परमात्मा प्रगट होता है।जो तिस भावे सो आरति होय। अर्थ जो तिस परमात्मा को भावे नाम भावना करे निरन्तर अभ्यास करे तब सो पूर्व निर्णीत सर्वाधिष्ठान चैतन्य भावना सर्वदा स्थिर होवे। तथाच॥

श्रुति। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो नमेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैषवृणुते तेनलभ्यस्तस्यै ष

आत्माविवृणते तनूंस्वाम् ॥ कठ०उ०व२ मं०२३।

पद। न अयम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन यम् एव एषः वृणते तेन लभ्यः तस्य एषः आत्मा विवृणते तनूम् स्वाम्।

अर्थ॰ प्रवचन वेदपाठ मेधा धारणावती बुद्धि बहुतसा श्रवण इन करके यह आत्मा सर्व का अनुभव करने वाला लभ्य नाम प्राप्य नहीं होता और यह मुमुक्षु जिस आत्मा को वृणते नाम निरन्तर अभ्यास करता है तब परमात्मा अपनी कृपा से अपनी मूर्त्ति जो है निर्गुण वा सगुण तिसको अधिकारी के प्रति विवृणते नाम प्रकाशयति प्रकट करदेता है। हरि चरण कमल मकरन्द लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पियासा॥ इस वाक्य से श्रीगुरु निर्गुण ध्यान में असमर्थ अधिकारी को सगुण ज्ञान का उपदेश करते हैं। अर्थ। हे भगवन् पूर्व उक्त मोह नामक विचित्र शक्ति वाले मोहि अनदिनो नाम नित्यंप्रति हरि चरण कमल मकरन्द लोभित मनो। अर्थ। आपके हरि नाम संसार दुःख का नाश करने वाले स्वरूप के कमलरूप जो चरण तिनके ध्यानजन्य जो मकरन्द नाम रस तिसमें मेरा मन लोभित नाम लोभयुक्त होरहा है भाव यह है आपके चरणों के ध्यानजन्य जो आनन्द है तिसमें मेरा चित्त आसक्त होरहा है त्यागने में असमर्थ है।

श्रुति। अतसीपुष्पसंकाशं नाभिस्थानेप्रतिष्ठितम्। चतुर्भुजं महावीरं पूरकेण विचिन्तयेत् ॥१॥ कुम्भकेन हृदिस्थाने चिन्तयेत् कमलासनम्

ब्रह्माणंरक्तगौराङ्गं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥१२॥ रेचकेनतुविद्याच्चललाटस्थं त्रिलोचनम्। शुद्धस्फटिक संकाशं निष्कलं पापनाशनम्। अथर्ववेदीय ध्यानबिन्दु। मं०११।१२।

भावार्थ — पूरक प्राणायाम काल में प्राणायाम करके नाभि स्थान में स्थित चतुर्भुज महावली अलसि पुष्पवत् शाम प्रकाश को चिन्तन करे और कुम्भक प्राणायाम करके हृदय स्थान में कमलासन ब्रह्मारक्तता विशिष्ट गौर शरीर प्रकाशमय चतुर्मुख सर्व प्रपंच के पितामह को चिन्तन करे तथा रेचक प्राणायाम करके ललाट स्थान में त्रिनेत्र शुद्ध स्फटिक मणिवत् प्रकाश पापनाशक निष्कल नाम प्रकाशमय आकारमात्र को विद्यात् नाम जाने। इस वाक्य में गुरुजी नेइस सगुणध्यान का उपदेश करा है निर्गुण में चरणादि कैसे प्रतीत होंगे। श्रीमधुसूदन स्वामीजी ने भी सगुणध्यान सफल निरूपण करा है। तथाहि।

श्रीगोविन्द पदारविन्द मकरास्वाद शुद्धाशयाः। संसाराम्बुधि मुत्तरंति सहसा पश्यन्ति पूर्णं महः। वेदान्तैरवधारयान्ति परमंश्रेयस्त्यजंति भ्रमम्। द्वैतंस्वप्नसमंविदान्ति विमलां। विन्दन्ति चानन्दताम्।

भावार्थ — श्रीगोविन्द भगवान के चरणारविन्द के ध्यान जन्य आनंद के आस्वाद नाम अनुभव से शुद्धचित्त जो हैं वे संसार समुद्र को शीघ्र तरजाते हैं और पूर्ण जो महः नाम तेज ब्रह्मरूप तिसको अनुभव करते हैं और वेदान्त वाक्यों करके परमश्रेय को

निश्चय करते हैं और भ्रम को त्यागदेते हैं और द्वैत को स्वप्नवत जानते हैं और निर्मल आनन्द वस्तु को प्राप्त होकर सदा अनान्दित रहते हैं अब एक वाक्य करके सर्व साधनों का फल अत्यन्त भगवद् अनुराग पूर्वक भगवत्कृपा की प्रार्थना करते हैं। श्रीगुरु कृपाजल देह नानक सारंग को होय जाते तेरे नाइ वासा। सत्कर्म उपासना ज्ञान इन सर्व का भगवत्कृपा असाधारण कारण है इस वास्ते श्रीगुरु कहते हैं सारंग नाम पपैया समान जो संसार ताप संतप्त अधिकारी तिसको हे भगवन् अपनी कृपारूप जल देवो जिससे ज्ञानप्राप्ति द्वारा तेरे नाय नाम आपके तादात्म्य सम्बन्ध से आपके संग वास हो जाते भाव यह है आपकी कृपा बिना आपकी प्राप्ति की आशा नहीं। तदुक्तं भगवद्गीतायां।

मच्चित्ता मद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम्। क
थयंतश्च मां नित्यं तुष्यन्ति चरमंतिच॥९॥
तेषांसततयुक्तानां भजतांप्रीतिपूर्वकम्। ददा
मिबुद्धि योगंतं येनमामुप यान्तिते।१०॥ तेषा
मेवानु कम्पार्थ महमज्ञानजं तमः॥ नाशया
म्यात्म भावस्थो ज्ञान दीपेन भास्वता॥११॥
अ०१०।

अर्थ— चित्त करके मेरी स्मृति और मद्गत प्राण नाम पूर्व उक्त ध्यान बिन्दु रीति से प्राणायाम कर मेरा ध्यान और परस्पर मेरा बोधन करना विचार काल में तथा किसी निमित्त से वा स्वयं मेरा कथन करना ऐसे जो तोष वा रमण करते हैं तिन निरन्तर युक्त प्रीति पूर्वक भजन करने वालों कोबोबुद्धि नाम ज्ञान योग

को देता हूं जिस करके मेरे भाव को प्राप्त होजांय वो पुरुष और ति
न पर कृपाकर तिनके आनन्द वास्ते तिनकी जो निरन्तर भावना ज
न्य अखण्ड वस्तु विषय वृत्ति है तिसमें स्थित होकर प्रज्वलित
हुआ अज्ञान जन्य तम नाम कार्य्याध्यास कर्तृ भोक्तृत्व सुखित्व
दुःखित्व को नाश करदेता हूं अब इस स्थान पर यह भी वि
चार करना जो दयानन्द जगत् वर्त्ति यावत्सत्पुरुष निंदक ने। स
त्यार्थ० समु० ११ पृ० ३६२। में देखो। यह लिखा है जो नानक
जी का आशय तो इच्छा था पर विद्या कुछ भी नहीं थी। क्यों
कि जो विद्या होती तो निर्भय शब्द के स्थान में निर्भउ कैसा
लिखा जाता इससे संस्कृत कुछ भी नहीं पडे थे। तो दयानन्द
से हम यह पूछते हैं जो तुमने इसी पृष्ठ में ३६२ यह लिखा
है जो वेद तो सब विद्याओं का भण्डार है तिसमें यह प्रतीत
होता है जो दयानन्द संस्कृत पडा होता तो सर्व शब्द के स्थान
में सब कैसे लिखता और आगार शब्द के स्थान में भण्डार कै
से लिखता। **प्रश्न**। ऐसी बोलचाल जानके लिखा है। उत्तर
तो गुरुजी ने भी ऐसी बोली देश की जानके लिखा है। और
जेकर वेद उनको हिरण्यगर्भादि वत् स्वयं प्रतीत नहोता तो उन
के वाक्यों में वेदार्थ कैसे प्रतीत होता इससे वे स्वयं भात वेद
थे और जो कहा संस्कृत श्लोक कहने में उपालम्भ सो महा
विद्या हीनता का बोधक है क्योंकि संस्कृत श्लोक पद का
यह अर्थ है संस्कृत पद घटिताः श्लोकाः संस्कृत श्लोकाः
सो संस्कृत पद घटित वो गुरुजी के श्लोक नेत्रवाले को स्पष्ट
प्रतीत होते हैं और दयानन्द तो आप दंभी फरवंडी होने से सर्व

को वैसेही देखता है और निन्दा उपालंभ भी बिना विचारे दि
या है क्योंकि यह तो वेद में भी तुल्य है क्योंकि उदित अनुदि
त होम की परस्पर निन्दा तैसे पूर्व उक्त कठ श्रुति में नायमात्मा
प्रवचनेन लभ्यः इत्यादि में वेदपाठ की निन्दा कर आत्मानुसंधा
न सर्वथा कर्त्तव्य बोधन करा है और दयानन्द का जैसे वेद
शास्त्र में बोध है तिसकी परीक्षा तो इसी ग्रन्थ में होती जा
ती है॥

अथ वाद्युक्त प्रणवार्थ खण्डन और श्रुति सिद्ध प्रणवार्थ और गुरुनानकके मिथ्या भिप्राय निरूपक कपट निरूषण करते हैं॥१३

और दयानन्द का वेदज्ञता तो प्रणव के अर्थ निरूपण से ही सर्व
सज्जन पुरुष जान लेवेंगे जो प्रथम ग्रास में ही मक्षिका पात
हो तो क्यों नहीं भोजन से तृप्त होगा अब देखना चाहिये प्रणव
की व्याख्या अनन्त प्रकार से वेद में प्रसिद्ध है और दयानन्द
ने जो प्रणव की व्याख्या करी है सो भी देखनी चाहिये। तथा
हि॥ ओ३म् यह ॐकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है
क्योंकि इसमें जो अ उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओ३म्
समुदाय हुआ है इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते
हैं जैसे अकार से विराट अग्नि और विश्वादि। उकार से हिर
ण्यगर्भ वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर आदित्य और प्रा
ज्ञादि नामों का बाचक और ग्राहक है उसका ऐसाही वेदादि
सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है (सत्या० समु०१ पृ०१)

इस स्थान में यह विचार कर्त्तव्य है विवेकी पुरुष को दयानन्द लि
खता है जो कि उसका ऐसाही सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान कि
या है वो कोई एक तो मंत्र वा ब्राह्मण भाग का वाक्य इस अर्थ
का प्रतिपादक लिखा होता जिसमें अकार वर्ण में विराट अग्नि
विश्व नाम आते हैं और उकार वर्ण में हिरण्यगर्भ वायु नाम आ
ते हैं। और मकार वर्ण में ईश्वर आदित्य प्राज्ञ नाम आते हैं इ
स अर्थ की प्रतीति हो सो ओंकार के ऐसे अर्थ का प्रतिपादक न
मंत्र और न ब्राह्मण न शास्त्र न पुराण एक भी नहीं मिलने का
केवल प्रथमही जाल को अपने सत्यार्थ प्रकाश में वास्तव मि
थ्यार्थ प्रकाश में लिखा है जो कदाचित इस अर्थ का प्रतिपादक
कोई वेदादि सत्यशास्त्रों में वाक्य है तो लिखा होता इससे के
वल मिथ्या से बिना सत्य का लेश भी नहीं जिसको अति प्रसिद्ध
प्रणव परमहंसों के गुप्त धन की ही खबर ही नहीं तो वो कपटभि
क्षु से सिवाय और क्या होसकता है किन्तु केवल कपट भिक्षु है
और दयानन्द के व्याख्यान में जो यह विशेषता केवल काल्पित
बोधन करी जो इसमें बहुत से नाम विराटादि आते हैं तब तो ना
म तथा शब्द रूप जो नाम हैं तिनमें यावत् वैखरी मध्यमा पश्य
न्ती परा शब्द ब्रह्म तक सबही प्रविष्ट हैं तो तिन दोनों नामों को
प्रणव से अत्यन्तही अधिकता कैसे नहीं कहते इससे केवल
शास्त्रप्रमाण गम्यही विशेषता है सो शास्त्र ऐसे अर्थ को नहीं बो
धन करता जो प्रणव वर्ण अकारादि विराटादि शब्द के बोधक
हैं और प्रणव का अर्थ तो अनंत प्रकार से उपनिषद् जो परम
हंसों का परमप्रिय वेद रहस्य है तिसमें लिखा है परन्तु यह

यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा उपनिषद् की रीति से ओंकार का अर्थ दिखलाते हैं।

तथाहि ॥ द्वेवावब्रह्मणोरूपे मूर्त्तञ्चा मूर्त्तञ्चाथ यन्मूर्त्तं तद सत्त्यं यद मूर्त्तं तत्सत्त्यं तद्ब्रह्मत ज्ज्योति र्यज्ज्योतिः सआदित्त्यः सवाएष ओमित्ये तदात्मा भवत् सत्रेधात्मानं व्यकुरुता ओमिति तिस्रो मात्रा एताभिः सर्वमिदमो तं प्रोक्तं चैवास्मीत्येवंह्याह।

पद। द्वे वाव ब्रह्मणः रूपे मूर्त्तम् च अमूर्त्तम् च अथ यत् मूर्त्तम तत् असत्यम् यत् अमूर्त्तम् तत् सत्यम् तत् ब्रह्मयत् ब्रह्म तत् ज्योतिः यत् ज्योतिः सः आदित्त्यः सः वै एषः ओम् इति एतदात्मा अभवत् सः त्रेधा आत्मानम् वि अकुरुत ओम् इति तिस्रः मात्रा एताभिः सर्वम् इदम् ओतम् प्रोतम् च एव अस्मि इति एवम् हि आह।

भावार्थ – दो ब्रह्म के रूप हैं मूर्त्त तथा अमूर्त्त कार्य्य का नाम मूर्त्त और कारण का नाम अमूर्त्त है अथ नाम इन दोनों के मध्य जो मूर्त्त है सो तो असत्य नाम वागाल्म्भन मात्र है अर्थात् कारण सत्ता अतिरिक्त सत्ता शून्य है और जो अमूर्त्त है कारणात्मा सो सत्य है अर्थात् यावत् कार्य्य वर्ग की सत्ता वो कारणात्मा है जैसे कटक कुण्डलादि कार्य्यवर्ग की सत्ता नाम वास्तव रूप सुवर्ण है तैसे कारणात्माही यावत् प्रपंच की सत्ता है अर्थात् वास्तव रूप है और जो कारण है सो ब्रह्म है परमार्थ सत्त्य सर्वाधिष्ठान जो ब्रह्म है सो ज्योतिः स्वभाव स्वयं प्रकाश है इस स्थान में ब्रह्म

को कारण कहने से और सर्ब प्रपंच का वास्तब रूप कहने से स्वतंत्र जड़ प्रकृति की जगत् की उपादान कारणता पक्ष कपटभिक्षु स्वीकृत भी असंगत कहा। जो स्वयं ज्योति ब्रह्म है सो यह आदित्य है प्रत्यक्ष सिद्ध आदित्य को सर्वाधिष्ठान ब्रह्मरूपता कही तिस का तात्पर्य्य यह है सच्चिदानन्द रूप करके ब्रह्म को सर्वात्मता है और आदित्य रूप करके सर्ब जगत् पालकता है इसी वार्त्ता को ऋग्वेद का मंत्र भी कहता है।

तथाहि। चित्रंदेवानामुद्गादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ऋ०। मं०१। सूक्त ११५। मं०१।

भावार्थ ~ देवताओं के बीच अनीक नाम मुख्य,, चित्र नाम पूजनीय मित्र और बरुण तथा अग्नि इन कर उपलक्षित सर्व देवताओं का चक्षु नाम नेत्र स्थानापन्न सूर्य्यमण्डल उद्गात् नाम ऊर्द्धगमन करता भया अर्थात् सर्व लोक को प्रकाश करता हुआ सर्व के उपरि वर्त्तमान है और स्वर्ग तथा पृथिवी और अन्तरिक्ष में आप्रा नाम पूर्ण होकर वर्त्तमान है और सच्चिदानन्द से स्थावर जंगम यावत् प्राणिसमूह का आत्मा नाम प्रत्यगात्मा स्वरूप है सो यह सर्वात्मा ब्रह्मरूप सूर्य्य ही ॐकारात्मा होता भया अर्थात् कारणात्मा नादविन्दु परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी वाणी भाव को पूर्व उक्त प्रकार से होता भया सो वैखरी वाणी रूप होकर त्रि प्रकार से अपने आत्मा को करता भया ओमिति नाम इस प्रकार से तीन मात्रा अकार उकार मकार रूप ॐकार

होता भया और वो कारणात्मा आदित्य यह अनुभव करता भया जो इन तीन मात्रा ओंकार से इस सर्व प्रपंच में ओत प्रोत रूप करके वर्त्तमान हूं जैसे पट में जो दीर्घ तन्तु हैं वे पट में ओत हैं और जो कुटिल तन्तु हैं वे प्रोत हैं तैसे अ उ म् करके जो वाच्य विराट हिरण्यगर्भ अव्याकृत ईश्वर तथा विश्व तैजस प्राज्ञ रूप से सर्व प्रपंच में ओत प्रोत हूं ऐसा आदित्यात्मा अनुभव करता भया॥

श्रुति। एतद्वाआदित्य ओमित्त्येवंध्यायत आत्मानं युञ्जीतेति।

पद। एतत् वै आदित्यः ओम् इति एवम् ध्यायत आत्मानं युञ्जीत इति।

अर्थ— जिस कारण से आदित्य ओंकार रूप है तैसे ध्यान करो हे ऋषि ओ यह जो आदित्य है सो ओंकार रूप है ऐसे ध्यान करो और आत्मा नाम अपने प्राण प्रधान प्रत्यगात्मा को आदित्य जो विराट हिरण्यगर्भ अव्याकृत रूप हैं तिसमें युक्त करो और आदित्यरूप विराटादि को अपने आत्मा में युक्त करके अहंग्रह ध्यान करो। अब ओंकार करके जो आत्मध्यान प्रकार कहा है तिसको शाखान्तर प्रमाण से दृढ़ता के वास्ते और गुणान्तर रूप जो विशेष है तिसको विधान करते हैं। अनुवाकान्तर से।

॥ श्रुति ॥ अथान्यत्राप्युक्त मथखलुय उद्गीथः सप्रणवोयः प्रणवः सउद्गीथ इत्यसौवा आदित्य उद्गीथ एष प्रणवा इत्येवं ह्याह

पद। अथ अन्यत्र अपि उक्तम् अथ खलु यः उद्गीथः सः प्रणवः यः प्रणवः सः उद्गीथः इति। असौ वै आदित्यः उद्गीथः एषः प्रणवः इति एवम् हि आह।

अर्थ — पूर्व उक्त प्रकार आदित्त्य को ओंकार रूपता अन्यत्र नाम सामवेदीय च्छादोग्य शाखा में भी कहा है जो उद्गीथ है सो प्रणव है और जो प्रणव है सो उद्गीथ है भाव यह है कोई शाखापाठी उद्गीथ कहते हैं और कोई प्रणव कहते हैं वस्तु एक ओंकारही है और यह प्रत्यक्ष सिद्ध आदित्त्य ही उद्गीथ और प्रणव है ऐसे छान्दोग्य श्रुति कहती है। भाव यह है आदित्त्य दृष्टि करके प्रणव अक्षर उपासना करने को योग्य है॥

श्रुति॥ उद्गीथंप्रणवाख्यं प्रणेतारंभा रूपंवि
गतनिन्द्रं विजरं विमृत्त्युं त्रिपदंत्र्यक्षरं पुनः
पञ्चधाज्ञेयं निहितं गुहाया मित्त्येवं ह्याह।

पद। उद्गीथम् प्रणवाख्यम् प्रणेतारम् भारूपम् विगत निन्द्रम् विजरम् विमृत्त्युम् त्रिपदम् त्र्यक्षरम् पुनः पंचधा ज्ञेयम् निहितम् गुहायाम् इति एवम् हि आह।

अर्थ — गुणान्तर विशिष्ट आदित्य के ध्यान वास्ते गुणान्तर वर्णन करते हैं। उद्गीथ तथा प्रणवाख्य नाम प्रणव वाच्य। और प्रणेता तिस २ कर्म का प्रेरक और भा रूप नाम प्रकाशस्वरूप विगत निन्द्र नाम तम तथा अविद्या वर्जित विजर जरा रहित सदा एक रूप विमृत्त्यु अविनाशी त्रिपद जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति वा भूर्भुवः स्वर रूप तीन लोक हैं पद नाम स्थान जिसके ऐसा है प्राणरूप वा आदित्यरूप अकार उकार मकार

रूप तीन अक्षरोंवाला ओंकार पुनः प्राणापान समान उदान व्यान रूप से पंचप्रकार का है और देहरूप गुहा में प्राणरूप से और प्रत्यगात्मा रूप से पंचकोश रूप गुहा में निहित है अर्थात् स्थित है ऐसे गुण विधायक श्रुति कहती है इस स्थान में आदित्य में इतने गुण कहे जो उद्गीथा भिन्न प्रणव वाच्यत्व सर्व कर्म्म प्रवर्त्तकत्व प्रकाश स्वरूपत्व अविद्या तमो वर्जितत्व सदा एक रूपत्व अविनाशित्व जाग्रदादि भूरादि पदवत्त्व आकारादि मात्रा रूपत्व प्राणादि पञ्चधात्व देह पंचकोश गुहानिहितत्वइतने गुण विशिष्ट आदित्य को ध्येयत्व कहा है सो इतने गुण ब्रह्म माननेसेही संभव हैं इससे आदित्य भगवान् प्रत्यक्ष देव। इससे सूर्य अग्न्यादि को ब्रह्म भिन्न जड़ कथन करना पूर्व उक्त ऋग्वेद मंत्र तथा मैत्रायणी शाखा से विरुद्ध है

श्रुति ॥ ऊर्द्ध्वमूलं त्रिपाद्ब्रह्म शाखा आकाश वाय्वग्न्युदक भूम्यादयएको अश्वत्थनामैतद्ब्रह्मै तस्यैतत्तेजोयदसा आदित्य ओमित्येतदक्षरस्य चैतत् तस्मादोमित्यनेनैतदुपासीताजस्त्रमित्त्येको ऽस्य सम्बोधयितेत्येवंह्याह। एतदेवाक्षरंपुण्यमेतदेवाक्षरंपरं एतदेवाक्षरंज्ञात्त्वा यो यदिच्छति तस्यतत्।

पद। ऊर्द्ध्वमूलम् त्रिपाद् ब्रह्म शाखा वाय्वाग्न्युदक भूम्यादयः एकः अश्वत्थनामा एतद्ब्रह्म एतस्य एतत्तेजः यत् असौ आदित्यः ओम् इति एतदक्षरस्य च एतत् तस्मात् ओम् इति अनेन एतत् उपासीत अजस्त्रम् इति एकःअस्य

सम्बोधयिता इति एवम् हि आह एतत् एव अक्षरम् पुण्यम् एतत् एव अक्षरम् परम् एतत् एव अक्षरम् ज्ञात्वा यः यत् इच्छति तस्य तत्।

भावार्थ — पूर्व श्रुति में आदित्य की सर्व गुणों में भा रूपता ध्येय कही इससे यह कहा जो परब्रह्म तथा प्रणव वाच्य वाचक रूप हैं तिनका सारभूत यह सविता है इसवास्ते सविता की महिमा प्रगट करते हैं (एको अश्वत्थनामा त्रिपाद्ब्रह्म रूपोर्द्ध मूलम् आकाश वाय्वग्न्युदक भूम्यादयः शाखाः) यह अन्वय है एक जो अश्वत्थ नामक यह संसार वृक्ष है तिसका त्रिपाद् जो ब्रह्म सोई ऊर्द्ध नाम उत्कृष्ट विकारातीत मूल है अर्थात् उपादान कारण है (यथा वृक्षस्य बीजं मूलम्) जैसे वृक्ष का बीज मूल है तैसे संसार वृक्ष का विकारातीत ब्रह्मही मूल है और आकाश वायु अग्नि उदक भूमि और आदि पद से चराचर भूत यह संपूर्ण शाखा हैं और दयानन्द स्वीकृत जड़ प्रकृति जगत् उपादानता इस श्रुति विरुद्ध है अब कहां तक लिखेंगे विवेकी पुरुष अपने आपही जान लेंगे वेद वाक्यों में वा व्याससूत्रों में एक वाक्य भी ब्रह्म से अतिरिक्त को उपादान कारणता का बोधक नहीं मिलने का और एतत् ब्रह्म यह जगत् ब्रह्म उपादान कारण वाला होने से ब्रह्म है जैसे सुवर्ण उपादान कारण वाले कटकादि सुवर्ण हैं और इस सर्व कारण ब्रह्म का यह आदित्य रूप प्रकाश तेज नाम सार है और ॐकार का भी यह आदित्य ही सार है भाव यह है यावत् ब्रह्म कार्य्य ब्रह्माण्ड का सार आदित्य है और पिण्ड

का सार प्राणात्मा है और सो प्राण और आदित्य एक रूप हैं इससे ओंकार का सार प्राणरूप आदित्य है तस्मात् पिण्ड ब्रह्माण्ड का साररूप जो प्राणादित्यात्मा तिसको अजस्र नाम निरन्तर आलस्य त्यागकर ओम् इस अक्षर करके उपासना करे तात्पर्य्य यह है पिण्ड ब्रह्माण्ड का साररूप जो प्राण से अभिन्न आदित्य है तिसकी बुद्धि से ओंकार की उपासना करे और एक मंत्र श्लोक रूप इस प्रणव के महात्म का बोधक भी है ऐसे श्रुति कहती है यह प्रणव अक्षर ही पुण्य नाम पुण्य कर्म्म में प्रयुक्त हुआ पुण्य का दाता है और यह अक्षर ही परब्रह्म का प्रकाशक होने से पर है बहुतसा क्या कहें इस अक्षर को जानकर जो मेरे इष्ट का देनेवाला यह है ऐसे निश्चय कर जिस वस्तु की इच्छा करता है मोक्ष वा अभ्युदय सोई इस अक्षर की उपासना से होता है।

श्रुति ॥ अथान्यत्राप्युक्तं स्वनवत्येषास्य तनूर्य्या ओमिति स्त्रीपुन्नपुंसकेति ।लिङ्गवत्येषाऽथाग्निर्वायुरादित्या इतिभास्वत्येषाथ ब्रह्मारुद्रोविष्णु रित्यधिपति वत्येषाथगार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीया इति मुखवत्त्येषाथ ऋग्यजुः सामेति विज्ञान वत्त्येषा भूर्भुवः स्वरितिलोकवत्येषाथभूतं भव्यं भविष्यदिति कालवत्येषाथ प्राणोऽग्निः सूर्य्या इति प्रतापवत्येषा थान्नमापश्चन्द्रमा इत्याप्यायनवत्येषाथ बुद्धिर्मनोऽहङ्कारा इति चेतनवत्ये

षाथ प्राणोऽपानो व्यान इति प्राणवत्येषेत्यत ओ
मित्युक्तेनैताः प्रस्तुता अर्चिता अर्पिता भवन्तीत्ये
वंह्याह एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्मयदो
मित्येतदक्षर मिति।५। मैत्र्युपनिषद् प्रपाठक।६
अ०३।४।५

पद। अथ अन्यत्र अपि उक्तम् स्वनवति एषा अस्यतनू
या ओम् इति स्त्री पुन्नपुंसका इति लिङ्गवति एषा अथ
अग्निः वायुः आदित्यः इति भास्वति एषा अथ ब्रह्मा रु
द्रः विष्णुः इति अधिपति वति एषा अथ गार्हपत्यः द
क्षिणाग्निः आहवनीयः इति सुख वति एषा अथ ऋग्य
जुः साम इति विज्ञान वति एषा भूर्भुवः स्वः इति लोक
वति एषा अथ भूतं भव्यं भविष्यत् इति कालवति एषा
अथ प्राणः अग्निः सूर्यः इति प्रतापवति एषा अथ अ
न्नम् आपः चन्द्रमः इति आप्यायन वति एषा अथ बु
द्धिः मनः अहंकारः इति चेतनवति एषा अथ प्राणः अ
पानः व्यानः इति प्राणवति एषा इति अतः ओम् इति उ
क्तेन एताः प्रस्तुताः अर्चिताः अर्पिताः भवन्ति इति एवंहि
आह सत्य काम परम् च अपरम् च ब्रह्मयत् ओम् इ
ति एतदक्षरम् इति।

अर्थ— अब परब्रह्म तथा अपरब्रह्म रूप से ओंकार का ध्या
न विधान करने वास्ते परमात्मा का अपरब्रह्म जो सगुणरूप
है तिसका निरूपण करते हैं और शाखा में भी परमात्मा का
सर्वात्मा रूप से कथन करा है जो अत्यन्त उच्चैः स्वर से

उच्चारण करा ओम् है सो परमात्मा की स्वनवति नाम शब्दवति तनू नाम मूर्त्ति है तथा स्त्री पुरुष नपुंसक यह परमात्मा की लिङ्गवति मूर्त्ति है और अग्नि वायु आदित्य यह भास्वति मूर्त्ति है और ब्रह्मा रुद्र विष्णु यह अधिपति वति मूर्त्ति है और गार्हपत्य दक्षिणाग्नि आहवनीय यह मुखवति नामक मूर्त्ति है और ऋग्यजुः साम यह विज्ञानवति मूर्त्ति है और भूर्भुवः स्वर यह लोकवति मूर्त्ति है और भूत भव्य भविष्यत् यह कालवति मूर्त्ति है और प्राण अग्नि सूर्य्य यह प्रतापवति मूर्त्ति है और अन्न आप चन्द्रमा यह आप्यायन वति नाम चराचर जगत् की वृद्धि करनेवाली मूर्त्ति है और बुद्धि मन अहंकार यह चेतनवति मूर्त्ति है। और प्राण अपान व्यान यह प्राणवति मूर्त्ति है ओम् इस अक्षर के कथन से दीर्घ प्रणव स्वनवति मूर्त्ति से लेकर प्राणवति मूर्त्ति तक स्तुति पूर्वक पूजित होती हैं और प्रणववाच्य परमात्मा में आरोपित होती हैं ऐसेही श्रुति कहती हैं पिप्पलाद ऋषि कहते हैं हे सत्यकाम परनाम कारणात्मा और जो पूर्व उक्त स्वनवति आदि मूर्त्तिमान अपर हैं सो ओम् यह अक्षर है। भाव इस स्थान में यह है जो प्रथम मात्रा अकार की स्त्रीलिङ्ग और अग्निभाः ब्रह्मा अधिपति गार्हपत्य अग्निमुख भूलोक भूत काल प्राण प्रताप अन्न आप्यायन बुद्धि चेतन और प्राण नामक प्राण इतनी विभूति है तथा उकार मात्रा की पुल्लिङ्ग वायुभाः रुद्र अधिपति दक्षिणाग्नि मुख भुवर्लोक भव्य नाम वर्त्तमान काल अग्नि प्रताप आप आप्यायन मन चेतन और अपान नामक प्राण इतनी विभूति है और मकारमात्रा की नपुंसक लिङ्ग आदित्यभा विष्णु अधिपति

आह्वनीय अग्निमुख स्वर्लोक भविष्यतकाल चन्द्रमा आप्यायन अहंकार चेतन और व्यान नामक प्राण इतनी विभूति हैं इन सर्व का जो कारणात्मा ब्रह्म है सो ओंकार का लक्ष्य अर्थ है ऐसा अर्थ उपासना पद्य में है इस श्रुति में जैसी ओंकार की व्याख्या करी है इसी प्रकार की निरुक्त में एक मंत्र ऋग्वेद का लिखकर करी है मंत्र व्याख्याद्वारा। तथाहि।

ऋचो अक्षरे परमेव्यो मन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्नवेद किमृचाकरिष्यातिय इत्तद्विदुस्तइमे समासते॥ ऋ०। म०। १। सू० १६४। मं०३९।

इति विदुष उपदिशति कतमत्तदे तदक्षरमोमित्येषा वा गिति शाकपूणिर्ऋचो ह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते नाना देवतेषु च मंत्रेष्वे तद्धवाएतदक्षरं यत्सर्वा त्त्रयीं विद्यां प्रति प्रतीति च ब्राह्मणम्। निरुक्त। अ०१३। पा०१। खं०१०। परिशिष्ट०प्र०। निरुक्त भाष्यम् कतमत् तदक्षरम् इति ओम् इत्येषा वाक इति शाकपूणः अभिप्रायः ओंकार मृतेन ह्यर्चयन्ति तस्याः अक्षरे परमे व्योमन व्योम विविध मास्मिन् शब्दजा तमो तमिति व्योम तस्मिन् तिसृषु मात्रासु अकारोकार मकार लक्षणा स्वरूप शान्तासु यदवशिष्यते तदक्षरं परमं व्योम शब्द सामान्य मभिव्यक्त मित्यभिप्रायः यास्मिन् देवा अधिनिषण्णाः सर्वे। ऋगादिषु ये देवाः ते मंत्र द्वारेणाक्षरे निषण्णाः तस्य शब्द कारणत्वात्। अथवा प्रथमायां मात्रायां पृथिवी अग्निः ऋग्वेदः पृथिवी लोक निवासिन

इत्येवं द्वितीयायां मात्रायां अन्तरिक्षम् वायुः यजूंषि तल्लो
क निवासिनो जना इति तृतीयायां मात्रायांद्यौः आदित्यः सा
मानि तल्लोक निवासिनो जना इति । विज्ञायते हि ओंकार
एवेदं सर्वम् इति यस्तन्न वेद अनया विभूत्याक्षरम् किम्
असौ ऋचा ऋगादि भिर्मन्त्रैः करिष्यति यस्तन्नाक्षरात्म
ना पश्यति । यइत्तद्विदुस्त इमे समासते इति विदुष उपदि
शति तेहि तत्परिज्ञाना त्ताद्भाव्य मुपगताः प्रणव विग्रह मा
त्मान मनु प्रविष्य समीकृता निर्वान्ति शान्तार्चिष इवा
नलाः इति ।

पद । ऋचः अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि वि
श्वे निषेदुः यः तत् न वेद किम् ऋचा करिष्यति ये
इत् तत् विदुः ते इमे समासते ऋ० । म १ । सू० १६४ ।
मं० ३९ ।

भावार्थ— इस मंत्र का दीर्घतमा ऋषि है और तीन प्रकार से
इस मंत्र का व्याख्यान लिखा है ओंकार परत्व तथा आदित्य परता
तथा आत्मतत्त्व परता तिसमें से प्रथम शाकपूणि नामक निरुक्त
कार के मत से ओंकार परता निर्णय करते हैं । **प्रश्न** । जिस परम
व्योम संज्ञक अक्षर में देवादि स्थित हैं सो अक्षर कौन है । उत्तर
ओम् यह वाक् नाम शब्द परम उत्कृष्ट व्यवन नाम सर्व की रक्षा
करनेवाला जो ओंकार है तिसमें ही सम्पूर्ण ऋग्वेदादि मंत्र अध्य
यन करेजाते हैं और नाना जो देवता हैं वे सर्वमंत्रों में स्थित हैं
और मंत्रों में कारण होने से यह अक्षर व्याप्त है क्योंकि सर्ववेद
त्रयी विद्या के प्रति यह अक्षर व्याप्त है ऐसे ब्राह्मण भी प्रतिपादन

करता है भाव यह है ॐकार बिना ऋग्यादि मंत्रों का उच्चारण न हीं होता क्योंकि।

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्य्यादादावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वम् परस्ताच्च विशीर्यति। मनु० अ०२।

यह मनुजी ने लिखा है इससे व्योम संज्ञक जो अक्षर है तिसमें नाना विध शब्द समूह ओत् नाम स्थित हैं मनु बचन का अर्थ वेदाध्ययन करता ——— वेद के आदि तथा अन्त में सर्वदा प्रणवका उच्चारण करे क्योंकि ॐकार से बिना अध्ययन करा स्रवति नाम निर्वीर्य होजाता है और आगे को द्वैधी भाव को प्राप्त होता है अर्थात फल को नहीं पैदा करता। प्रश्न। मंत्र तथा ॐकार शब्दरूप है इससे यह दोनों आकाश में स्थित हैं यावत शब्द समूह ॐकार में स्थित ——— कैसे कहते हो। उत्तर। ॐकार नाम यहां अकारादि मात्रा के शान्त होते जो परिशेष रहता है शब्द सामान्य व्योम नामक अक्षर उसका है इससे तिस अक्षर शब्द सामान्य नादरूप ॐकार में यावत मंत्र स्थित हैं और जिसमें सर्व देवता स्थित हैं क्योंकि मंत्रों में देवता स्थित हैं और मंत्र पूर्व उक्त नाद नामक अक्षर में स्थित हैं इससे मंत्रद्वारा यावत् देवता भी अक्षर में स्थित हैं अथवा प्रथम मात्रा में पृथिवी लोक अग्नि ऋग्वेद और पृथिवी लोक निवासि जन स्थित हैं और द्वितीय मात्रा में अन्तरिक्ष वायुः यजुर्मंत्र और अन्तरिक्ष लोक निवासिजन स्थित हैं और तृतीय मात्रा में द्यौलोक आदित्य साममंत्र और स्वर्गलोक निवासि जन स्थित हैं इसि वास्ते मांडूक्य उपनिषद् में ॐकार रा वेदं सर्वम्

यह कहा है जो इस विभूति सहित अक्षर को नहीं जानता सो ऋगा दि मंत्रों से क्या करेगा अर्थात् ऋगादि मंत्र निष्फल हैं उस पुरुष के जो अक्षर को विभूति सहित नहीं जानता अर्थात् यावत् मंत्रो को जो शब्द सामान्य नादरूप अक्षर वा अकारादि मात्रा रूप नहीं जानता तिसके ऋगादि मंत्र सभी व्यर्थ हैं और जो पुरुष उक्त रूप नाद वा उक्त विभूति सहित अक्षर को जानते हैं वे पुरुष समासते नाम प्रणव ज्ञान से अक्षर भाव ~~ को प्राप्त हुए अपने आत्मा को प्रणवरूप नि श्चय करके प्रणव में प्रविष्ट होकर समता को प्राप्त शान्तज्वाला अ ग्निवत् (निर्वान्ति नाम निर्वाण पदं मोक्षं प्राप्नुवन्ति) निर्वाण होते हैं और आदित्य पक्ष में तो इस मंत्र का यह अर्थ है जिस व्योमरूप परम अक्षर रूप आदित्य में सर्व देवता स्थित हैं मंत्रद्वारा तिस आ दित्य को जो नहीं जानते वे ऋगादि मंत्रों को क्या करेंगे ये इत नाम रा व तिस आदित्य को जानते हैं वे पुरुषही विद्वज्जन भूमि में सुखपूर्वक रोगादि रहित भोग सम्पन्न चिरकाल जीवते हैं आदि त्य भगवान् में ऋग्वेदादि स्थिति प्रकार तैतरीयारण्यक में कहा है। तथाहि॥

आदित्योवा एष एतन्मण्डलं तपति तत्रता ऋ चस्तदृचा मण्डलथं सऋचांलोको ऽथ यएष एतस्मिन्मण्डले ऽर्चिर्दीप्यते तानिसामानि स साम्नांलोको ऽथय एष एतस्मिन्मण्डले ऽर्चि षि पुरुषस्तानि यजूथंषि सयजुषा मण्डल थं सयजुषांलोकः सैषात्रय्येव विद्यात पति य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः। तै आ

अ०१०। अनु०२३।

भावार्थ— जो पूर्व प्रकरण में सर्व जगत् का कारण नारायण प्रतिपादन करा है सो यह आदित्य है सोपाधिक रूप करके वर्त्तमान तिसका यह मंण्डल ताप को करता है तिस मंण्डल में कर्म्म काण्डरूप ऋचावर्त्तमान होकर तिन ऋचाओं कार निष्पादित मण्डल है और सो मण्डल ऋचों का लोक है और जो इस मंडल में अर्चिः प्रकाशमान है सो साममंत्र रूप साममंत्रों का लोक है और जो अर्चि में पुरुष है देवता वर्त्तमान सो यजुर्मंत्र रूप है सो यजुर्मंत्र निष्पादित मण्डल यजुर्मंत्रों का लोक है सो यह त्रयी विद्याही तपति है जो यह अन्तर आदित्य में हिरण्यमय पुरुष है इसरीति से जब ऋगादि मंत्र आदित्य में स्थित भये तो मंत्रद्वारा यावत् देवता भी आदित्य में स्थित हैं इससे जो इस प्रकार से आदित्य को नहीं जानते वे ऋगादि मंत्रों से क्या करेंगे। आत्मतत्त्व पक्ष में यह अर्थ है जो अक्षर अविनाशी वस्तु — व्योम नाम आकाशवत् असंग स्वभाव परम सर्व प्रपंचाधिष्ठान सर्व उत्तम है जिसमें सर्व देवता तथा ऋगादि मंत्र स्थित हैं जो तिसको नहीं जानते सो ऋगादि मंत्र से क्या करेंगे अर्थात् तिनके ऋगादि मंत्र व्यर्थ हैं और ये इस अक्षर तत्त्व को जानते हैं ते (समासते नाम सुखिनोभवन्ति) अपुनरावृत्ति रूप मोक्षं प्राप्नुवन्ति) वे सुखपूर्वक मोक्ष को आप्त होते हैं इस स्थान में यह वार्त्ता विचारणीय है जो दीर्घतमा ऋषि ने प्रणव स्वरूप ज्ञान और आदित्य स्वरूप ज्ञान तथा आत्म स्वरूप ज्ञान की प्रशंसा वास्ते केवल ऋगादि पाठ की निन्दा करी है आक्षेप वाचक किम् शब्द से कुछ निन्दा

में तात्पर्य्य नहीं और यह नहीं कहाजाताजोवोमंत्रों को जानते नथे वा हमारे से कोई अधिक विद्वान पूछेगा इसवास्ते प्रथम ही निन्दा करना चाहिये इसवास्ते निन्दा करी किन्तु प्रणवादि ज्ञानको अत्यन्त प्रशस्त वोधन करा है इस रीति से श्रीगुरु नानकजी ने किसी वाक्य में निन्दा वेद की लिखी है तो केवल उस प्रकरण निर्णीत भगवद्भक्ति वा वैराग्य वा ज्ञान की प्रशंसा वास्ते निन्दा करी है निन्दा में तात्पर्य्य नहीं अन्यथा प्रकरणान्तर में स्वीकार वा प्रशंसा असंगत होगी इससे दयानन्द ने जो श्रीगुरु नानकजी के निन्दा का अभिप्राय निर्णय करा है सो तो अपनी कपटता को प्रगट करता है। क्योंकि दयानन्द ने पंचदशी आदि ग्रन्थ महाविद्वान विद्यारण्य स्वामी आदि आचार्य्य निर्मित तथा जगदीश भट्टाचार्य्य गदाधर भट्टाचार्य्यादि निर्मित तर्कशास्त्र की निन्दा करी है उनके आशय को नपहचान कर और इस कपट से जो मेरे कोकोई इन ग्रन्थों में से पूछेगा तो क्या कहुंगा और कहीं इनकी प्रशंसा भी करी नहीं जो पंचदशी वा जागदीश्यादि तर्कशास्त्र विचारणीय है ऐसा नहीं कहा इससे दयानन्द का कपट प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और श्रीगुरु नानकजी ने तो अनन्त स्थान में वेद विचारणीय कहा है। गुरुमुख परचे वेद विचारी। चार पुकार हंना तुमाने। षट् भी एका बात बखाने। दश अष्टी मिल एके कहिया। तौ भी योगी भेद न लहिया। इत्यादि वाक्यों में चार वेद षट्शास्त्र दश अष्टी नाम अष्टादश पुराण माने हैं जेकर दयानन्द वर्गा श्रीगुरु नानकजी के मन में कपट होता तो नमानते कहीं भी इससे दयानन्द वा दयानन्द के गुरू के ही मन में यह कपट है क्योंकि-

दयानन्द के गुरु ने यह समझकर जो नागोजी भट्टादि प्रणीत शब्देन्दु शेखरादि ग्रन्थ तो हमको आते नहीं जेकर कोई पूछेगा तो क्या कहेंगे अपनी प्रतिष्ठा का भंग जान निन्दा करी है तथाहि दयानन्द गुरु प्रणीत श्लोक॥

अष्टाध्यायी महाभाष्ये द्वे व्याकरण पुस्तके।
यदन्यद्दृश्यते किञ्चित तत्सर्वं धूर्त्त चेष्टितम्

अर्थ—अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य दो ही व्याकरण के पुस्तक हैं इनसे जो अन्यग्रन्थ देखे जाते हैं ते धूर्त्त पुरुषो कर रचित हैं। सो यहां देखना चाहिये धृतराष्ट्र की धूर्त्तता जो जब मरे तो वैयाकरण सर्वस्व तथा सिद्धान्तकौमुदी पास ते निकली अद्यापि पंडित युगलकिशोर के पास है क्योंकि उन वैयाकरण सर्वस्वादि ग्रंथ से बिना सूत्रों के उदाहरण ही नहीं कहे जाते इससे जिन ग्रंथों की निन्दा करनी उन्ही से फेर सूत्रार्थ बिचारना धूर्त्तता है और धृतराष्ट्र के दुर्योधन की लीला देखें सज्जन पुरुष काशिका कौमुदी बगल में दाबेही फिरता था इससे केवल धृतराष्ट्र दुर्योधनवत् जगत नाश में उद्यत् हैं क्योंकि कर्म्म उपासना तथा ज्ञानरूप वेदार्थ के नाश में प्रवृत्त हुआ है दयानन्द मिथ्यार्थ प्रकाश ग्रंथ बनाकर मूर्खों के हाथ में दिया सो लेकर व्यर्थ बकवाद करते हैं वेद का तो अक्षर भी नहीं जानते और बकें जो वेद में साकारादि निरूपण ही नहीं सारे प्रकरण को त्याग कर बीच से लेकर अपने मन की घडंत घडता है दयानन्द सो जैसे ओंकार का अर्थ दयानन्द ने वेद विरुद्ध करा था तिसका खंडन पूर्वक यथार्थ अर्थ उपासना में उपयोगि मंत्र ब्राह्मण निरुक्त प्रमाण से निर्णय करा।

अथ वादिकृत व्याहृत्यर्थ से विलक्षणार्थ और वादिकृत व्याहृत्यर्थ खण्डन निरूपण करते हैं।१४

अब व्याहृति का अर्थ उपासना में उपयोगि निरूपण करते हैं। त
याद्वि।

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासामुहस्मैतां चतुर्थीं माहाचामस्यः प्रवेदये ते। मह इति तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः तैतरीयारण्यक उपनिषद् अनु०।५।

अर्थ॰ इस उपनिषद् में ब्रह्म का उपदेश आगे पंचकोश रूप गुहा में करेंगे इसवास्ते प्रथम श्रद्धा पूर्वक गृहीत व्याहृतिओं का त्याग असम्भव है इसमे व्याहृति शरीर जो हिरण्य गर्भ तिसकी उपासना स्वाराज्यफल प्राप्ति हेतु का विधान करते हैं वो व्याहृति शरीर रूप हिरण्यगर्भ हृदय में ध्यान करने योग्य है भूः तथा भुवः और सुवः यह तीन व्याहृति हैं कहीं तो स्वः ऐसा व्याहृति का आकार होता है और कहीं सुवः ऐसा आकार होता है अर्थ का भेद नहीं क्योंकि प्राति शाख्य नामक जो केवल वैदिक व्याकरण है तिसमें स्वः के स्थान में सुवः और स्वर्ग के स्थान में सुवर्ग ऐसा शब्द प्रयोग वेद में होता है तिन तीन व्याहृतिओं के मध्य चतुर्थी व्याहृति महाचामस्यका पुत्र जो माहाचामस्य ऋषि है सो महर्व्याहृति को देखता भया इस स्थान में माहाचामस्य ऋषि स्मरण उपासना में उपयोगी है इसवास्ते ऋषि नाम से व्याहृतिका उपन्यास करा है तिस महर्व्याहृति में आगे ब्रह्मदृष्टि करना और

भूरादि व्याहृतिओं में बाहु आदि अङ्ग दृष्टि करना विधान कर्त्तव्य है इसवास्ते कहते हैं (तद्ब्रह्म स आत्मा अङ्गान्यन्या देवताः) अर्थ सो व्याहृति ब्रह्म है क्योंकि ब्रह्म भी महत् है और व्याहृति भी महः है इससे दोनों तुल्य हैं सो महर्व्याहृति हिरण्यगर्भ का आत्मा है अर्थात् अङ्गी है जैसे देवदत्त के हस्तादि अङ्ग हैं और मध्यभाग अङ्गी है तथा हिरण्यगर्भ के भी इतर जो लोकदेव वेद प्राणरूप देवता हैं वे अङ्ग हैं और महाव्याहृति अङ्गी है भाव यह है महाव्याहृति रूप जो अंगी है हिरण्यगर्भ तिसके भू व्याहृति को पाद और भुवः व्याहृति को बाहु और सुवः व्याहृति को शिरो रूप से ध्यान करे ऐसी उपासना विधि है अब अंगों में जो विशेष विधि है सो कथन करते हैं अर्थात् भूरादि प्रजापति अंगों को जिस २ रूप से चिन्तन करना है सो २ निरूपण करते हैं। श्रुति॥

भूरितिवाअयंलोकः। भुव इति अन्तरिक्षम्।
सुव इत्यसौलोकः।१। मह इत्यादित्यः आदित्ये
नवावसर्वे लोका महीयन्ते।

अर्थ = पृथिवी लोक प्रजापति के पादरूप व्याहृति है और अन्तरिक्ष लोक प्रजापति के बाहुरूप भुवः व्याहृति है और स्वर्ग-लोक प्रजापति का शिरोरूप सुवः व्याहृति है और जो प्रकाशमान आदित्य है सो प्रजापति का मध्यभाग रूप महः व्याहृति है भाव यह है पृथिवी लोक में प्रजापति के पाद दृष्टि करना और अन्तरिक्ष लोक में प्रजापति के बाहु दृष्टि करना स्वर्ग में प्रजापति शिरो दृष्टि करना और आदित्य में प्रजापति श

रीर मध्य दृष्टि करना और मध्यभाग कर अंगों की वृद्धि होती है इसवास्ते कहते हैं आदित्य करके सर्व लोकों की वृद्धि होती है इसी प्रकार से आगे अग्नि आदि में प्रजापति अंगदृष्टि जानना।

श्रुति ॥ भूरितिवाअग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वा वसर्वाणिज्योतीं षिमहीयन्ते। भूरिति वा ऋचः। भुव इतिसामानि। सुवरिति यजूंषि ॥ २॥ महः इति ब्रह्म ब्रह्मणावाव सर्वेवेदा महीयन्ते।

अर्थ— भूः अग्नि भुवः वायु सुवः आदित्य महः चन्द्रमा और चन्द्रमा करकेही सर्व ज्योतिओं की वृद्धि होती है और ऋग्वेद भूः सामवेद भुवः और यजुर्वेद सुवः और ब्रह्म नाम ओंकार महः है क्योंकि ओंकार करके ही सर्व वेद वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

श्रुति ॥ भूरितिवैप्राणः। भुवइत्यपानः। सुवरितिव्यानः। मह इत्यन्नम्। अन्नेन वाव सर्वेप्राणामहीयन्ते।

अर्थ— भूः प्राण और भुवः अपान और सुवः व्यान और महः अन्न अन्न करके ही सर्व लोकों के प्राण वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

श्रुति ॥ तावाएताश्चतस्त्रश्चतुर्द्धा। चतस्त्रश्चतस्त्रो व्याहृतयः। तायोवेद सवेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मैदेवा बलिमावहन्ति। अ० उ० ५।

अर्थ ~ वो यह चार व्याहृति चार प्रकार की है फलित कहते हैं चार२ होती व्याहृति एक२ चार२ प्रकार की होगयी तब प्रकरण में षोड़श कल पुरुष का ध्यान कहा व्याहृति से पृथिवी कला अग्निकला ऋग्वेदकला प्राणकला ऐसे चतुष्कला तो प्रजापति के पाद हैं और अन्तरिक्षकला वायुकला सामवेदकला अपान कला ऐसे चतुष्कल बाहु हैं ८ स्वर्गलोक कला आदित्यकला यजुर्वेदकला व्यानकला ऐसा चतुष्कल प्रजापति का शिर है १२ आदित्यकला चन्द्रकला ओंकारकला अन्नकला ऐसा प्रजापति का आत्म शब्द प्रतिपाद्य मध्यभाग है ऐसे षोडशकल पुरुष का हृदयकमल में ध्यान करने से जो फल प्राप्त होता है सो कहते हैं तिन व्याहृतिओं को पूर्व प्रकार से जो जानता है सो ब्रह्म को जानता है तिसके अर्थ प्रजापति के अंगभूत सर्व देवता बलि को प्राप्त करते हैं और दयानन्द ने इस षोडशकल प्रजापति की उपासना प्रतिपादक प्रकरण में से भूरितिवै प्राणः। भुव इत्यपानः। सुवरिति व्यानः। इतने भाग को काटा है (सत्या प्र० स० ३ पृ० ३७ में देखो) और प्राण अपान और व्यान पद को परमेश्वर परता वर्णन करा है परन्तु सज्जन पुरुष देखें कितनी धूर्तता करी है सगुणोपासना सफल के लोप करने वास्ते और पता भी ठीक२ नहीं लिखा इतनाही लिखा है जो यह तैतरीयारण्यक के बचन हैं अध्याय प्रकरण अनुवाक लिखा नहीं इस प्रकरण में प्राण अपान व्यान ईश्वर बाचक नहीं क्योंकि उसके साथ यह लिखा है (अन्नेनवाव सर्वे प्राणा महीयन्ते अन्न करके सर्व प्राण वृद्धि को प्राप्त होते हैं यदि प्राणादि पद ईश्वर बो

धक होते तो अन्न सें वृद्धि कहना असंगत होता इससे दयानन्द केवल मिथ्या प्रलापी है विवेकी को विचार से स्पष्ट प्रतीत होगा इससे प्रथमही प्रणव उपासना व्याहृति उपासना का नाश करा दयानन्द ने क्योंकि शीघ्रही कृष्टान होजायं।

अथ गायत्र्यर्थ का यथावत् व्याख्यान और और वादिकृत गायत्री व्याख्यान खण्डन निरूपण करते हैं॥१५।

अब गायत्री जो सर्व वेद का सारभूत ऋचा है तिसका जैसे दयानन्द ने अर्थ लिखा है तिस अर्थ को तथा जो गायत्री व्याख्यान रूप वेद है तिसके अर्थ को विवेकिजन विचारेंगे तो अन्तराय मालूम होगा।

तथाहि। तत्सवितुर्वरेण्य मित्यसौ वा आदित्यः सविता सवा प्रवरणीय आत्मकामे नेत्याहुर्ब्रह्मवादिनो ऽथ भर्गो देवस्य धीमहीति सवितावै देवस्ततोयो ऽस्य भर्गाख्यस्तं चिन्तयामी त्याहुर्ब्रह्मवादिनः।

अर्थ — प्रथम पाद की प्रतीक धरकर मंत्रस्थ सवितृ पद का अर्थ करते हैं असौवा इत्यादि यह जो प्रत्यक्ष आदित्य हैसो सविता है आत्मकाम करके प्रवरणीय है अर्थ यह जो आत्मातिरिक्त पदार्थ की कामना रहित है तिस को यह सविताही एकता बुद्धि करके प्रार्थनीय है भावयह है पिण्डसार प्राण और ब्रह्माण्डसार आदित्य की एकता भावना करके दोनों उपाधि करके उपलक्षित तत्त्व को आत्मारूप ते भावना करे यह ब्रह्मवादी

नाम वेदविद् पुरुष कहते हैं अब द्वितीय पाद की प्रतीक धरकर व्याख्यान करते हैं देव शब्द वोध्य सविता ही है तिस कारण से सविता का जो भर्गाख्य रूप है तिसको चिन्तन करते हैं ऐसे वेद विद् कहते हैं।

श्रुति। अथधियोयोनः प्रचोदयादिति बुद्धयो वैधियस्तायो ऽस्माकं प्रचोदयादित्या हुर्ब्रह्मवादिनः।

अर्थ — तृतीय पाद की प्रतीक धरकर अर्थ करते हैं अन्तःकरण की वृत्तियों को जो परमात्मा प्रेरणा करता है यह ब्रह्मवादि कहते हैं तब मंत्र का अर्थ ऐसा जानना "सवितुर्देवस्य यत् भर्गाख्यं वरेण्यंतत् धीमहि तत् किम् यो ऽस्माकम् धियो ऽन्त करण वृतीः प्रचोदयात् प्रेरयति" सविता देव का जो भर्ग तथा वरेण्य रूप है तिसे हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि वृतिओं को प्रेरणा करता है

श्रुति। अथभर्गाइतियोह्वा अमुष्मिन्नादित्ये निहितस्तारको ऽक्षिणवैष भर्गाख्या भा भिर्गति रस्यहीति भर्गोभर्जयतीति वैष भर्गा इति रुद्रो ब्रह्मवादिनो ऽथ भ इति भासयती मान् लोकान् र इति रंजयतीमानि भूतानि ग इति गच्छन्त्य स्मिन्ना गच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजास्तस्मा द्भरगत्वाद् भर्गः। शश्वत् सूयमानात् सूर्य्यः सवनात् सविता ऽऽदानादादित्यः पवनात् पावनो ऽथा पोप्याय नादित्येवं ह्याह।

अर्थ — मंत्र में भर्ग तथा सवितृ पद का व्याख्यान करते हैं और

प्रसंग में आदित्य सूर्य्य पावन आप शब्दों के अर्थ को भी निर्णय करते हैं भर्ग पद की प्रतीक धर के अर्थ करते हैं (योऽसुष्मिन्नादित्ये निहितो वायश्चाक्षिणि तारको निहित एष भर्गाख्यः) यह अन्वय है अर्थ यह है जो इस आदित्य मण्डल में स्थित है अन्तर्यामी तथा जो नेत्र में कृष्णतारा उपलक्षित अन्तर्यामी स्थित है यह भर्गाख्यावाला देव है (भाभिर्गतिर्गमनम् अस्येति भर्गः) भा नाम किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाश करके गमन होता है जिस अन्तर्य्यामी का वो भर्ग है भाव यह है केवल तो चेतन में गमन व्यापक होने से बनता नहीं परन्तु किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाश उपाधि के गमन से गमन प्रतीत होता है ऐसे एक प्रकार से भर्ग शब्द की निरुक्ति करके प्रकारान्तर से निरुक्ति करते हैं (भर्जयतीति वा एषः भर्गः) जो सर्व जगत् का संहार करता है सो यह भर्ग है ऐसा रुद्ररूप है परमात्मा का ऐसे वेदावित् कहते हैं अव एक २ अक्षर के अर्थ करते हैं (भासयतीमान् लोकान् इति भः। रंजयतीमानि भूतानि इति रः गच्छन्त्यस्मिन् वा आगच्छन्त्यस्मात्) सर्वा इमाः प्रजा इति गः) अर्थ अपने मण्डल अन्तर्गत प्रकाश करके सर्व जगत को प्रकाश करता है इसवास्ते भ और अपने आनन्दरूप करके सर्व प्राणि वर्ग को आनन्दित करता है इसवास्ते र है और सुषुप्ति प्रबोध में वा महाप्रलय उत्पत्ति काल में सर्व प्रजा परमात्मा में लीन होकर फिर उत्पन्न होती है इससे ग है ऐसे भरगपना होने से भर्ग है और (शश्वत् सूयमानात् सूर्य्यः) निरन्तर उदय अस्त होकर प्रातःकालादि करने से सूर्य्य है और सर्व प्राणिवर्ग की वृष्टि अन्न वीर्य्यादि द्वारा उत्पत्ति करता

होने से सविता है और (आदानात् आदित्यः) सोमरस तथा प्राणि वर्ग की आयुः को ग्रहण करने से आदित्य है और (पवनात् पावनोप्येष एव) अर्थ सर्व को पवित्र करने से पावन नाम वायुभी यह परमेश्वर है और अप नाम जल भी यह परमेश्वर ही है क्योंकि सर्व जगत् को प्यायनात् नाम) वृद्धि करने से ऐसेही नाम निर्वचन वेदार्थविद् कहते हैं। इस प्रकार से गायत्री मंत्र के दो पाद से अधि देव तत्त्व का निश्चय करा अर्थात् सूर्य्य वायु जल उपलक्षित यावत् देवता रूप परमात्मा को बोधन करा और यावत् जगत् उत्पत्ति पालन संहार कर्त्तृत्व बोधन करा तथा जगत् लयाधार और जगत् उपादान कारण भी भर्गपद व्याख्यान से कहा इस कहने से जड़ प्रकृति जगत् उपादान कारण पक्ष दयानन्दकागायत्री ब्रह्मविद्या विरुद्ध है इससे विवेकी को उपेक्षणीय है अब गायत्री के तृतीयपाद से अध्यात्म तत्त्व का निर्णय करते हैं जिसके निर्णय से दयानन्द स्वीकृत चेतन का वास्तव भेद पक्ष भी खंडित हो क्योंकि औपाधिक भेद तो स्वीकृत है।

श्रुति। खल्वात्मनोत्माने तामृताख्यश्चेता मन्तागन्तोत्स्रष्टानन्दयिता कर्त्तावक्ता रसयिताघ्राताद्रष्टा श्रोतास्पृशतिच।

अर्थ — (अमृताख्यः खलु आत्मनः आत्मा नेता) ऐसा अन्वय है अर्थ यह जो अमृताख्य प्राण है सो खलु नाम निश्चय करके आत्मा जो शरीर इन्द्रिय संघात तिसका आत्मा है और नेता नाम सर्व संघात का प्रेरक है यहां अमृत कहने से प्राण के भी प्रेरक आत्मतत्त्व का ग्रहण है प्राण उपाधिक होकर वो आत्मानेता

और चित्त औपाधिक चेता और मन औपाधिक मन्ता और पाद औपाधिक गन्ता और पायु उपाधिकर उत्स्रष्टा और उपस्थ उपाधि कर आनन्दयिता और हस्त उपाधि कर कर्त्ता और वागिन्द्रिय उपाधि कर वक्ता रसना उपाधि कर रसयिता और घ्राण उपाधि कर घ्राता और चक्षु उपाधिकर द्रष्टा और श्रोत्र उपाधि कर श्रोता और त्वगिन्द्रिय उपाधि कर स्पृशति नाम स्प्रष्टा होता है चकार से बुद्धि उपाधि कर अध्यवसिता अहंकार उपाधि कर अभिमन्ता होता है। यह जानना।

श्रुति। विभुर्विग्रहे सन्निविष्ट इत्येवंह्याह। अथयत्र द्वैतीभूतं विज्ञानं तत्र हि श्रृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैव स्पर्शयति सर्वमात्मा जानीतेति यत्रा द्वैतीभूतं विज्ञानं कार्य्य कारण कर्म्म निर्मुक्तं निर्वचनमनो पम्यं निरुपाख्यं किंतद्वाच्यम्।७।

अर्थ ८। प्रश्न। जो पूर्व नेतृत्वादि विशिष्ट वस्तु प्राणादि उपाधि विशिष्ट कहा सो क्या है। उत्तर। (विभुर्विग्रहे सन्निविष्ट इति एवंहि आह) अर्थ „ विभु नाम व्यापक परमात्मा ही विग्रह नाम देह में प्रविष्ट होकर अर्थात् लिङ्ग शरीराभिमानी होकर प्राणादि उपाधि भेद कर नेतृत्वादि रूप से कहाजाता है भाव यह है सो एकही परमात्मा सर्व बुद्धि प्रेरक रूप से उपास्य है। ऐसेही वेदज्ञाता कहते हैं।

आत्मेत्येवोपासीतात्रह्येते सर्वएकं भवन्ति। वृ०उ० अ३। ब्रा४।

अर्थ — द्रष्टा श्रोता आदि को (आत्मा इति एव उपासीत अत्रहि एते सर्वे एकं भवन्ति) आत्मारूप करके परमात्मा से अभिन्न जानकर उपासना करे क्योंकि इस आत्मा में हीं सर्व एक होते हैं अवऔपाधिक भेद और वास्तव अद्वैत पक्ष को अन्वय व्यतिरेक से दृढ़ करते हैं। जहां द्वैतीभूत विज्ञान होता है जाग्रदादि अवस्था में वहां सुनता है देखता है सूंघता है रस लेता है स्पर्श करता है। और उपाधि विशिष्ट होकर एकही आत्मा सर्व को जानता है ऐसे उपाधि के सद्भाव काल में भेद व्यवहार होता है और जब सुषुप्ति समाधि काल में अद्वैतीभूत विज्ञान होता है कार्य्य नाम विषय कारण नाम करणग्राम कर्म नाम क्रिया इनसे विनिर्मुक्त नाम रहित निर्वचन नाम निर्विशेष अनौपम्य नाम उपमा रहित निरुपाख्य नाम अप्रमेय होता है सो वस्तु निषेध बोधक शब्दों से ही क्योंकहते हो किसी तत् वा इदं इत्यादि शब्दों से क्यों नहीं कहते यह प्रश्न करते हैं किंतद् इस पद से अर्थ यह तत् सो वस्तु किं नाम कैसी है। उत्तर। अवाच्यं नाम सर्व इन्द्रिय व्यापार के उपराम होते जो सर्व व्यवहार का साक्षि होकर व्यवहारोपरति का साक्षिहै सो अद्वैत विज्ञान स्वाभाविक आत्मरूप है किसी शब्द का वाच्य नहीं इस स्थान में उपाधि के व्यतिरेक में अद्वैत कहा इससे वास्तव अद्वैत पक्ष को दृढ़ करा।

श्रुति॥ एषोहिखल्वात्मेशानः शम्भुर्भवोरुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृक् हिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो हंसः शास्ताविष्णुर्नारायणोऽर्कः सविताधाता विधाता सम्राडिन्द्र इन्दुरितियएष

तपत्यग्निरिवाग्निनापिहितः सहस्राक्षेण हिरण्मयेनाण्डेन। मैत्र्युप० अ ६।

अब अध्यात्म तत्त्व में अभेद कथन करके अधिदैव तत्त्व में भी अभेद कथन करते हैं यह परमात्माही ईशान शम्भु भव रुद्र रूप है तमः प्रधान मायोपाधिक ईशानादि भाव को प्राप्त है औरजो गुण प्रधान मायोपाधिक प्रजापति विश्वसृक् हिरण्यगर्भ सत्य प्राणहंस नामों से वो परमात्मा कहाजाता है और सत्त्वप्रधान मायोपाधिक परमात्मा शास्ता विष्णु नारायण नाम से कहाजाता है और वो परमात्मा ही अर्क है नाम पूज्य है जो कुछ वस्तुमात्र पूजन करने को योग्य है सो परमात्मा का रूप है और वोही सविता है जोकि पूर्व निर्णीत है प्राणिमात्र का उत्पादक और वो परमात्मा पृथिवी रूप से धाता और पित्रादि से विधाता नाम पुत्रादि निर्माता और सार्वभौम राजारूप से सम्राट है और स्वर्गाधिपति इन्द्र भी सोई है इन्दु चन्द्ररूप से और वो परमात्मा ही सहस्राक्ष अनन्त किरण समूह रूप हिरण्मय अण्ड करके तपता है प्रश्न। जब आत्माही सर्वरूप है तो प्रतीत होना चाहिये आदित्यादिमें उत्तर। वो परमात्मा सच्चिदानन्द मण्डलादि उपाधि से आच्छादन होरहा है जैसे सूर्य्य प्रभा में दीपप्रभान आच्छादित होते ही आच्छादित प्रतीत होती है परन्तु विवेकी को अन्वय व्यतिरेक से प्रतीत होती है क्योंकि रात्रि में सूर्य्यप्रभा के अभाव में स्पष्ट देखने से प्रभा के सद्भाव काल में भी तिस महान् प्रभा के साथ अभेद हुई जानता है और जैसे जल में लीन हुए लवण को चक्षु से नदेखने से भी रसनारूप उपाय से तिस के सद्भाव का विवेकी निश्चय करता है तैसे सत् चित् आनन्द वस्तु को विचित्र

शक्ति रात रूपों में विवेकी अनुभव करता है अविवेकी को प्र
तीत होता नहीं इसवास्ते (अग्निर्निर्वाग्निना पिहित:) यह कहा है
भाव इस दृष्टान्त का यह है जैसे सामान्य प्रकाश अग्नि विशे
ष प्रकाश अग्नि में आच्छादितवत् प्रतीत होता है तैसे परमात्मा
भी विशेष प्रकाश अनन्त किरण समूह हिरणमय अण्ड सदृश सू
र्य्य मण्डल करअनाच्छादित भी आच्छादित वत् प्रतीत होता है
इतने प्रबंध करके जीव का स्वरूप परमात्मा रूप मंत्र ब्राह्मण स
मुदाय से निर्णय होगया और प्रसंग प्राप्त अवान्तर अनेक अर्थ
निर्णय होगये जब इस विचार को विवेकी पुरुष आलोचन करेंगे
तो स्पष्ट प्रतीत होगा जो दयानन्द की कल्पना सर्वथा शास्त्र वेद
बाह्य है इस स्थान में यह द्रष्टव्य है जो दयानन्द ने (सत्यार्थ
प्र० पृ० ६०१) में देखो॥यह लिखा है ११२७ ग्यारह सौ सत्ताईस
वेदों की शाखा जोकि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के
बनाये ग्रन्थ हैं। तो गायत्री जो चतुर्वेद में प्रधान है तिसका
अर्थ किसी एक व्याख्यान की रीति से तो लिखना दयानन्द को
योग्य था और इस स्थान में जो ग्यारहसौ सत्ताईस शाखा कहीं इ
समें भी चार कमती लिखी हैं। क्योंकि महाभाष्य की रीति से ग्या
रहसौ इकत्तीस शाखा होती हैं तो इतने मंत्रों के व्याख्यान होने
पर भी दयानन्द को एक व्याख्यान भी गायत्री मंत्र के अर्थ नि
र्णय वास्ते नामिला तो उसकी केवल मन उक्त घडंत को विना द
यानन्द के पशुओं से और कौन मानेगा (सत्या० समु० ३ पृ० ३
में देखो) दयानन्द ने सवितृ पद का व्याख्यान यह लिखा है
जो सुनो त्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता) इसमें देखना चा

हिये दयानन्द अपने आपको निघण्टु निरुक्त का पण्डित मानी नि
घण्टु भाष्य से विरुद्ध लिखता है क्योंकि नि० अ०५ खं०४ में
सवितृ पद का व्याख्यान यह है (सविताषु प्रसवैश्वर्य्ययोः । भू ।
प । त्वचि सविता सर्वे कर्म्मणां वृष्टि प्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता)
अर्थ षु धातु प्रसव तथा ऐश्वर्य में है प्रसव नाम अभ्यनुज्ञान
का है अर्थात् फल देनेवास्ते कर्म का स्वीकार करना सो सविता
देव वृष्टिरूप फल देने वास्ते यावत् प्राणिवर्ग के कर्म को स्वीका
र करता है और ऐश्वर्य्य नाम प्रेरणा का है सो सविता देव सर्व
जन्तु मात्र को कर्म में प्रवृत्त करता है उदय होकर वा ईश्वररूप
से सर्व का प्रेरक है तब निरुक्तकार के मत में ऐसी व्युत्पत्ति हो
नी चाहिये जो सुवतीति सविता और दयानन्द ने सुनोत्युत्पादय
ति सर्वं जगत् स सविता यह व्युत्पत्ति करी है इससे निरुक्त विरु
द्ध है तथा षु ञ् अभिषवे स्वादिगणी धातु का प्रयोग सुनोति र
खकर उत्पादयति यह अर्थ करा है सो भी पाणिनि ऋषि लिख
त धात्वर्थसेविरुद्ध है क्योंकि अभिषव नाम कण्डन का है यथा
सोमवल्लि के रस निकासने वास्ते सोमवल्लि का अभिषव नाम क
ण्डन होता है उत्पादन अर्थ षुञ्धातु स्वादिगणी का नहीं इससे
पाणिनि ऋषि के मत से भी दयानन्द कृत अर्थ सविता पद का
असंगत है । प्रश्न । धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं इससे उत्प
त्ति अर्थ मानने में कोई विरोध नहीं । उत्तर । हठा उत्पत्ति
अर्थ धातु का ऋषि विरुद्ध हो परन्तु वो सविता शब्द का अर्थ
परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति का निमित्त कारण है कुलालादि वत्
वा उपादान कारण है सुवर्णादिवत् वा निमित्त उपादान दोनो,

कारण वोही है केवल निमित्त वा केवल उपादान तो असंगत है क्यों कि व्यासऋषि सूत्र का विरोध होने से।

तथाहि। प्रकृतिश्चप्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्। शा० अ १। पा ४। सू २३।

अर्थ — ब्रह्मप्रकृति नाम उपादान तथा चकार से निमित्त है प्रतिज्ञा दृष्टान्त का अनुपरोध नाम अनुसारता से अर्थात् प्रतिज्ञा श्रुति तथा दृष्टान्त श्रुति की संगती से ब्रह्मनिमित्त उपादान दोनों कारण आपही है।

उततमादेशम प्राक्ष्योयेनाश्रुतं श्रुतंभवत्यमतं। मतमाविज्ञातं विज्ञातमिति। छां० उ० अ० ६

और। यथैकेनमृत्पिण्डे नसर्वं मृण्मयं विज्ञात ᳬ स्यात् वाचारम्भणं विकारो नाम धेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। छां० उ० अ० ६।

यह दोनों श्रुति प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्त रूप हैं अर्थ " श्वेतकेतु अपने पुत्र से उद्दालक ऋषि पूछते हैं हे पुत्र जिस वस्तु के श्रवण मनन विज्ञान करके अश्रुत अमत अविज्ञात वस्तु का भी श्रवण मनन विज्ञान होता है सो वस्तु उत नाम अपिअ प्राक्ष्यः नाम पूछता भया सो वस्तु आदेश नाम केवल गुरु उपदेश गम्य है इस स्थान में एक विज्ञान से सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा करी है जो केवल उपादान ही ब्रह्म को मानेंगे तो उपादान के ज्ञान से कार्य्य का ज्ञान तो होसकता है परन्तु उपादान से भिन्न निमित्त का बोध नहीं होसकता इससे निमित्त कारण भी मानना योग्य है और दृष्टान्त श्रुति का अर्थ यह है जैसे एक मृत्पिण्ड के जा

ने से सर्व मृतिका के विकार जाने जाते हैं क्योंकि विकार को वा गालम्भन मात्र होने से ।मृतिकाही सत्य है इस दृष्टान्त श्रुति से जो ब्रह्म को केवल निमित्त कारण कहें तो मृत्तिका उपादान कारण दृष्टान्त ब्रह्म का असंगत होगा इससे ब्रह्म उपादान भी श्रुतिसूत्र सिद्ध है सो पूर्व भर्गपद व्याख्यान में भी श्रुति से निर्णीत है इसवास्ते सविता सर्वं जगत् उत्पादयति यहां जगत का उपादान तथा निमित उभय कारण रूप ही सविता स्वीकार करना चाहिये जब उभय कारण मानना पड़ा श्रुतिसूत्र प्रमाण से तब ब्रह्म साकार कार्य्य रूप आदित्यादि और कारणरूप ने निराकार है अब देखना चाहिये जब दयानन्द को भी साकार मानना पड़ा तब मंत्र देवता सविता का लोप करना इस मंत्र में श्रुतिरूप व्याख्यान को त्याग कर असंगत है और देव पद का यह अर्थ व्युत्पत्ति से करा है यो दीव्यति दीव्यते वासदेवः। ऐसी व्युत्पत्ति करके तो अपनी व्याकरणानभिज्ञता स्पष्ट प्रगट करी है क्योंकि दिवु क्रीड़ा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिषु। दिवादि गणी परस्मै पदि इस धातु का प्रयोग लिखा है तो दीव्यति दीव्यते वा सदेवः इस स्थान में धातु तो केवल परस्मैपादि और प्रयोग दूसरा आत्मने पद का भी लिखा है सो असंगत है। प्रश्न। दीव्यते यह प्रयोग कर्म्म में प्रत्यय करके लिखा है। उत्तर। जो कर्म में प्रत्यय करता दयानन्द तो यो इस कर्तृपद में तृतीया विभक्ति येन ऐसा होना चाहिये था और देव शब्द का वाच्य अर्थ प्रकाश क्रिया का कर्म जगत् जड़ वस्तु होजाता और जो कर्म कर्तृ अर्थ में प्रयोग कहें तो भी असंगत है क्योंकि प्रथम परमात्मा प्रका

श क्रिया का कर्म हो पश्चात् उसी कर्म को कर्त्तृत्व रूप से विवक्षा हो तब कर्म कर्त्तरि प्रयोग होवे सो परमात्मा प्रकाश क्रिया का कर्म्म होगा तो पर प्रकाश्यत्त्व रूप जड़ता की प्राप्ति होगी। औरजे कर स्तुति अर्थ में दिवु धातु को मानकर कर्म में प्रत्यय करें तो देव शब्द का कर्त्तरि अर्थ के प्रकरण में पचादि गण में पाठहोने से असंगत है इससे दीव्यते यह प्रयोग सर्वथा असंगत है।और इस व्युत्पत्ति का अर्थ भाषा में (जो सर्व सुखों का देने हारा) यह अर्थ लिखा है सो देखना चाहिये धातु का अर्थ तो क्रीडाजे किसी बाह्य साधन से विलास विजिगीषा जीतने की इच्छा और व्यवहार क्रय विक्रय करना द्युति प्रकाश स्तुति स्तवन क्रिया मोद आनन्द होना मद अहंकार करना स्वप्न शयन क्रिया कान्ति इच्छागति ज्ञान गमन वा प्राप्ति इतने अर्थ तो इस धातु के पाणिनि ऋषि स्पष्ट मानते हैं और दयानन्द ने सुख दान भी इस धातु का अर्थ और कल्पना करा क्या पाणिनि ऋषि स्वीकृत अर्थों से निर्वाह होता नथा इससे दयानन्द केवल सर्व ऋषि मुनि के मार्ग को त्यागकर मनसुखता रूप औकड़ में चलता है क्या इसी पाण्डित्य केवल से काशी के पंडितों से परास्त होकर भी अपने पत्र में १९२६ का परास्त हुआ १९३७ में अपनी उत्कृष्टता लिखता है जो चाहे सो लिखो जो कि उसके जाल में फंसे हैं सो तो मानेंगे परन्तु बुद्धिमान् गुरु उपदेश में आरूढ कैसे मानेंगे इतने ग्रंथ से जीव स्वरूप निर्णय उपयोगि विचार निर्णय होगया

अथ कैवल्य मोक्ष और ब्रह्मलोक और ब्रह्म

लोक प्राप्ति द्वारा क्रम मुक्ति निरूपण करते हैं ॥१६॥

अब केवल मुक्ति का विचार संक्षेप से करते हैं प्रथम तत्त्वज्ञान का फल जो मोक्ष है तिसका विचार करते हैं।

संपद्याविर्भावः स्वेनशब्दात् ॥ शारीरक। अ४ पा४। सू१।

पद। संपद्य आविर्भावः स्वेन शब्दात्।

विषयवाक्य अशरीरोवायुरभ्रं विद्युत् स्तनयित्नुर शरीराण्येतानि तद्यथैतान्य मुष्मादाकाशात्समुत्थाय परंज्योतिरुप सम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते। एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परंज्योतिरुप सम्पद्य स्वेन रूपेणाभि निष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः। छां॰ उ॰ अ८ खं॰१२।

पद। अशरीरः वायुः अभ्रम् विद्युत् स्तनयित्नुः अशरीराणि एतानि तद्यथा एतानि अमुष्यात् आकाशात् समुत्थाय परम् ज्योतिः उपसम्पद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यन्ते एवम् एव एषः सम्प्रसादः अस्मात् शरीरात् समुत्थाय परम् ज्योतिः उपसम्पद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते सः उत्तमः पुरुषः।

सूत्रार्थ॰ मोक्षकाल में क्या चतुर्भुज आदि विलक्षण रूपकी प्राप्ति होती है अथवा अविद्या तिरोहित स्वस्वरूप का आविर्भाव होता है यह संशय है। शंका। मोक्ष में किसी विलक्षण चतुर्भुज त्रिनेत्रादि रूप की प्राप्ति होती है क्योंकि छांदोग्य श्रुति में

उपसम्पद्य ऐसा प्रयोग देखा जाता है इस शंका के समाधान का सूत्र । सम्पद्य नाम अविद्या तिरोहित रूप के आविर्भाव का है क्योंकि उसी श्रुति में स्वेन ऐसा शब्द देखा जाता है जेकर किसी विलक्षण रूप की प्राप्ति कैवल्य मोक्ष में होती तो स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते ऐसा नहीं होता किन्तु चतुर्भुज त्रिनेत्र रूपेण अभिनिष्पद्यते ऐसा होता क्योंकि स्वरूप नाम पूर्वसिद्ध अपने रूप का है इससे अविद्या तिरोहित रूप की अविद्या निवृत्ति से आविर्भाव ही कैवल्य है विषयवाक्य श्रुति का अर्थ किसी निमित्त से स्वस्वरूप तिरोधान होकर पश्चात् निमित्तान्तर से स्वस्वरूप प्राप्ति में दृष्टान्त कहते हैं वेद भगवान् । जैसे वायु अभ्र नाम सूक्ष्म मेघ विद्युत स्तनयित्नु नाम स्थूल मेघ यह सम्पूर्ण पदार्थ वर्षाकाल से भिन्न काल में अशरीर अर्थात् तिरोहित शरीर होते हैं आकाश के साथ एकता को प्राप्त होते हैं क्योंकि कालरूप जो निमित्त है तिससे आकाश में तिरोहित रहते हैं और पश्चात् वर्षा भिन्नकाल निमित्त के अभाव होते और अषाढ के ज्योतिरूप तेज को प्राप्त होकर इस आकाश से समुत्थित होकर अपने पूर्वसिद्ध चातुर्मासिक रूप करके (अभिनिष्पद्यन्ते नाम प्रादुर्भाव होते हैं। तैसे यह सम्प्रसाद नाम जीव चैतन्य इस शरीररूप निमित्त से समुत्थाय नाम देहादितादात्म्य भाव को प्राप्त होकर अपने स्वतःसिद्ध रूप के होते तथा भान होते ही नास्तिनभाति ऐसे आवरण से स्वरूप को तिरोधान करलेता भया पश्चात् आचार्य्य के उपदेश जन्य ज्ञान से देह तादात्म्य भाव को त्यागकर अपना स्वतःसिद्ध जो परज्योति स्वरूप आत्मा है तिसको प्राप्त होकर प्रारब्ध भोग के अभाव होते स्वरूप

करके अभिनिष्पद्यते नाम विराजमान होता है और मुक्तात्माही उत्तम पुरुष नाम परमात्मा रूप है ।प्रश्न। जब पूर्वसिद्ध स्वरूप की प्राप्ति ही ज्ञान से होती है तो पूर्वदशा से क्या विशेषता है इस शंका के समाधान का सूत्र।

मुक्तः प्रतिज्ञानात् । शारीरक । अ॰४। पा॰४। सू॰२।

अर्थ॰ श्रुति में जो अभिनिष्पद्यते यह कहा है वहां सर्व बंध रहित शुद्ध स्वरूप करके अवस्थान ज्ञानरूप जो मुक्तावस्था तिसको प्राप्त होता है और पूर्व अवस्थाओं में तो जाग्रत काल में अन्धोऽहम् बधिरोऽहम् पुत्र वित्तादि रहितो हम् इत्यादि अध्यास सहित होता है और ऐसेही स्वप्न में अध्यास सहित होता है और सुषुप्ति काल में भी गाढ मूढ अवस्था को प्राप्त होकर विनष्ट सदृश रहता है। और मोक्षकाल में तो सर्व दुःख रहित सर्वत्र प्रकाशमान ब्रह्मरूप करके स्थिति होती है जो कि पूर्व ऋग्वेद मंत्र में सूर्य्यरश्मि वत् व्यापक प्रद्योतमान् चेतनरूप प्रकाश कहा है ब्रह्मरूप वस्तु तिसका रूप होकर मुक्ति में स्थित होता है ।प्रश्न। ऐसा निश्चय किस प्रकार से होता है जो सर्वत्र प्रकाशमान ब्रह्मरूप करके मुक्त की स्थिति होती है । उत्तर। प्रतिज्ञानात् अर्थ अवस्थात्रय दोष रहित आत्म स्वरूप व्याख्यान प्रतिज्ञा पूर्वक तादृश सर्व दुःख रहित परमात्मा रूप का श्रुति में प्रतिपादन करने से जानते हैं जो सर्वत्र प्रद्योतमान ब्रह्मरूप करके मोक्ष में अवस्थान होता है।

तथाहि। एतंत्वेवतेभूयोऽनुव्याख्यास्यामि। मघवन्मर्त्यं वा इदꣳ शरीरमात्तं मृत्युना

तदस्या मृतस्या शरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमत्तो वै स शरीरः प्रियाप्रियाभ्यां नवै स शरीरस्य सतः प्रिया प्रिययो रपहतिरस्त्य शरीरं वा वसन्तं नाप्रिया प्रिये स्पृशतः।छं०उ० अ०८

पद। एतत् तुएव ते भूयः अनुव्याख्यास्यामि। मघवन् मर्त्यम वै इदम् शरीरम् आत्तम् मृत्युना तत् अस्य अमृतस्य अशरीरस्य आत्मनः अधिष्ठानम् आत्तः वै सशरीरः प्रिया प्रियाभ्याम् नवै स शरीरस्य सतः प्रिया प्रिययोः अपहतिः अस्ति अशरीरम् वाव सन्तम् न प्रियाप्रिये स्पृशतः

भावार्थ—पूर्व प्रसंग में प्रजापति ने जाग्रत्साक्षि आत्मा का नेत्र में उपदेश करा तब इन्द्र विरोचन शिष्यों ने अक्षि में छायात्मा का भ्रम से निश्चय करा जो छाया को ही प्रजापति आत्मा बतलाते हैं तब विरोचन तामसी असुर तो अपनी इच्छा से छाया आत्मा उपलक्षित देहात्मा का असुरों के प्रति उपदेश करता भया और इन्द्र ने सत्त्वगुण के प्रभाव से छाया में अन्यथा भाव को निश्चय कर प्रजापति के पास प्राप्त होकर सेवा सें प्रसन्न करा तब प्रजापति पूर्व उक्त साक्षि आत्मा का स्वप्न में उपदेश करा तब इन्द्र स्वप्न अवस्था में हननादि दोष जोकि मनोधर्म्म हैं तिनको आत्मा में भ्रम से मानता भया पश्चात् प्रजापति ने सुषुप्ति में साक्षि आत्मा का उपदेश करा तब इन्द्र ने भ्रम से जड़ता दोष जो कि कारण शरीर रूप अज्ञान का धर्म है सो साक्षि आत्मा में प्रजापति के सन्मुख कथन करा अब प्रजापति अवस्था त्रय रहित आत्मा के व्याख्यान की प्रतिज्ञा करते हैं। हे इन्द्र इस पूर्व व्याख्यात आत्मा को

पुनः व्याख्यान करता हूं ऐसी प्रतिज्ञा करके कहते हैं। हे मघवन् इदं शरीरं मर्त्यं नाम विनाशी है (अस्यामृतस्य अशरीरस्यात्मनो ऽधिष्ठानं तत् शरीरं मृत्युना आत्तम्) यह अन्वय है इस अमृत अशरीर आत्मा का अधिष्ठान सो शरीर मृत्यु करके ग्रस्त है इसवास्ते जवतक यह आत्मा शरीर नाम आध्यासिक संबंध करके शरीर विशिष्ट है तब तक सुख दुःख करके आत्त नाम ग्रस्त है क्योंकि शरीराध्यास के होते प्रिय सुख और अप्रिय दुःख ^ का स्पर्श नहीं होसकता यह अर्थ अन्वय व्यतिरेक युक्ति सिद्ध है क्योंकि समाधि काल में शरीराध्यास के अभाव में सुख दुःख का भाव नहीं और जाग्रदादि काल में शरीराध्यास होते सुख दुःख का अभाव नहीं किन्तु सुख दुःख अवश्य होते हैं इससे मोक्ष में सर्व अध्यास की निवृत्ति हुए ब्रह्मरूप करके अवस्थान रूप मोक्ष सिद्ध होगयी शंका॥ श्रुति में तो ज्योति शब्द प्रतिपाद्य जो भौतिक तेज है तिसकी प्राप्ति कही है तो ब्रह्मप्राप्ति से विना ब्रह्मरूप करके अवस्थान रूप मोक्ष कैसे होसकती है इस शंका के समाधान का सूत्र।

आत्माप्रकरणात्। शारीरक। अ॰ ४। पा॰ ४। सू॰ ३।

अर्थ॰ ज्योति शब्द भौतिक ज्योति का बोधक नहीं किन्तु आत्मरूप ज्योति का बोधक है क्योंकि आत्मा का प्रकरण होने से

तथाहि। य आत्मा ऽपहत पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको ऽविजिघत्सो ऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सो अन्वेष्टव्यः सविजिज्ञासितव्यः। छां॰ उ॰। अ॰ ८

^ इनकी अप्रवृत्ति नाम निवृत्ति नहीं होती और शरीराध्यास निवृत्त हुए से सुख दुःख

अर्थ ॥ जो आत्मा अपहत पाप्मा नाम पाप रहित है जरा मृत्यु शोक पिपासा इनसे वर्जित है अविजियत्सो नाम भूख से वर्जित है सत्यकाम सत्यसंकल्प है अर्थात् कामइच्छा संकल्प ज्ञान यह दोनों जिसके सत्य हैं सो आत्मा गुरु शास्त्र द्वारा ज्ञातव्य है और विजिज्ञासितव्य नाम अपने अनुभव में आरूढ करना चाहिये।

श्रुति। ससर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्व्वाꣳश्च कामान् यस्तमात्मान मनुविद्य विजानाति इति प्रजापतिरुवाच। छां० उ० अ० ८

भावार्थ ॥ (यस्त मात्मान मनुविद्य विजानाति ससर्व्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्व्वाꣳश्च कामान्) यह अन्वय है अर्थ ॥ जो तिस आत्मा को अनुविद्य नाम लब्ध्वा गुरुशास्त्र द्वारा खोजकर विजानाति नाम अनुभव में आरूढ करता है सो सर्व काम सर्वलोकों को प्राप्त होता है तात्पर्य्य यह है ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है जैसे रोग से प्रतिवद्ध निरोगता को रोग निवृत्त हुए से प्राप्त होता है तैसे अज्ञानरूप रोग प्रतिवद्ध ब्रह्मभाव को। अज्ञानरूप रोग निवृत्त हुए से प्राप्त होता है इस रीति से आत्मा का प्रकरण है इससे ज्योति शब्द भौतिक ज्योति का बोधक नहीं किन्तु सत्यकाम सत्यसंकल्प विशिष्ट परमात्मा ज्योति का बोधक है। शंका। मोक्ष में परमात्मा को प्राप्त होता है परन्तु वहां यह प्रतिभान होता है जो परमात्मा से पृथक ही मुक्त रहता है क्योंकि यथा मथुरा नगरी को प्राप्त पुरुष मथुरा से न्याराही रहता है तथा ब्रह्म को प्राप्त भी ब्रह्म से न्यारा ही रहता है इस शंका के

समाधान का सूत्र।

अविभागेन दृष्टत्त्वात्। शारीरक। अ०४। पा०४ सू०४।

अर्थ - मुक्त ब्रह्म से अविभाग करके स्थित होता है दृष्टत्वात् नाम ऐसा श्रुति में देखने से।

तथाहि। यत्रनान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति सभूमा॥ छां० उ० अ०७।

अर्थ - जिस भूमा ब्रह्म में अन्य किसी वस्तु को अन्यद्रष्टा वा श्रोता देखता सुनता नहीं तथा अन्य किसी वस्तु को अन्य विज्ञाता जानता नहीं वो भूमा है जेकर भूमा को प्राप्त होकर भी पृथक रहता तो पृथक् द्रष्टा होकर देखता इससे अविभाग नाम अभेद रूप ते ही मुक्त की स्थिति होती है और एक में भी आधारान्तर निषेध वास्ते स्थिति कही जाती है। यथा।

सभगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः स्वेमहिम्नीतिहोवाच। छां० उ० अ०७।

अर्थ - नारद सनत्कुमार से पूछते हैं हे भगवः नाम हे भगवन् सो भूमा किसमें स्थित है। उत्तर। स्वे नाम अपनी महिम्नि नाम अखंडैकरस महिमा में स्थित है इस कहने से आधारान्तर का निषेध करा है तथा इस स्थान में भी स्वेन रूपेण अभि निष्पद्यते कहने से रूपान्तर करके स्थिति का निषेध करा है अब इस स्थान में यह विचार करते हैं स्वस्वरूप करके मुक्त की स्थिति निर्णीत होगयी परन्तु स्वस्वरूप इसका चेतनमात्र है वा सत्य कामत्वादि धर्म विशिष्ट है तिसमें प्रथम जैमिनि।

आचार्य्य का मत लिखते हैं।

ब्राह्मेणजैमिनिरुपन्यासादिभ्यः। शारीरक। अ४ पा४। सूत्र५।

अर्थ॰ सत्यकामत्वादि विशिष्ट जो ब्रह्म का रूप है तिसी रूपकरके मुक्त की स्थिति जैमिनिजी मानते हैं। (उपन्यासादिभ्यो हेतुभ्यः अर्थ, वाक्य के प्रारम्भ में यआत्माऽपहत पाप्मा इत्यादि सत्य कामत्व सत्यसंकल्पत्व विशिष्ट का उपन्यास नाम कथन है तथाहि॥

सतत्रपर्य्येतिजक्षन् क्रीडन् रममाणः। छां॰ उ॰ अ॰८।

इत्यादि अज्ञात ज्ञापक विधि है

अर्थ॰ सो मुक्त तत्र नाम तिस मोक्षपद में वर्त्तमान (जक्षन् क्रीडन् रममाणः पर्य्येति) हासक्रीड़ा रमण करता हुआ परि सर्व प्रकार से एति नाम जानता है इससे इन श्रुति बचन प्रमाणों से ईश्वर जो सत्यकाम सत्यसंकल्प है तिस रूप करके मुक्त का आविर्भाव होता है और।

चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः। शारीरक। अ॰४। पा॰४। सू॰६।

अर्थ॰ चैतन्यमात्र स्वरूप करके मुक्त की स्थिति होती है क्योंकि तदात्मकत्वात् नाम चैतन्य स्वरूप होने से। भाव यह है केवल ज्ञानमात्र ही जीवात्मा का स्वरूप है तिसी रूप से मोक्ष में स्थिति होती है और जो सत्यकामत्वादि कथन करे हैं श्रुति में सो असत्य काम त्वादि जो बंधकाल में प्रसक्त थे तिनका निषेध

करा है इसीवास्ते केवल ज्ञानमात्र रूप वृहदारण्यक श्रुति में याज्ञवल्क्य आत्मा का निर्णय करते हैं। तथाहि।

सयथासैन्धवघनो ऽनन्तरो ऽवाह्यः कृत्स्नो रसघनएवैवंवा अरेऽयमात्मा ऽनन्तरो ऽवाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघनएव। वृह०उ० अ०६। ब्रा० ५॥

अर्थ॥ यथा सैन्धवघन नाम लवणपिण्ड अन्तर वाह्य वर्जित अर्थात् अन्तर बाहर से मेल रहित सम्पूर्ण रसघन है एवं इसी प्रकार अरे मैत्रेयी यह सर्वानुभव सिद्ध आत्मा अन्तर वाहिर से पदार्थान्तर मेल रहित संपूर्ण प्रज्ञान घन है। इस प्रकार से श्रुति में केवल चैतन्यरूप आत्मा निर्णीत है। इसवास्ते मोक्ष अवस्था में केवल चैतन्यमात्र रूप से स्थिति है और सत्यकामादि बंधकाल प्राप्त असत्य कामादि निषेध के वास्ते हैं सत्यकाम और सत्य संकल्प है अर्थात् असत्यकाम और असत्य संकल्प जोकि बंधन काल में थे वे मोक्षकाल में नहीं यह औडुलोमि आचार्य्य का मत है।

एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं वादरायणः शारीरक। अ०४पा०४सू०७।

पद। एवम् अपि उपन्यासात् पूर्व्व भावात् अविरोधम् वादरायणः।

अर्थ॥ एव मपि श्रुति प्रमाणेन चैतन्यमात्र स्वरूप स्वीकारेऽपि एसे श्रुति प्रमाण से चैतन्य स्वरूप का स्वीकार करे भी पूर्व श्रुति प्रतिपाद्य ब्राह्म एश्वर्य्य का निषेध नहोने से भी विरोध

नहीं यह बादरायण ऋषि मानते हैं। भाव यह है मुक्त पुरुष में चैतन्यमात्र स्वरूप होते भी ईश्वर धर्म्म का कथन बद्ध पुरुषों की अपेक्षा से सत्यकाम सत्यसंकल्पादि करते हैं तात्पर्य्य यह है विद्वान मुक्त पुरुष का स्वरूप चैतन्यमात्र है तो अखण्ड चैतन्य से अन्यत्र सत्यकाम सत्यसंकल्प जक्षन क्रीडन रममाणतादि है नहीं इससे बादरायण मत में दोनों प्रकार के वाक्यों का अविरोध है विरोध नहीं यह सिद्धान्त पक्ष है। इसरीति से तत्त्वज्ञान का फल जो मोक्ष है तिसका निरूपण करा अब सगुण उपासना आदि साधनों का फल जो ब्रह्मलोक प्राप्तिद्वारा कैवल्य मोक्ष तिसका निरूपण करते हैं॥

संकल्पादेवतुतच्छ्रुतेः शा०। अ०४। पा० ४ सूत्र ८।

पद। संकल्पात् एवतु तत् श्रुतेः विषय वाक्य श्रुति।

सयदिपितृलोककामो भवति संकल्पा देवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेनसम्पन्नो महीयते। इत्यादि।

जो उपासक उपासना के प्रभाव से ब्रह्मलोक में प्राप्त भया है तिसको सर्वकाम जो भोग्यवर्ग है अपने आनन्द का कारण सो संपूर्ण प्राप्त होता है तिस स्थान में यह संशय है जो केवल संकल्प से ही सर्व काम जोकि भोग्यवर्ग है सो प्राप्त होता है वा किसीसहकारी कारण की अपेक्षा है। **शंका।** सहकारी कारण से विना कोई कार्य्य लोक में नहीं देखा जाता इससे **यद्यपि** श्रुति में संकल्पादेव ऐसा एवकार भी है **तथापि** लोकानुसारता से कारणा

न्तर बिना भोग्यवर्ग की प्राप्ति नहीं होसकती इस शंका के समाधा
न का सूत्र (संकल्पादेव इत्यादि) अर्थ, केवल संकल्प मात्र से
ही भोग्यवर्ग की उपासक को प्राप्ति होती है तत् श्रुतेः नाम तिस्के
श्रवण से अन्यथा श्रुति में एवकार श्रवण तथा पूर्व प्रकरणाइ
सी विद्या में सत्यकामता श्रवण व्यर्थ होगा क्योंकि जब संकल
प से पृथक् सहकारी कारण की अपेक्षा करी तो भोग में उपासक
को विलंब होगा तब वध्य संकल्प उपासक होगया तो सत्यसंकल
पता का बाध होगा इससे केवल संकल्पमात्र ही पित्रादि समुत्था
न का हेतु है विषयवाक्य श्रुति का अर्थ,,सो उपासक जब पितृ
लोक की कामना वाला होता है तब संकल्पमात्र से ही इसके पि
तर समुत्थित होते हैं तो तिन करके पितृलोक में प्राप्त हुआ मही
यते नाम पूजित होता है। **शंका।** सत्यसंकल्पता की दृढ़ता उ
पासक में संभव नहीं क्योंकि उपासक को ईश्वराधीन होने से इस
शंका का समाधान सूत्र।

अतएव चानन्याधिपतिः। शारीरक। अ ४ पा ४ सूत्र ९।

अर्थ— सत्यसंकल्प होने से ही सगुणब्रह्म विद्वान उपासक अ
नन्याधिपति नाम पराधीनता वर्जित है भाव यह है ईश्वर काध
र्म सत्यसंकल्प हो विद्वान में आविर्भाव को प्राप्त भयाहैक्योंकि।
कार्य्य उपाधि जीव में भी सत्य कामतादि तिरोभूत थे उपासना
बल ते प्रादुर्भाव होते हैं अब यह विचार करते हैं जो ब्रह्मलो
क प्राप्त विद्वान का (संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति) इस
श्रुति प्रमाण से संकल्प का साधन मन तो सिद्ध है शरीर वा वा

ह्य इन्द्रिय ऐश्वर्य्य प्राप्त विद्वान के होते हैं वा नहीं होते तिसमें मत भेद है। तथाहि।

अभावंबादरिराहह्येवम्। शारीरक। अ०। पा०४ सू०१०।

पद। अभावम् बादरिः आह हि एवम्।

अर्थ—ब्रह्मलोक प्राप्त विद्वान् के शरीर इन्द्रियों का अभाव मानते हैं बादरि नामक आचार्य्य क्योंकि।

मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते यएते ब्रह्मलोके छा०उ०अ०८।

इस श्रुति प्रमाण से जेकर शरीर तथा इन्द्रियों करके ब्रह्मलोक में भोग भोक्ता तो मनसा यह कथन व्यर्थ होगा इस विशेषण से जानते हैं जो ब्रह्मलोक में शरीरेन्द्रिय से बिना केवल मनही भोग साधन है श्रुति का अर्थ, जो यह ब्रह्मलोक में काम नाम विषय हैं तिनको मन करके अनुभव करता है तथा रमण करता है और दयानन्द ने पूर्व प्रकरण को छोडकर मन सहित जीव का मोक्ष में होना यह सूत्रार्थ लिखा है और मोक्ष का निर्धारण नहीं करा जो कौनसी मोक्ष में जीव का मन सहित होना है और देखना चाहिये जो जीव के नहोने की तो शंका ही नहीं होसकती क्योंकि मोक्ष सुख भागी जीव है जेकर उसका हीन होना होगा। तो मोक्ष किसकी कहेंगे इससे दयानन्द का केवल बकवाद है सो प्रथम ही ग्रन्थ प्रारम्भ में खंडित है।

भावंजैमिनिर्विकल्पामननात्। शारीरक। अ४ पा०४ सू०११।

अर्थ ॥ सहित इन्द्रिय के शरीर का भाव नाम ब्रह्मलोक प्राप्तिरूप मोक्ष में होना जैमिनि आचार्य्य मानते हैं (विकल्पा मननात्) इस पद का यह अर्थ है (विकल्पस्य अनेक धामवस्य आमननात् अभ्यासात्) नानात्त्व भाव का अभ्यास श्रुति में देखा जाता है। तथाहि ॥

सएकधाभवति त्रिधाभवति पञ्चधा सप्तधा नवधाचैव पुनश्चैकादश स्मृतः शतञ्च दशचैकश्च सहस्राणिच विंशतिः। छा०उ० अ०७।

अर्थ ॥ सो मुक्त पुरुष एक प्रकार तीन प्रकार पांच प्रकार सप्त प्रकार नव प्रकार पुनः एकादश प्रकार शत तथा दश फिर एक फिर सहस्र विंशति इत्यादि भाव को प्राप्त होता है इस श्रुति प्रमाण से जैमिनि आचार्य्य मोक्ष में मनोवत् सहित इन्द्रिय शरीर का होना भी मानते हैं।

द्वादशाहवदुभय विधं बादरायणो ऽतः। शारीरक अ०४ पा०४ सू०१२।

पद। द्वादशाहवत् उभयविधम् बादरायणः अतः

सूत्र का भाव यह है अतः नाम इस दो प्रकार की श्रुति प्रमाण से मनसैतान्। तथा सएकधा इत्यादि श्रुति देखने से बादरायण नाम व्यास जी जब सशरीरता कल्पना करता है तब तो सशरीर होता है और जब अशरीरता कल्पना करता है तब अशरीर होता है ऐसे दो प्रकार को श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि ब्रह्मलोक प्राप्त विद्वान सत्यसंकल्प है इससे संकल्प की विचित्रता से उभय वि

ध भाव होसकता है द्वादशाहवत् इस दृष्टान्त का भाव यह है जैसे दो प्रकार की श्रुति से पूर्व मीमांसा में द्वादशाह याग को सत्रत्व तथा अहीनत्त्व यह दोनों प्रकार मानते हैं" द्वादशाह को सत्रत्व तथा अहीनत्व पूर्व मीमांसा में अ० ८ पा० २ अधिकरण ५ देखो। और सत्रत्त्व तथा अहीनत्वबोधकदोनों श्रुति यहहैंदोनो

यएवंविद्वांसः सत्रमासते॥ यएवंविद्वांसः सत्रमुपयन्ति द्वादशाहेन प्रजाकामं याजयेत्।

अर्थ॰ ये विद्वज्जन सत्र को आसते तथा उपयन्ति नाम अनुष्ठान करते हैं प्रजा काम को द्वादशाह करके यजन करावे तिसको सत्रत्व तथा अहीनत्व जैमिनि ऋषि सूत्रों से जनाते हैं अर्थात् सत्रत्व अहीनत्व के लक्षण सूत्र लिखकर दिखलाते हैं। तथाहि।

द्वादशाहस्य सत्रत्व मासनोपायिचोदने नयजमान वहुत्वेन च सत्र शब्दाभि संयोगात्। पूर्व मीमांसा अ० १० पा० ५ सूत्र ५९ तथा। यजति चोदना दहीनत्वं स्वामि नाञ्चा ऽस्थित परिमाणत्वात्। पूर्वमीमांसा अ० १०। पा० ५। सू० ६०।

अर्थ॰ द्वादशाह को सत्रत्व होता है आसते तथा उपयंति ऐसी चोदना नाम विधि करके और यजमानों के बहुत्व करके क्योंकि ऐसे स्थान में द्वादशाह याग में सत्र शब्द का अभिसंयोग होने से तैसे यजति चोदना नाम विधि वाक्य से द्वादशाह को अहीनत्व होता है क्योंकि याग करताओं का जहां अस्थित परिमाणत्व होता है अर्थात् अनियत परिमाण होता हैवहां द्वादशाह को

" जैसे मुक्त पुरुष को सशरीरत्व तथा अशरीरत्व दो प्रकार की श्रुतिसें मानते हैं

अहीनत्व कहाजाता है और जहां कर्त्ता नियत होते हैं और बहुतसे वहां सत्रत्व होता है। आसते उपयन्ति विधि वाक्य संयोग में। परन्तु बहुत कर्त्ता भी सप्त दश से न्यून नहोवें और चतुर्विंशति से अधिक नहोवें यह सर्व प्रकार पूर्व ममांसा के भाष्यकार शवर स्वामीजी ने इन सूत्रों के भाष्य में लिखा है।

तन्वभावे संध्यवदुपपत्तेः। शारीरक। अ०४। पा०४ सू०१३।

अर्थ — ब्रह्मलोक प्राप्ति मोक्ष में जब शरीर का भावाभाव दोनों प्रकार माने सिद्धान्त पक्ष में क्योंकि बादरि मत में शरीरका सर्वदा अभाव है और जैमिनि मत में सर्वदा भाव है और सिद्धान्त पक्ष बादरायण मत में भावाभाव दोनों माने हैं जब शरीर का अभाव है तब तो सन्ध्य नाम स्वप्नवत् पित्रादि विषय तथा अपना शरीर भी स्वप्नतुल्य प्रतीति मात्र जानने ऐसेही भोग की उपपत्ति होसकती है अन्यथा नहीं।

भावेजाग्रद्वत । शा० अ० ४ पा० ४ सू०१४

अर्थ — शरीर के भाव में जाग्रत के तुल्य मुक्त को भोग होता है

प्रदीपवदावेशस्तथाहि दर्शयति। शा० ४अ। पा०४। सू०१५।

भावार्थ — जैमिनि मत में सर्वदा सशरीरता है तो जब मुक्त पुरुष अनन्त शरीरों से भोग भोगता है तब एक जीवात्मा अनन्त शरीरों में कैसे प्रवेश करेगा वहां व्यासजी कहते हैं प्रदीपवत आवेश होता है भाव यह है जैसे प्रदीप अनेक वर्त्तिका में प्रवेश होता है तैसे मुक्त जीव भी विद्या योगबल से अनेक देहों में

प्रविष्ट होता है क्योंकि विद्वान का लिंग शरीर विद्यावल कर व्यापक होजाता है तथाहि दर्शयति तैसेही।

सएकधाभवति त्रिधाभवति पंचधा सप्तधा नवधा।

इत्यादि पूर्व उक्त श्रुति मुक्त पुरुष के नानात्व भाव को दिखलाती है। **प्रश्न**। आत्मा तथा मन का भेद तो असंभव है तो अनेक शरीरों में संबंध कैसे होगा। **उत्तर**। एक मन के अनुसारी सहित मन के अनेक शरीरों को सत्य संकल्प होने से मुक्त पुरुष रचना करता है जब अनेक सहित मन के शरीर रचना करे तब उपाधि भेद करके आत्मा एकही सर्वका अधिष्ठाता होसकता है॥ **शंका**। जब मुक्त पुरुष को सत्यकाम तथा सत्यसंकल्प माना तो मुक्त पुरुष भी ईश्वर तुल्य होगया तो मुक्त पुरुष अनन्त हैं इससे ईश्वर नानात्व की प्राप्ति होगयी इस शंका के समाधान का सूत्र।

जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च।

शा० अ०४ पा०४ सू०१७।

अर्थ— जगत उत्पत्ति पालन संहार को वर्ज करके मुक्त पुरुष का ऐश्वर्य्य है और जगद्व्यापार तो केवल नित्य सिद्ध एक ईश्वर के आधीन है क्योंकि जगत् उत्पत्ति स्थान में नित्य सिद्ध ईश्वर का ही प्रकरण होने से और इतर मुक्त पुरुषों को जगदुत्पत्यादि व्यापार में असंनिहित होने से भाव यह है महाप्रलय से अनंतर सृष्टि में ईश्वर से बिना और किसी पुरुष का सन्निधान नहीं होसकता। क्योंकि पूर्व ऋग्वेद मंत्र में नासदासीदित्यादि

प्रकार का सर्ववस्तु का निषेध करा और जो पूर्व कल्प में ब्रह्मलोक में उपासक प्राप्त भये थे सो तो कैवल्यपद में आरूढ़ होगये थे हिरण्यगर्भ के साथ इससे जगद्व्यापार सहित निरंकुश ऐश्वर्य्य तो नित्यसिद्ध ईश्वर का ही है और मुक्त पुरुषों का जगद्व्यापार वर्जित ऐश्वर्य है।

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च। शा० अ० ४ पा० ४ सू० २१।

अर्थ — इस कारण से भी सगुणोपासकों का निरंकुश ऐश्वर्य्य नहीं क्योंकि भोगमात्र समानता श्रवण कराजाता है तथा उपास्य देव के साथ भेद निर्देशरूप लिङ्ग से निश्चय होता है जो निरंकुश ऐश्वर्य्य उपासकों का नहीं है सो भोग साम्य बोधक श्रुति दिखलाते हैं॥

सएतंदेवयानं पन्थानमापद्याग्निलोकमागच्छति सवायुलोकं सवरुणलोकं सइन्द्रलोकं सप्रजापतिलोकं सब्रह्मलोकं तस्यहवाएतस्यलोकस्याऽरेह्रदोमुहूर्त्तायेष्टिहा विजरानदीत्ल्यो वृक्षः सालज्यं संस्थानमपराजितमायतनमिन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ। अ० १। ऋग्वेदीय कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्।

अर्थ — सो सगुणब्रह्म उपासक इस वक्ष्यमाण देवयान पन्थ को प्राप्त होकर अग्निलोक नाम अर्चिरादि मार्ग अभिमानी देवता को प्राप्त होता है पश्चात् दिन शुक्लपक्ष उत्तरायण संवत्सर देवलोक अभिमानी देवताओं को क्रम से प्राप्त होकर वायुलोक नाम वा

यु देवता को प्राप्त होकर वायुदेवता ने रथचक्र तुल्य मार्ग जो दि
या है तिस मार्ग से आदित्यदेव को प्राप्त होकर तिस देवता ने दि
या डंबर नामक वाद्याछिद्र तुल्य छिद्रकर चन्द्र देवता को प्राप्त
होकर विद्युतलोक को प्राप्त होता है तहां हिरण्यगर्भ लोक वासी भ
अमानव पुरुषों के साथ बरुणलोक को प्राप्त होकर इन्द्रलोक औ
र इन्द्रलोक से प्रजापति लोक को प्राप्त होकर पश्चात् ब्रह्मलोक
को प्राप्त होता है तिस ब्रह्मलोक का आर नामक अनन्त समुद्र ज
ल तुल्य गंभीर ह्रद है और तिस ह्रद के परपार मुहूर्त्त नाम घटि
का ह्यकालाभिमानी देव हैं येष्टिहा नाम वाले अर्थ यह है इष्टि
जो ब्रह्मलोक प्राप्ति हेतु उपासना तिसको काम क्रोधादि प्रवृत्ति उत्प
न्न कर नाश करनेवाले हैं इसवास्ते येष्टिहा कहेजाते हैं। विजरना
म नदी जिसके दर्शन मात्र से जरा विगत होजाती है सो नदी ते
उपासना क्रियारूप है और इल्य नामक वृक्ष है और किसी श्रु
ति में सोमसवन नाम अश्वत्थ भी इसी वृक्ष को कहते हैं और
सालज्य नाम संस्थान है अर्थात सालवृक्ष समान जिनके गुणा ना
मक ज्या ऐसे धनुषधारी शूरवीरों करके चारों तरफ से रक्षित प
त्तन है अपराजित नाम जिसको किसीने अबी तक जीता नहीं ऐ
सा आयतन नाम ब्रह्मा का निवास मंदिर है और इंद्र प्रजापति ना
मक द्वारगोप नाम द्वाररक्षक हैं।

श्रुति। तंब्रह्माहाभिधावत ममयश साविज्जरां
वा अयंनदीं प्रापन्नवा अयंजर यिष्यतीति।
तंपञ्चशतान्यप्सरसां प्रतियंति शतंफलहस्ताः
शतमाञ्जनहस्ताः शतंमाल्यहस्ताः शतंवासो

हस्ताः शतंचूर्णहस्तास्तं ब्रह्मालंकारेणा लंकुर्व न्ति सब्रह्मालंकारेणा लंकृतोब्रह्म विद्वान् ब्रह्मा भिप्रैति ॥ तमाहआपोवै खलुमेल्लोको ऽयं ते ऽसावितिसा याब्रह्मणोजितिर्या व्याष्टिस्तां जितिं जयतितांव्याष्टिं व्यश्नुते यराव्वंवेद ॥ ऋग्वेदीय कौषीतकि उपनिषद् । अ०१ ।

भावार्थ — पूर्व उक्त देवयान पन्थ कर जब ब्रह्मलोक में प्राप्त होगया उपासक तब ब्रह्मा तिसको उद्देश्य कर कहते हैं अपने दासीवर्ग को कि तुम मेरी यश नाम विभूति के सहित शीघ्र गमनकरो विजरा नदी को प्राप्त हुआ है यह उपासक सो यह पुनः जरा को नहीं प्राप्त होगा तब ब्रह्माजी की आज्ञानुसार पंचशत अप्सरा सर्व स्त्री गुण सम्पन्न तिस उपासक के सन्मुख पेशवाई में जाती हैं एक सौ फल हस्त में लेकर एकसौ अंजन हस्त में लेकर एकसौ माला समूह हस्त में लेकर एकसौ वस्त्र हस्त में लेकर एकसौ चूरण हस्त में लेकर जब वो उपासक आरूढ से उत्तीर्ण होता है तब उस उपासक को ब्रह्माजी के अलंकार से अलङ्कृत करती हैं वो अप्सरा पश्चात अलंकृत हुआ विद्वान ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है तब ब्रह्माजी तिस उपासक की परीक्षा पूर्वक उपासक को कहते हैं यह लोक आप नाम निर्मल सत्त्वप्रधान भूतों का कार्य्य है मेरा निवास स्थान सो यह लोक अनेक भोग्य वर्ग सहित तुमको प्राप्त है अर्थात् मेरे अपने भोग्यतुल्य भोग्यवर्ग तेरे को प्राप्त भया सो जो ब्रह्मा की जिति नाम उत्कर्षता तथा व्याष्टि नाम सर्वात्मत्व रूप से व्यापकता है तिसको तथा उत्कर्ष

ता को वो उपासक प्राप्त होता है जो वेदउक्त मर्य्यादा से हिरण्य गर्भ की उपासना करता है। इस रीति से प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध भयी जो उपासक को भोग साम्यता है भी तथापि निरंकुश ऐश्वर्य्य नहीं इससे ईश्वर नानात्त्वापत्ति नहीं। तथाहि।

यथैषादेवतैवथं सयथैनांदेवता थं सर्व्वाणि भूतान्यवन्त्येव थं हैवंविदथं सर्वाणि भूतान्यवन्ति ॥ यदुच्चरेत्समापिपयिषेत्तेनो एतस्यैदेवतायै सायुज्य थं सलोकतांजयति वृहदा० उ० अ० ३ ब्रा० ५।

अर्थ— जैसे यह प्राणदेवता सर्वात्मा है एवं नाम तैसे सो उपासक भी सर्वात्म भाव को प्राप्त होता है और जैसे इस प्राण देवता को सर्वभूत रक्षा करते हैं तैसेही एवं विद्म् नाम इस प्राणदेव की उपासना की दृढ़ता से सर्वात्म भाव प्राप्त विद्वान को सर्वभूत रक्षा करते हैं जेकर प्राण की उपासना उच्चरेत् नाम प्रारम्भ करे तो समापिपयिषेत् नाम समाप्त करने की इच्छा करे अर्थात् उपास्यभाव की प्राप्ति तक अनुष्ठान करे तेनउ तिसकी समाप्ति करकेही इस उपास्य देवता के सायुज्य और सलोक्यता को प्राप्त होता है अर्थात् उपास्य समान रूप प्राप्ति पूर्वक तिसके लोक में निवास करता है इन वाक्यों से जब उपास्य सदृश रूप की प्राप्ति कही तो भेद निर्देश स्पष्ट है इससे सावधिक ऐश्वर्य्य उपासकों का और निरवधिक ऐश्वर्य परमेश्वर का है यह वार्त्ता निर्णीत होगयी। **शंका।** जब उपासकों का ऐश्वर्य्य सावधिक माना तो तिनकी उसलोक से आवृति अवश्य होगी क्योंकि सावधिक

पदार्थ को विनाशित्त्व अवश्य होता है यह बार्त्ता लोक में प्रसिद्ध है इसमें शिष्ट बचन भी प्रमाण है। तथाहि।

क्षयान्तानिचयाः सर्व्वेपतनान्ताः समुच्छ्रयाः
संयोगाविप्रयोगान्ता मरणान्तंहिजीवितम्।

अर्थ — जो सम्पूरण निचया नाम पदार्थों के संचय हैं वे सर्व "क्षयान्त" नाश पर्य्यन्त हैं अर्थात उन संचित पदार्थों का नाश एकदिन अवश्य होगा और समुच्छ्रय नाम सावधिक ऐश्वर्य जोकि कर्म उपासना से प्राप्त है सो पतनान्त है अर्थात् एक दिन उस प्राप्त ऐश्वर्य से अवश्य पतन होंगे और जीवित मरणान्त है अर्थात् एक दिन मरण पर्य्यवसान होगा जीवने का इस शंका के समाधान का सूत्र व्यासजी लिखते हैं।

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्। शा० अ० ४ पा० ४ सू० २२।

अर्थ — जो पूर्वउक्त विशेषण विशिष्ट ब्रह्मलोक को प्राप्त उपासक हुआ है तिसकी अनावृत्तिः अर्थात् आवृत्ति होती नही शब्दात् नाम श्रुतिरूप शब्द प्रमाण से।

श्रुति। नसपुनरावर्त्तते। छा० उ० अ० ८।

अर्थ — जोकि उपासक ब्रह्मलोक को प्राप्त भया तिसकी पुनरावृत्ति होती नहीं किन्तु हिरण्यगर्भ के साथ विदेह कैवल्य कोप्राप्त होता है। सूत्राभ्यास शारीरक शास्त्र समाप्ति का बोधक है

शंका। एतेनप्रतिपद्यमाना इमं मानव माव र्तं नावर्त्तन्ते। छां० उ०। प्रपा० ४। खं० १५।
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन।

मामुपेत्यतुकौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। गी०अ०८ श्लो०१६।

अर्थ — इस देवयान मार्ग करके ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए इस मानव आवर्त्त नाम स्थान को नावर्त्तन्ते नाम "नप्राप्नुवन्ति" नहीं प्राप्त होते। इस श्रुति में मानव नाम मनु निर्मित आवर्त्त को नहीं प्राप्त होते यहां मानव स्थान का इमं इस विशेषण से यह प्रतीत होता है जो मानवान्तर में आवृत्ति होती है और गीतावाक्य तो साक्षात आवृत्ति को बोधन करता है

अर्थ — गीतावचन का जो ब्रह्मलोक पर्य्यन्त यावत् लोक हैं वे पुनरावृत्ति वाले हैं और सच्चिदानन्द सर्वाधिष्ठान मेरे को प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता इस श्रुति स्मृति प्रमाण में ब्रह्मलोक प्राप्त उपासक की अनावृत्ति कथन विरुद्ध है इस शंका के समाधान का सूत्र।

कार्य्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् शा०।अ०४।पा०३। सू०१०।

पद।कार्य्यात्यये तदध्यक्षेण सः अतः परम् अभिधानात्। (कार्य्यस्य ब्रह्मलोकस्य अत्ययः प्रलयः कार्य्यात्ययः तस्मिन् कार्य्यात्यये तस्य कार्य्य ब्रह्मलोकस्य अध्यक्षो ऽधिष्ठाता ब्रह्मा तदध्यक्षः तेन तदध्ये ण अतो ऽस्मात्कार्य्यात्परं कारणं प्रतिपद्यन्त इतिशेषः अभिधानात् श्रुतौ कथनात्)

भावार्थ — ब्रह्मलोक की प्रलय में ब्रह्मलोक के अधिष्ठाता। जब ब्रह्माजी स्वरूपावस्थ होवेंगे तब तिनके साथ ब्रह्मलोक को प्राप्त उपासक भी इस कार्य्यावस्थापन्न अव्याकृत से परविष्णु के

परमपद को प्राप्त होते हैं ते उपासक क्योंकि ऐसेही श्रुति में कथन करने से। तथाच।

श्रुति। परेणनाकंनिहितं गुहायां विभ्राजते य द्यतयोविशन्ति। वेदान्तविज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्ध सत्त्वाः। तेब्रह्मलो केषु परान्तकाले परामृतात्परि मुंचंति सर्व्वे अथर्ववेदाय कैवल्यशाखोपनिषद्। खं०१

टीका – परेण परस्तात् नाकं कंसुखंतद्विरोधि दुःखम् अकम् नञकं यस्मिन् सनाकः तं स्वर्गस्यो परीत्यर्थः अथवा परेण परं नाकम् आनन्दात्मानं निहितं प्रदिप्तं धात्रा गुहायां बुद्धौ विभ्राजते विशेषेण स्वयं प्रकाशत्त्वेन दीप्यते यत् प्रसिद्धं विश्वव्यापि स्वरूपं यतयः कृत संन्यासाः प्रयत्नवन्तो ब्रह्म साक्षात्कार सम्पन्नाः प्रविशन्ति इदं वयंस्म इतिसाक्षात्कारेण तदेव भवन्तीत्यर्थः। यतीनां विशेषणान्याह

वेदान्तविज्ञान सुनिश्चितार्थाः

वेदान्ताः प्रसिद्धाः तेभ्यो जातं विशिष्टम् अहं सर्वाधिष्ठानचिदस्मीति ज्ञानं तास्मिन्नेव सुनिश्चितः अर्थः प्रयोजनं येषांते अथवा सुनिश्चितः अयमित्थमेवेति सम्यग ‍वधारितो ब्रह्मलक्षणः अर्थो विषयो यैस्ते वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगात्। सम्यक वान्त विष्टादिवत लोकद्वय भोगस्य न्यासः संन्यासः तस्ययोगः अहं संन्यास्यस्मीति बोधः तस्मात शुद्धसत्त्वा शुद्धं रागादिकषाय रहितं सत्त्वम अंतःकरणं येषांते शुद्ध सत्त्वाः एवं भूता अपि कुतश्चित प्रति

वन्धादस्मिन् शरीरे अनुत्पन्न सक्षात्काराश्चेत् तदा ते उक्ता यतयः ब्रह्मलोकेषु ब्रह्मणः कार्य्यस्येक एवलोको अनेक भूमिका प्रासाद वदध उपर्य्यादि भागे नावस्थिता वह्व एवं नाभिधीयन्ते ब्रह्मलोकेषु अतएव योगभाष्ये तृतीयपादे पंचविंशतिमे सूत्रभाष्ये लोक संग्रह प्रतिपादको वैयासिकः

॥श्लोकः॥

ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकःप्राजापत्यस्ततोमहान्
माहेन्द्रश्च स्वर्गरित्युक्तो दिवितारा भुवि प्रजा
इति।

परान्तकाले परस्य कार्य्यस्य अन्तकालो विनाशकालः द्विपरार्द्धा वसानः परान्तकालः तस्मिन परामृतात उत्कृष्टात् अमरण धर्म्मिणो ऽव्याकृतात परिमुञ्चन्ति। परिमुच्यन्ते सर्वतो विमुक्ता भवन्ति सर्वे निखिलाः

पद। परेण नाकम् निहितम् गुहायाम् विभ्राजते यत् यतयः विशन्ति वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगात् यतयः शुद्धसत्वाः ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात्परिमुञ्चन्ति सर्वे (यत् नाकम् परेण गुहायां निहितं सत् विभ्राजते तत् वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्था यतयो विशन्ति) यह अन्वय है।

भावार्थ॰ जो वस्तु नाक नाम आनन्दरूप परेण नाम परं सर्वोत्कृष्ट और पंचकोश रूप गुहा में निहित नाम स्थित हुआ प्रकाशमान है जिसको वेदान्त विज्ञान करके स्पष्ट निश्चित है ब्रह्म रूप अर्थ जिनको अर्थात परमात्मा साक्षात्कार सम्पन्न जो यति

हैं वे प्राप्त होते हैं और जेकर किसी प्रतिबन्ध के बल से साक्षात्कार नहीं तो ये संन्यासयोग नाम लोकद्वय विषय भोग संकल्प त्याग मे शुद्धान्तः करण यति हैं ते ब्रह्मलोक जो कि तीन भूमिका का है सत्य तपजन नामक तिनमें वर्त्तमान सर्वयति परान्तकाल नाम ब्रह्मलोक के प्रलय समय में परामृत जो अव्याकृत तिससें मुक्त होकर विष्णु के परमपद को प्राप्त होते हैं अथवा परामृतात् नाम कर्म त्याग पूर्वक संन्यास वेदान्त श्रवण के प्रभाव से ब्रह्मलोक में उत्पन्न साक्षात्कार जीवनमुक्त हुए परामृतं प्राप्य विदेह कैवल्यात्प्राक जीवनमुक्ति सुख को ब्रह्मलोक में प्राप्त होकर परिमुच्यंति नाम विदेह कैवल्य को प्राप्त होते हैं। इसवास्ते जो पूर्व श्रुति स्मृति में आवृत्ति वचन है सो तो पंचाग्निविद्या वा केवल प्राणादि तत्त्व की उपासना वा वानप्रस्थ आश्रम युक्त केवल तपके प्रभाव सेजोब्रह्मलोक को प्राप्त हैं तिनकी आवृत्ति बोधन करता है और जिनकी आवृत्ति होती है ते अल्पपुण्य हैं तथा ब्रह्मज्ञान वर्जित हैं। और पूर्व उक्त सप्तलोक संग्रह श्लोक का यह अर्थ है ब्रह्माजी का लोक तीन भूमि वाला है यथा एक मन्दिर के तीन खाने ऊपर नीचे होते हैं तथा ब्रह्मलोक तीन भूमिवाला है सर्व से ऊपर का नाम सत्यलोक उससे नीचे का नाम तपलोक उससे नीचे का नाम जनलोक है और इस त्रिभूमि का ब्रह्मलोक से नीचे प्रजापति का महर्लोक है और तिससे नीचे स्वर्गलोक है इन्द्र देवराज का और जहां तारागण स्थित हैं दिवि नाम अन्तरिक्ष में सो अन्तरिक्षलोक है और जहां प्रजा निवास करती है सो भूलोक है

अथ देवतादि निषेधक लेख खण्डनवास्ते

योगभाष्य से भूरादि सप्तलोक और लोक निवास कर्त्ताओं के स्वरूप तथा स्थान का निरूपण करते हैं

॥१७॥

सत्या० स्वमन्तव्यामंतव्य विषय में पृ० ६० ३। में देखो।

२० देव विद्वानों को और अविद्वानों को असुर पापियों को राक्षस अनाचारियों को पिशाच मानता हूं। यह दयानन्द का कथन है इसका तात्पर्य्य यह है मनुष्यों से भिन्न देव असुर राक्षस पिशाच नहीं और इसलोक से भिन्न कोई स्वर्गादि नहीं तथा नरक भी इस लोक से प्रथक नहीं सो यह लेख विद्या हीनता का सूचक है। क्योंकि पूर्व वेदमंत्रों से तथा निरुक्त प्रमाण से देवता स्वर्गलोक तथा सूत्र और श्रुति सें ब्रह्मलोक सिद्ध होगया उनीं ग्रन्थों से जिनको दयानन्द मानता है तथा दयानन्द स्वीकृत (सत्या० स० ३ पृ० ७० में देखो) पतंजलि सूत्रभाष्य व्यासकृत से नरक से लेकर ब्रह्मलोक पर्य्यन्त भुवन विस्तार तथा तिस २ स्थान निवासी नारकी जीव से लेकर संज्ञा संज्ञिनामक देवता पर्य्यन्त सिद्ध होते हैं।

तथाहि। भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात्। योग शास्त्र पा० ३। सू० २५।

व्यासमुनिकृत भाष्य।

ततः प्रस्तारः सप्तलोकास्तत्रावीचेः प्रभृति मेरु पृष्ठ यावदित्यवं भूर्लोको मेरु पृष्ठादारभ्याध्रुवात् ग्रहनक्षत्र तारादि विचित्रोऽन्तरिक्षलोकस्ततः

परः स्वर्गलोकः पंचविधो माहेन्द्र स्तृतीयलोक श्चतुर्थः प्राजापत्योमहर्लोक स्त्रिविधोब्राह्मः तद्यथाजनलोकस्तपोलोकः सत्यलोकइति। ब्रा ह्मस्त्रिभूमिकोलोकः प्राजापत्यस्ततोमहान् माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवितारा भुवि प्रजा इति संग्रह श्लोकः।

अर्थ — सूर्य्य में नाम सुषुम्ना नाड़ी में संयम नाम ध्यान धारणा स माधि रूप नितय से योगीको भुवन का ज्ञान होता है अब सूत्रार्थ को स्पष्ट करनेवास्ते भुवन का व्यासमुनि वर्णन करते हैं (ततः) तस्य भुवनस्य प्रस्तारो नाम विस्तारः) तिस भुवन का विस्तार सप्तलोक हैं। आवीचि नाम अवकाश से लेकर सुमेरु पर्वत की पीठ तक भूलोक है तिससे प्रारम्भ कर ध्रुव पर्य्यन्त ग्रह नक्षत्रादिकरके विचित्र अ न्तरिक्ष लोक है और तिससे पर स्वर्ग चतुर्थ पंचप्रकार का माहेन्द्र लोक नामक तृतीय लोक है और प्रजापति का महर्लोक है और त्रि प्रकार का ब्रह्मलोक है यथा जनलोक तपोलोक सत्यलोक संग्र ह श्लोक का अर्थ पूर्वही निर्णीत है अब व्यासमुनि संक्षेप से नि र्णीत अर्थ का विस्तार करते हैं दयालुता से क्योंकि विस्तार करे बि ना पदार्थ बुद्धि में आरूढ़ होता नहीं। व्यासमु नि कृत भाष्य।

तत्रावीचेरुपर्य्युपरि निविष्टाः षण्महानरक भूमयोघन सलिलानलानिलाकाश तमःप्र तिष्ठाः महाकालाम्बरीष रौरव कालसूत्रान्ध तामिस्राः यत्रस्वकर्म्मोपार्जित दुःख वेदनाः

प्राणिनः कष्टमायुर्दीर्घ माक्षिप्य जायन्ते।

अर्थ॰ तिन सप्त लोकों में अवकाश से उपर २ रचित षट महा नरकस्थान हैं पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश अन्धकार में प्रतिष्ठित हैं तात्पर्य्य यह है इन षट् महा नरक स्थानों के पृथिवी आदि परिवार हैं कोटवत् जिस नरक स्थान का कोई परिवार नहीं तिसका आकाशही परिवार वत् परिवार है इन नरकों के महाकाल १ अम्बरीष २ रौरव ३ महारौरव ४ कालसूत्र ५ अन्धतामिस्र ६ भी नाम हैं जिन स्थानों में अपने कर्मजन्य दुःख वेदनायुक्त प्राणि कष्ट रूप दीर्घ आयु को प्राप्त होकर जन्म लेते हैं इससे नरक कोई इस लोक से पृथक नहीं किन्तु यह लोक ही नरक है दुःख युक्त शरीर यह कथन भी व्यासमुनि कृत पातंजल सूत्र भाष्य के अज्ञान का सूचक है क्योंकि यद्यपि इस लोक में भी अति उग्र पाप वा पुण्य का फल देखा जाता है तथापि नरक स्थान भी शास्त्र प्रतिपाद्य है तिसका निषेध नहीं कराजाता ―― व्यासमुनि कृत भाष्य।

ततोमहातल रसातलातल सुतल वितल तलातल पातालाख्यानि सप्तपातालानि भूमि रियमष्टमी सप्तद्वीपा वसुमतीयस्याः सुमेरुर्मध्ये पर्वतराजः काञ्चनः।

अर्थ॰ तिस नरक स्थान से उपर २ महातल १ रसातल २ अतल ३ सुतल ४ वितल ५ तलातल ६ पाताल ७ नाम वाले सप्त पाताल हैं और भूमि यह अष्टमी सप्तद्वीप वाली धनवती है जिस भूमि के मध्य में सुमेरु नाम पर्वतराज है सुवर्ण का प्रकाशमान उज्ज्वल

दीप्ति वाला पृथिवी रूप पुष्प के मध्य में कर्णिकावत् शोभायमान अनन्त निवास स्थानयुक्त है।

भाष्य। तस्यराजतवैडूर्य्य स्फटिक हेम मणि मयानि शृंगानि तत्र वैडूर्य्य प्रभानु रागान्वितोत्पल पत्र श्यामोनभसो दक्षिणभागः श्वेतःपूर्वः स्वच्छः पश्चिमः कुरुण्डकाभ उत्तरः दक्षिण पार्श्वे चास्य जम्बुर्यतोऽयंजम्बुदीपः तस्य सूर्य्य प्रचाराद्रात्रिं दिनं लग्न मिव विवर्त्तते। तस्य नील श्वेत शृंग वन्त उदीचीनास्त्रयः पर्व्वता द्विसहस्त्रा यामास्तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नवनवयोजन साहस्त्राणि रमणकं हिरण्मय मुत्तराः कुरवः इति।

अर्थ— तिस सुमेरु पर्वत के पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर की तरफ़ क्रम से राजत मणिमय शृंग वैडूर्य्य मणिमय शृंग और स्फटिकमणिमय शृंग और हेम मणिमय शृंग हैं तिन चार शृंगों में से दक्षिण की तरफ़ वैडूर्य्य मणिमय शृंग है तिसकी प्रभा के अनुराग युक्त नीलकमल वत् श्याम आकाश का दक्षिण भाग है और ऐसेही राजतमणिमय शृंग की प्रभानुराग प्रभाव से पूर्व का आकाश भाग श्वेत है और पश्चिम का स्वच्छ है और उत्तर कुरुण्डकाभ नाम हरेपन कर युक्त है क्योंकि सुवर्ण की छाया हरेपन को लिये होती है इससे उत्तरभाग आकाश का सुवर्ण मणिमय शृंग की छाया युक्त होने से हरा है और दक्षिण की तरफ़ सुमेरु के जम्बु का वृक्ष है इससे प्रथम सुमेरु के चारों तरफ़ नवखण्ड युक्त जम्बु

द्वीप है। तिस पर्वत सुमेरु के चारों तरफ़ सूर्य्य प्रचार से रात्रि दिन लग्नवत् भ्रमण करते हैं और तिस सुमेरु के उत्तर दिशा में दो२ हज़ार योजन दीर्घ नील श्वेत शृंगो वाले तीन पर्वत हैं तिन पर्वतरूप अन्तराये के होते नौ २ हज़ार योजन तीन खण्ड हैं रमणक हिरण्मय उत्तरकुरु नाम वाले सुमेरु के समीप जो प्रथम पर्वत है नीलशृंग युक्त होने से नील और श्वेतशृंग पर्वत के मध्य में रमणक खण्ड है वर्ष तथा खण्ड दोनों शब्द एकार्थक हैं और श्वेतशृंग पर्वतों के मध्य में हिरण्मय खण्ड है और श्वेतशृंग पर्वत तथा लवणोदधि उत्तर समुद्र के बीच में उत्तरकुरु नामक खण्ड है। व्यासमुनि भाष्य।

निषिधहेमकूटहिमशैला दक्षिणतोद्विसाहस्रायामास्तदन्तरेषु त्रीणिवर्षाणि नवनवयोजनसाहस्राणि हरिवर्षं किंपुरुषं भारतमिति सुमेरोः प्राचीनाभद्राश्वा माल्यवत सीमानःप्रतीचीनाः केतुमाला गन्धमादनसीमानो मध्येवर्षमिलावृतम्।

अर्थ— सुमेरु की दक्षिणदिशा में निषिध १ हेमकूट २ हिमशैल ३ नाम वाले तीन पर्वत हैं दो २ हज़ार योजन विस्तार वाले तिनके अन्तराय के होते तीन खंड हैं नौ २ हज़ार योजन हरिवर्ष किं पुरुष भारत नाम वाले तिनमें सुमेरु के समीप जो निषिध पर्वत तथा हेमकूट पर्वत तिन दोनों के मध्यवर्त्ति हरिवर्ष खंड है और हेमकूट तथा हिमशैल के मध्यवर्त्ति किंपुरुष खंड है और हिमशैल तथा दक्षिण लवण समुद्र के बीच में भारतखंड है और सुमेरु केप्राचीन नाम पूर्वभद्राश्व खंड है माल्यवत पर्वत है सीमा जिसकी।

भाव यह है यथा उत्तर दक्षिण में तीन२पर्वत हैं तथा पूर्व पश्चिम में सुमेरु के एक २ पर्वत है पूर्व में माल्यवान पश्चिम में गंधमादन पर्वत है तब यह सिद्ध हुआ जो पूर्व समुद्र तथा माल्यवान पर्वत के बीच भद्राश्व खण्ड है और पश्चिम की तरफ़ पश्चिम लवण समुद्र तथा गंधमादन पर्वत के बीच केतुमाल खण्ड है और उत्तर का नील पर्वत और दक्षिण का निषिध पर्वत पूर्व का माल्यवान पर्वत पश्चिम का गन्धमादन पर्वत यह चार पर्वत चारों तरफ़ रहने वाले एक तरफ़ और एक तरफ़ सुमेरु पर्वत कीले के स्थानापन्न और मध्य में वर्ष इलावृत है अर्थात् सुमेरु के चौगिरद चार पर्वतों के बीच में इलावृत खण्ड है। व्यासमुनिकृत भाष्य।

तदेतद्योजन शतसहस्रं सुमेरोर्दिशि दिशि तदर्द्धेनव्यूढं सखल्वयं शतसहस्रायामो जम्बुद्वीपस्ततो द्विगुणेन लवणोदधि नावलयाकृतिनावेष्टितः ततश्च द्विगुणाः शाककुशक्रौञ्च शाल्मल गोमेधपुष्करद्वीपाः सप्त समुद्राश्च सर्षपराशिकल्याः सविचित्रशैलावतंसा लवणेक्षुरस सुरासर्पिर्दधिमण्ड क्षीरस्वादूदक सप्तसमुद्रवेष्टिता वलयाकृतयो लोकालोकपर्वत परिवाराः पञ्चाशत योजन कोटिपरिसंख्याताः।

अर्थ — अब सकल जम्बुद्वीप का परिमाण कहते हैं सो यह सौ हजार योजन सुमेरु की सर्व दिशाओं में लंबेपन में है और तिस से

आधे भाग करके चौड़ाई में है सो यह सौ हज़ार योजन विस्तारवाला जम्बुद्वीप है तिससे द्विगुण लवणसमुद्र ककनाकार कर के लपेटा है और तिस ते उत्तर २ द्विगुण शाक कुश क्रौञ्च शाल्मल गोमेध पुष्कर इन नाम वाले द्वीप हैं सप्त समुद्र तो सर्षप की राशि तुल्य हैं और द्वीप संपूर्ण विचित्र पर्वतरूप शिरोंवाले हैं और लवण इक्षुरस सुरा सर्पिः दधिमण्ड क्षीर स्वादूदक इन नामों वाले सात समुद्रों करके चौगिरद से घेरे हुए हैं ककनाकार लोकालोक पर्वत परिवृत हैं पचास क्रोड योजन परिमाण वाले हैं । व्यासमुनिभाष्य

तदेतत्सर्बं सुप्रतिष्ठित संस्थान मण्डमध्येव्यूढम् ।

अर्थ॥ सो यह सपूर्ण बसुधा मण्डल सुप्रतिष्ठित स्थानों वाला ब्रह्माण्ड के मध्य में व्यूढ नाम संक्षिप्त होरहा है।

भाष्य ॥ अण्डञ्चप्रधानस्याणोरवयवो यथाकाशेखद्योतइति तत्रपातालेजलधौ पर्वतेष्वेतेषु देवानिकाया सुरगन्धर्व किन्नर किंपुरुष यक्ष राक्षस भूतप्रेतपिशाचापस्मारको ऽप्सरोब्रह्मराक्षस कुष्माण्डविनायकाः प्रतिवसंति । सर्वेषु द्वीपेषु पुण्यात्मानो देव मनुष्याः । सुमेरुस्त्रिदशानामुद्यान भूमिस्तत्र मिश्रवनं नन्दनं चैत्ररथं सुमानसमित्युद्यानानि । सुधर्मादेवसभा सुदर्शनंपुरं वैजयंतः प्रासादः ग्रहनक्षत्र तारकास्तुध्रुवे निवद्धावायु विक्षेपनियमे नोपलक्षित प्रचाराः सुमेरोरुपर्य्यु परि सान्निविष्टा विपरिवर्त्तन्ते

माहेन्द्रनिवासिनः षटदेव निकायास्त्रिदशा अग्निष्वात्ता याम्यास्तुषिताः।

अर्थ — और ब्रह्माण्ड अत्यन्त सूक्ष्म प्रधान का एक अवयव है जैसे आकाश में खद्योत होता है वैसे प्रधान में अण्ड है अब जिस के वास्ते इतना प्रयास करा है भुवन निरूपण में सो व्यासमुनि के भाष्य से दिखलाते हैं पूर्व प्रसंग यह है देवता मनुष्यों से भिन्न स्वर्गादि स्थान वाले नहीं हैं यह दयानन्द का मत है सो विद्या हीनता से माना है दयानन्द ने क्योंकि दयानन्द स्वीकृतव्यासमुनि के भाष्य से देवतादि सर्व मनुष्यों से भिन्न सिद्ध होते हैं सो जिस २ स्थान में जो २ प्राणि निवास करते हैं सो दिखलाते हैं पाताल समुद्र पर्वत यह जो पूर्व निर्णय करचुके तिनमें देवनिकाय नाम देवजाति असुर गन्धर्व किन्नर किम्पुरुष यक्ष राक्षस भूत प्रेत पिशाच अपस्मारक अपसरा ब्रह्मराक्षस कुष्माण्ड बिनायक इतने नाम वाले निवास करते हैं और सर्व द्वीपों में पुण्यात्मा देवता तथा मनुष्य निवास करते हैं और सुमेरु त्रिदश नामक देवताओं की सैल भूमि है तिसमें मिश्रवन नन्दनवन चैत्ररथवन सुमानसवन यह बागीचे हैं सुधर्मा देवसभा है सुदर्शन पुर है वैजयंत मंदिर है इतने स्थान सुमेरु पर हैं और ग्रह नक्षत्र तारागण ध्रुव में बंधे हुए हैं वायु के व्यापार नियम करके तिनों का प्रचार लखा जाता है सुमेरु के उपर २ संवद्धही बिचरते हैं माहेन्द्र लोक में षट देवजाति हैं त्रिदश अग्निष्वात्त याम्य और तुषित व्यासमुनि कृत भाष्य।

अपरिनिर्मितवर्त्तिनः परिनिर्मितवशवर्त्तनश्चेति सर्वे संकल्प सिद्धाः। अणिमाद्यैश्वर्य्योपप

न्त्राः कल्पायुषोवृन्दारकाः कामभोगिन औपपादिक देहा उत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिः कृतपरिवाराः।

अर्थ— और अपरि निर्मित वर्त्ति परि निर्मित वशवर्त्ति सम्पूर्ण सत्य संकल्प हैं अणिमादि ऐश्वर्य्ययुक्त हैं कल्पपर्य्यन्त आयुवाले हैं वृन्दारक नाम सर्वकर पूजन योग्य हैं विषयभोग प्रधानता वाले हैं और औपपादिक देहा नाम माता पिता के संयोग के बिनाही स्वसंकल्प से दिव्य देह सूक्ष्म भूतों से उत्पन्न करके व्यवहार करते हैं इस कहने से माता पिता संयोग बिना कोई शरीर होता नहीं अन्यथा सृष्टि नियम का भंग होगा· यह कथन भी असंगत है और।

सन्त्ययोनिजा। वै० अ० ४ आ० २ सू० १०

अर्थ— अयोनिज भी ब्रह्मादि के शरीर होते हैं इस सूत्र का विरोध है ऐसे स्वकल्पना करे नियम के मानने से" और वो देवता सर्व स्त्रीगुण सपन्न अप्सरों कर के परिवारित हैं जिनके अयोनिज शरीर हैं और सत्यसंकल्प हैं अणिमादि सिद्धि के प्रभाव से सम्पन्न होकर यथेष्ट विचरते हैं। व्यासमुनि कृत भाष्य।

महतिलोकेप्राजापत्ये पञ्चविधोदेवनिकायः कुमुदा ऋभवः प्रतर्द्दना अञ्जनाभाः प्रचिताभा इत्येतेमहाभूत वशिनोध्यानाहाराः कल्पसहस्त्रायुषः प्रथमेब्रह्मणोजनलोकेचतुर्विधोदेवनिकायो ब्रह्मपुरोहिताः ब्रह्मकायिकाः ब्रह्ममहाकायिका अमरा इतिते भूतेन्द्रिय वशिनो द्विगुण द्विगुणोत्तरायुषो द्विती

येतपसिलोके त्रिविधोदेवनिकायः आभास्वरा महाभास्वरा सत्यमहाभास्वरा इतितेभूतेन्द्रिय प्रकृतिवशिनः। द्विगुणाद्विगुणोत्तरायुषः सर्वे ध्यानाहाराः ऊर्द्धरेतस ऊर्द्धमप्रतिहतज्ञानाः अधरभूमिष्वनावृतज्ञानविषयाः तृतीयेब्रह्मणः सत्यलोकेचत्वारोदेवानिकाया अच्युताः शुद्धनिवासाः सत्याभाः संज्ञासंज्ञिनश्चेति

अर्थ— प्रजापति के महतिलोक में पंच देवजाति हैं कुमुद ऋभु प्रतर्द्दन अंजनाभ प्रचिताभये संपूर्ण देवता महाभूत वशि हैं· ध्यानमात्र आहार वाले हैं और सहस्र कल्प आयु वाले हैं· और ब्रह्मा के प्रथम जनलोक में चार प्रकार की देवजाति है ब्रह्मपुरोहित ब्रह्मकायिक ब्रह्ममहाकायिक और अमरा ते सम्पूर्ण देवता भूत इन्द्रिय वशि हैं भाव यह है पृथिव्यादि पंचभूत और श्रोत्रादि इन्द्रिय गण उन देवताओं की इच्छा से स्व स्वकार्य में प्रवृत्त होते हैं और उत्तर २ दूनी २ आयुवाले हैं और द्वितीय तपोलोक में तीन प्रकार के देवता हैं आभास्वर और महाभास्वर और सत्य महाभास्वर ते देवता संपूर्ण भूत इन्द्रिय प्रकृति वशि हैं प्रकृति नाम तन्मात्रा का है तन्मात्रा तिन देवताओं की इच्छा से शरीराकार वा विषयाकार परिणाम को प्राप्त होते हैं और उत्तर २ द्विगुण आयुवाले हैं और ध्यान से तृप्त रहते हैं और ऊर्द्धरेता ब्रह्मचर्य सम्पन्न हैं और ऊर्द्धलोक में अप्रतिबद्ध ज्ञानवाले हैं पृथिवी मूल से लेकर तपोलोक पर्य्यन्त सर्व पदार्थों के सूक्ष्म व्यवहित भाव को जानते हैं और तृतीय सत्यलोक में चार देवताजाति

है अच्युत तथा शुद्ध निवास सत्याभ संज्ञासांज्ञे। व्यासमुनि कृत भाष्य

अकृतभुवनन्यासाः स्वप्रतिष्ठा उपर्य्युपरिस्थिताः प्रधानवशिनोयावत् स्वर्गायुषः तत्राच्युताः सावितर्क ध्यानसुखाः शुद्धनिवासाः सविचार ध्यानसुखाः सत्याभआनन्दमात्र ध्यानसुखाः संज्ञासांज्ञिनश्चास्मिता मात्रध्यान सुखास्तेपि त्रैलोक्य मध्येप्रतिष्ठन्ते।तएतेलोकाः सर्वेएवब्रह्मलोकाः विदेहप्रकृति लयास्तुमोक्षपदे वर्त्तन्तेन लोकमध्येन्यस्ता इत्येतद्योगिना साक्षात्कर्त्तव्यं सूर्य्यद्वारे संयमं कृत्वाततो न्यत्रापि। एवंतावदभ्यसेद् यावदिदं सर्व्वंदृष्टमिति

अर्थ—ये चार प्रकार के अच्युत आदि संज्ञा वाले देवता अकृत भुवन न्यास नाम निवास स्थान से वर्ज्जित स्वप्रतिष्ठा नाम आधारान्तर रहित हैं सर्व के ऊपर२ स्थित हैं और प्रधानवशि हैं अर्थात् इनके संकल्प से सत्त्वादि गुण परिणाम को प्राप्त होते हैं और ब्रह्मलोक की स्थिति पर्य्यन्त आयुवाले हैं इस स्थान में ब्रह्मलोक का नामही स्वर्ग है तिन देवताओं में अच्युत देवता तो सवितर्क ध्यान से तृप्त रहते हैं और शुद्धनिवास सविचार ध्यान सें तृप्त हैं और सत्याभा आनन्दमात्र ध्यान से तृप्त हैं संज्ञासांज्ञि अस्मिता ध्यान से तृप्त हैं ते देवता असिता ध्यान वाले भी त्रिलोकी के मध्य में हीं स्थित हैं यह सम्पूरण ब्रह्मलोक हैं जनलोकादि और विदेह तथा प्रकृतिलय योगिजन मोक्षपद में वर्त्तमान हैं इसवास्ते लोकों में तिनों का प्रवे

श नहीं करा भाव यह है बुद्धिवृत्ति परिणाम वाले ही लोकयात्रा में
वर्त्तमान हैं और बुद्धिवृत्ति परिणाम रहित प्रकृति में लीन रहते हैं
विदेह और प्रकृतिलय योगिजनों में भेद यह है विदेह तो स्थूलश
रीर रहित केवल लिङ्ग शरीर में सावरण ब्रह्माण्ड के अन्तरगत प्रकृ
ति में लीन होकर भोग को भोगते हैं परन्तु प्रकृतिलयों की अपेक्षा
से अल्प तथा प्रकृतिलयों की अपेक्षा से मलिन हैं वो भोग और प्र
कृतिलय योगिजन केवल सत्त्वप्रधान निरावरण प्रकृति में वर्त्तमान
निर्मल प्रकृति कार्य्य विषय भोग भोगते हैं और महाऐश्वर्य्य संपन्न
होते हैं विदेहों के नियन्ता होकर वर्त्तमान है वेही प्रकृतिलय योगि
जन ईश्वर कोटि कहे जाते हैं यह सम्पूर्ण पूर्व वर्णित ब्रह्माण्ड यो
गि को साक्षात् कर्त्तव्य है सूर्य्यद्वार में नाम सुषुम्णा में संयम करके
कदाचित् सुषुम्णा नाड़ी में ध्यान धारणासमाधि से साक्षात्कार नहो
तो किसी और पदार्थ में संयम करे जब तक सम्पूरण ब्रह्माण्ड का
साक्षात्कार नहो । **प्रश्न** । सर्व विश्वप्रकाशक सूर्य्य में सुषुम्णाना
डी द्वारा संयम से ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार नहीं होगा तो कौन पदार्थ में
संयम से साक्षात्कार ब्रह्माण्ड का होगा । **उत्तर** । समष्टि बुद्धि तत्त्व में
संयम से ब्रह्माण्ड साक्षात्कार होगा क्योंकि बुद्धितत्त्व तमोगुण करआ
वृतभी जहां रजोगुण कर प्रेरित संलग्न होता है तिसके प्रकाश करने
में समर्थ होजाता है इससे समष्टि बुद्धितत्त्व में संयम करने से वोबु
द्धितत्त्व सत्त्वप्रधान यावत् ब्रह्माण्ड साक्षात्कराने में समर्थ है इस
रीति से ब्रह्माण्ड साक्षात्कार की इच्छावाला बुद्धि कारण सत्त्वगुण
में संयम नाम ध्यान धारणा समाधि करे । प्रकरण में वार्त्ता यह नि
र्णय होयगी ब्रह्मलोक श्रुति व्यासमुनि सूत्र तथा पातंजल सूत्र

पर व्यासमुनि कृत भाष्य से निर्णय होगया और केवल विद्वानों को देव अविद्वानों को असुर यह दयानन्द का कथन विद्या हीनताका बोधक होगया क्योंकि देवता स्वर्गादि निवास करने वाले व्यासमुनि भाष्य में तथा पूर्वउक्त प्रकार से निरुक्त प्रमाण मंत्र प्रमाण से सिद्ध हो चुके हैं.

अथ वादि संमत मुक्त जन्म बोधक मंत्रार्थ। खण्डन और मंत्रान्तरानुरोध से यथा वदर्थ और मुक्तजन्माभाव निरूपण करते हैं।१८।

और जो प्रथम मोक्ष को।

नसपुनरावर्त्तते।छा०उप०।अ०८।
अनावृत्तिः शब्दात्।शा०अ०४।पा०४।सूत्र २२।

इत्यादि श्रुति सूत्र में अनन्तत्त्व शंका करके सांतत्व सिद्ध करा है (सत्या०प्र० समु०९ पृ०२३९ में देखो) सो तो कथन असंगत है सो जैसे दयानन्द का लेख है तिसको दिखलाते हैं।

कस्यनूनं कतमस्यामृतानां मनामहेचारुदेवस्यनाम। कोनोमह्या अदितये पुनर्दात पितरंच दृशेयं मातरंच। अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्यनाम। सनोमह्याअदितये पुनर्दात पितरंच दृशेयं मातरंच। ऋ०मण्ड०१ सू०२४ मं०१।२

सत्यार्थ प्रकाश में इन मंत्रों का यह अर्थ लिखा है। प्रश्न। हम०

लोग किसका नाम पवित्र जानें ? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाश स्वरूप है हमको मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता पिता का दर्शन कराता है। **उत्तर।** हम इस स्वप्रकाश स्वरूप अनादि सदामुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध से जन्म देकर मता पिता का दर्शन कराता है वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता है सब का स्वामी है। यह दयानन्द का लेख है। इस स्थान में यह विचार करना चाहिये जो यह प्रश्नोत्तर रूप संबाद मंत्रों में किसका है व्यासादि ऋषिओं का है वा मनुष्यों का है व्यासादि संबाद कहना तो असंगत है क्योंकि व्यासादि ऋषि तो अपने सूत्रों में मुक्त का जन्माभाव कथन कर के मुक्त का जन्म कैसे बोधन करेंगे तो परिशेषते। मनुष्यों का संबाद कहना होगा तो जब मनुष्यों का प्रश्न उत्तर वेदवाक्यों में मानोगे मंत्र भी मनुष्य रचितही होंगे इससे यह अर्थ मंत्रों का सर्वथा दयानन्द का अनर्थ है इससे इन मंत्रों की व्याख्यारूप जो ऐतरेयब्राह्मण है तिसके अनुसार अर्थ करना चाहिये। तथाहि।

सोऽसिं निः शानरायायाथहह शुनः शेपईक्षांचक्रेऽमानुषमिव वैमाविशासिष्यान्ति हंताहंदेवता उपधावामीति स प्रजापतिमेव प्रथमंदेवतानामुपससार। कस्यनूनं कतमस्यामृता नामित्येतयर्चा तं प्रजापति रुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्टस्तमेवोपधावेति सोऽग्निमुपससार। अग्निर्वयं प्रथमस्यामृताना मित्येतयर्चातमग्नि

ऋचेत्यादि। ऐतरेयब्राह्मणे सप्तपंचिका।
का० ३६।

भावार्थ – ब्राह्मण वाक्य का प्रकरणानुसार यह है कृतयुगकाल का यह कर्म पूर्व प्रकरण में प्रतीत होता है सो अजिगर्त्त नामक राजर्षि असि खड्ग को निः शान नाम तीक्ष्ण करके ययाय नाम शुनः शेप के पास प्राप्त होता भया अथ नाम इसकी प्राप्ति से अनन्तर शुनः शेप विचार करता भया कि अमानुष की तरह अर्थात् पशु की तरह मेरे को विशसन करेंगे में हन्त नाम इस काल में देवताओं का आराधन करों सो शुनः शेप ऐसा विचार कर प्रथम जात प्रजापति की शरण को प्राप्त होता भया कस्यन्नूनं कतमस्यामृता नामित्यादि ऋचा करके तिस शुनः शेप को प्रजापति कथन करता भया अग्निही देवताओंके मध्य में अत्यन्त समीप है इसवास्ते अग्नि को स्मरण कर तब वह शुनः शेप अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां इत्यादि ऋचाकर के प्रार्थना करता भया फिर अग्नि कथन करता भया जो तूं सविता की प्रार्थना कर इत्यादि रीति से राजसूय यज्ञ प्रकरण में ऐसी आख्यायिका इन मंत्रों से ऐतरेय ब्राह्मण में निर्णीत है इसवास्ते इन मंत्रों से मुक्त का पुनर्जन्म बोधन करना दयानन्द का ऐतरेय ब्राह्मण के सर्वथा अज्ञान का सूचक है सो सज्जन पुरुष जब इस ब्राह्मणवाक्य के अर्थ को विचारेंगे तो प्रतीत होगा दयानन्द का वेदवेत्तापना।

पद। कस्यन्नूनं कतमस्य अमृतानाम् मनामहे चारुदेवस्य नाम कः नः मह्यै अदितये पुनः दात् पितरम् च दृशेयम् मातरम् च।

भावार्थ—(कस्य नाम प्रजापतेः अमृतानां देवानां मध्ये कतम स्य श्रेष्ठत्त्वेन निर्धारितस्य देवस्य चारु उत्तमं नाम मनामहे अभ्यस्याम: मह्यै पृथिवीरूपायै अदितये मातृरूपाय पुनर्दात् क: प्रजापतिः तदा पितरंच मातरंच दृशेयम् पश्यामि)

फलितअर्थ—सर्व देवताओं के मध्य श्रेष्ठरूप से निर्णीत प्रजापति के श्रेष्ट नाम का उच्चारण करता हूं जो प्रजापति देव पृथिवी रूप नाम अत्यन्त क्षमागुण सम्पन्न अदितये नाम माता के वास्ते मेरे को देगा तब मैं माता पिता को देखूंगा तात्पर्य्य शुनः शेप का यह है जैसे वर्त्तमान काल के मेरे अजिगर्त्त पिता ने मेरी माता की अनुमति से वित्त के लोभ से ऐक्ष्वाक नाम राजर्षि को समर्पण करा तथा फिर वित्तलोभ से यूप से बन्धन करा और क्रूरता से विशसन करने को उद्यत है वित्तलोभ से इन माता पिता से विलक्षण क्षमादि गुण सम्पन्न माता पिता को देखूंगा इसस्थान में ऐतरेय ब्राह्मण के सप्त पंचिका में जो कथा प्रसंग है तिसको सूचन करा है तिस ऐतरेय ब्राह्मण में यह कथा प्रसंग है एक समें कृतयुग काल में ऐक्ष्वाक नामक राजर्षि को वरुण देवता ग्रहण करता भया उस राजा के वरुणदेवके कोप से उदरव्याधि होगयी तब आरण्य में वर्ष प्रयंत विचरता रहा पश्चात् ग्राम में जब आया तब इन्द्र देवता पुरुषरूप धारण करके कहता भया विना वरुण देवता की इष्टि से रोग निवृत्त नहोगा ऐसे ही षड्वर्ष वो राजा भ्रमण करता रहा और इन्द्र देवता ने भी वर्ष२ के पीछे ऐसाही उपदेश करा जो विना प्रायश्चित से यह रोग निवृत्त होना नहीं तब इसी काल में अजिगर्त्त नामक राजा के तीन पुत्र थे। शुनः पुच्छ और शुनः शेप तथा शुनो लांगूल नाम वाले तब ऐ

क्ष्वाक राजा ने एक शतवित्त देकर एक पुत्र अजिगर्त से लेने का वि
चार करा क्योंकि अजिगर्त उस समें में आपत काल में था तबज्ये
ष्ठ शुनः पुच्छ और कनिष्ट शुनो लांगूल को तो पिता माता ने स्नेह
वश ते न दिया मध्यम शुनः शेप को देदिया तब यज्ञ का प्रारम्भक
रने पर उस समें में विश्वामित्र तो होता नाम ऋत्विक भया यज्ञ में
और जमदग्नि अध्वर्यु वसिष्ट ब्रह्मा और आयास्य ऋषि उद्गाता तब
शुनः शेप को यूप में नियुक्त करने वास्ते एक शत और देकर अजि
गर्त्त से ही यूप से नियुक्त कराया पीछे तिसकी बलि कराने वास्ते भी
एक शत और देकर अजिगर्त को उद्यत करा तब शुनः शेप देवताओं
का आराधन करता भया वास्ते छूटने के प्रथम प्रजापति की प्रार्थना
करी फिर प्रजापति के उपदेश से अग्नि की प्रार्थना करी फिर अग्नि
के उपदेश से सविता की प्रार्थना करी फिर सबिता के उपदेश से व
रुण की फिर वरुण के उपदेश से अग्नि का ही प्रार्थना करा फिर अ
ग्नि के उपदेश से विश्वेदेवताओं का प्रार्थना करा पश्चात् विश्वे
देवता के उपदेश से इन्द्र की प्रार्थना तब इन्द्र ने अपने मन करके
हिरण्य रथ दिया शुनः शेप को और यह कहा दूं अश्विनी कुमारों
की स्तुति कर तब ऐसे एक२ऋचा की स्तुति में एक२पाश छूटती
गयी शुनः शेप की और इतनी स्तुति करते ऐक्ष्वाक भी निरोग होजा
ता भया तब शुनः शेप छूटकर विश्वामित्र की गोद में जाय बैठा
उस दिन से शुनः शेप का नाम देवरात होगया और विश्वामित्र का
ही पुत्र होता भया यह सर्व कथा प्रसंग ऐतरेय ब्राह्मण की सप्त पंचि
का में है जिसकी इच्छा हो सो देखो और ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद
का है और यह मंत्र भी ऋग्वेद के हैं इससे इन मंत्रों से मुक्त का

पुनर्जन्म कहना श्रुतिसूत्र विरुद्ध असंगत है।

अब जो अग्नि की प्रार्थना रूप मंत्र है तिसके पदच्छेद करके अर्थ निरूपण करते हैं।

पद। अग्नेः वयं प्रथमस्य अमृतानाम् मनामहे चारु देवस्य नाम सः नः मह्यै अदितये पुनः दात पितरम् च दृशेयम् मातरम् च। ऋ० मण्ड०१ सू० २४ मं० २।

अर्थ – देवताओं के मध्य में प्रथम नाम मुख्य रूप अग्नि के श्रेष्ठ नाम का अभ्यास करते हैं हम,, सो अग्निदेव हमारे को क्षमागुण युक्त माता के वास्ते देगा तब मैं माता पिता को देखूंगा अब उसी सूक्त के दो मंत्र लिखकर अर्थ दिखलाते हैं।

तथाहि। शुनः शेपो ह्यह्वद्गृभीत स्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषुबद्धः। अवैनंराजावरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो विमुमोक्तु पाशान्। ऋ० मण्ड० १ सू० २४ मं० १३।

पद। शुनः शेपः हि अह्वत् गृभीतः त्रिषु आदित्यं द्रुपदेषु बद्धः अव एनम् राजा वरुणः सः सृज्यात् विद्वान् अदब्धः विमुमोक्तु पाशान्।

अर्थ – शुनः शेप तीन स्थानों में ग्रहण करा हुआ आदित्य नाम अदिति पुत्र वरुण को आवाहन करता भया द्रुपद नाम विषम स्थानों में बधा हुआ सो राजा वरुण इस शुनः शेप को प्राप्त हो और सो वरुण विद्वान अदब्ध नाम सर्व सामर्थ्ययुक्त विपाशों को मुक्त करो ऐसे सविता करके प्रेरित हुआ शुनःशेप वरुण की प्रार्थना करता भया।

उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथवयमादित्य व्रतेतवानागसो अदितयेस्याम ॥ ऋ० । मण्ड० १ । सू० २४ मं० १५ ।

पद । उत् उत्तमम् वरुण पाशम् अस्मत् अव अधमम् वि मध्यमम् श्रथाय अथ वयम् आदित्य व्रते तव अनागसः अदितये स्याम ।

अर्थ- हे वरुण अस्मत् उत्तमम् पाशम् उच्छ्रथाय ऐसा अन्वय है हे देव वरुण हमारा उत्तम नाम शिर में बद्धी उत्कृष्ट पाश को ऊर्द्धही शिथिल करो अधमम् अवश्रथाय नाम पाद में बद्धी पाश को नीचे से ही शिथिल करो मध्यमं विश्रथाय नाम नाभिदेश गत पाश को वियुक्त करके शिथिल करो अथ अनन्तर हे आदित्य अदिति पुत्र वरुण हम तुम्हारे व्रत नामकर्म में अदितये नाम अविनाश के अर्थ अनागस नाम अपराध रहित स्याम नाम होवें । तात्पर्य्य यह है हे वरुण जब आप शिर नाभि पाद में पाश को काटोगे तब सावधानता पूर्वक अपने अविनाश वास्ते कर्म्मानुष्ठान करेंगे जब इन मंत्रों के अर्थ को देखकर पूर्व मंत्रों के अर्थ को सज्जन पुरुष देखेंगे तो पुनर्मुक्त का जन्म बोधन करना केवल दयानन्द का अविद्या जाल प्रतीत होगा ।

अथ वादि संमत मुक्तजन्म बोधक मुण्डकवाक्य तथा सांख्य सूत्र का यथार्थार्थ निरूपण करते हैं

॥१९॥

और जो मुण्डक वाक्य पुनर्जन्म मुक्त का साधक लिखा है सो तो केवल अविद्याजाल को प्रगट करता है दयानन्द में सो वाक्य जैसे पूर्व उत्तर वाक्य सहित है तिसको लिखकर दिखलाते हैं जो सतपुरुषों को दयानन्द का अविद्या जाल प्रतीत होजाय स्पष्ट रीति से जो दयानन्द ने लिखा है वाक्यपाठ भेद करके तिस वाक्य से भी मुक्त का जन्म प्रतीत होनहीं सकता इसवास्ते प्रथम दयानन्द लिखित वाक्य का विचार करते हैं। तथाहि।

तेब्रह्मलोकेह परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्तिसर्वे।

यह मुण्डक उपनिषद् का बचन है वे मुक्तजीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात मुक्ति सुख को छोड़के संसार में आते हैं (सत्या०प्र० समु०९ पृ०२४० में देखो) यह दयानन्द का लेख है इसमें श्रुति में पाठ भेद करके श्रुति लिखा है क्योंकि अध्ययनाध्यापन सम्प्रदाय में श्रुति का पाठ यह है

तेब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्तिसर्वे।

परन्तु दयानन्द कल्पित पाठ से भी मुक्त काजन्म सिद्ध होता नहीं तथाहि।

ते सर्वे पूर्व उक्त विद्वान् संन्यासी ब्रह्मलोक में हस्फुट परान्त काले ब्राह्म महाप्रलय में परामृतात् नाम परामृत ब्रह्मज्ञान जन्य मुक्तिं प्राप्य परिमुच्यन्ति विदेह कैवल्य को प्राप्त होते हैं अर्थात् ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं जैसे प्रासादात्प्रेक्षते इसका अर्थ यह है

प्रासाद मारुह्य प्रेक्षते प्रासाद को आरोहण होकर देखता है जैसे परामृतात्परिमुच्यान्ति नाम परामृतं प्राप्य परिमुच्यान्ति यह अर्थ प्रतीत होता है अब कहना चाहिये कौनसे पद का अर्थ है मुक्ति से लौटना और यह भी विचार करना जब ब्रह्मा के महाकल्प तक मुक्ति सुख माना तो ब्रह्मा देवता है वा कोई मनुष्य है वा ईश्वर का विग्रह विशेष है तिसमें ईश्वर का विग्रह मानें तो दयानन्द के मत का भंग होगा और मनु की सृष्टि सें वाह्य होने से मनुष्यपना संभवे नहीं अन्यथा मनु का पुत्र वा पौत्र ब्रह्मा को किसी वेद स्मृति वाक्य से निर्णय होना चाहिये उलटा ब्रह्मा का पुत्र विराट और विराट का पुत्र मनु ऐसा वृहदारण्यक के तृतीयाध्याय में देखाजाता है इससे मनुष्य भी नहीं तो देवता सिद्ध होगया महाकल्प तक आयु वाला दयानन्द के मुख से तो कौनसी प्रज्ञा से लिखता है देव विद्वानों को मानता हूं और जो मुण्डक उपनिषद् के पूर्व उत्तर वाक्य को देखें तो मुक्त का सर्वथा जन्माभाव ही प्रतीत होता है।

तथाहि। वेदान्तविज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः। तेब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे। ६। गताः कलाः पंचदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु। कर्माणिविज्ञानमयश्चआत्मा परेऽव्यये सर्वएकी भवन्ति। ७। यथानद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथाविद्वान्नाम रूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुष मुपैतिदिव्यम्। ८। सयोहवैतत्परमंब्र

ह्मवेदब्रह्मैवभवति। नास्याब्रह्मवित्कुलेभ
वति। तरतिशोकं तरतिपाप्मानं गुह्मग्रन्थिभ्यो
विमुक्तोऽमृतोभवति। ९। अथर्ववेदीय मुंड
कोपनिषद् तृतीय मुण्डक खं०२।

अर्थ — विचारजन्य विज्ञान से निश्चय करे हैं वेदान्त प्रतिपाद्य अर्थ जिनोंने तथा वे यत्न शील सर्वस्वत्यागरूप संन्यास योग से शुद्ध चित्त हैं ते सम्पूर्ण विदित वेद्य ब्रह्मलोक में यावज्जीव वर्त्तमान परान्तकाल नाम विद्वद्देह पातकाल में जीवन्मुक्ति दशा में ही परामृता नाम परम अमृत मोक्ष को प्राप्त हुए मुक्त होते हैं विदेह कैवल्य को प्राप्त होते हैं **यद्यपि** ब्रह्म स्वरूप लोक एक है तथापि विद्वानों की स्थिति की अपेक्षा से अनेकवत् प्रतीत होता है इसवास्ते सद्योमुक्ति प्रकरण में भी ब्रह्मलोकेषु ऐसे बहुबचन का प्रयोग करा है जेकर ब्रह्मलोक प्राप्ति द्वारा क्रम मुक्ति को बोधन करते तो ब्रह्मलोक में अवान्तर भेद को समझ कर बहुबचन बन सकता परन्तु यह प्रकरण सद्योमुक्ति का है इससे विद्वज्जनों की अपेक्षा से एक ब्रह्मरूप लोक में अनेकवत् व्यवहार करा है और अविद्वद्देह पात काल का नाम अपरान्त काल है क्योंकि अपर जो शरीर है जिस शरीर से परे शरीर होने वाला है ऐसे अपर शरीर का अन्तकाल है और विद्वानों के शरीर पर हैं क्योंकि इन शरीरों से परे शरीर होनेवाला नहीं इससे विद्वद्देह पातकाल को परान्तकाल कहते हैं अब सद्योमुक्ति प्रकार को निर्णय करते हैं जो कि विद्वानों की पंचदश कला हैं वे अपने २ कारण में लीन होजाती हैं सो वो कला यह हैं प्राण १ श्रद्धा २ आकाश ३ वायु ४ तेज ५ जल ६ पृथिवी ७ इ

न्द्रिय ८ मन ९ अन्न १० वीर्य्य ११ तप १२ मंत्र १३ कर्म्म १४ लोक १५ यह पंचदश कला हैं और धर्म्माधर्म रूप कर्म्म तथा विज्ञानोपाधि निवृत्ति पूर्बक घटोपाधि निवृत्ति पूर्बक घटाकाश वत् विज्ञानोपाधिक जीव) पर अव्यय में एकीभाव को प्राप्ति होते हैं अब विज्ञानोपाधिक जीव को परब्रह्म भाव की प्राप्ति में भेद भ्रम निवृत्ति में दृष्टान्त कहते हैं। जैसे नदी सम्पूर्ण स्पन्दमान समुद्र में लीन होजाती हैं तैसे विद्वान भी नाम रूप को त्यागकर पर जो सूक्ष्म समष्टि हिरण्यगर्भ तिससे भी पर परमात्मा को प्राप्त होता है क्योंकि जो परब्रह्म को जानता है सो परब्रह्म ही होता है इस विद्वान् की कुल में अब्रह्मवित् नहीं होता यह प्रशंसा वाक्य है और वो विद्वान गुहाग्रंथि नाम वासना से विमुक्त होता है शोक को तरजाता है अमृतभाव को प्राप्त होता है। इस स्थान में यह विचार कर्त्तव्य है जो इस श्रुति बचन में मुक्त का जन्म कैसे कह सकते हैं उलटा जब प्राणादि पंचदशकला ही लीन होगयी तथा कर्म्म धर्म्माधर्म्म और विज्ञानोपाधि लीन होगयी तो जन्म का हेतु ही कौन है और समुद्र दृष्टान्त से ब्रह्म से भिन्न भी मोक्ष में रहता नहीं इससे मुक्ति में ब्रह्मभिन्न जीवात्मा को मानकर पश्चात् मुक्त का जन्म कहना मिथ्या कल्पना है और पूर्व उत्तर श्रुति प्रकरण को त्यागकर चोरवत् बीच में से काटकर अनर्थ प्रलाप दयानन्द से बिना कौन सत्पुरुष करेगा और जो सांख्यसूत्र लिखकर मोक्ष को अनित्य बोधन करा है सो तो सांख्य शास्त्र के सर्वथा दयानन्द में अज्ञान का सूचक है। तथाहि

इदानीमिवसर्वत्र नात्यंतोच्छेदः। सा० अ० १ सू० १५९।

अर्थ– इस सूत्र का यह लिखा है (सत्या०प्र०समु०९पृष्ठ२४०) में देखो। जैसे इस समय में बंध मुक्त जीव हैं वैसेही सर्वदा रहतेहैं अत्यन्त विच्छेद बंधमुक्त का कभी नहीं होता किन्तु बंध औरमुक्ति सदा नहीं रहती यह दयानन्द ने इस सूत्र का अर्थ लिखने से यह बोधन करा जो मुक्त होकर भी बंध होती है अर्थात् मुक्त और बंध का चक्रवत् भ्रमण है सदा मोक्ष नहीं रहती और सदा बंध नहीं रहती किन्तु कबी तो मुक्त होजाता है जीव और फिर मुक्त से बंध होता है बंध से मुक्त और मुक्त से बंध ऐसे बंध मोक्ष का भ्रमण होता है परन्तु इस स्थान में यह विचार कर्त्तव्य है जो बंध मोक्ष के सर्बदा नहोने का बाचक पद सूत्र में कौन है सूत्र पदच्छेद। **इदानीम् इव सर्वत्र न अत्यन्तो च्छेदः**। अर्थ इन पदों का यह है इदानीम् नाम इस काल में इव नाम यथा सर्वत्र नाम सर्व काल में अत्यन्तोच्छेद नाम अत्यन्त नाश नहीं होता फलितअर्थ तथा शब्द के अध्याहार से यह हुआ यथा इस काल में अत्यन्त नाश नहीं है तथा सर्वकाल में अत्यन्त नाश नहीं होता सो किस का अत्यन्त नाश नहीं होता यह प्रकरण से निर्णय होता है मुक्तहो कर फिर बंध होजाता है जीव यह अर्थ सूत्र के अक्षरों से नहीं होसकता इससे पूर्व प्रकरण के सूत्र लिख करके सूत्रों के अर्थ दिखलाते हैं जोकि दयानन्द का जाल सज्जन पुरुषों को प्रतीत होजाय।

नाद्वैतश्रुति विरोधो जाति परत्वात्। सां० अ०१ सू०१५४।

सांख्यशास्त्र में इसके पूर्व प्रकरण में जन्म मरणादि व्यवस्था

अद्वैत वेदान्ति को नवीन वेदान्ती सो लिखने में लज्जित नहीं होता क्योंकि अपनी कल्पना को सर्वथा वेदवाह्य जानकर भी अनादि सिद्ध सिद्धान्त की कथनता रूप मूर्खों में पण्डित प्रामाणिक होकर गाल बजाता है अब अद्वैत श्रुति विरोध को परिहार करके पुरुषैकता पक्ष में दोष कहते हैं।

वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् । सां० । अ० १ सूत्र १५७।

अर्थ – जेकर जीव एक होता तो वामदेव नाम ऋषि की तो मुक्ति वेद प्रतिपाद्य है तिसका तो निषेध बनता नहीं तो वर्त्तमान काल में जीव में बन्ध प्रतीति नहीं होनी चाहिये थी क्योंकि जीव है एक सो तो मुक्त होगया तत्त्व साक्षात्कार से तो अब बंध प्रतीत होता है इससे अद्वैत नाम पुरुषैकत्व नहीं होसकता।

शंका – वामदेव मोक्ष प्रतिपादक वेदवाक्य साधनों में प्रवृत्ति कराने वास्ते है और अबी तक चेतन का मोक्ष हुआ नहीं जब मोक्ष होगा तो बंध नहीं रहेगी इस शंका के समाधान का सूत्र।

अनादावद्ययावद् भावाद्भविष्यदप्येवम् । सां० अ० १ सू० १५८।

अर्थ – अनादौ अद्य यावत् अभावात् भविष्यत् अपि एवम् अनादि काल से जो अब तक मोक्ष नहुआ तो भविष्यत् काल में भी ऐसेही मोक्ष नहोगा भाव यह है वामदेव वशिष्ठादि शरीरों में साधन सम्पत्ति तो सर्वथा उत्तम शास्त्रद्वारा सुनी है जेकर ऐसी साधन सम्पत्ति से तत्त्व साक्षात्कार द्वारा मोक्ष न भयी जीव चैतन्य की तो आगे भी ऐसेही नहोगी अर्थात् भविष्यत काल भी मोक्ष-

शून्य होगा इससे अनिर्मोक्ष प्रसंग एक जीव वाद में होगा तब मोक्ष और तत्साधन प्रतिपादक शास्त्र सर्वथा व्यर्थ होजायगा अब भविष्यत काल को मोक्ष शून्यत्त्व साधक अनुमान को सूत्र से बोध न करते हैं।

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः। सां० अ० १ सू० १५९।

अर्थ — सर्व काल में बंध का अत्यन्त नाश नहीं होता वर्त्तमान कालवत् तब तो यह अनुमान फलित हुआ सर्वे कालः मोक्षशून्यः कालत्वात् वर्त्तमान कालवत् सो यह वार्त्ता मोक्षवादी को अनिष्ट है क्योंकि अब तक जो मोक्षाभाव मानता है एक जीववादी तिसके मत में भी मोक्ष होना तो एक दिन है और उस एकजीव वादी के प्रति सर्वकाल को मोक्ष शून्यत्व युक्ति से सिद्ध करा तो भूतकाल में वामदेवादि की मुक्ति माननी एक जीव वादी को गल में पड़गयी जब वामदेव मुक्त माना तो और बद्ध रहे तोजीव नानासिद्ध होगये और अद्वैत श्रुति जाति पर होगयी इस तात्पर्य्य से सर्वकाल को मोक्षशून्य सिद्ध करा है और कपिल जी का यह तात्पर्य्य नहीं जो मोक्ष सर्वदा नहीं रहती क्योंकि यह कपिल देवजी का तात्पर्य्य होता तो प्रथम सूत्र प्रतिज्ञा का भंग होता और योगसूत्र से विरोध होता। तथाहि॥

अथत्रिविध दुःखात्यंत निवृत्तिरत्यंत पुरुषार्थः,, सां० अ० १ सू० १।

अर्थ — तीन प्रकार के दुःख की जो अत्यन्त निवृत्ति नाम स्थूल सूक्ष्म रूप से सर्वथा निवृत्ति सो अत्यन्त पुरुषार्थ नाम मोक्ष है

सो देखना चाहिये कौनसे दुःख की निवृत्ति होना चाहिये वर्त्तमान तो थोड़ी देर पीछे अपने आपही निवृत्त होजायगा अतीतकाल का निवृत्त होगया है परिशेष ते भावी दुःख की निवृत्ति ही मोक्ष है ऐसेही पतंजलि अपने सूत्र में लिखते हैं।

हेयंदुःखमनागतम्। यो० पा० २ सू० १६

अर्थ—भावी दुःख ही मोक्ष साधन के अनुष्ठान से हेय नाम त्यागने योग्य है और दयानन्द मत में भावि दुःख जन्मादि जन्य बना ही है इससे किंचित् दुःख निवृत्ति को मोक्ष कहना कपिल पतंजलि आदि महर्षि मत विरुद्ध है और कहां तक विचार करेंगे दयानन्द का कथन लेशमात्र भी सत्य नहीं केवल मिथ्या कल्पना से विना इस प्रकार मुक्ति में जो कुछ वक्तव्य था सो निरूपण करा अब आगें धर्म्म का विचार होगा जो महति वा कैवल्य मोक्ष वा ब्रह्मलोक प्राप्ति द्वारा क्रम मुक्ति आदि फल हैं तिसके साधन का नाम धर्म है तिस धर्म्म का मुख्यता से विचार होगा और प्रसंग प्राप्त पदार्थान्तर का भी विचार कराजायगा॥

इतिश्रीज्वालादेवी सुखानन्दात्मजश्री गुरुदत्तसिंह कृपाप्राप्त निर्मलधर्म साधुसिंह विरचिते सत्यार्थ विवेके मुक्तिनिरूपणम् समाप्तिमगात्।

कार्तिक शुक्ला १३ मंगल सं० १९४६

अथ

सत्यार्थविवेके धर्मनिरूपणम्। भा.टी.।

ओंतत्सत्

श्रीगणेशायनमः

श्रीगुरुवेनमः

अथकणादजैमिनिसूत्रकरकेधर्मस्वरूपलक्षणनिरूपण तथाब्राह्मणभागऔरमंत्रकरकेधर्मस्वरूपनिरूपणादि औरवादिमतमेंधर्मस्वरूपाभावकथनं

पूर्व प्रकरण में मोक्षका निरूपण हुआ अब धर्मका निरूपण करते हैं कणादमहर्षिने धर्मकालक्षणसूत्रमें किया है प्रथम तिसलक्षण को दिखलाते हैं तथाहि ॥

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिःसधर्मः।वै अ१आ१ सूत्र २॥

सूत्रार्थ ॥ अभ्युदय, सुखविशेष निःश्रेयस, कैवल्य मोक्ष इनदोनोंकी सिद्धि जिससे होतीहै सोधर्म है ॥ औरजैमिनिमहर्षि धर्मकालक्षणऔर प्रकारकाकरते हैं ॥ तथाहि॥

चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः॥पू॰मी॰अ१।पा॰१।सू२

सूत्रार्थ ॥ चोदनावाक्यंलक्षणंबोधकंयस्यस चोदनालक्षणः। पुरुषकी प्रवृत्तिबोधकवाक्यकानामचोदना है अधिकारि प्रवृत्तिबोधकवाक्य प्रतिपाद्य और अर्थ अर्थात् बलवत् अनिष्टका अजनकइष्टसाधन हो सो धर्म है इतने से बलवदनिष्टाजनकत्वेसति पुरुष प्रवृत्तिबोधकवाक्य प्रतिपाद्यत्त्वंधर्मत्वम् यह लक्षण फलित हुआ। इस स्थानमें यह विचार करना जो श्येनयागादिकर्म्म तथा गृहस्थःसदृशींभार्य्यामुपे

यात्॥ अर्थ „ ग्रहस्थहोनेवाला अपने शद्दशी भार्य्याकोंस्वीकारकरे इत्यादिस्त्री संसर्गविधायकवाक्योंकानिवृत्तिमेंतात्पर्य्यहैक्योंकिश्येनयागबोधकवाक्य तोजोपुरुष प्रवलद्वेषसे शत्रुकाविषादिदानसें विनाशनकरे ऐसे निवृत्तिकोबोधनकरे हैं तैसें प्रवृत्त है तिसकी अपनिसवर्णभार्य्या सें अतिरिक्तस्त्रीमेंअप्रवृत्तिकोस्त्री संसर्ग में प्रवृत्तिबोधकवाक्यबोधनकरते हैं प्रवृत्तिमें तात्पर्य्य नहींक्योंकि प्रवृत्तितोरागसे प्राप्त है और अपनिभार्य्या में भी ऋतुकालसे अतिरिक्त कालमें निवृत्तिबोधनकरीहै और फिरभीसंतान की उत्पत्तिसे पश्चात् निवृत्तिबोधन करी है इससे श्येनादिकर्म तथा स्त्री संसर्गबोधकवाक्यद्यपि हिंसा और शरीर क्षीणताद्वारा पुरुषार्थायोग्यत्वरूपबलवत् अनिष्ठजनकहोनेसें धर्मबोधक नहीं तथा पितिनवाक्योंका निवृत्तिद्वारा धर्म में पर्य्यवसान है ॥ इससे प्रकरणमें वार्त्तायह सिद्ध हुईसाक्षात् वा परंपरासेंजो निःश्रेयससाधन है सो धर्म है इसीवास्ते पूर्वमीमांसाभाष्यकार शवरस्वामी जी

(यएवनिःश्रेयस्करः सएष धर्मशब्देनोच्यते)

यहकहते हैं। भाष्यार्थ, जो निःश्रेयस्कर है सोई धर्मशब्द कर कहा जाता है भाव भाष्यकारकायह है परंपरावासाक्षात् करके जोमोक्षका कारण है सो धर्मशब्दका अर्थ है इसरीतिसें यावत् श्रौतवास्मार्त्तकर्मवाउपासनावाश्रवणादि पूर्वक ज्ञान है वे परंपरावासाक्षात् निःश्रेयस हेतु हैं इससे इनसर्वकानिर्णयही धर्मकानिर्णय है ॥ अबकणाद और जैमिनिसूत्ररूपस्वरूपलक्षणकर लक्षितजोधर्म है सो श्रुति में पन्थरूपसें निर्णीत है इसवास्ते धर्मस्वरूपबोधक श्रुति लिखकर परंपरावासाक्षात् मोक्षकारण धर्मको दिखलाते हैं

एषपन्थाएतत्कर्मैतद्ब्रह्मैतत्सत्यंतस्मान्नप्रमाद्येत्तन्नातीयातनह्यत्यायन्पूर्वेयेऽत्यायंस्तेपराबभू

वुः॥ ऐतरेयारण्यक· २ आ। १ अ १ ख॥

पद॥ एषःपन्था एतत्कर्म्म एतद्ब्रह्म एतत्सत्यम् तस्मात् न प्रमाद्ये त् तत् न अतीयात् नहि अत्यायन् पूर्वे ये अत्यायन् ते पराबभूवुः॥

भावार्थ॥ एतत्कर्म्म एतद्ब्रह्म एष पन्था यह अन्वय है

अर्थ,, कर्म्म और ब्रह्म यह दोनो पन्था नाम मोक्षसाधन मार्ग हैं भाव यह है श्रौत वा स्मार्त कर्म्म और सगुण वा निर्गुण उपासना यह दोनो मोक्षप्राप्ति मार्ग हैं इस मार्ग में आरूढ़ को ही लोक पन्थाई बोलते हैं इस मार्ग से भ्रष्ट को कुमार्गी कुकर्मी कहते हैं एतत्सत्यम् कर्म्म और ब्रह्म मार्ग सत्य है अर्थात् यथावत् अनुष्ठित कर्म और सगुण वा निर्गुण उपासना विषय ब्रह्म,, परंपरा वा साक्षात् मोक्षकारण हैं अपने कार्य्य करने में जो व्यभिचारी न होना यह ही कारण में सत्यत्व है सो कर्म में भी बन सक्ता है और ब्रह्म में तो दोनो प्रकार की सत्यता है क्योंकि ज्ञात होकर मोक्षकारण है और स्वरूप से नाशरहित भी है इस वास्ते ब्रह्म सर्वथा सत्य है। तस्मात् न प्रमाद्येत्। अर्थ, तिस कर्म वा उपासना और ज्ञान मार्ग सें प्रमाद नहीं करना चाहिये पुरुषार्थ कामना वाले को,, कर्म्म वा ज्ञान उपासना मार्ग का न सेवन करना प्रमाद है वा मार्ग में प्रवृत्त होकर भी आलस्यादिक से संपादन न करना भी प्रमाद है इतने श्रुति भाग से-मार्ग को अवश्य कर्त्तव्यता कहा तन्नातीयात् अर्थ यह तिस मार्ग को-अतिक्रमण न करे अर्थात् तिस मार्ग से भिन्न अशास्त्रीय मार्ग को भ्रम से पुरुषार्थ साधन जानकर तिस में न प्रवृत्त होना चाहिये। नह्यत्यायन् पूर्वे, अर्थ, जो पूर्व वसिष्ठ वामदेवादि हुए हैं वे कर्म्म ज्ञान मार्ग को उलंघन नहीं करते हुए। येऽत्यायंस्ते पराबभूवुः। जो नास्तिक धूर्त इस मार्ग को उलंघन कर अपनि तुच्छ बुद्धि कर स्वेच्छाचार होते भये वे

पराभवको प्राप्त होतेभए ॥ अब ब्राह्मण प्रतिपाद्यमार्गकी दृढ़ता के वास्ते मंत्रभी प्रमाण लिखते हैं ॥

तदुक्तमृषिणा प्रजाहतिस्रो अत्यायमीयुर्न्येन्या अर्कमभितो विविश्रे वृहद्धतस्थौ भुवनेष्वन्तः पव मानोहरित आविवेशेति ॥ ऐ॰ २ अ॰ १ अ॰ १ ख ॥

पद ॥ तत् उक्तम् ऋषिणा प्रजाः हतिस्रः अत्यायम् ईयुः नि अन्याः अर्कम् अभितः विविश्रे वृहत् हतस्थौ भुवनेषु अन्तः पवमानः हरितः आविवेशइति

अर्थ – पूर्व उक्त मार्ग के अतिक्रमण और अनतिक्रमण में हानिऔर लाभरूप अर्थ कहा है किसी मंत्रद्रष्टा ऋषि ने मंत्रकरके जो कर्म और ज्ञान उपासना मार्ग में चलने वाली प्रजा है तिसके चार भाग कर कहते हैं प्रजाह तिस्रो अत्यायमीयुः तीन प्रकार की प्रजा तो अत्याय नाम अतिक्रमण को प्राप्त होती भयी क्योंकि लोक में प्रसिद्ध है गुरु शास्त्र उपदेश रहित बहुत हैं । अन्याः अर्कमभितो निविविश्रे, यह अन्वय है - अर्थ, चतुर्थभाग प्रजा में सें काचित्प्रजा अर्क अर्थात् अर्चनीय अग्निको सर्व प्रकारकर निविविश्रे निविष्ट होती भयी अर्थात् अग्निकी उपासना में प्रवृत्त होती भयी और काचित् प्रजा भुवनेषु अन्तः वृहत् हतस्थौ - अर्थ, ब्रह्माण्ड मध्य वर्त्तमान जो वृहत् आदित्य है तिसको तस्थौ अर्थात् आदित्य देवकी उपासना में प्रवृत्त होगयी और (यः पवमानो हरित आविवेशतमपि काचित् निविष्टाः) जो पवमान नाम सर्वजगत्को पवित्र करने वाला वायु हरित नाम दिशाओं में प्रवेश करता है तिसकी उपासना में प्रवृत्त होगयी काचित् प्रजा ,,। अर्थात् चतुर्थभाग प्रजा अग्नि वायु आदित्य उपाधिक सगुण ब्रह्मकी उपासना में प्रवृत्त हुई

अब मंत्रउक्त संक्षिप्त अर्थ को ब्राह्मण से विस्तार करते हैं। तिसमें ऋचाके प्रथम पादका अर्थ स्पष्ट करते हैं॥

प्रजाहतिस्रोअत्यायमीयुरितियावैताइमाःप्रजास्तिस्रोअत्यायमायंस्तानीमानिवयांसिवङ्गाऽवधाश्चेरपादाः। ऐ॰ २ आ १ अ १ ख॥

अर्थ – इति शब्द पर्य्यन्त तो मंत्र की प्रतीक धरी है जो यह प्रजा तीन प्रकार की अतिक्रमको अर्थात् वेदोक्त कर्म्म उपासनाको त्यागती भयी सा प्रजा 'वयांसि' पक्षिभावको 'वङ्गा' वनगत वृक्षभावको अवधा व्रीहियवादिभावको 'ईरपादा' सर्पादिभावको प्राप्तहोती भयी॰ भाव यह है जिन प्रजाओं ने पूर्वकृत पुण्यसें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र योनिको प्राप्तिहोकर भी वेदोक्त पन्थका त्यागकरा वे प्रजा चार प्रकार की योनिको धारण करती भयी पक्षिवन वृक्षव्रीहियवादिसर्पादि इससे जो अधिकारि शरीरको प्राप्तहोकर भी वेदोक्त मार्गको स्वेच्छा वा कुसंगादिसे त्यागेगा सो भी पश्वादि योनिको प्राप्त होगा॥ अब मंत्रके द्वितीय पादको स्पष्ट करते हैं॥

न्यन्याअर्कमभितोविविश्रइतिताइमाःप्रजाअर्कमभितोनिविष्टाइममेवाग्निम्॥ ऐ॰ २ आ १ अ १ ख॥

अर्थ – इति शब्द पर्य्यन्त मंत्रकी प्रतीक धरकर अर्थ करते हैं सो यह प्रजा चतुर्थ भाग रूप अर्क नाम अर्चनयोग्य अग्निके पूजन ध्यानमें प्रवृत्त होगयी। भाव यह है चतुर्थभाग प्रजा में सें कोई एक प्रजा उत्तम संस्कार सत्संग प्रभाव सें अग्निहोत्रादि कर्म्मानुष्ठान पूर्वक अग्निदेवकी उपासनाकरि क्रममुक्तिरूप फलको प्राप्त होगयी॥ अब मंत्रके तृतीय पादको स्पष्ट करके दिखलाते हैं॥

बृहद्धत्तस्थौभुवनेष्वन्तरित्यदउएवबृहद्भुवनेष्वन्तर सावादित्यः ॥ ऐ २ आ १ प्र १ ख ॥

अर्थ - इति पद पर्य्यन्त प्रतीक धरकर अर्थ दिखलाते हैं (अदउएवबृहद्भुवनेषु अन्तः असौ आदित्यः) यह ही भुवनोके मध्य बृहद है जो यह आदित्य है ॥ तात्पर्य्य यह है चतुर्थभाग प्रजा में सें कोई एक प्रजा आदित्य मण्डल अन्तर्गत पुरुषके ध्यानद्वारा ब्रह्मलोकको प्राप्त हुई अब मंत्रके चतुर्थ पादका अर्थ स्पष्ट करते हैं ॥

पवमानोहरित आविवेशेतिवायुरेवपवमानो दिशोहरित आविष्टः ॥ ऐ २ आ १ अ १ ख ॥

प्रतीक धरकर कहते हैं पवमान शब्दका अर्थ वायु है क्योंकि वायुही दुर्गंधको निवृत्तकर सर्वको पवित्र करता है और हरित नाम इस मंत्र में दिशाओंका है क्योंकि प्राच्यादि दिशा ही तिस २ कर्म्म में विधान करी हुई अनुष्ठानकी विगुणता निवृत्त करती हैं ॥ और दिशा में वायु आविष्ट अर्थात् प्रविष्ट हो रहा है इससे यह सिद्धान्त हुआ जिन प्रजाओंने वैदिक मार्ग त्यागकर यथेष्टाचरण करे वे प्रजा नरकको प्राप्त हुईं और जिन प्रजाओंने वैदिक पन्थका श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करावे प्रजा ब्रह्मलोक प्राप्तिद्वारा मोक्षको प्राप्त हुई। इसवास्ते यह वैदिक मार्ग ब्रह्मर्षि और राजर्षिओंकर सेवित है सोई मार्ग सत्पुरुषों को श्रद्धा पूर्वक अनुष्ठान योग्य है। यदि अनुष्ठान न करेंगे तो पूर्वकालकी प्रजावत् असद्गतिको प्राप्त होंगे। ऐसे पूर्वउक्त प्रकार सें धर्मका लक्षण और स्वरूप कणाद जैमिनि सूत्र सें और मंत्र ब्राह्मण सें निर्णय होगया। प्रश्न। जो मंत्र धर्मातिक्रम और धर्मानतिक्रमका बोधक लिखा तिसका पता नहीं लिखा जो अमुक संहिताका मंत्र है तब यह निर्णय कैसे हो जो यह मं

त्र है ॥ उत्तर ॥ यह नियम नहीं जोकि संहिता पठित ही मंत्र होता है किन्तु शाखा पठित भी बहुत से मंत्र होते हैं जैसे जो ब्राह्मण ग्रंथों में श्लोक नाम से कहे जाते हैं वे भी मंत्र ही हैं इसी वास्ते जैमिनि ऋषि मंत्र का लक्षण अपने सूत्र में ऐसा करते हैं जो संहिता पठित और ब्राह्मण ग्रंथ पठित सर्व मंत्रों का व्यापक है तथाहि ॥

तच्चोदकेषु मंत्राख्या ॥ पू॰ मी॰ अ २ पा १ सूत्र ३२ ॥

सूत्रार्थ, तस्य अभिधानस्य चोदका उपदेशकास्तच्चोदकास्तेषु तच्चोदकेषु मंत्र इत्याख्या संज्ञा मंत्राख्या प्रसिद्धा तथा च येषु वेदवाक्येष्वध्यापकानां मंत्र इति प्रसिद्धिस्त एव मंत्रा एवं च मंत्र इति शिष्ट व्यवहार विषयत्वं मंत्रत्वम् इति लक्षणं फलितम् तच्च भागद्वय पठित मंत्रानुगतम् ।

भाषार्थ – जैमिनि ऐसा मंत्र का लक्षण करते हैं जो यावत् मंत्रों में आता है जिस २ वेद वाक्य में शिष्ट पुरुषों का मंत्रोऽयम् ऐसा शब्द प्रयोग रूप व्यवहार होता है सो मंत्र है यदि संहिता पठित ही मंत्र होता तो संहितापठितो मंत्रः यह लक्षण ही जैमिनि ऋषि करते अध्यापक प्रसिद्धि से मंत्र लक्षण का अनुगम क्यों करते इस वास्ते संहिता पठित ही मंत्र होता है यह केवल वादी के अनुयायिओं को भ्रम है अब जो अग्नि आदित्य वायु की उपासना मंत्र में संक्षेप से कही है तिसका विस्तार यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा में है सो दिखलाते हैं ॥ तथाहि ॥

अग्निर्वायुरादित्यः कालो यः प्राणोऽन्नं ब्रह्मा रुद्रो विष्णु
रित्येकेऽन्यमभिध्यायन्त्येकेऽन्यं श्रेयः कतमो यः सोऽ
स्माकं ब्रूहीति तान्होवाचेति ॥ ५ ॥

अर्थ – वालखिल्य ऋषि प्रश्न करते हैं प्रजापति से हे भवन् अग्नि वायु

आदित्य काल प्राण अन्न नाम विराट् ब्रह्मा रुद्र विस्नु इतने उपास्य देव हैं एके अर्थात् केचित् अधिकारिजन अन्यका ध्यान करते हैं औरके चित् अधिकारिजन अन्यका ध्यान करते हैं तिनों में जो श्रेष्ठ है सो हमारे को कहो ऐसे प्रश्नका उत्तर ऋषियोंको प्रजापतिजी कथन करते भये ॥

ब्रह्मणो वावैता अग्र आस्तनवः परस्यामृतस्या शरीरस्य तस्यैवलोके प्रतिमोदतीहयोयस्यानुषक्तइत्येवंह्याह।

अर्थ– अशरीरस्या मृतस्य परस्य ब्रह्मणो वावैता अग्र आस्तनवः यह अन्वय है वास्तव शरीर रहित अमृत परब्रह्मके निश्चय कर यह अग्नि आदि संपूर्ण अग्र अर्थात् आदिमें होने वाली मूर्त्ति हैं ।भाव यह है ब्रह्म ही अग्नि आदि रूपसें प्रतीत होताहै तिस अर्थ को अपने आपही वेद भगवान् स्पष्ट करते हैं इहलोके तस्यैव ब्रह्मण एव प्रतिमा उदिति यह अन्वय है इसलोकमें तिस ब्रह्मकी अग्नि आदि रूपसें प्रतिमा उदे होती है जिस अधिकारी का चित्त जिसमें अनुषक्त है अर्थात् जिस देवता में संलग्न है सो पुरुष तिसका पूजन ध्यान करो सर्वत्र ब्रह्मही उपास्य है ऐसे प्रजापति यथारुचि सर्व देवताओं को पूज्यत्व ध्येयत्व कहते भये।

ब्रह्मखल्विदंवावसर्वंयावास्या अग्र आस्तनवस्ताअभिध्यायेदर्चयेन्निन्हुयाच्चातस्ताभिः सहैवोपर्युपरि लोकेषुचरत्यथकृत्स्नक्षयएकत्वमेतिपुरुषस्य ॥ मैत्र्युपनिषत् । ४ प्रपाठक । का ५।६।

अर्थ– अब अग्नि वायु आदित्य काल विराट् प्राण ब्रह्मा रुद्र विस्नु आदि देवताओं को ब्रह्म तनुत्व स्पष्ट करते हैं ब्रह्म खलु इदं सर्वम् अग्नि आदियावत् देवता ब्रह्म उपादान कारण वाले हैं और कार्य्य उपादान कार

ण सें भिन्न सत्ता शून्य है इसवास्ते इदं दृश्यमानं सर्वम् अग्नि आदि ख लु निश्चय कर ब्रह्म है और जो इस ब्रह्म कर वास्या अर्थात् निवास योग्य आश्रय रूप,, प्रपंच से प्रथम उत्पन्न अग्निवायु आदित्यकाल प्राण विराट ब्रह्मा रुद्र विस्नु रूप मूर्त्ति हैं तिनको ब्रह्म बुद्धिकर ध्यान करे पूजनकरे पुष्पादि द्रव्य सें प्रतिमा वा हृदय कमल में और निन्हुयाच्च, अर्थ यह है उपास्य देवता अभिमान कर परिच्छिन्न अभिमान को त्यागकर अपने आत्मा को देव भाव दृढ़कर के भिन्न अग्नि आदि देवतात्वको निवृत्तकरे अतएव और श्रुति में कहा है॥

देवोभूत्वादेवानप्येति,

जीवित ही देव होकर देवताओंको प्राप्त होता है॥ अतस्ताभिः सहैवो पर्युपरिलोकेषु चरति अर्थ यह है इसवास्ते ब्रह्मतनुरूप देवताके साथ हीतिस देवभावको प्राप्तहोकर ऊपर २ लोकोंमें अर्थात् जनलोक तपोलोक सत्यलोकों में प्राप्त होता है उपासना कीन्यूनता वा अधिकतासे न्यून वाउत्तमलोक को प्राप्तहोता है इसस्थान में यह विचारना चाहिये यदिकेवल प्रतीक उपासना देवताओंकी करता है तबतो विद्युत्त जनलोक को प्राप्त होकर भोगमात्र भोगकर पुनः संसार में आता है और यदि पूर्वउक्त प्रकार सें अपने आत्मा में देवत्व भावना कर सत्यलोकादिको प्राप्त होतब। अथ कृत्स्नक्षय एकत्वमेतिपुरुषस्य ' ब्रह्मलोकके क्षय हुए पुरुष, पूर्ण वस्तु की एकता को प्राप्त होता है। ऐसे क्रम मुक्तिका हेतु देवताओं कीउपासना है॥ प्रश्न॥ अनंतकल्प का संसार अनादि है जोए क २ कल्प मेंजीव मुक्त होकर जन्मको न प्राप्त होता तो अबतक संसार का अभाव होना चाहिये था और संसार देखा जाता है इस वास्ते मुक्तहोकर भी फिर जन्म होता है यदि केचित् जीव केवल बद्ध स्वभाव माने-

तो अधिकारी की मोक्ष मार्ग में प्रवृत्ति नहीं होगी क्योंकि यदि मैं ही बद्ध स्वभाव जीव होवोंगा तो मोक्ष होना असंभव है इसवास्ते साधन संपादन क्लेश सें क्या काम है ऐसी शंका सें कोई भी मोक्षमार्ग में प्रवृत्त नहीं होगा ॥ उत्तर ॥ जीवों के स्वभाव विलक्षण तो नहीं किन्तु सर्वही जीव साधनानुष्ठान सें मोक्ष हो सक्ते हैं परंतु जीवों में अनंतत्व इस प्रकार का है जो प्रति दिन ह्रासेपि अन्तशून्यत्त्वं अर्थात् नित्यं-प्रति न्यूनता होते भी अन्त न होना जैसे समुद्र जल का मेघ सूर्य्य किरण कर प्रति दिन न्यूनता अनुमान सें निश्चय होती है परंतु संसार दशा में अन्त नहीं ऐसे ही प्रति दिन जीव मुक्त होते भी हैं परंतु अन्त नहीं ऐसी ही जीवों में अनंतता है इसवास्ते श्रुति स्मृति विरुद्ध मुक्त का जन्म कल्पना करना असंगत है श्रुति बचन में जो मुक्त का जन्म भ्रम है वादी को सो तो पूर्व प्रकरण में निरस्त है ॥ पूर्व विचार सें कर्म्म और उपासना धर्म का स्वरूप मंत्रब्राह्मण भाग सें निर्णय किया सो दोनों प्रकार का धर्म नवीन आर्य्यों में नहीं दीखता क्यों कि सर्व कर्म्मों में सें एक अग्निहोत्र कर्म्म मानते हैं तिसमें भी अग्नि देवता सर्व देवताओं का मुख रूप नहीं मानते और अग्निहोत्र का फल वायु शुद्धि मानते हैं अग्निहोत्र का फल वायु शुद्धि है यह वार्त्ता वादी ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में लिखा है और वायु तो स्वाभाविक आप शुद्ध सर्व जगत् को पवित्र करता है इसवास्ते वायु पवमान नाम सें मंत्र में पूर्व लिखा है यदि वायु शुद्धि अग्निहोत्र का फल हुआ तो अग्निहोत्र निष्फल है वायु को स्वाभाविक शुद्ध होने सें और देवता विष्णु आदि मानते ही नहीं तो उपासना किसकी करेंगे देवता की उपासना ही ईश्वर की उपासना है इसवास्ते धर्म मार्ग का अतिक्रम और अनतिक्रम बोधक मंत्र-

में अग्नि आदित्य वायु के उपासकों को धर्म मार्ग में आरूढ़ता कही है यदि अग्नि आदि नाम उस मंत्र में ईश्वर के माने तो तीन नाम का उच्चारण असंगत होगा और अग्नि को अर्कता वायु को पवमानता असंगत होगा क्यों कि अर्क अर्थात् अर्चनीय है और पवमान अर्थात् यावत्जगत्को पवित्र करता है सो यह अर्चनीयत्त्व और पवित्र कर्त्तृत्व निराकार में असंभव है इस वास्ते अग्नि आदि उपाधि में ही परमात्मा को अर्चनीयत्व और पवित्र कर्तृत्वादि है इस वास्ते अग्नि वायु आदित्य ब्रह्मा रुद्र विष्णु देवता निषेध से ईश्वर उपासना का भी अर्थ से निषेध है इस वास्ते उपासना मार्ग से भी नवीनार्य्य प्रच्युत हैं ऐसे सर्वथा धर्म मार्ग से भ्रष्ट हैं।

अथ प्रतीकोपासना तथा अहंग्रह उपासना स्वरूप और प्रमाण प्रश्न पूर्वक तिनो के स्वरूप प्रमाण निरूपण में से प्रतीकोपासना स्वरूप तथा प्रमाण निरूपण करते हैं। २।

प्रश्न – पूर्व यह कहा जो देवता की प्रतीक उपासना करता है सो विद्युतादि लोक को प्राप्त होकर भोग मात्र को प्राप्त होता है और जो अपने आत्मा में उपास्य देवत्व भावना दृढ़ करता है अहंग्रह उपासना से सो ब्रह्मलोक प्राप्ति द्वारा मुक्ति को प्राप्त होता है इस स्थान में यह प्रष्टव्य है जो प्रतीक उपासना का स्वरूप क्या है और तिस में प्रमाण क्या है इस प्रकार अहंग्रह उपासना का स्वरूप क्या है और तिस में प्रमाण क्या है ॥ उत्तर प्रबल लौकिक पदार्थ वासनोपेतस्य तत्परित्यागेन ब्रह्मणि चित्तस्याप्रवेशाद् ब्रह्म देवता भावनया लौकिक वस्तुनश्चिन्तनं प्रतीकोपासनम्॥

अर्थ – अत्यन्त लौकिक पदार्थ वासना युक्त पुरुष का लौकिक पदार्थ भावना त्याग कर ब्रह्म में चित्त का प्रवेश न होने से ब्रह्म भावना वा देवता भावना करके लौकिक वस्तु का चिन्तन ही प्रतीकोपासना का स्वरूप है।

भाव यह है यावत् भूत भौतिक प्रपंच है सो ब्रह्मोपादान होने सें सर्वथा ब्रह्म है परंतु लौकिक वासना सें प्रपंच में अब्रह्मत्वभावना दृढ़ होरही है सो एक संग निवृत्त होना असंभव है इसवास्ते किसी एक आलंब में ब्रह्मभावना दृढ़ होनेसें ब्रह्म भिन्नभावना निवृत्त होती है और ऐसे भी ब्रह्मको रूपादि रहित होने सें लौकिक पदार्थ में ब्रह्म भावना शीघ्र नहीं हो सक्ती इस वास्ते जो ब्रह्म सर्व शक्तिमत् है तिसके मायाकृत जो विष्णु आदि मूर्त्ति श्रुति प्रतिपाद्य हैं तिन मूर्त्तिओं की भावना प्रथम किसी लौकिक मूर्ति में कराते हैं जब लौकिक मूर्ति रूप अधिष्ठान में ब्रह्म मूर्त्ति विष्णु शिवादि भावना दृढ़ होगयी तब तिन मूर्त्तिओं के अधिष्ठान सर्व शक्तिमत् ब्रह्मकी भावना शालिग्रामादि में कराते हैं क्योंकि शालिग्रामादि अधिष्ठान में कोई आकार शंखचक्रादि वा हस्तपादादि नहीं प्रतीत होते यह प्राचीन आचार्य्यों की शैली ही अद्यापि लोक में प्रसिद्ध है क्यों कि मूर्ति चतुर्भुजद्विभुज त्रिनेत्रादि की और शालिग्राम नरबदेश्वरादि की पूजा प्रसिद्ध है। और प्रमाण प्रतीकोपासना में मंत्र ब्राह्मण व्यास पतंजलि प्रणीत सूत्र हैं। तथाहि।

अरंदासोनमीढुषेकराण्यहंदेवायभूर्णयेऽनागाः॥ अचे
तयदचितोदेवोऽअर्य्योगृत्संरायेकवितरोजुनाति ॥ ऋ।
मण्ड ७ अ ५ सू ८६ ॥ मं ७ ॥

पद ॥ अरम् दासः नमीढुषे कराणि अहम् देवाय भूर्णये अनागाः अचेतयत् अचितः देवः अर्य्यः गृत्सम् राये कवितरः जुनाति ॥

टीका ॥ न शब्दोऽत्रमंत्रे, उपमार्थः।

प्रतिषेधार्थीयः पुरस्तादुपचारस्तस्ययत्प्रतिषेधति।
उपमार्थीय उपरिष्टादुपचारस्तस्ययेनोपमिमीते ॥ इति

निरुक्ते। १अ २पा १ख।

उक्तत्वात् तथाचाहं देवाय चतुर्भुज मूर्त्तये अरंकराणि, अलंकरवाणि दासोनदास इवयथादासाः स्रक्‌चन्दन मुकुटादिना स्वामिने ऽलंकुर्वन्तितथाहं पार्थिवं परमेश्वर पूजाधिष्ठानविग्रहं भूषेयम् किंविधायमीढुषे धनस्य वृष्टिं कृतवते किंविधो ऽहमनागाः निषिद्धाचरणवर्जितः। एतेन निषिद्धाचरण मत्पजतो निष्फलैवभगवत्पूजेतिमंत्रद्वशावसिष्ठेनध्वनितमितिबोध्यम्। ननु प्रत्यक्ष प्रतीत राजादि पूजा करणे फलंदृश्यते किमदृश्यमान परमेश्वर पूजयेत्यतआह भूर्णये भूरि, मनुष्याद्यपेक्षया ऽप्रमितं द्रव्यादिकं नयतिभक्ताय प्रापयतीतिभूर्णिस्तस्मैभूर्णयेभूरिशब्दे कारलोपश्छान्दसः प्रीति पूर्वकाराध्यमानः परमेश्वरः सर्वान्कामान्दास्यतीतिभावः॥ नन्व त्रमंत्रेमातृदेवोभवपितृदेवोभवआचार्य्य देवोभवेत्यादिशिक्षाश्रुति प्रामाण्यात् आचार्य्यादि पूजनमेवप्रतीयतेनतु पाषाणादि मूर्त्ति पूजन मिति दुर्हृदां शंकामपनेतुमाह।

अचेत यदचितोदेवइति अर्य्यः

स्वामीदेवो ऽचितः चेतनारहितान् पिण्डान् अचेतयत् चेतना युक्तान् करोति स्वांशजीवरूप प्रवेशे नयथाजीवस्य परमेश्वरांशत्वंयथाचजीवांश प्रवेशेनजड़चेतयितृत्वंतथाश्रुतिसूत्र प्रमाणेन प्राङ्‌निरूपितम्। यद्यप्या चार्य्यादि पूजनंश्रुति सिद्धं न निवार्य्यते तथाप्युक्तमंत्रे परमेश्वरस्यैवालंकारादिकं प्रतिमारूपाधिष्ठाने प्रतीयते माता पित्राचार्य्यादि पूक्तलिङ्गस्याचेतन चेतयितृत्वस्यासंभवात् एवंसति परमेश्वरस्यसकल पुरुषार्थ प्रदस्य सत्त्वेपिकवितरो ऽल्पदर्शी परमेश्वराराधनेनसर्वं प्राप्यतइति विश्वासरहितो रायेधनायगृत्संप्राणवन्तं प्राकृतं प्रभुंराजादिरूपंजुनाति, अनुसरतिकवितमस्तु परमेश्वरमेवशरणी करोतीतिभावः

भावार्थ ॥ नशब्द मंत्र में उपमा अर्थ में है क्योंकि निरुक्त १ अ २ पा ३ ख । में लिखा है जो जिस अर्थका निषेध होता है तिस अर्थवाचक पद के प्रथम नकार हो तो निषेधबोधक बहुधा होता है और जिस स्थान में उपमान वाचक पद के पश्चात् नकार होता है वेद में वहां बहुधा उपमा अर्थ नकार का होता है जैसे इस मंत्र में दास पद उपमान का वाचक है और अहं पद उपमेयका वाचक है क्योंकि दासकी उपमा अहं शब्दार्थ कर्ता को दीगयी है और उपमानवाचक दासपद के पश्चात् नकार पठित है इसवास्ते उपमा अर्थ है नकार का परंतु यह संकेत मंत्र में ही जानना और स्थान में तो नकार केवल निषेधार्थक होता है । तब प्रकरण में अर्थ ऐसा है अहं दासवत् परमात्मा देवका अलंकार करता हूं जो कि परमात्मा देव धनकी दृष्टि करने वाले हैं तिस देवको स्वानुकूल करने वास्ते पूजन करता हूं निषिद्धाचरण रहित होकर इससे यह भीजनाया जो निषिद्ध व्यवहार को न त्यागकर पूजन करते हैं तिनों का पूजन निष्फल होता है इस मंत्र के अर्थ में दृष्टि देना चाहिये जो विना प्रतिमारूप अधिष्ठान के अलंकार परमेश्वर में असंभव है इसवास्ते इस मंत्र सें प्रतीकोपासना स्पष्ट प्रतीत होती है सो यह प्रतिमाका पूजन नहीं किंतु प्रतिमा रूप आधार में परमात्मा का पूजन है । यदि इस मंत्र में आचार्य्यादि पूजाका उपदेश किया है जो कि तैत्तरीय शिक्षा वल्लि में प्रसिद्ध है यह कहें सो संभवे नहीं क्योंकि यद्यपि आचार्य्यादि पूजन श्रुति प्रतिपाद्य है तथापि इस मंत्र में अचेतन को चेतन कर्त्तृत्व देव में कहा है जीवरूप सें प्रवेश कर सो आचार्य्यादि में नहीं बनता इसवास्ते इस स्थान में देव शब्द परमात्मा का बोधक है आचार्य्यादिका बोधक नहीं इससे आस्तिक पुरुष को वेद प्रतिपाद्य अर्थ कुतर्क सें निरस्त करना उचित नहीं । जब परमात्मा के पूजन सें सकल पुरुषार्थ प्राप्त होता है यह निश्चय होगया

तब अल्प बुद्धि पुरुष धनके वास्ते प्राणधारी जीवका आश्रय करता है परं-
तु अत्यंत बुद्धिमान पुरुष परमात्मा का ही आराधन करता है। ऐसे प्रती-
कोपासना में मंत्र प्रमाण निर्णय होगया अब ब्राह्मण प्रमाण भी दिखलाते
हैं॥ किञ्च सामवेदीय षड्विंश ब्राह्मणे पञ्चम प्रपाठके दशम खण्डे प्र
तिमा यामीश्वर देवता पूजनं प्रतीयते॥ तथाहि॥

यदा, देवता पतनानि कम्पन्ते दैवत प्रतिमा हसंति रुदं-
न्ति नृत्यंति स्फुटन्ति खिद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति, त-
दा, इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढमस्य पा
ंसुले॥ साम १८ प्र २ खं १। सू० ३। इति स्थालीपाकं
हुत्वा पञ्चभिराहुतिभिरभिजुहोति विष्णवे स्वाहा सर्वभू
ताधिपतये स्वाहा चक्रपाणये स्वाहेश्वराय स्वाहा सर्वपा
पनाशनाय स्वाहेति व्याहृतिभिर्हुत्वाथ सामगायेत्॥

अस्यार्थः यदा, यस्मिन् काले यस्य राज्ञो देशे देवतायतनानि देवमंदिरा-
णि कम्पत इवेति जाग्रति स्वप्ने वा प्रतीयन्ते तथैव दैवत प्रतिमा हसन्तीव
रुदन्तीव नृत्यन्तीव स्फुटंतीव स्फुटनं प्राप्नुवन्तीव खिद्यन्तीव विदीर्य्य
न्त इव उन्मीलन्तीव निमीलंतीवेति प्रतीयंते तदा, तस्मिन् कालेऽरिष्ट
ज्ञानवान् स राजा इदं विष्णुरित्यादि मंत्रेण स्थालीपाकमनतिक्रम्य स्था
लीपाक विधान रीत्या चरुं श्रपयित्वा हुत्वा, हवनं कृत्वा पुनर्विष्णवे
स्वाहेत्यादिभिः पञ्चभिर्मन्त्रैः पञ्चभिराज्या हुतिभिरभिजुहोति, जुहु-
यात् पश्चात् व्याहृतिभिर्हुत्वा भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहेति हुत्वा-
सामगायेत्, सामगानं कुर्य्यात् भाषार्थ॥ और सामवेद के षड्विंश
ब्राह्मण के। प्रपाठक। ५। खं। १०। पंचम प्रपाठक के दशम खण्ड में भी
प्रतिमा रूप अधिष्ठान में ईश्वर वा देवताओं का पूजन प्रतीत होता है इसवा

स्ते पूर्व उक्त मंत्र प्रतिमा में ईश्वर पूजन प्रतिपादक दृढ़ होकर अपने स्वार्थ को बोधन करता है और षड्विंश ब्राह्मण भी मूल सहित होकर अपने स्वार्थ को निर्विवाद होकर बोधन करेगा ब्राह्मण में यह प्रसंग है जिस राजा के देश में जिस किसि काल में देवता मंदिर कम्पते से मालूम पड़ें जाग्रत् काल में अथवा स्वप्न काल में तैसे देवता प्रतिमा हसतिसी रुदन करतीसी नृत्य करतीसी स्फुटतीसी विदीर्ण होतीसी निमीलन उन्मीलन व्यापार करतीसी प्रतीत हो तब जाने जो कोई भी अनिष्ट प्रापक पाप आया है तब तिस पाप की निवृत्ति वास्ते प्रायश्चित करे इदंविष्णु इत्यादि मंत्र से स्थाली पाक की विधि कर चरु पकाकर हवन करे विष्णवे स्वाहा सर्व भूताधिपतये स्वाहा चक्रपाणये स्वाहा ईश्वराय स्वाहा सर्व पापनाशनाय स्वाहा इन पांच मंत्रों से पांच घृत की आहुति करके फिर व्याहृति से करके भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा ऐसे होम कर सामगायन करे जब तब अरिष्ट शान्त होता है। और मंत्र का अर्थ, विष्णु व्यापक परमेश्वर वामनावतार में इस विश्व को विक्रमण करता हुआ तीन प्रकार से पादों को धारण करता हुआ एक पृथिवी में दूसरा अन्तरिक्ष में तीसरा स्वर्ग में इस भगवान् के अपनि शक्ति रूप धूलि युक्त अंश में चतुर्दश भुवन रूप ब्रह्माण्ड अन्तरभूत है इतने कर क्रमु पाद विक्षेपे धातु का अर्थ जो पादन्यास पादों का उठाना स्थापन करना व्यापक विष्णु में अवतार से विना असंभव है इसवास्ते वादी को अवतार मानना चाहिये अन्यथा मंत्र का विरोध होगा तैसे चक्रपाणये स्वाहा इस ब्राह्मण गत हवन मंत्र से भी हस्त पादादि अवयव सहित चक्र को धारण करने वाली मूर्त्तिमान् विष्णु सिद्ध होता है परमेश्वर का मूर्त्तिमान् रूप न मानना वादी की अविद्या है॥

अथ प्रतीकोपासना अर्थात् प्रतिमा पूजन में दयानंद कृत्त

क्षेपपूर्वकश्रुतिसूत्र प्रमाणकर आक्षेपनिराकरण और प्रतीकोपासना प्रतिपादनकरते हैं ॥ ३॥ प्रश्न । अन्धन्तमः प्रविशन्तियेऽसम्भूतिमुपासतेततोभूयइवतेतमोयउसंभूत्या ँरताः ॥यजुः॥ अ ४०मंत्र ॥ ९॥ नतस्यप्रतिमाअस्ति ।यजुः॰ अ ३२ ।मं॰ ३॥ यद्वाचानभ्युदितंयेनवागभ्युद्यते। तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ १॥ यन्मनसा नमनुतेयेनाहुर्मनोमतम्। तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ २॥ यच्चक्षुषानपश्यतियेनचक्षूंषिपश्यन्ति । तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ३॥ यच्छ्रोत्रेणनशृणोतियेनश्रोत्रमिदंश्रुतम् । तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥४॥ यत्प्राणेननप्राणितियेन प्राणः प्रणीयते । तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ५॥ केनोपनि॰

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृतिकारणकी ब्रह्मकेस्थानमें उपासनाकरते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागरमें डूबते हैं । और संभूति जोकारणसे उत्पन्नहुए कार्य्यरूप पृथिवी आदिभूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादिके शरीर की उपासना ब्रह्मकेस्थानमें करते हैं वे उसअन्धकारसे भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोरदुःखरूपनरकमें गिरके महाक्लेशभोगते हैं । १। जोसब जगत् में व्यापक है उसनिराकार परमात्माकी प्रतिमा परिमाणसादृश्य वा मूर्त्तिनहीं है । २। जोवाणीकी "इयत्ता" अर्थात् यह जल है लीजियै वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और सत्तासे वाणीकी प्रवृत्ति होती है उसीको ब्रह्मजान और उपासनाकर और जो उससेभिन्न है वह उपासनीय नहीं । १।

जो मन से "इयत्ता" करके मन में नहीं आता जो मन को जानता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर जो उस से भिन्न जीव और अन्तःकरण है उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर। २। जो आंख से नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर और जो उस से भिन्न सूर्य्य विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मत कर ॥ ३ ॥ जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर और उस से भिन्न शब्दादि की उपासना उसके स्थान में मत कर ॥ ४ ॥ जो प्राणों से चलायमान नहीं होता जिस से प्राण गवन को प्राप्त होता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसकी उपासना कर जो यह उस से भिन्न वायु है उसकी उपासना मत कर ॥ ५ ॥ इत्यादि बहुत से निषेध हैं ॥ सत्या० समु० ११। पृ २१२। २१३। यह सत्यार्थप्रकाश में वादी ने लिखा है इससे प्रतीकोपासना अनेक श्रुति बचनों से निषिद्ध है ॥ उत्तर ॥ यह संपूर्ण वादी का लेख अनर्थ प्रलाप पक्षपात ग्रस्त पूर्व उत्तर वाक्यों से विरुद्ध है ॥

तथाहि ॥ इस स्थान में यह प्रष्टव्य है जो यजुर्वेद का मंत्र है तिसका पूर्व मंत्र अथवा उत्तर मंत्र से संगति है अथवा नहीं जो यह कहैं संगति से विना ही कारण कार्य्य उपासना का निषेध करता है तब यह कहना चाहिये ब्रह्म के स्थान में यह अर्थ किस पद का है मंत्र के अक्षरों से तो असंभूति अर्थात् उत्पत्ति रहित और संभूति अर्थात् उत्पत्तिमत् वस्तु की जो उपासना करता है सो नरक में पड़ता है यह अर्थ ही प्रतीत होता है तब तो यह निर्णतव्य है जो ब्रह्म असंभूति शब्दार्थ है अथवा नहीं जो ब्रह्म भी उत्पत्तिरहित होने से असंभूति शब्दार्थ है तो ब्रह्म उपासना से भी नरक होगा जरूर और जो असंभूति शब्दार्थ ब्रह्म नहीं तो संभूति शब्द का अर्थ होगा तो इस पक्ष में दो दोष

हैं क्योंकि ब्रह्मको कार्य्यत्वापत्ति और ब्रह्मकी उपासनासें नरक भी होगा क्योंकि संभूति की उपासनासें नरकरूप फल मंत्र प्रतिपाद्य है जब पूर्व उत्तर संगति विना मंत्रके अक्षरोंसें यह अर्थ करेंगे तब तो वादीजी पूरे ही प्राचीन वेदान्ती होजांयगे क्या अपूर्व पाण्डित्य है वादीजीका। और यदि पूर्व मंत्रोंसें संगति इस मंत्रकी मानकरके ब्रह्मके स्थानमें इस अर्थका लाभ स्वीकार करें तब तो ब्रह्मके स्थानमें इस भाषावाक्यकी संस्कृत यह है ब्रह्मणः स्थाने अथवा ईश्वरस्य स्थाने सो ऐसा पद समुदाय इस नवम मंत्रसें पूर्व अष्ट मंत्रोंमें प्रतीत होता नहीं तो ऐसा व्याख्यान मंत्रका अपव्याख्यान है। यदि ब्रह्म उपासना पूर्व मंत्रोंमें प्रसिद्ध है इस वास्ते इस मंत्रमें ब्रह्मके स्थानमें इतने अर्थका लाभ होसकता है यह कहेंगे तब पूर्व मंत्रोंमें दृष्टि देकर सज्जन पुरुष देखें जो कि पूर्व अष्टमंत्रोंमें उपासते यह पद ही नहीं देखनेमें आता अब इस स्थानमें यद्यपि पूर्वमंत्र लिखनेसें विलंब और प्रकरणका विच्छेद किंचित् होगा तथापि जो हम भी वादीकी तरहं पूर्व मंत्रोंको न लिखकर नवम मंत्रका अर्थ लिखेंगे तो अवश्य किसीको भ्रम होगा जो यह अर्थ भी प्रकरण विरुद्ध है इस वास्ते पूर्व अष्ट मंत्रोंका संक्षेपसें अर्थ लिखकर दिखलाते हैं। और मंत्रोंके लिखनेसें पूर्व उक्त जो ऋग्वेदीय ऐतरेयारण्यकमें धर्मका स्वरूप सो भी स्पष्ट होगा धर्मस्वरूप मार्गके दो भेद पूर्व निर्णीत हैं एक तो कर्म तैसे दूसरा ब्रह्मज्ञान सहित उपासना इन धर्मस्वरूप मार्गोंका स्वरूप स्पष्ट आलोचक सज्जन पुरुषोंको प्रतीत होगा। अब जिस क्रमसें यजुःसंहिताके चालीसवें अध्यायमें मंत्र हैं वे दिखाये जाते हैं तथाहि॥

ईशा वास्यमिदᳬं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्॥ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥१॥ यजुः अ० ४० मं० १॥

पद ॥ ईशावास्यम् इदम् सर्वम् यत् किंच जगत्याम् जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्य स्वित् धनम् अर्थ, इस मंत्र में प्रथम तो मंत्र के पूर्व भाग में कर्म और उपासना का फल जो ब्रह्मज्ञान, तिसके अर्थ उपदेश है- और उत्तर भाग से ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता का हेतु त्याग और त्यागी ब्रह्मज्ञानी को नियम का उपदेश करते हैं। जगत्यां यत् किंच जगत् इदं सर्वं ईशावास्यम् यह अन्वय है जगत्यां अर्थात् पृथिवी में यत् किंच जो कुछ जगत् अर्थात् स्थावर जंगम वस्तु है यह संपूर्ण ईशा अर्थात् ईश्वर भावना कर वास्यं अर्थात् आच्छादन करने को योग्य है यावत् प्रपंच में ईश्वर भावना की दृढ़ता से प्रपंच भागना त्यागने योग्य है यह फलित अर्थ हुआ जैसे कटका-दिरूप सुवर्ण कार्य्य में सुवर्ण भावना की दृढ़ता से कटकादि त्यक्त होजाते हैं सुवर्णमात्र ही शेष रहता है तैसे नामरूप प्रपंच में ब्रह्मभावना की दृढ़ता से नामरूप त्यक्त होजाते हैं नामरूप का त्याग रूप ही आच्छादन है ॥

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान्वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्व्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्व्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीद ँ सर्व्वं यदयमात्मा ॥ वृहदारण्यक उपनिषत्। अ ४ ब्रा ४। का ६

इस श्रुति प्रमाण से इस मंत्र का ऐसा ही व्याख्यान कर्त्तव्य है क्योंकि यजुर्वेद के मंत्रों का व्याख्यान रूप जो शतपथ ब्राह्मणोपनिषद् है तिस व्याख्यान के अनुसार ही व्याख्यान करना उचित है। वृहदारण्यक श्रुति का अर्थ यह है ब्रह्म ब्राह्मण जाति क्षत्र क्षत्रिय जाति लोक, भूरादि देव, इन्द्रा

दि देवता भूत, यावत् स्थावर जंगम प्राणिसमूह और जो कुछ परिशेष वस्तु-है इस सर्व ब्राह्मण जाति आदि प्रपंच को जो आत्मा सें भिन्न जानता है सो यह ब्राह्मणत्वादि प्रपंच भेद दर्शि पुरुष का तिरस्कार करता है इस वास्ते यह-ज्ञातव्य है जो ब्राह्मण त्व क्षत्रियत्व लोक देवता सर्व प्राणि और सर्व परिशिष्ट वस्तु यह संपूर्ण सर्वानुभव सिद्ध आत्मस्वरूप हैं। इस वाक्य के अर्थानुसार इस मंत्र का अर्थ करने सें यावत् प्रपंच में ब्रह्मरूप का निश्चय होता है। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः अर्थ, ईश्वर भावना कर त्यक्त प्रपंच करके आत्मज्ञान की रक्षा कर और मागृधः कस्य स्विद्धनम् किसी के भी धन की आकांक्षा मत कर अर्थ यह है धन की आकांक्षा न करना इस नियम के अनुष्ठान सें-त्याग की दृढ़ता होगी और त्याग की दृढ़ता सें आत्मभावना की दृढ़ता होकर स्वरूपावस्थान रूप कैवल्य मोक्ष होगी ऐसे उपासना सहित ब्रह्मज्ञान रूप जो धर्म है सो संक्षेप सें इस मंत्र में प्रतिपादन किया क्योंकि वैराग्य और धन तृष्णा त्याग नियम सें ब्रह्मज्ञान जनक उपासना का भी सूचन इस मंत्र में किया है ॥१॥

कुर्व्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः॥ एवंत्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे॥ यजुः० अ० ४० मं० २॥

पद॥ कुर्व्वन् एव इह कर्म्माणि जिजीविषेत् शतं समाः एवम् त्वयि न अन्यथा इतः अस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे

अर्थ, इह कर्म्माणि कुर्व्वन्नेव शतं समा जिजीविषेत् यह अन्वय है इस संसार में श्रौत कर्मों को करता हुआ ही शत वर्ष जीवने की इच्छा करे एवं त्वयि नरे न कर्म्म लिप्यते ऐसा अन्वय है ऐसे वर्त्तमान तुमारे मनुष्यों में कर्म्म लिपायमान न होगा इतोऽन्यथा नास्ति इस कर्म्म करने सें अन्यथा अर्थात् प्रकारांतर नहीं है। भावार्थ यह है वेद भगवान् उपदेश करते हैं यदि शत

वर्षजीवनेच्छाकरे तबभीकर्मोंकोकर्त्ता हुआ हीजीवनेच्छाकरे श्रौतकर्म्म केत्यागकीइच्छानकरे जब पुरुषश्रुतिविहितकर्मोंकाअनुष्ठानकरतारहेगा तोजोराग प्राप्तनिषिद्धकर्म्म हैं तिनोंका पुरुषमेंलेपनहींहोगा औरनिषिद्धकर्मसेंछूटनेका श्रौतस्मार्तकर्म्मानुष्ठानसें भिन्नउपायनहीं है इस स्थानमें निषिद्धकर्मके छुड़ानेवास्ते विहितकर्मकाउपदेशजीवनेछुनर मात्राभिमानीको किया है यह धर्मका द्वितीयस्वरूपकहा इसवास्ते इन दोमंत्रों में यावत्वेदकाअर्थजोकि उपासनासहित ज्ञानऔरकर्म्म तिसका निरूपण संक्षेपसें किया ॥२॥ अबजो उपासना सहित ज्ञान औरकर्म्म स्वरूप धर्म मार्ग सेंभ्रष्ट हैं तिनोंकी दशानिरूपणकरते हैं तृतीय मंत्रसें

असुर्य्यानामतेलोका अन्धेनतमसाऽऽवृताः ॥ ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येकेचात्महनोजनाः ॥ य० अ० ४० मं ३

पद । असुर्य्याः नाम ते लोकाः अन्धेन तमसा आवृताः तान् ते प्रेत्य अभिगच्छन्ति ये के च आत्महनः जनाः

अर्थ, ते शब्दकेस्थानमें ये ऐसाजानना तब यह अर्थ हुआ येलोकाअसुर्या अन्धेनतमसावृतास्तान् ते प्रेत्याभिगच्छन्ति तेकेयेच आत्महनोजनाः । जोलोक अर्थात् संघात जीवयोनि असुरोंकी हैं जो कि असु प्राणोंमें अर्थात् इन्द्रियोंके विषयोंमेंही रमणकरते हैं वैदिकमार्गकोत्याग करवे असुर हैं तिन असुरोंको प्राप्त होनेयोग्यजोयोनि हैं जो पूर्व वेदउक्तपन्थ त्यागी प्रजाओंको योनिकही है पक्षिवनवृक्षव्रीहियवादि और अन्धतमकर आवृत्त है तिसको मरकरवे पुरुष प्राप्तहोते हैं कौनजो कि आत्महन हैं अर्थात् अपने आपके नाशक हैं क्योंकि आत्माके उद्धारकरनेयोग्यदेहको प्राप्तहोकरभी प्रमादकरते हैं अवैदिकमतमें आग्रहकरके दुराग्रहमें आसक्त हैं इसमंत्रमें धर्ममार्गसेंभ्रष्ट पुरुषोंकी दशा कही है ॥३॥ अब

चतुर्थ मंत्र सें लेकर अष्टम मंत्र पर्य्यन्त ब्रह्म का निरूपण और ब्रह्मज्ञान-का फलकथन करेंगे तिसमें भी तीन मंत्रों कर ब्रह्म का निरूपण और दो मंत्रों कर ब्रह्मज्ञान का स्वरूप और फल का निरूपण करेंगे वेद भगवान् ॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ॥ तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

अर्थ, विलक्षण स्वरूप होने सें एक अचल ही मनसे वेगवत् तुल्य है सर्वव्यापक होने सें इन्द्रियगण की प्राप्ति से प्रथम प्राप्त है और इन्द्रिय इस को नहीं प्राप्त हो सकते और शीघ्रगामी इन्द्रियगण को स्थित हुआ ही उल्लंघन कर जाता है और तिसकी प्रशासना में वर्त्तमान वायु ब्रह्माण्डगत जल उपलक्षित अनंत पदार्थों को धारण करता है इस मंत्र का विस्तृत अर्थ पूर्व निर्णीत है ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ॥ तदन्तरस्य सर्व्वस्य तदु सर्व्वस्यास्य बाह्यतः । य० अ० ४० । मं ५ ॥

अर्थ, सो परमात्मा ही किंचित् आरोपित रूप विशिष्ट होकर चलायमान है और आरोपदृष्टि विना अचल है और दूर तद्वत् समीप में भी वह आत्मतत्त्व ही है और अन्तर इस विश्व के वैसे ही वाहिर भी परमात्मा है ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ॥ सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ य० अ० ४० मं ६ ॥

अर्थ, जो विचारजन्य अनुभव सें परमात्मा को जानता है सो सर्व भूतों को अपने आत्मा में अनुभव करता है और सर्व भूतों में आत्मा को अनुभव करता है फिर ऐसे विचारजन्य अखंड साक्षात्कार से विजुगुप्सा अर्थात् निन्दित योनि को नहीं प्राप्त होता किन्तु कैवल्य मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

यस्मिन्सर्व्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ॥ तत्र को मो-

ह: क: शोक एकत्त्वमनुपश्यत: ॥ य० अ० ४० मं० ७ ॥

अर्थ. पूर्व मंत्र में उक्त अर्थ को विस्तार करते हैं जिस ज्ञान निष्ठा प्राप्ति काल में आत्मानुभविक पुरुष का आत्माही सर्वभूतरूप को प्राप्त होगया। भाव यह है सर्वभूतों में सर्वाधिष्ठान ब्रह्म भावना सें सर्वभूतभावना निवृत्त होगयी सुवर्ण भावना सें कटकादि भावना निवृत्तिवत् तिसकाल में क्या मोह और क्या शोक है एकत्त्वदर्शी विद्वान् को। भाव यह है अपने आत्मा को सर्वदा दुःखरहित परमानन्दरूप न जानकर हा बड़ा कष्ट है मेरे वित्त पुत्रादि सुखकारण नहीं हैं ऐसा शोककर वित्त पुत्रादि की कामना सें तिनके साधक उपायों को अनुष्ठान करने की इच्छा करता है और जब स्वत: पूर्ण आनंदरूप अपने आत्मा को ज्ञानद्वारा अनुभव करता है तब समूल शोक निवृत्त होता है जैसे स्वत: सिद्ध राजपुत्रत्व के अज्ञान सें व्याधपुत्रत्वाध्यासजन्य शोक की दयालु के उपदेश सें व्याधपुत्रत्वभ्रम को त्यागकर पूर्वसिद्ध राजपुत्रत्व ज्ञानद्वारा निवृत्ति होती है। इस स्थान में जीव परमात्मा का वास्तव भेदपक्ष भी गप्पपंथिओं का क्षार समुद्र में वह गया और श्रीव्यासजी भी अपने सूत्र में जीव परमात्मा के वास्तवाभेद को बोधन करते हैं। तथाहि ॥

आत्मेतितूपगच्छंतिग्राहयंतिच ॥ शा० अ० ४ पा० १ सूत्र ३।

सूत्रार्थ, शास्त्र प्रतिपाद्य परमात्मा को अहमस्मि परमं ब्रह्म ऐसे ज्ञातव्य है अथवा मदन्यत्परं ब्रह्म ऐसे ज्ञातव्य है इस संशय की निवृत्ति वास्ते कहते हैं आत्मा इतितु उपगच्छंति ग्राहयंति च अर्थ, परब्रह्म आत्मा है ऐसे ही उपगच्छंति जानते हैं विद्वान् लोक और वेदवाक्य ऐसे ही ग्रहण करते हैं सो देखना चाहिये ईशावास्य इत्यादि मंत्र सें ईश्वर का उपक्रम करके यस्तु सर्वाणि इत्यादि मंत्र में और यस्मिन् इत्यादि मंत्र में आत्मा में उपसं

हार करने सें परमात्मा को आत्मा रूप सें विद्वान् जानते हैं और ग्रहण कराते हैं वेदवाक्य, क्योंकि यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मानम् इस वाक्य में सर्वभूतों को आत्मा में देखकर पश्चात् सर्वभूतों में आत्मा को देखता है इस कहने सें ईश्वर और आत्मा का अत्यंत अभेद कहा का है ते सर्वभूताधिष्ठानत्व और अधिष्ठानतया सर्वभूतों में वर्त्तमानत्व दो पदार्थों में नहीं बन सकता इस वास्ते ईश्वर को आत्मा रूप कर ही विद्वान् जानते हैं और यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः। इस मंत्र में एकत्त्व का ग्रहण कराते हैं वेद-वचन। शंका। पूर्व मंत्र में यह कहा विद्वान् के सर्वभूत आत्मरूप हो-जाते हैं तो स्थूल सूक्ष्म शरीर आत्मरूप होने चाहिये इस शंका की निवृ-त्ति वास्ते फिर एक मंत्र सें परमात्मा का निरूपण करते हैं क्योंकि मंत्रो-को आलस्य नहीं है। तथाहि॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपाप
विद्धम्॥ कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्था
न्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ य० अ० ४० मं० ८

पद॥ सः परि अगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम् कविः मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः

अर्थ, सो परमेश्वर पर्य्यगात् अर्थात् आकाशवत् सर्वव्यापी है शुद्धं शुक्रं अर्थात् शुद्ध प्रकाशरूप है भौतिक प्रकाश विलक्षण ज्ञानस्वरूप अथवा अलौकिक दीप्तिमान् परमात्मा है अकायम् सूक्ष्मभूत कार्य्य लिङ्ग शरीर वर्जित है अव्रणम् अस्नाविरम् स्थूल शरीर में वर्तमान व्रण और स्नाविर अर्थात् नाडि समूह कर वर्जित है इन दो विशेषणों सें भौतिक-

स्थूल शरीरसे विलक्षण कहा अपापविद्धम् अर्थात् धर्म्माधर्म्म रहित है इस विशेषण सें जीवाभिन्न होने से प्रसक्त जो जीवोपाधि लिङ्ग शरीर धर्म, धर्माधर्मादि तिनों का निषेध किया है कवि अर्थात् सर्वज्ञ है मनीषी, मनका प्रेरक है परिभूः सर्वोपरि वर्त्तमान है । पूर्व उक्त अकायादि विशेषणसें भौतिक प्राकृत शरीरका निषेध किया है इस अभिप्रायको अपने आपही वेदभगवान् प्रगट करते हैं स्वयंभू इस विशेषण सें स्वयमेव ब्रह्मा रुद्र विष्ण्वादि रूपेण भवति प्रादुर्भवतीति स्वयंभूः अपने आपही अपनि विचित्र शक्ति करके ब्रह्मादि रूप सें होता है इससे स्वयंभू है । इसी वास्ते व्यास भगवान् इस मंत्रार्थको विस्तार करते हैं ।

अजोपिसन्नव्ययात्माभूतानामीश्वरोऽपिसन् ॥ प्रकृतिं स्वामधिष्ठायसंभवाम्यात्ममायया । गी० अ ४ । श्लो ६ ॥

भगवान् अर्जुनसें कहते हैं अज और अव्ययात्मा और सर्वभूतोंका ईश्वर भी हों तथापि अपनी प्रकृति स्वाभाविक सामर्थ्य को आश्रय कर आत्ममाया अर्थात् अपने संकल्प कर होता हूं इससे अवतार भी सिद्ध होगया जब परमात्मा ब्रह्मादि भावको प्राप्त हुआ तब याथातथ्यतः अर्थात् यथावत् अर्थान् अर्थात् कर्तव्य पदार्थोंको शाश्वतीभ्यः समाभ्यः अर्थात् दीर्घ वर्षउपलक्षित प्रजापति मनु आदि हेतुओंसें व्यदधात् अर्थात् विभाग करता भया । अब इन मंत्रोंको सत्पुरुष देखें जो ब्रह्मणः स्थाने अथवा ईश्वरस्य स्थाने यह पद अथवा उपासते यह पद कहां है केवल वादीका मिथ्या प्रलप है जो ब्रह्मके स्थान में कारण प्रकृति और कार्य्य पाषाणादि की उपासना करता है सो नरक में गिरता है यह अर्थ प्रकरण विरुद्ध है और इस स्थान में यह भी विचार करना जो ब्रह्मके स्थान में इसका भावार्थ क्या है ब्रह्मका स्थान कौन है ब्रह्मकी उपासनाका स्थान वा ब्रह्मको निवास स्थान वा

ब्रह्मरूपस्थान यह अर्थ है प्रथम पक्ष में ब्रह्मकी उपासना स्थान तो कोई पदार्थ दूसरा वादीके मत में नहीं है काहेते ब्रह्मकी उपासनाका स्थान-कोई पदार्थ मानेगा वादी तो प्रतीक उपासना सिद्ध होगी क्योंकि ब्रह्म बुद्धि सें किसी पदार्थकी उपासना ही प्रतीकोपासना है और यदि ब्रह्म के निवास स्थानको ब्रह्मस्थान माने तो ब्रह्मको व्यापक होने सें सर्व ही वस्तु मात्र ब्रह्मका निवासस्थान है तिसस्थान में कारण कार्य्य उपासना करता ही कौन है जो नरकको प्राप्त होगा क्योंकि कारण प्रकृति और कार्य्य पृथिवी आदि भी तो ब्रह्मका निवासस्थान हैं तिसमें कारण कार्य्य दृष्टि सर्वको प्राप्त है क्योंकि कारण को कारण और कार्य्य को कार्य्य सर्व ही जानते हैं। परिशेषते ब्रह्मरूपस्थान में जो कारण प्रकृतिकी और कार्य्य पृथिवी पाषाणादिकी उपासना करता है सो नरक में पड़ता है यह अर्थ वादी को विवक्षित होगा फलित यह है जो कारण प्रकृति बुद्धि सें और कार्य्य पाषाणादि मूर्त्ति बुद्धि सें ब्रह्मकी उपासना करता है सो नरक में पड़ता है। जब यह अर्थ इष्ट हुआ तो जरा बुद्धि रूपी नेत्र खोलके देखो मूर्त्ति पूजक आचार्य्य ब्रह्म में मूर्त्तिबुद्धि करके पूजन उपासना करते हैं अथवा मूर्ति में ब्रह्म बुद्धि करके पूजनादि करते हैं प्रथम पक्ष तो अलीक है क्योंकि ऐसा भ्रम तो विचारशून्य वादीको ही हो सकता है दूसरा पूर्वाचार्य्य मार्गारूढ़ पुरुष सर्व व्यापक ब्रह्म को वा भक्तवात्सल्यादि गुण विशिष्ट कैलास वासी वैकुण्ठ वासी देवको केवल मूर्त्ति रूपके सा मानेगा इसवास्ते मूर्त्ति में ही ब्रह्म बुद्धि दृढ़ करके पूजन करते हैं इस रीति सें वादीको विपरीत ज्ञान है जो यह कहता है ब्रह्मके स्थान में कारण कार्य्य बुद्धि करता को नरक होता है क्योंकि ऐसी बुद्धि वादीकी है प्रतिमा पूजकोंकी नहीं इससे तिसीको नरक होगा प्रतिमा पूजक तो प्रतिमा रूप अधिष्ठान में

ब्रह्मबुद्धिकरके ब्रह्मका पूजन ध्यान करते हैं । इसि अर्थकोव्यास-जीसूत्रसेस्पष्टकरते हैं । तथाहि ॥

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ शा ॥ अ ४ पा १॥ सूत्र । ५ ॥

सूत्रार्थ, इससूत्रके प्रतीकोपासना बोधक वाक्य उदाहरण हैं । प्रतीककी दृष्टि ब्रह्म मेंकर्त्तव्य है अथवा ब्रह्म दृष्टि प्रतीकरूप अधिष्ठानमें कर्त्तव्य है इस संशयकी निवृत्ति वास्ते व्यासजी कहते हैं ब्रह्म दृष्टिही प्रतीकमें कर्त्तव्य है ब्रह्मको उत्कर्ष होने सें ऐसे उत्कृष्ट ब्रह्मदृष्टिकरने सें उत्कृष्ट ब्रह्मही पूज्य होगा इस प्रकारसें वादीका कथन युक्ति और व्यास सूत्र तथा प्रकरण सें विरुद्ध होनेसें सर्वथा तुच्छ है अब नवम मंत्र का अर्थ निरूपण करते हैं परंतु नवम मंत्रकी संगति दशम औरएकादशमंत्रके साथ है तथाहि ॥

पद । अन्धंतमः प्रविशंति ये असंभूतिम् उपासते ततः भूयः इव ते तमः ये उसंभूत्यामूरताः ॥

अर्थ, प्रथम तो कारण कार्य्य उपासनाके समुच्चयकी इच्छाकर एक एक उपासनाकी निन्दाकरते हैं जो कारण जड़ प्रकृतिकी उपासना करते हैं वे अन्धतम में प्रवेशकरते हैं और जो कार्य्यकी उपासना करते हैं वे तिससेभी अधिक अन्धकारमें प्रवेश करते हैं ॥

अन्यदेवाहुःसंभवादन्यदाहुरसंभवात् ॥ इतिशुश्रुमधीराणांयेनस्तद्विचचक्षिरे । यजुः० अ ४०मं १०॥

अर्थ, संभवात् अर्थात् ब्रह्मदृष्टि सें कार्य्य मृण्मय मूर्त्ति उपासनासें अन्यही विद्युत्लोक प्राप्ति रूप फल आचार्य्य कहते हैं और अन्यही फल असंभवात् अर्थात् कारण रूप प्रकृति उपासनासें प्रकृतिलय रूपफल कहते हैं ऐसे धीराणाम् अर्थात् वेदार्थ उपदेशक आचार्य्योंका वचन

हमलोक सुनते हुये जो आचार्य्य हमारे प्रति तद् विचचक्षिरे अर्थात् कार्य्य कारण उपासना का व्याख्यान करते भये हैं ॥

संभूतिञ्च विनाशंच यस्तद्वेदोभय ँ सह ॥ विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ य० अ० ४० । मं ११ ॥

पद ॥ संभूतिम् च विनाशम् चयः तद् वेद उभयम् सह विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा असंभूत्वा अमृतम् अश्नुते ॥

अर्थ, इस मंत्र में संभूति शब्द के आदि में अकार का लुप्त उच्चारण जानना क्योंकि विनाश शब्द कार्य्य का वाचक है और संभूति शब्द भी कार्य्य का-वाचक होने सें पुनरुक्ति होगी और नवम दशम मंत्र में अकार का उच्चारण है इससे इस स्थान में भी अकार है तब यह वाक्यार्थ हुआ जो पुरुष असंभूति, कारण की और विनाश धर्मवत्कार्य्य की सह, एक काल में वेद अर्थात् उपासना करता है सो पुरुष कार्य्य उपासना सें मृत्यु को तर कर कारण उपासना करके अमृत को प्राप्त होता है। भावार्थ यह है प्रतिमा का ब्रह्म दृष्टि सें पूजन ध्यानादि करता हुआ स्वभाव प्राप्त निषिद्ध कर्मों को उत्तीर्ण होकर कारण उपासना सें ब्रह्मलोक प्राप्ति द्वारा क्रम मुक्ति को प्राप्त होता है यह तीन मंत्रों का एक महावाक्य है "नहि निन्दा निन्दितुं प्रवृत्ता अपितु विधेयं स्तोतुम्" निन्दा कुछ निन्दा करने को नहीं प्रवृत्त हुई-किन्तु विधान योग्य अर्थ की स्तुति करने वास्ते प्रवृत्त हुई है। इस न्याय सें नवम मंत्र सें कारण कार्य्य उपासना की निन्दा,, वास्ते समुच्चय के करी है और दशम मंत्र सें एक २ का फल भी बोधन किया है क्योंकि निष्फल का समुच्चय नहीं होता जैसे लोक में कृषि कर्म और वाणिज्य प्रत्येक सफल हों वे तो तिन दोनों का समुच्चय करके एक पुरुष सेवन करता है इससे दशम मंत्र में एक २ सफल कहा और एकादश में समुच्चय क

हा है । इस रीति सें तीन मंत्रोंकी ऐक्य वाक्यता होने सें प्रतीकोपासना स्पष्ट इन मंत्रों सें ही सिद्ध होती है । इन मंत्रों की ऐक्य वाक्यता में ही-प्राचीन आचार्य्योंका तात्पर्य्य है । और यदि वादी प्राचीन आचार्य्यों के-मार्ग को त्याग कर इन मंत्रों को स्वतंत्र मानेगा तब भी दशम मंत्र सें प्रत्येक कार्य्य कारण उपासना सफल सिद्ध होगी और कार्य्य कारण उपासना का समुच्चय भी सफल एकादश मंत्र सें सिद्ध होगा कौन निवारक है तुल्य प्रमाण होने सें वादी के अर्थ को नवम मंत्र सिद्ध करेगा और सनातन धर्मावलंबिओं के अर्थको दो मंत्र न सिद्ध करेंगे इसमें क्या प्रमाण है । प्रश्न । एक अर्थ की विधि और निषेध असंभव है इसवास्ते निषेध-ही मानना उचित है । उत्तर । जो केवल निषेध ही मानें तो विधि वाक्य व्यर्थ होंगे इसवास्ते जो प्राचीन आचार्य्यों की शैलीको न मानें तो इन तीन मंत्रों में व्यवस्था होनी चाहिये । तथाहि ॥

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् । योग । पा १ । सूत्र । १५ ॥

अर्थ, दृष्ट विषय, स्त्री धन पुत्रादि, आनुश्रविक विषय, स्वर्गादि ब्रह्मलोक वैदेह्य प्रकृतिलय प्राप्तिपर्यन्त इनमें वितृष्ण, तृष्णा रहित पुरुषको वशीकार संज्ञा वैराग्य होता है ऐसे वैराग्यवान् अधिकारी को कार्य्य कारण उपासना का निषेध करके पूर्व ईशावास्यं इत्यादि मंत्रो में जो कैवल्य हेतु ब्रह्म भावना कही है तिसमें प्रवृत्ति कराते हैं । और दशम एकादश मंत्रों सें फलार्थी अधिकारिओं को कार्य्य कारण प्रत्येक उपासना और समुच्चय उपासना का उपदेश करते हैं । अब देखना चाहिये वादी ने जान कर भी लोक वासना सें मलिन अन्तःकरण सें दो मंत्रों को छोड़कर एक मंत्र को काटकर लखों मनुष्यों को धर्म मार्ग सें भ्रष्ट किया है हम शास्त्र च

क्षु सें जानते हैं इस अनर्थ का फल महाक्लेश वादी को हुआ और दुराग्रही तिसके अनुवर्त्ति पुरुषों को भी होगा और केचित् वादी के जालबद्ध पुरुष कहते हैं। प्रतिमा पूजक तो सर्वथा कुकर्मी हैं इससे प्रतिमा पूजन हक्क नहीं सो भी असंगत है क्योंकि किसी एक के दंभी होने सें शास्त्र प्रतिपाद्य अर्थ व्यर्थ नहीं होता काहेते महात्मा पुरुष संप्रदाय पूर्वक वेदार्थ के अनुष्ठाता विरले ही होते हैं जैसे तुम अपनी तरफ को देखो जो वादी ने कितने वेश बदले और कितनी प्रतिज्ञात्यागि गंगातीरं नत्यजामि प्राकृतभाषणं न करोमि इत्यादि अनंत प्रतिज्ञा प्रथम करी जाल फैलाने वास्ते धर्मात्मा बनने वास्ते और पश्चात् सर्व प्रतिज्ञा का भंग किया यह सर्व को विदित है क्या धर्मात्मा पुरुष प्रतिज्ञाभंग किया करते हैं जैसे भीष्मजी सर्वथा धर्मात्मा सुने जाते हैं तिनो की ब्रह्मचर्य्यादि प्रतिज्ञा करी हुई कहीं भंग हुई सुनी है किन्तु नहीं। और यदि वादी प्रतिज्ञाभंजक हुआ तो प्रतिज्ञा पालन धर्म क्या अधर्म हो सकता है कदापि नहीं और वादी ने यदि अपनी अचलित बुद्धि सें वेदार्थ अन्यथा करे तो क्या वेदार्थ अन्यथा हो सकता है कदापि नहीं काहेते सर्वज्ञ ऋषि मुनिकृत संकेत क्या अन्यथा अर्थ करने का प्रतिबंध कल्लुस हो सकता है कदापि नहीं इसि रीति सें किसी धूर्त्त उदरंभरि के प्रतिमा पूजन अन्यथा होने सें क्या मंत्र ब्राह्मण सूत्र प्रतिपाद्य प्रतिमा पूजन धर्म अन्यथा अधर्म हो सकता है कदापि नहीं किन्तु वेद प्रतिपाद्य अर्थ यथार्थ ही है॥

नतस्य प्रतिमा अस्ति य० अ ३२ मं ३।

यह इतना ही मंत्र भाग लिखकर वादी ने यह अर्थ किया है ॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं हैं ॥ अब इस स्थान में यह द्रष्टव्य है जो मंत्र की त्रुटि में तीन

तस्य प्रतिमा अस्ति इतने ही पद हैं तब अक्षरों का अर्थ तो इतना ही है ति
सकी प्रतिमा नहीं है अब तच्छब्दार्थ क्या है निराकार है वा साकार है स
र्व जगत् में व्यापक है वा परिच्छिन्न है और प्रतिमा शब्दार्थ भी क्या है य
ह सर्व ही अर्थ विना प्रकरण के हो नहीं सकता इससे प्रकरण के अनु-
सार इस टूट का अर्थ कर्त्तव्य है अन्यथा विना प्रकरण के विचारे तुम-
व्यापक निराकार का वाचक तत् शब्द कहते हो और साकार ही तत् श
ब्द का अर्थ क्यों न हो और प्रतिमा शब्द का अर्थ सादृश्य मान कर तिस-
साकार विश्वरूप परमात्मा का सादृश्य किसी में नहीं ऐसा अर्थ होने में
क्या प्रतिबंधक है इस से प्रकरण सें विना यथावत् अर्थ मंत्र की टूट का
नहीं हो सकता इस वास्ते प्रकरण कहते हैं ॥ तथाहि ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शु
क्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः । य० अ ३२ । मं १ ।

पद ॥ तत् एव अग्निः तत् आदित्यः तत् वायुः तत् उ चन्द्रमाः तत् ए-
व शुक्रम् तत् ब्रह्म ताः आपः सः प्रजापतिः ॥

अर्थ, इस मंत्र का स्वयंभू ब्रह्मा ऋषि आत्मा देवता है । इन मंत्रों में सर्व
जगत् का मूल कारण सर्व देव मनुष्यादि भावापन्न परमात्मा उपास्यत्व रू-
प सें प्रतिपादन किया है । तथाहि । सो मूल कारण ब्रह्म ही अग्नि आदि
त्य वायु चन्द्रमा शुक्र अर्थात् सर्व प्राणिओं का अवान्तर कारण वीर्य्य औ
र ब्रह्म अर्थात् वेद आप, जल और प्रजापति, सर्व प्रजा उत्पादक हिरण्य
गर्भ विराट् मन्वादि रूप सें प्रतीत होता है इस मंत्र में वारंवार तत्पद का
ग्रहण सर्व कार्य्य अग्न्यादि के साथ कारण का अभेद बोधन वास्ते है जैसे
मृद्घटः मृद्शरावः मृद्उदंचनः मृद्भाण्डं इत्यादि शब्द प्रयोग में मृ
त्तिका कारण का घटादि सें अभेद बोधन किया है भाव दृष्टान्त में यह है

घटादिकों का तत्त्व वास्तव रूप मृत्तिका है तैसे अग्न्यादि रूप कार्य्य-का तत्त्व वास्तव रूप सर्वमूलकारण ब्रह्म है इस मंत्र में ब्रह्म को अग्न्यादि कार्य्य रूप बोधन करने सें उपादान कारणता कहा का है ते जो तटस्थ निमित्तकारण कुलालादिवत् होता है तिसका कार्य्य के साथ अभेद बोधन नहीं करते इसी वास्ते कुलालो घटः कुलालः शरावः कुलालः उदंचनः इत्यादि शब्द प्रयोग करता को भ्रान्त कहते हैं और वेद भगवान् ब्रह्म का अग्न्यादि के साथ अभेद कहते हैं इससे जाना जाता है जो ब्रह्म प्रपंच का उपादान कारण है और व्यासजी भी अपने सूत्र सें ब्रह्म को उपादान कारण बोधन करते हैं। तथाहि।

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्। शा। अ१। पा ४। सूत्र २३॥

अर्थ— यह है ब्रह्म जगत् का प्रकृति अर्थात् उपादान कारण है और चकार से निमित्त कारण भी होता है ऐसे उपादान कारण मानने सें प्रतिज्ञा और दृष्टान्त का अनुपरोध, अर्थात् अप्रतिबन्ध होगा अन्यथा प्रतिज्ञा दृष्टान्त का प्रतिबंध होगा अर्थ यह असंगत होंगे और प्रतिज्ञा दृष्टान्त श्रुति वचन संगत होने चाहिये इससे ब्रह्म उपादान कारण है॥ प्रतिज्ञा श्रुतिः॥

उत तमादेशम प्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति। छां। अ६॥

पद॥ उत तम् आदेशम् अप्राक्ष्यः येन अश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मतं अविज्ञातम् विज्ञातम् इति॥

अर्थ— आदिश्यते उपदिश्यते शिष्याय आचार्य्येण यत् सद्रूपं ब्रह्म आत्मा तम् आदेशम् उत्त अपि अप्राक्ष्यः,, हे श्वेतकेतो पुत्र जो आ

चार्य्य उपदेश प्राप्य ब्रह्मा भिन्न आत्मा है उसको भी आचार्य्य सें तूं पूछता हुआ जिसके श्रवण करके अश्रुत वस्तु भी श्रुत होजाती है अमत वस्तु मत होजाती है अविज्ञात वस्तु विज्ञात होजाती है। भाव, जिसके श्रवण मनन अनुभव सें सर्व वस्तु श्रवण मनन अनुभव विषय होजाती है जो सर्व वस्तु का तत्त्व वास्तव स्वरूप है सोभी तैने गुरु सें पूछा वा नहीं। ऐसे उद्दालक ऋषिने अपने श्वेतकेतु पुत्र सें पूछा तो एक विज्ञान सें सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा किया सो प्रतिज्ञा ब्रह्म को उपादान-कारण मानने सें संभव होसकती है अन्यथा ब्रह्म के जाने सें भी ब्रह्म भिन्न वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता और जब ब्रह्म को उपादान माना तो सर्व वस्तु का तत्त्व वास्तव रूप ब्रह्म है तब ब्रह्मज्ञान सें सर्व वस्तु ज्ञात होजाती है। और एक विज्ञानसें सर्व विज्ञान की रीति भी श्रुति में प्रतिपादन करी है। तथाहि

यदग्नेरोहित ँरूपंतेजसस्तद्रूपंयच्छुक्लंतदपांय-त्कृष्णंतदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वंवाचारम्भणं विकारोनामधेयंत्रीणिरूपाणीत्येवसत्यम्। सोम्यान्नेनशुंगेनापोमूलमन्विच्छाद्भिःसोम्यशुंगेनतेजोमूलमन्विच्छतेजसासोम्यशुंगेनसन्मूलमन्विच्छसन्मूलाःसोम्येमाःसर्वाःप्रजाःसदायतनाःसत्प्रतिष्ठाः॥छां अ ६।

उद्दालक कहते हैं हे सोम्य जो अग्नि का रक्त रूप है सो तेज का है जो-शुक्ल रूप है सो जल का है जो कृष्ण रूप है सो पृथिवी का है ऐसे कारणांश विचार सें अग्नि का अग्निभाव दूर होगया वा गालंभन मात्र ही विकार है रक्त शुक्ल कृष्ण रूप वाले कारण रूप भूतत्रय यही सत्य हैं इसी-प्रकार आदित्य चन्द्र विद्युत् आदि प्रत्यक्षादि प्रमाण गृहीत यावत् व

स्तु है सोवागालंभनमात्र है कारणभूतत्रयही सत्य हैं। तैसे हे सोम्य
पृथिवीरूपशुंग अर्थात् विकारकर जलमूलजान और जलरूप विका
रकर तेज और तेजरूप विकारकर सद्ब्रह्म मूल जान ऐसे सद्ब्रह्म मूल
कारण वाली और सत्स्थितिस्थान वाली सत्में लीन होनेवाली सर्वाप्र
जा हैं जो कार्य्य के लय का आधार होता है सोई उपादान कारण होता
है ब्रह्म को उपादान कारण कहने से ब्रह्म भिन्न जड़ प्रकृति को उपादा
नता का निषेध होगया। ऐसे ही ब्रह्मको उपादानता मानने में दृष्टान्त
श्रुति भी संगत होती है ॥ तथाहि ॥

यथासोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातᳬस्या
द्वाचारंभणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् छां
अ ६

अर्थ – हे सोम्य जैसे एक मृत्पिण्ड के ज्ञान करके सर्व मृद्विकार विज्ञा
त होते हैं विकार वागालंभनमात्र नाम मात्र ही है और जो नाम का अर्थ
है सो उपादान कारण सें भिन्न नहीं घट शरावादि कार्य्य में मृत्तिका ही
सत्य है तैसे हे प्रिय सर्व जगत् का मूल ब्रह्म ही सत्य है कार्य्य अग्न्यादि
जगत् नाममात्र है तिस सर्व का तत्त्व वास्तव रूप ब्रह्म ही है ॥

अभिध्योपदेशाच्च ॥ शा अ १। पा ४। सूत्र २४ ॥

अर्थ, अभिध्या नाम सृष्टि संकल्प का है तिसके उपदेश सें भी ब्रह्म
उपादान कारण सिद्ध होता है। तथाहि ॥

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐ
क्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। ता आप ऐ-
क्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त ॥
छां अ ६॥

अर्थ, तत् सद्रूपं ब्रह्म, ऐक्षत, संकल्प करता हुआ बहुतसा होवों प्रजारूपसें प्रतीत होवों तत्, सद्रूप ब्रह्म तेजकोरचता हुआ और तेजो भावापन्न सत् ब्रह्म संकल्पकरता भया बहुरूपको धारण करों तथा जलभावापन्न सद्ब्रह्म बहुभवन संकल्प कर अन्न अर्थात् पृथिवी रचताभया ॥ इस स्थान में यह द्रष्टव्य है जो तदेवाग्निइत्यादि मंत्र का अर्थ व्यास सूत्र और छांदोग्य श्रुति के अनुकूल करना योग्य है और व्याससूत्र तथा छांदोग्य श्रुति में ब्रह्म को सर्व जगत् उपादानता और तेजआदिरूपसें स्थिति प्रतिपादन करी है इसीवास्ते तेज और जल में संकल्प तथा बहुभवन कामना कह्या है केवल जल तेजादि पदार्थों में बहुत भवन कामना और संकल्प असंभव है इसलिये तेजोवस्थापन्न ब्रह्म में ही संकल्पादि हैं इसवास्ते तेजादि रूपसें ब्रह्म की स्थिति प्रतिपादन में छांदोग्य श्रुति का तात्पर्य्य है। वैसे ही तदेवाग्निइत्यादि मंत्र में भी अग्न्यादि रूपसें परमात्मा की स्थिति प्रतिपादन करी है ॥ और तदेवाग्नि इत्यादि मंत्र में तथा

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्ससुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। ऋ मण्ड। १। अ २२ सूक्त १६४ मं ४६।

इत्यादि मंत्र में परमेश्वर के केवल अग्नि आदिक नाम कथन करे हैं यह वादी का सिद्धान्त है वहां यह प्रष्टव्य है अग्न्यादि रूपसें स्थिति परमात्मा की है अथवा ब्रह्म भिन्न जड़ प्रकृति की स्थिति है द्वितीय पक्ष कहोगे तो ब्रह्म को उपादान कारण बोधक श्रुति सूत्र का बाध होगा बहु भवन कामना का बाध होगा एक विज्ञान से सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा भंग दृष्टान्त का भंग होगा क्यों कि ब्रह्मज्ञान से ब्रह्म भिन्न प्रकृति

और प्रकृति कार्य्य तथा ब्रह्म भिन्न जीव का ज्ञान कैसे होगा । इस कथन सें जीव को ब्रह्म भिन्न मानना तथा जड़ प्रकृति को जगत् उपादान मानना वादी का व्यास वाक्य सूत्र और एक विज्ञान सें सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा श्रुति विरुद्ध है । जब ब्रह्म ही उपादान कारण माना तब अग्न्यादि रूप सें ब्रह्म-की स्थिति सिद्ध होगयी । और वेद मंत्र में जो एकं सद्विप्रा बहुधा वद-न्ति यह कहा है इस कहने सें ही परमात्मा की अग्नि आदि रूप सें स्थि-ति वेद भगवान् को अभिमत है क्यों कि इस वाक्य का यह अर्थ है एक सद्वस्तु को विप्र, मेधा वि पुरुष बहुधा, वहुकृत्वः वदंति आसन्न काल में । यहां बहुधा शब्द में ॥

विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ॥ ५ । ४ । २० ॥

इस पाणिनि ऋषि के सूत्र सें बहु शब्द सें धा प्रत्यय होता है । सूत्रार्थ, अवि प्रकृष्ट काले अर्थात् समीप काल में विभाषा, विक-ल्प करके बहु शब्द से धा प्रत्यय हो क्रिया की आवृत्ति में । तब ऋ-ग्वेद मंत्र का यह अर्थ जानना मेधावी, बुद्धिमान् पुरुष एक सद्वस्तु को स्थिति काल में इन्द्र मित्र वरुण अग्नि रूप सें वारंवार कथन कर-ते हैं और सो परमेश्वर ही दिव्य सुपर्ण पक्षिराट् गरुत्मान् रूप है और अग्नि, अर्थात् रुद्र यम मातरिश्वा, वायु रूप सें कथन करते हैं ॥

यदि ऋग्वेद मंत्र में केवल अग्नि आदिक नाम ही परमात्मा के उ-पदेश करे होते तब बहुनामानं वदंति ऐसे शब्द प्रयोग होता इस-से इस मंत्र में परमात्मा की अग्नि आदि रूप सें स्थिति का ही प्रतिपादन किया है ॥ और यह भी समझना जहां समानार्थ वाले शब्दों का प्रयो-ग होता है तहां पुनरुक्ति दोष होता है जैसे घटो घटः कलशो घटः । इत्यादि शब्द प्रयोग असंगत हैं तैसे अग्नि आदित्य वायु आदिक याव

त् शब्दों का अर्थ एक ईश्वर है जब एक शब्द से ईश्वर का बोध होगया तो द्वितीय शब्द प्रयोग असंगत है और जब अग्नि आदि रूप से परमात्मा की स्थिति बोधन करी तो कोई दोष नहीं

क्यों कि उपाधि भेद कर अग्नि आदि पदों के वाच्य अर्थ भी भिन्न हैं। इसी वास्ते परमात्मा के नाना उपाधिगत नाना गुण मान कर ही परमात्मा के अनंत नाम उपदेश शास्त्र में करे हैं प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध होगयी परमात्मा को जगत् का उपादान कारण होने से जैसे छांदोग्य श्रुति में परमात्मा को तेज जलादि रूपता बोधन किया है तैसे तदेवाग्निः, इत्यादि मंत्र में भी परमात्मा को अग्न्यादि रूपता बोधन करी है इस अर्थ से जो अन्यथा अर्थ इस मंत्र का करेंगे तब सूत्र का विरोध होगा, और छांदोग्य श्रुति का विरोध होगा ॥१॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषा दधि। नैनमूर्ध्वं न ति-
र्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्। २॥

पद॥ सर्वे निमेषाः जज्ञिरे विद्युतः पुरुषात् अधि न एनम् ऊर्ध्वम् न तिर्यञ्चम्। न मध्ये परिजग्रभत्॥ विद्युतः पुरुषात् सर्वे निमेषा अधिजज्ञिरे। उर्ध्वं मध्ये तिर्य्यञ्चं च एनम् सर्वकारणं न कश्चित् परिजग्रभत् इत्यन्वयः स्वयं प्रकाश स्वरूपात् सर्व कारणात् पुरुषात् पूर्णात् सर्वे निमेषास्त्रुटि घटी काष्टाद्युपलक्षित दिन पक्ष मासादि खण्ड काला अधिजज्ञिरे प्रादुर्भूताः एनं पूर्णं पुरुषं स्वयं प्रकाशमानं कश्चित् अति निपुणोपि ऊर्ध्वादि दिक्षु न परिजग्रभत् न परिगृह्णाति सर्व कारणत्वात् सर्वाधिष्ठानत्वाच्च एतेन पूर्व मंत्र प्रतिपाद्याग्नि रूपस्य वास्तवत्वेग्राह्यत्व प्रसक्तिस्स्यादिति तद्रूपस्यारोपितत्त्वमिति

ध्वनितम् । स्वशक्ति कल्पित रूपेण ग्राह्यत्वस्य वास्तवस्या प्रसक्ते-रितिभावः ।

भावार्थ „ स्वयंज्योति स्वरूप पुरुष सें सर्वही निमेषादि रूपखण्ड काल उत्पन्न होता भया और इस पूर्ण पुरुष को ऊर्ध्व वा तिर्यञ्च नाम चारो दिशाओं में वा मध्य में कोई ग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि सर्व का कारण होने सें और सर्वाधिष्ठान होने सें तात्पर्य्य यह है पूर्व मंत्र में अग्नि आदि भाव कहने सें ग्राह्यता प्रसक्ति का निवारण कर दिया अवास्तव स्व शक्ति निर्मित अग्नि आदि भाव सें वास्तव ग्राह्यत्व कारणात्मा में नहीं हो सकता । इसि अर्थ का बोधक व्यास सूत्र बी है। तथाहि

नस्थानतोपि परस्योभयलिंगंसर्वत्रहि ॥ व्यास सूत्र· अ ३ पा २ सू ११।

अर्थ „ परस्य ब्रह्मणः सर्व कारणस्य स्थानतोपि उपाधितोपि उभय-लिंगं उभय विधं रूपं न भवति हियतः परमेश्वर प्रतिपादक स्थले एक रूपस्यैव वास्तवत्वात् रूपान्तरस्य आरोपितत्वाच्च । भाव यह है ब्रह्म को उपाधि सें भी द्विविध रूप की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि परमेश्वर प्रतिपादक वाक्यों में एक रूपही वास्तव है रूपान्तर आरोपित है। ऐसे ही प्रकरण में जानना जो पूर्व अग्नि आदि रूप आरोपित हैं उपासना तथा कर्म में उपयोगि और वास्तव रूप उत्तर मंत्र में स्वरूप ज्ञान में उपयोगि निर्णय किया है और आरोपित रूप भी ऐसा नहीं जानना जो शुक्ति रूप्यादिवत्प्रातिभासिक हो किंतु व्यावहारिक है जिसकी उपासना सें उत्तम लोक को प्राप्त होता है उपासक „ । "इदानीं पूर्व मंत्रोक्तस्याग्राह्यत्वस्योपपादनाय मंत्रार्द्ध पूर्व मंत्रान्वितमाह ।

नतस्य प्रतिमा ऽ अस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्य

गर्भइत्येषमामाहिं॑सीदित्येषायस्मान्नजातइत्येषः
॥ ३२ । मं । ३ ।

पद ॥ नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महत् यशः । हिरण्यगर्भः इति एषः मामाहिंसीत् इति एषः यस्मात् नजातः इति एषः ॥

मितिर्माघञर्थेकविधानमितिकः प्रत्ययः प्रति प्रतिकूला मितिर्यस्यास्सा प्रतिमा तुल्यंरूपान्तरमित्यर्थः प्रतिकूलत्वं तुल्यस्यैवरूपान्तरस्य प्रसिद्धमिति तुल्यंरूपान्तरं प्रतिमा शब्दार्थएकः तथा प्रतिनाम प्रतीत्या प्रतिभासेन वामीयते ज्ञायते रूपान्तरं यत्सापि प्रतिमा यथा सूर्यस्यजलान्तरगतं रूपान्तरं प्रतिमा यथा शुद्धस्यस्फटिकमणेरीषदूनो मणिः प्रतिमा यथा उत्कृष्टरूपवत्याः सुवर्णमुद्रिकायाः किंचिदूना सुवर्णमुद्रिकान्तरा प्रतिमेति द्वितीय प्रतिमा शब्दार्थस्तत्र प्रथमं तुल्यं रूपान्तरं परमेश्वरस्य निषेधति ·

नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाममहद्यश

इति यस्य परमेश्वरस्यसर्वकारणाद्भुत शक्तिमतोमहत् नामास्तितथा महद्यशोस्तितस्य प्रतिमातुल्यंरूपान्तरंनास्ति । एवंतुल्यंरूपान्तरं निषिध्य किंचिदूनमारोपितं रूपान्तरं द्वितीय प्रतिमाशब्द प्रतिपाद्यंस्वीकरोतिमंत्रो ·

हिरण्यगर्भइत्येषइत्यादिना

हिरण्यगर्भ इत्येषोऽनुवाकचतुष्टक प्रतिपाद्योप्येष पूर्वोक्तः मामाहिंसीज्जनितेत्येकर्ग प्रतिपाद्यः । तथा यस्मान्नजातः । इन्द्रश्चसम्राडितिमंत्रद्वय प्रतिपाद्यएषएवेति ॥

भावार्थ,, प्रतिमा शब्दके अर्थ दो हैं एकतो तुल्य रूपान्तर प्रतिमाशब्दार्थ है तिसको तो निषेध करते हैं जिस परमात्माकानाम महत है तथा

यश कीर्त्ति महत् बडी है तिसका तत्तुल्य रूपान्तर नहीं है और द्वितीय जो प्रतिमा शब्दार्थ है सो अङ्गीकार करते हैं वेद भगवान् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे इत्यादि अनुवाक जो चार मंत्रोका है तिसकरके प्रतिपाद्य भी इसीका रूपान्तर न्यून रूप है तथा मामाहिंसीदित्यादि मंत्र बोध्य भी इसीका रूप है तथा यस्मान्नजातइत्यादि मंत्रद्वय प्रतिपाद्य भी यह ही है इस रीती सें हिरण्यगर्भादि,, परमेश्वरकार्य्य होने सें सूर्य्य प्रतिबिम्बको सूर्य्य प्रतिमावत् न्यूनमणिको अधिकमणिको प्रतिमावत् उत्तम सुवर्ण मुद्रिका की निकृष्ट सुवर्ण मुद्रिकाको प्रतिमावत् प्रतिमा हैं ॥

अब इस मंत्र में जितने पूर्व उक्त मंत्र सूचन करे हैं वे मंत्र भी व्याख्यान करने को योग्य हैं जिनकी व्याख्या सें तृतीय मंत्रकी व्याख्या स्पष्ट होगी और मूल कारण की हिरण्यगर्भादि रूपसें स्थित्ति सिद्ध होगी -

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् ॥ सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम। य॰ अ॰ २४। मं १०

अग्रे भौतिकसृष्टि प्राक्काले हिरण्यगर्भोजातः सन् समवर्त्तत भूतस्य प्राणि मात्रस्यैकः पतिरासीत् स हिरण्यगर्भः पृथिवीम् उत अपि इमां द्याम् दाधार दधार कस्मै एकस्मै देवाय हविषा हविर्दानेन विधेम परिचरेम इत्यन्वयः।

हिरण्यमिति हिरण्य नाम सु प्रथमाध्याय द्वितीयखण्डे निघंटौ पठितं तथाच हिरण्ये सुवर्णवत्प्रकाशमाने ब्रह्माण्डे गर्भः गर्भवदस्थित उत्पन्नः सन् समवर्त्तता भूदित्यर्थः प्राणिमात्रस्य स्थावर जंगमस्य जगत एक एव पतिः पालक आसीत् बभूव स एव स्वशक्त्या पृथिवीम् भूलोकं

दधार धृतवान् द्यामपिस्वर्गलोकमपिधृतवान् तस्मै एकस्मै देवाय ब्रह्मणे हविर्दानेन परिचरेम स्वानुकूलं तं देवं कुर्म्मः। ऋग्वेदादिप्र तारण भूमिकायाः। ८० पृष्ठे। यत्तु। आत्मावा इदमेक एवाग्रआसी न्नान्यत्किञ्चिन्मिषत्। इत्यैतरेयारण्यकोपनिषदि। अ १। खं १। आ पोहवाइदमग्रेसलिलमेवास। श० कां। ११। अ १ इदं वाऽग्रेनैव किञ्चिदासीत् इत्यादीनिजगतः पूर्वावस्थाकथन पूर्वकाणि वच- नानि ब्राह्मणान्तर्गतान्येव पुराणानिग्राह्याणि नतु ब्रह्मवैवर्त्तादीनी- ति प्राहानभिज्ञवञ्चकः तदपि तस्यशशकस्वभाव मनुसमाह रति शशकस्यायंस्वभावोयत्स्वमारणायान्तमग्वारूढं यंकमप्यवलो क्यतदग्रतो धावन्धावन् श्रान्तः पथ्यवस्थायस्वनयनेनिमील्यजग दन्धंप्रपश्यति तथायमप्यनभिज्ञवञ्चकः स्वसदृशमेवसर्वजगद न्धं प्रपश्यति निरुक्त हिरण्यगर्भइत्यादि संहितामंत्रे भौतिकसृष्टेः प्रागवस्था प्रदर्शके पुराणत्वापत्तेः। किञ्च। सर्वजगत्प्रागवस्थाप्र तिपादकेषु ऋग्संहिता मंत्रेषु पुराणत्वापत्तेश्च नासदासीन्नो सदासी- त्तदानीं। इत्यादिषु॥ म० १०। अ ११। सू० १२९॥

भावार्थ,, भौतिक सृष्टि से पूर्वकाल में सर्वभूतमात्र का पालक एक हिरण्यगर्भ ही उत्पन्न होकर होताभया अर्थात् परमात्मा हिरण्यगर्भभा व को प्राप्त होकर सर्व प्राणिमात्र से प्रथम शरीरी हुआ सो पृथिवी अंतरि क्ष और स्वर्गलोकों को अपनी शक्ति से धारण करता भया तिस एक देव के अर्थ हम हविर्दानादि से तिसका पूजन करते हैं। ऋग्वेदादि प्रतार ण नाम शास्त्रसंस्कारहीनजनों को स्वधर्म भ्रंशक भूमिका के ८०। पृष्ठ में जो यह लिखा है आत्मावै नाम निश्चय करके यह सर्व जगत् तादात्म्या पन्न अर्थात् सूक्ष्म अवस्थापन्न जगत् से अभिन्न आत्मा ही होता भया औ

र कुछ भी मिषत् नाम क्रियावाला वस्तु न होता भया यह सर्व जगत् आपनाम सूक्ष्म पंचभूत रूपही होता भया सृष्टि से प्रथम यह कार्य्य वर्गन होता भया इत्यादि जो जगत् की प्रागवस्था बोधक वाक्य हैं ब्राह्मण भागान्तरगत,, वेही पुराण हैं और ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण नहीं पूर्ववृत्तान्त बोधकका नाम पुराण है सो यह कथन अनभिज्ञ वञ्चक वादीका है सो तो शशेके वृत्तान्तको बोधन करता है शशेका यह स्वभाव होता है जो कोई उसके पीछे असवार शिकारी दौड़ता है तब आगे भागता २ थक कर नेत्र मीचके अपने समान सर्व जगत् को अन्ध देखता है तैसे वादी अपने नेत्र निमीलन करके सर्व जगत् को अन्ध देखता है क्यों कि हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे इत्यादि संहिता मंत्र में भी जगत् की प्रागवस्था प्रतिपादन करी है तिसको भी पुराणत्व होना चाहिये तथा ऋग्वेदके नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं इत्यादि मंत्र में भी सर्व जगत् की प्रागवस्था प्रतिपादन करी है इनको भी पुराणत्व होना चाहिये इससे वादीका कथन नेत्र निमीलन करके है। अर्थ इस मंत्रका पूर्व प्रकरण में निर्णीत है।

यः प्राणतोनिमिषतोमहित्वैक ऽइद्राजाजगतोबभूव।
यईशे ऽअस्यद्विपदश्चतुष्पदःकस्मैदेवायहविषा-
विधेम।य०अ०२३मं०।११।

पद ॥ यः प्राणतः निमेषतः महित्वा एकः इत् राजा जगतः बभूव यः ईशे अस्य द्विपदः चतुष्पदः कस्मै देवाय हविशा विधेम ॥

टीका ॥ प्राणन निमेषण क्रियावतो जगत एक इत् एक एव महित्वा महिम्ना राजा बभूव किञ्चास्य द्विपदश्चतुष्पद ईशे ईष्टे नियमति तस्मै एकस्मै देवाय हविषा विधेमेति समुदितार्थः।

भावार्थ ,, जो हिरण्यगर्भ देव प्राणादि व्यापारवाले जगत् का एक ही राजा होता भया अपनी महिमा करके द्विपाद चतुष्पाद जगत् का नियम न करता है तिस देवको हविर्देते हैं ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहा-
हुः ॥ यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हवि
षा विधेम ।१२॥ य॰ अ॰ २५। मं १२

पद ॥ यस्य इमे हिमवन्तः महित्वा यस्य समुद्रम् रसया सह आहुः यस्य इमाः प्रदिशः यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यस्य देवस्य हिमालय प्रभृति पर्वता सर्वरत्नमया महित्वा महिमानः तथा रसया नद्या सह समुद्रं महिमानमाहुर्यस्य देवस्य इमाः प्रसिद्धा दशो दिशा महित्वा विभूतयः यस्य च बाहू जगद्रक्षकौ तस्मै देवाय कस्मै हविषा विधेमेत्यर्थः । भावार्थ । जिस देवके हिमालयसे लेकर सर्वरत्नमय पर्वत विभूति हैं तथा नदी समूहके सहित समुद्रको जिसकी महिमा को कहते हैं और प्रसिद्ध दशोदिशा जिसकी विभूति हैं तिस देवके अर्थ हम परिचर्य्या हविर्दान करके करते हैं ॥ और देव की बाहू जगत् रक्षा करने वास्ते हैं ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व ऽ उपासते प्रशिषं यस्य-
देवाः । यस्य छाया मृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हवि
षा विधेम ।१३। य॰ अ॰ २५। मं १३

पद ॥ यः आत्मदा बलदा यस्य विश्वे उपासते प्रशिषं यस्य देवाः यस्य छाया अमृतम् यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ आत्मानं ददातीति आत्मदा बलं स्वसामर्थ्यं ददातीति बलदा स्वभक्तानामात्मानं स्वसमानं रूपं स्वसामर्थ्यं च ददातीत्यर्थः । अतएव जगद्व्या-

पारवर्ज्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्चेतिव्याससूत्रमपिजगद्व्यापारे तरस कलतुल्यतोपासकानां प्रतिपादयति। यस्य स्वरूपभूतादेवा विश्वेसर्वे शिषं शासनामाज्ञां प्रोपासते यस्यछायागृहंस्थानं अमृतम विनाशीत्यर्थः। छायेति गृहनाम सुनिघंटु तृतीयाध्याये चतुर्थखण्डे पठितम्। यस्य मृत्युर्नामपदंचरणमपिमुक्तिसाधनत्त्वादमृतम् तस्मैदेवायहविषा विधेमेति पूर्ववद्बोध्यम्। मृत्युरिति पदनाम सुनिघंटु पंचमाध्याये-पंचम खण्डे पठितम् भावार्थ ,, जो हिरण्यगर्भ अपने उपासकों को समान रूप तथा स्वतुल्य बलको देता है इसी वास्ते व्यासजी ने चतुर्थाध्यायके चतुर्थपादके सतारवें सूत्र में जगत् उत्पत्त्यादि व्यापार वर्जित उपासकों को उपास्य तुल्यता कही है सूत्रका भाव यह है जो कि ब्रह्मलोकको प्राप्त भये हैं उपासक तिनको पूर्ण ऐश्वर्य्य होता है वा कुछ न्यून होता है तहां कहते हैं हां उत्पत्त्यादि व्यापार वर्ज्जित ऐश्वर्य्य होता है उत्पत्ति प्रकरण में तो परमेश्वर काही प्रकरण है और जीवका असंनिधान है यांते जगद्व्यापार सें भिन्न तो सर्व सामर्थ्य उपासकों को होती है। और जिस हिरण्यगर्भके स्वरूप भूतही सर्व देवता उपासक तिसकी आज्ञा का अनुष्ठान करते हैं और जिसका छाया नाम गृहस्थान अविनाशी है वेद निघंटु। अ ३। खण्ड ४। में छाया गृहका नाम है ऐसा कहा है और जिसका मृत्यु नाम पदकमल सदृश चरण स्वशरणागतकी मुक्तिहेतु होनेसें अमृत है मृत्युपद नाम है यहभी निघंटु। अ ५। खण्ड ५। में लिखा है। इस स्थान में यह समझना जो बाहु तथा गृह और पद निराकार में असंभव हैं जो। सत्या० समु १। पृ १२। वादी ने हिरण्यगर्भ इत्यादि मंत्रको निराकार बोधकता माना है सो असंगत है और जातः इस पदका तो समन्वय निराकार में सर्वथा असंभव है यांते नेत्र

निर्मोल्य करही लिखा है ॥

माmaहि॰सीज्जनिताय:पृथिव्यायोवादिव॰सत्यध
र्म्माव्यानट् ॥ यश्चापश्चन्द्राः प्रथमोजजानकस्मैदेवा-
यहविषाविधेम । य० अ १२मं १०२ ।

पद । मामा हिंसीत् जनिताय: पृथिव्याय: वादिवम् सत्यधर्म्मा-
वि आनट् । य: च आप: चन्द्राः प्रथम: जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम
टीका । य: सत्य धर्म्मा पृथिवीं दिवंवा विशेषेण स्वकीय समष्टिरूपे-
ण आनट् व्याप्तवान् यश्चापो ऽन्तरिक्षं व्याप्तवान् सजनिता मामां माहिं-
सीत् अपितु रक्षतात् । एतेन पूर्व मंत्रेग्रह निरूपणे सति हिरण्यगर्भ-
स्य केवल व्यष्टिरूपत्वमपि निरस्तं बोध्यम् । समष्टिव्यष्ट्युभयरूपस्य
हिरण्यगर्भस्य स्वीकारात् किञ्च प्रथमो मुख्य: प्रथम शरीरी वा चन्द्राः
चन्द्रो पलक्षितं सर्वं ज्योतिर्गणं जजान उत्पादयामास तस्मै ब्रह्मणे हवि
षा विधेम । आनडिति निघंटु द्वितीयाध्याये ऽष्टादशमे खण्डे व्याप्ति-
कर्म्मणि पठितं तथा प: प्रथमाध्याये तृतीय खण्डे ऽन्तरिक्ष नाम सु पठि
तम् । भावार्थ,, जो हिरण्यगर्भ सत्य के धारण करने वाला पृथिवी स्व
र्ग अंतरिक्ष को अपने समष्टिरूप से व्याप्त कर रहा है तथा प्रथम शरीरी
होकर चन्द्रादि ज्योति समूह को रचना करता भया तिस प्रजापति देव-
के अर्थ हविर्देते हैं ॥ आनट् व्याप्तिकर्म्मा निघंटु अ २ । खण्ड १८ में,
कहा है आप: अन्तरिक्ष नाम निघंटु अ १ । खं ३ । में कहा है ।

यस्मान्नजात: परो ऽअन्यो ऽअस्ति य ऽआविवेशभुव
नानि विश्वा ॥ प्रजापति: प्रजयास॰रराणस्त्रीणिज्यो-
ती॰षि सचते स षोडशी ॥ य० अ ८ । मं ३६ ।

पद । यस्मात् न जात: पर: अन्य: अस्ति य: आविवेश भुवनानि विश्वा

प्रजापतिः प्रजया संरराणः त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी। टीका अन्योऽन्यत्वेन प्रतीयमानोजात उत्पन्नः पदार्थ आकाशादि ब्रह्माण्डान्तो यस्मात् सर्वकारणात् वस्तुतो विचार्य्यमाणः परोभिन्नो नास्ति भगवद्व्यासो प्याह।

तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्यः। अ २। पा १। सू १४।

तयोः कार्य्यकारणयोरनत्यत्वं वस्तुतो भेद रहितत्वमस्ति वाचारंभणं विकारो नामधेय मित्यादि श्रुति शब्देभ्यः आदि नैतदात्म्यमिद ँ सर्व मित्यादिग्राह्यम्। किञ्च। यो विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भुवनान्तर्वर्त्तीनि शरीराणि आविवेश जीवरूपेण प्रवेशं कृतवान् किञ्च। स षोडशी षोडशकलोपहितः प्रजापतिः प्रजया संरराणः संरममाणः सन् त्रीणि ज्योतींषि सूर्य्यचन्द्राग्नि रूपाणि सचते जगच्चक्र सिद्ध्यर्थं संसृष्टानि ब्रह्माण्डे संबद्धानि करोतिस्म। षच समवाय इत्यस्य रूपं सचतइति। भावार्थ,, आकाशादि ब्रह्माण्ड पर्य्यन्त जितना कुछ जात नाम उत्पत्ति म वस्तु है भिन्न २ प्रतीत होता जिस कारणात्मा परमात्मा सें पर नाम पृथक् नहीं है विचारकरे सें सोई व्यास भगवान् भी अपने सूत्र में कहते हैं कार्य्य कारण का अनन्यत्व नाम अभेद है।

वाचारंभणं विकारो नामधेयं ऐतदात्म्यमिद ँ सर्वम्। छां उ अ ६।

इत्यादि श्रुति प्रमाण सें श्रुति वचनों का अर्थ यह है विकार वागालंभन मात्र नाम स्वरूप है सत्य उपादान ही है अर्थात् उपादान ही कार्य्य है कार्य्य की उपादान कारण सें पृथक् सत्ता नहीं जैसे मृत्तिका रूप कारण सें पृथक् सत्ता घटादि कार्य्य की नहीं तैसे ब्रह्म रूप जगदु पादान कारण सें आकाशादि ब्रह्माण्ड पिण्ड कार्य्य की पृथक् सत्ता नहीं य-

ह सर्व जगत् ऐतदात्म्य नाम सद्रूप वस्तु है तिस सें पृथक् सत्ता जगत् की नहीं जो परमात्मा सर्व भुवन में वर्त्तमान शरीरों को जीव रूप सें प्रवेश करत्ता भया वा अन्तर्यामी रूप सें सर्व पृथिव्यादि जगत् को प्रवेश करत्ता भया और वो षोडश कलोप हित प्रजापति प्रजारूप करके रमण करत्ता हुआ ब्रह्माण्ड में सूर्य्य चन्द्र अग्नि को संबद्ध करत्ता भया अन्यथा प्रजा की चेष्टा कैसे होगी ॥ इस स्थान में यह निर्धारण करना यावत् जगत् और जीव „ परमात्मा रूप सिद्ध हुए परंतु यह सर्व वस्तु परमात्मा का प्रतिबिम्ब स्थानापन्न प्रतिमा रूप है यांते वादी जिस मंत्र सें प्रतिमा का निषेध करत्ता है तिस मंत्र सें यावत् जगत् ही परमेश्वर की प्रतिमा सिद्ध होती है जब ऐसे साकार व्यावहारिक परमात्मा का रूप सिद्ध होता है तब परमात्मा को केवल निराकार वेद प्रतिपाद्य कहना वादी को विद्याहीनता का बोधक है क्यों कि मंत्र तथा व्यास सूत्र करके जब सर्व ब्रह्माण्ड परमात्मा का रूप सिद्ध हुआ तो प्रतिमा का निषेध असंगत है हां तुल्य रूपान्तर का निषेध है सो पूर्व निर्णीत है ।

इन्द्रश्च सम्म्राड्वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र ऽ एतम् ॥ तयोरहमनु भक्षम्भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा । य० अ० ८ मंत्र ॥ ३७ ॥

॥ पद ॥ इन्द्रः च सम्म्राट् वरुणः च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुः अग्रे एतम् तयोः अहम् अनुभक्षम् भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥

टीका ॥ एवं पुनः पुनरुक्तं हविषा विधेमेत्यादि पूर्वेषु मंत्रेष्विदानीं हविर्दान प्रकार मेकेन मंत्रेण दर्शयति मंत्रदर्शी विवस्वान् इन्द्रश्च सम्म्राट् वाजपेय याजी वरुणश्च राजा राजसूय याजी तौ द्वौ ते सोमस्य एतं भक्षं दि

व्यरसाद्युपेतंचक्रतुः अग्रे प्राक्काले कृतवन्तौ तयोर्द्वयोर्यथा तेतव उमया सह वर्त्तमानः सोमस्तस्य सोमस्य प्रियंभक्षं समर्पितम् तथाहम पिभक्षं समर्प्यातुपश्चात् स्वयंभक्षयामि वाग्देवी प्राणेन सह तृप्यतु १ स्वाहा सुहुतमस्तु ।

भावार्थ ,, पूर्व मंत्रों में कथन किया है वारंवार हे भगवन् आप के अर्थ मैं हवि देता हूं सो इस एक मंत्र में हविर्दान प्रकार दिखलाते हैं हे भगवन् तुम जो सोम हो अर्थात् उमा के सह वर्त्तमान हो वास्तव आपकी महिमा का अन्त नहीं हिरण्य गर्भादि सब आपके ही रूप हैं सो आपके वास्ते वाजपेय यज्ञ कर्त्ता इन्द्र तथा राजसूय यज्ञ कर्त्ता वरुण पूर्व काल में दिव्य रस युक्त भक्ष्य संपादन करते भये जैसे उनेने प्रियभक्ष को दिया है वैसे मैं भी प्रिय भक्ष आपको समर्पण करके पश्चात् आपका प्रसाद पाता हूं वाग्देवता सहित प्राणदेव तृप्त हो इस रीती सें सुहुत हवी रीति सें हवन हो भाव यह है अधि दैव वाग्देवी उपलक्षित उमा आदि शक्ति सहित सर्व प्राण का प्राण रूप देव तृप्त हो पश्चात् देव प्रसाद सें व्यष्टि वाग्देवी तथा व्यष्टि प्राण तृप्त हों । जो इस मंत्र में सोम शब्द सें उमा सहित परमेश्वर का रूप सूचन किया है सो सामवेद की तवलकार शाखा में निर्णय करा है । तथाहि ।

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अ
महीयन्त ते हैक्षन्तास्माकंवायं विजयोऽस्माकमेवा
यंमहिमेति ।१।

भावार्थ ,, ब्रह्म सर्व शक्तिमान् परमात्मा देवों के अर्थ विजय देते भये देवासुर संग्राम में तिस ब्रह्म की विजय में देवता अहंकार करते भये और यह आलोचन करा जो हमारी ही सामर्थ्य सें यह विजय हुआ इ

समें यह महिमा प्रभाव हमारा ही है।

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त कि मिदं यक्षमिति ॥२॥

अर्थ,, सो ब्रह्म स्फुट इनके आशय को जान जाते भये और तिन देवताओं के संमुख प्रादुर्भाव होते भये ब्रह्म को देवताओं ने न जाना जो यह यक्ष पूज्य वस्तु क्या है ऐसे तर्कणा करते भये।

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्ष मितितथेति ।३।

अर्थ,, देवता अग्नि के प्रति कहते भये हे जात वेद सर्वज्ञ अग्ने इस यक्ष के वृत्तान्त को जानो जाकर यह यक्ष क्या है अग्नि ने कहा तथाऽस्तु-मैं जाता हूं इसके आशय को समझूंगा।

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति अग्निर्व्वाऽहम-स्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥४॥

अर्थ,, अग्नि देव यक्षरूप विग्रहधारी ब्रह्म के संमुख गया परन्तु अदृष्ट पूर्व रूप को देखकर चकित खड़ा रहा तब यक्षरूप ब्रह्म,, अग्निदेव के प्रति संमुख होकर बोले तुम कौन है अग्निदेव कहता है मैं अग्नि जातवेद नाम सर्वज्ञ हूं अर्थात् यावत् वस्तु उत्पत्तिमत् है तिसको मैं जानता हूं।

तस्मिंस्त्वयि किंवीर्य्यमित्यपीद ँ सर्वं दहेयं यदि-दं पृथिव्यामिति।५।

अर्थ,, यक्ष रूप भगवान् अग्निदेवता से पूछते हैं तेरे में क्या सामर्थ्य है अग्निदेव कहते हैं जो कुछ पृथिवी में वस्तु है सर्व को दाह कर सक्ता हूं इतनी मेरे में सामर्थ्य है ऐसे साहंकार ही वाक्य बोले।५।

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्व्वजवे
न तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं
विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ ६ ॥

अर्थ, तब सर्वान्तर्यामी यक्षरूप भगवान् एक तृण को भूमि में अग्नि के सन्मुख स्थापन करके अपनी शक्ति को अग्नि में से संकोच करके कहा इसको दग्ध कर तब अग्निदेव सर्व वेग कर तृण के समीप गया परंतु दाह करने को समर्थ न हुआ फिर उस स्थान से निवृत्त होकर देवताओं को कहा मैं इस यक्ष के जानने में समर्थ नहीं ॥ ६ ॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवे तद्विजानीहि किमेतद्यक्ष
मिति तथेति ॥ ७ ॥

अर्थ, इस वृत्तान्त से अनन्तर देवता वायु को कथन करते भये, हे वायो तुम हमारे में बड़ा प्रवल है यह यक्ष क्या है इसको जानो तो ॥ ७ ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मी
त्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ ८ ॥

अर्थ, वायु देव यक्षरूप के सन्मुख गये और तूष्णीभाव देखकर वायु को बोले तू कौन है तब वायु देवता बोले वायु और मातरिश्वा अर्थात् अन्तरिक्ष में गमन करने वाला प्रसिद्ध बलवान् हूं ॥ ८ ॥

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीद ँ सर्वमाददीयं यदि
दं पृथिव्यामिति ॥ ९ ॥

अर्थ, तब यक्ष रूप परमेश्वर बोले तेरे में क्या सामर्थ्य है जब ऐसे पूछे तब वायुदेव बोले जो कुछ पृथिवी में वस्तु है सर्व को ग्रहण करके उडादेवों यह मेरे में सामर्थ्य है ऐसे साहंकार वाक्य बोले ॥ ९ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयायस-

वै जवेन तन्न शशाक दातुं स तत एव निववृते नैत-
दशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १० ॥

अर्थ,, तब यक्षरूप परेश्वर गर्व्व प्रहार करने वास्ते वायु के वास्ते एक तृण को स्थापन करा और कहा इस को ग्रहण करके उडादे तब-वायु सर्व वेग कर तिसके समीप प्राप्त होकर उड़ाने को ग्रहण करने को समर्थ न हुआ क्यों कि सर्वत्र सामर्थ्य तो परमेश्वर की है सो जब हरलयी तब सामर्थ्य अन्य सें कुछ भी न भया सो वायु तिस स्थान सें निवृत्त होकर देवताओं को कहा जो मैं इस यक्ष के जानने में समर्थ नहीं।

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमि
तितथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ ११ ॥

अर्थ,, इस वृत्तान्त से अनंतर इन्द्र को सर्व देवता कथन करते भये हे मघवन् आप हमारे सर्व के स्वामी विचित्र शक्ति वाले हो यह यक्ष क्या है इसको अवधारण करो इन्द्र कहते हैं तथास्तु तब इन्द्र देव यक्ष के सन्मुख गये तब इन्द्र सें तिरोधान होजाते भये अभिप्राय यक्षरूप भगवान् का यह है जो इन्द्र बड़ा अभिमानी है इससे वार्त्तालाप भी नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामु
मांहैमवतींता ँ होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥ १२ ॥

अर्थ,, सो इन्द्र देव न तो निवृत्त भये और न यक्षरूप भगवान् का वृत्तान्त मालूम हुआ तब जिस आकाश में ब्रह्म तिरोभूत हुआ था वहां ही बहुत काल निरभिमान यक्ष के दर्शनाभिलाषा वाला स्थित रहा फिर सर्वान्तर्यामी,, इन्द्र में अपनि भक्ति देखकर सुवर्ण के आभूषण वान् बहुत सी शोभायमान उमारूप होकर प्रादुर्भूत होगये तब अकस्मा

त् अलौकिक उमारूप स्त्री विग्रह को, "आजगामेन्द्रः", समीप प्राप्त होता भया। तब इन्द्र भगवती को पूछता भया जो यह यक्ष कौन था पश्चात् उमा वाक्य से इन्द्र को ब्रह्म का ज्ञान होता भया और प्रादुर्भाव तिरोभाव होने में जो भगवान् का अभिप्राय है सो भी प्रतीत हो गया भगवती के उपदेश सें,, यह आगे के चतुर्थ खण्ड में प्रसंग है और यक्ष का प्रादुर्भाव तथा उमा का प्रादुर्भाव तृतीय खण्ड में है। प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध हुई जो सोमनाम उमा सहित परमेश्वर का है। इस, रीति सें न तस्य प्रतिमा अस्ति इसके पूर्व दो मंत्र लिखकर और इस-वाक्य घटित मंत्र में सप्त मंत्र सूचित करे हैं तिनका अर्थ यथार्थ निर्णय, हो गया अब सज्जन पुरुष देखें जो इस प्रकरण में केवल निराकार प्रतिपाद्य है वा सर्व रूप प्रतिपाद्य है सो केवल निराकार प्रतिपाद्य नहीं, किन्तु सर्व प्रपंचगत यावत् रूपवाला और वास्तव सें स्वसदृश रूपान्तर वर्जित ब्रह्म प्रतिपाद्य है और वादी ने इसी अध्याय के दो मंत्र-पूर्व छोड़कर और तीसरे मंत्र में सें एक टूटकाटकर प्रतिमा पूजन, का निषेध करके अनन्त पुरुषों को धर्म मार्ग सें प्रच्युत कर दिया है परन्तु लोक विचार नहीं करते दुराग्रही हो रहे हैं॥ अब जो केन उपनिषद् के पंच मंत्रों से प्रतिमा पूजन का निषेध किया है वादी ने तिन मंत्रों का यथार्थ प्रकरण के अनुसार अक्षरों का अर्थ दिखलाते है और-वादी के मिथ्या प्रलाप का खण्डन करते हैं॥ तथाहि ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ २॥

इस श्रुति का वादी ने यह अर्थ लिखा है। जो वाणी की "इयत्ता," अर्थात् यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और

सत्तासे वाणीकी प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्मजान और उपासनाकर औ रजो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं ॥१॥

इस स्थान में देखना चाहिये यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं यह कौनसे पदका अर्थ है ऐसे अर्थका बाचक श्रुति में कोई पद नहीं है और उपासना कर उससे भिन्न उपासनीय नहीं यह भी किसी पदका अर्थ नहीं है केवल मिथ्या प्रलाप है वादीका, इस प्रकरणसें उपासना की विधि अथवा किसीकी उपासनाका निषेध भी नहीं कि-न्तु सर्व प्रमाणोंका जो अविषय है स्व प्रकाश वस्तु जो सर्व प्रमाणोंका प्रकाशक है तिसको ब्रह्म रूपता कही है यह उपासना का प्रकरण नहीं किन्तु ज्ञेय वस्तुका विवेचन है सो श्रुति में अक्षरार्थ को देखि-ये यद्वाचानभ्युदितं, जो वस्तु वाक् करके अनभ्युदितं न अ भ्युदितं, अनभ्युदितं अर्थात् जो वाक् करके प्रकाशित नहीं होता वा णीका अविषय वस्तु है भाव यह है जो वस्तु शब्द जन्य वृत्तिज्ञान सें प्रकाशित होता है सो वाचाभ्युदितं ऐसे कहा जाता है और ज्ञेयव स्तु ब्रह्म, शब्द और शब्द जन्य अन्तःकरण की वृत्ति और वृत्तिविष य जड़ पदार्थ इन सर्व को प्रकाशता है इसी वास्ते वृहदारण्यक उ-पनिषद् में याज्ञवल्क्य ऋषि, मैत्रेयी को,

येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् विज्ञा-
तारमरे केन विजानीयात्,

अर्थ,, हे मैत्रेयि जिस स्वयंज्योति चैतन्य कर सर्व को जानता है-तिसको किसकर जाने सर्व के विज्ञाता को किसकर जाने,, यह क हते हैं, और. येनवागभ्युद्यते, जिसकर वाक् प्रकाशित होती है. तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि,, तिसी को हे शिष्य तूं ब्रह्म जान, नेदं

यदिदमुपासते,, यत् इदं, उपासते, ध्यायन्ति, इदं ब्रह्म न

अर्थ, जिसको इदंरूप करके उपासते हैं उपासक सो ब्रह्म नहीं भाव यह है जिसको वृत्ति विषय करके पश्चात् ध्यान करते हैं सो ब्रह्म नहीं किन्तु वह दृश्य कोटि में प्रविष्ट है ऐसे सर्व प्रकाशक को ब्रह्मता कहकर उपास्यमात्र को मुख्य ब्रह्मता का निषेध किया है एक वस्तु को उपासनीयत्व और दूसरी को अनुपासनीयत्व कहना प्रकरण-अनुकूल और श्रुति के अक्षर अनुकूल श्रुत्यर्थ नहीं होसकता और वेद सिद्धान्त में दो पदार्थ हैं दृक् और दृश्य तिस में यह विचारणीय है जो वादी ने यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं यह कहकर उस को उपासनीय कहा सो दृक् पदार्थ के अन्तर्गत है अथवा दृश्य के अन्तर्गत है यदि दृक् है तो उपासनीय नहीं अविषय होने से यदि उपासनीय है तो दृश्य है तिसको ब्रह्मत्व नहीं ऐसे ध्येय विलक्षण दृक् वस्तु के प्रकरण की यह श्रुति किसी को उपासनीयत्व और किसी को अनुपासनीयत्व नहीं बोधन करती किन्तु उपास्यमात्र को ब्रह्मत्व का निषेध द्वारा दृक् वस्तु को ब्रह्मत्व जनाती है और यह अर्थ ही इसके पूर्व तीन श्रुतिमें प्रतिपादन किया है॥ तथाहि ।

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ केन० उ । १ मंत्र । खं १ ।

अर्थ,, १ केन कर्त्रा प्रेषितं मनः कस्य च इषितं विषयं प्रति पतति गच्छति,, किस करता कर प्रेरित हुआ मन और किस करता के इष्ट-विषय के प्रति गमन करता है ॥ भाव यह है जैसे युद्ध करनेवाले चाकर राजा के इष्ट विषय में राजा कर प्रेरित प्रवृत्त होते हैं उन चाकरों

कावो विषय इष्ट होवा अनिष्ट हो राजा कर प्रेरित अवश्य प्रवृत्त-होते हैं तैसे मनका इष्ट विषय हो अथवा अनिष्ट हो किसी करता कर प्रेरित हुआ अवश्य गमन करता है सो कौन है तैसे ही प्रथम प्राण अर्थात् मुख्य प्राण किसकर (युक्त) प्रेरित हुआ (प्रैति) गमन-करता है वैसेही इस वाक्को किसकर प्रेरित हुई को कथन करते हैं और इसी प्रकार चक्षुः श्रोत्र को कौन देव प्रेरण करता है। इस मंत्र में मन प्राण वाक् चक्षु श्रोत्र का जो प्रेरक है तिसको शिष्यने गुरु-सें पूछा है। १। उत्तर ॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राण
स्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लो
दमृता भवन्ति॥ केन। उ। मं २ खं १।

अर्थ ,, श्रोत्रका श्रोत्र और मनका मन तथा वाक्का वाक् और सोई प्राणका प्राण चक्षुका चक्षु है इतना गुरुने शिष्यको उत्तर वाक्य कहा है इस स्थान में दो २ श्रोत्रादिके बोधन में तात्पर्य्य नहीं किंतु जैसे लोक में घटादिका दीपक है। अर्थात् घटादिकोंका प्रकाशक होने सें घटादिकोंका दीपक दीपक को बोलते हैं वैसेही (दीपकस्य दीपकं चक्षुः) दीपक का दीपक चक्षु है ऐसे प्रकरण में श्रोत्रादिका श्रोत्रादि अर्थात् प्रकाशक है इसी रीति सें श्रोत्रादिके प्रकाशक चैतन्य ज्योतिको मनादिका प्रेरक कहा है। अतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्मात् लोकात्। अर्थ, ऐसे सर्व प्रकाशक ज्योति-स्वरूप चैतन्य को अपना स्वरूप जानकर इस स्थूल संघात सें उत्थान होकर और प्राणादि वर्ग सूक्ष्म शरीर में सें आत्मत्त्वाध्यास त्याग कर अमृत, स्वरूपावस्थान रूप मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ २॥

अब इसी अर्थ को आगे के मंत्रों से विस्तार करते हैं क्यों कि सूक्ष्म वस्तु का विस्तार सें विना बुद्धि में आना कठिन है इससे दयालुता सें विस्तार-करते हैं ।

नतत्र चक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छति नोमनोनविद्मो
न विजानीमोयथैतदनुशिष्यादन्यदेवतद्विदितादथो
अविदितादधि । इतिशुश्रुमपूर्वेषांयेनस्तद्व्या
चचक्षिरे ॥केन॥उ।खं१।मं ३॥

अर्थ, चक्षुवाग्मन तिसस्वयंज्योतिचैतन्य में नहीं गमन करसकते इससे हे शिष्य सो ब्रह्म ईदृश है ऐसा हम नहीं जानते क्यों कि चक्षुरादि इन्द्रिय विषय वस्तु को ईदृशतादृश कह सकते हैं और चैतन्य-ज्योति को चक्षुरादि विषय नहीं करसकते इसवास्ते जैसे शिष्य के वास्ते ब्रह्म का उपदेश कराजाय ऐसा प्रकार नहीं जानते अर्थात् इदंताकर के ब्रह्म का उपदेश नहीं करसकते परंतु उपदेश का प्रकार यह है दृश्य प्रपंच दो प्रकार का है एक विदित और एक अविदित जो प्रत्यक्ष अनुमान सें जाना जाता है सो विदित है और केवल शब्द प्रमाण गम्य है सो अविदित है, तत्‌विदितात्‌अन्यत्‌एव, सो ब्रह्म विदित प्रपंच सें भिन्न है और "अथो अविदितादधि" अविदित सें भी "अधि, अन्यत्" है ऐसे उपदेश वाक्य हमने सुना है जो आचार्य हमारे प्रति ब्रह्म का व्याख्यान करते भये हैं । जब ज्ञात अज्ञात प्रपंच सें भिन्न ब्रह्म कहा तो एक पदार्थ ब्रह्म सिद्ध हुआ ऐसे एक वस्तु का उपदेश पूर्व प्रारंभ किया है किसी को उपासनीयत्व और किसी को अनुपासनीयत्व कहना इस प्रकरण में वादी का अज्ञान है ॥ इसरीति सें पूर्व तीन मंत्र छोडकर चतुर्थादि पांच मंत्र लिखकर प्रतिमाप्र

जन का निषेध किया वादीने, जिन मंत्रों से ही वादी स्वीकृत उपास्य-
को अब्रह्मता सिद्ध होती है क्योंकि मंत्रों में वारंवार यह कहा है नेदंय
दिदमुपासते यत् इदंउपासते इदं ब्रह्मन ऐसे अब्रह्मता का उपदे-
श किया है इसी वास्ते जो २ उपास्य देव है सो किसीनकिसी उपाधि
विशिष्ट रूपहै इससे वेद सिद्धांत का निष्कर्ष यह है उपाधि विशिष्ट
रूप व्यावहारिक उपास्य है और तिसकी उपासना सें लोक विशेष ऐश्व
र्य्य विशेषकी प्राप्तिहोती है औरकेवल दृक् पदार्थ स्वयंज्योति ज्ञेय है
ज्ञेयके प्रकरण में ध्येयका निरूपण करना प्रकरणा ज्ञानी वादी में हीशो
भता है। इस प्रकार सें यद्यपि वादी लिखित एक मंत्र के निर्णय सेंही
दूसरे मंत्रों का निर्णय होगया तथापि स्पष्ट बोध वास्ते वादी लिखित प
रिशेष चार मंत्रों का भी अर्थ लिखते हैं। तथाहि।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं। तदेव ब्रह्म त्वं
विद्धि नेदं यदिदमुपासते।२।

अर्थ- जो मन से " इयत्ता " करके मन में नहीं आता जो मन को जा
नता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर जो उससे भिन्न जी
व और अन्तःकरण है उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर ॥२॥
यह अर्थ इस मंत्र का वादी ने किया है सो तो पूर्वही खंडित प्राय है क्यों
कि उपासना प्रकरण का अभाव होनेसें और अक्षरोंसें वाह्य होनेसें ।
और यहभी समझना जिस अधिष्ठान में दूसरी वस्तुकी उपासना क
रीजाती है सो अधिष्ठान प्रत्यक्ष होता है जैसे विष्णु की मूर्त्ति में वैकुण्ठ
वासी विष्णुकी उपासना होती है इस स्थान में अधिष्ठान प्रत्यक्ष है औ
र आरोप करने योग्य विष्णु अप्रत्यक्ष है और वादी कहता है ब्रह्म के स्था
न में जीव और अन्तःकरण की उपासना मत कर और ब्रह्म को कैसा क-

हो। जो मनमें नहीं आता जब मनमें भी ब्रह्म न आया तो अप्रत्यक्ष हुआतब अप्रत्यक्ष अधिष्ठान में उपासना कैसे होगी जीव और अन्तःकरण की, और यह भी विचार करना ब्रह्म के स्थान में अन्तःकरण और जीव की उपासना का फल ही क्या है और करता ही कौन है क्यों कि उपासना का फल तो उपास्य साक्षात्कार है सो तो अन्तःकरण और जीव का साक्षात्कार पूर्व सिद्ध है। और जो उपासना है तो जीव के स्थान में अप्रत्यक्ष ब्रह्म की उपासना होती है ब्रह्म भी किंचित् उपाधि विशिष्ट हो अथवा साक्ष्यात्मा में अब्रह्म वासना निवृत्ति वास्ते स्वतः सिद्ध ब्रह्म की उपासना होती है अप्रत्यक्ष ब्रह्म रूप अधिष्ठान में प्रत्यक्ष सिद्ध किसी पदार्थ की उपासना लोक वेद में अप्रसिद्ध का निषेध करना श्रुति के अक्षर और प्रकरण त्यागकर धर्म मार्ग भ्रंशक वादी में ही शोभायमान है॥ श्रुति का सिद्धान्त अर्थ यह है मन का अविषय हुआ ही जो मन का प्रकाशक है तिसको ब्रह्म जान और जो इदंकर उपासना करा जाता है सो ब्रह्म नहीं॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यंति। तदे०३।

इस मंत्र का वादी ने यह अर्थ किया है। जो आंख से नहीं दीख पड़ता और जिस से सब आंखे देखती हैं उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर और जो उससे भिन्न सूर्य्य विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मत कर॥३॥ परन्तु इस अर्थ में एक तो श्रुति का अंग भंग किया क्यों कि येन चक्षूंषि पश्यति ऐसा एक बचनान्त क्रिया पद संप्रदाय सिद्ध पाठ है तिसका अपने भ्रम से भंग करके पश्यन्ति ऐसा पद बनाकर यह अर्थ करा जिससे सब आंखें देखती हैं तिसमें वादी को यह भ्रम है जो दर्शन क्रिया का चक्षु करता है और चक्षु शब्द बहुवचनान्त है इस से क्रिया भी बहुवचनान्त होना चाहिये सो देखना

चाहिये चक्षुदर्शनका कर्त्ता है के करण है कर्त्ता तो कहीं नहीं देखा जाता, देवदत्तः चक्षुषा रूपं पश्यति, देवदत्त चक्षुकर रूपको देखता है और श्रुतिमें चक्षूंषि यह पद द्वितीया बहुवचनान्त कर्म्म है दर्शन क्रियाका, और लोकः। ऐसा अध्याहृत पद कर्त्ताका बोधक है तब यह अर्थ हुआ जिस चैतन्य ज्योतिको लोक चक्षुकर नहीं देखता और जिस चैतन्य ज्योतिकर लोक चक्षूंषि, चक्षुजन्य वृत्तिओं को देखता है लोक कर्त्ताका अध्याहार, यच्चक्षुषा न पश्यति इस वाक्यमें भी कर्तव्य है अन्यथा पश्यति क्रियाको प्रथमान्त कर्त्ता अपेक्षित है और चक्षुषा यह तृतीयान्त है कर्त्ता पश्यति क्रियाका नहीं होसकता। इसी वास्ते शंकराचार्य्यजी " यच्चक्षुषा न पश्यति न विषयी करोत्यन्तःकरण वृत्ति संयुक्तेन येन चक्षूंषि अन्तःकरण वृत्तिभेदभिन्नाश्चक्षुर्वृत्तीः पश्यति लोकश्चैतन्यात्मज्योतिषा विषयीकरोति व्याप्नोति " ऐसा अर्थ इस श्रुति अंशका करते हैं। परन्तु वादी तो श्रुतिके अंग भंग प्रकरण विरुद्ध अक्षरों से वाह्य अर्थ कल्पना करनेमें ही वित्त है शंकराचार्य्यके भाष्यार्थ जाननेमें अनुपासित गुरु कैसे समर्थ होगा॥

भाष्यार्थ " यच्चक्षुषा न पश्यति इतनी तो श्रुतिकी प्रतीक धरी है न विषयी करोति इतना न पश्यति इस पदका अर्थ है तब यह अर्थ हुआ चक्षुषा अर्थात् चक्षुजन्य वृत्ति करके जिस चैतन्य ज्योतिको नहीं विषय करता लोक और अन्तःकरण वृत्ति संयुक्त जिस चैतन्य ज्योतिकर अन्तःकर वृत्तिओंके भेद कर भिन्न चक्षु वृत्तिओंको देखता है लोक चैतन्य ज्योतिकर, विषयीकरोति, व्याप्नोति भाव यह है चैतन्य ज्योति करही यावत् वृत्तिओंको अनुभव करता है॥ तिस चैतन्य ज्यो

त्ति कोत् ब्रह्मजान और जो इदं रूपसे उपासना किया जाता है सो ब्रह्म नहीं यह परिशेष श्रुतिका सिद्धान्त अर्थ है ॥ इस श्रुतिव्याख्यान-में सूर्य्य अग्नि विद्युत् जड़ कहा है और अनुपास्यत्व कहा है सो महा-मूर्खता का सूचक है क्यों कि इस उपनिषद्के तृतीय खंड में अग्नि वा-यु इन्द्र को ब्रह्म के साथ संबाद निरूपण सें देवत्त्व ऐश्वर्य्यवत्त्व निर्णे-य होता है और ऐसे ही विद्युत्लोक में उपासक का गमन पूर्व देव यान मार्ग के प्रसंग में कहा है और अग्नि आदित्य वायु को पूर्व धर्मस्वरू-प मार्ग निरूपण के प्रसंग में उपास्यत्ता निरूपित है और गायत्री अर्थ निरूपण के प्रसंग में आदित्य को ब्रह्मरूपता निर्णीत है ॥ और ऋ-चोअक्षरे,, इत्यादि ऋ मण्ड १। सू १६४ मंत्र ॥ ३९ ॥ मंत्र में आदि-त्य को सर्व देवता की आधारत्ता कहकर उपास्यता पूर्व निरुक्त प्रमा-ण और तैतरीयारण्यक प्रमाण सें निर्णीत है। और विद्युत् को ब्रह्म दृष्टि सें उपासना करने सें तात्कालिकाज्ञान निवृत्ति फल कहा है ॥ त-थाहि ॥

विद्युद्ब्रह्मेत्याहुर्विदानाद्विद्युद्विद्युत्येनं पाप्मनो
यएवं वेद विद्युद्ब्रह्मेति विद्युद्ध्येव ब्रह्म ॥ वृह। उ-
प०अ७।ब्रा७

पद। विद्युत् ब्रह्म इति आहुः विदानानात् विद्युत् विद्युति एनम् पाप्मनः यः एवम् वेद विद्युत् ब्रह्म इति विद्युत् हि एव ब्रह्म,,

अर्थ,, विद्युत् ब्रह्म है ऐसे वेद विद्या उपदेशक आचार्य्य कहते हैं मेघान्धकार का नाशक होने सें विद्युत् है जो कि पुरुष ब्रह्मदृष्टि सें वि-द्युत् का ध्यान करता है सो पुरुष अपने आत्मा के प्रति वर्त्तमान पापों को ,विद्युति, अवखण्डयति, नाश करता है उपासना का आकार यह है

विद्युत् ब्रह्म इति विद्युत् ब्रह्म है और ऐसा निश्चय होना चाहिये विद्यु
त् ही निश्चय सें ब्रह्म है ॥ तात्पर्य्य यह ब्रह्म ज्ञात होकर जैसे अज्ञाना-
न्धकार को नाश करता है तैसे विद्युत् भी प्रादुर्भूत होकर मेघकृत
अन्धकार को नाश करती है इससे ब्रह्म और विद्युत् में तुल्यता है प्रक
रण में भाव यह है विद्युदुपाधिविशिष्ट ब्रह्म अपने उपासक के पापरू-
प श्री प्राप्तिप्रतिबंध को तत्काल नाश करता है । ऐसे विद्युत् उपास्यत्व
होगया सो कुछ जड़ पदार्थ उपास्य नहीं किन्तु तदुपाधि विशिष्ट ब्रह्म
उपास्य है और वादी तो यावत् संसार को परमार्थ सें भ्रष्ट करने को
प्रवृत्त है ॥ केवल भंगा पान कर व्यर्थ प्रलाप करता है ॥ और वादी लि
खित चतुर्थ मंत्र में शब्द को उपास्यत्व का निषेध और पंचम मंत्र में वा-
यु को उपास्यत्व का निषेध किया है सो भी पूर्व प्रकरण में ॐकार को
उपास्यत्व निरूपण से खंडित है और इस प्रकरण में वायु को मंत्र में
उपास्यत्व कथन सें असंगत है काहे ते धर्ममार्ग अनतिक्रान्त प्रजा-
ओं ने अग्नि आदित्य वायु की उपासना करी और ब्रह्मलोक प्राप्तिद्वा-
रा मुक्ति को प्राप्त भयीं यह वार्ता पूर्व विस्तार सें निर्णीत है । सिद्धान्त
पक्ष में चतुर्थ पंचम मंत्र का अर्थ यह है ॥ दिग्देवतानुग्रहीत आका-
श कार्य्य मनोवृत्ति संयुक्त श्रोत्र कर के जिस चैतन्यज्योति को लोक न
हीं जान सकता जिस चैतन्यज्योति कर मनोवृत्ति सहित श्रोत्रजन्य वृ
त्ति को विषय करा जाता है तिसको तू ब्रह्म जान और जो इदं कर उपास
नीय वस्तु है सो मुख्य ज्ञेय कोटि प्रविष्ट ब्रह्म नहीं ॥ ४ ॥ पंचम मंत्र में
प्राण शब्दार्थ घ्राण है क्योंकि प्राण में क्रिया शक्ति है ज्ञान शक्ति नहीं
तब यह अर्थ हुआ पृथिवी देवतानुग्रहीत मनोवृत्ति सहित घ्राण
जन्य वृत्ति कर के जिस चैतन्य ज्योति को नहीं जानता लोक और जिस चै

तन्य ज्योतिकर मनोवृत्ति सहित घ्राणजन्यवृत्तिजानीजाती है तिस कोतू ब्रह्मजान जोकि इदंकरके उपास्यवस्तु है सो मुख्य ब्रह्म नहीं॥ ५॥ ऐसे पूर्वउक्त प्रकारसें प्रतीकोपासनामें मंत्र ब्राह्मण व्यास सूत्र प्रमाण का निरूपण किया। अब पतंजलि सूत्रभी प्रमाण प्रतीकोपासनामें लिखते हैं।

वित्तर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञातः। योग।पा१।सू१७॥

व्यास मुनिकृतभाष्य॥ वितर्कः चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोगः। सूक्ष्मो विचारः। आनन्दोह्लादः। एकात्मिका संविदस्मिता। तत्र प्रथमः चतुष्टयानुगतः समाधिः सवितर्कः। द्वितीयो वितर्क विकलः सविचारः॥ तृतीयो विचार विकलः सानन्दः। चतुर्थस्तद्विकल अस्मितामात्र इति। सर्व्वे एते सालम्बनाः समाधयः॥१७॥

अर्थ,, वितर्क विचार आनंद अस्मिताके अनुगमात् अर्थात् समाधिमें प्रवेशसें संप्रज्ञात योग होता है यह सूत्रका अर्थ है॥

भाष्यार्थ—चित्तका अपने विषय में ,, स्थूल आभोग,, स्थूलध्येय का स्वरूप साक्षात्कार वाली प्रज्ञा वितर्क है तिसके सहित जो समाधि सो सवितर्क समाधि है वो सवितर्क समाधि चतुष्टयानुगत है अर्थात् स्थूलभूत सूक्ष्मभूत·इन्द्रिय·अस्मिता·करके विशिष्ट है भाव यह है कार्य्य वस्तु कारण में प्रविष्ट होती है और केवल कारण वस्तु कार्य्य में नहीं प्रविष्ट होती इस वास्ते जब कार्य्याकार वाली समाधि हुई तो कारणाकार वाली अवश्य होगी कार्य्यका कारणके साथ सहचार होने से ऐसे प्रथम सवितर्क समाधि चतुष्टय करके अनुगत है। प्रथम समाधिको स्थूल विषय विषयक कहने में व्यासजी का भाव यह है जे

से प्रथम धनुष्का शिक्षक स्थूल लक्ष्य पर निशाना लगाता है तैसे प्रथम समाधिके अभ्यास में प्रवृत्त योगी शालग्रामादि स्थूल विषय में चित्तको स्थापन करे तिस शालग्राम को मूर्त्तमात्र भगद्रूपजानकर ध्यान करे इसके ध्यान कर जैसे सिद्धिको प्राप्त होता है योगी सो प्रकार भी व्यासजी कथन करते हैं। तथाहि।

मूर्त्तंभगवतोरूपंसर्वोपाश्रयनिस्पृहं ॥ एषावैधारणाज्ञेयायच्चित्तंतत्रधार्य्यते ॥१॥ तच्चमूर्त्तंहरेरूपंतद्धिचिन्त्यनराधिप ॥ तत्श्रूयतामनाधाराधारणानोपपद्यते ॥२॥ प्रसन्नवदनंचारुपद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥ सुकपोलंसुविस्तीर्णललाटफलकोज्वलम् ॥३॥ समकर्णान्तविन्यस्तचारुकुण्डलभूषणम् ॥ कम्बुग्रीवंसुविस्तीर्णश्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥४॥ वलीविभङ्गिनामग्ननाभिनाचोदरेणच ॥ प्रलम्बाष्टभुजंविष्णुमथवापिचतुर्भुजम् ॥५॥ समस्थितोरुजंङ्घंचसुस्वस्तिकांघ्रिकराम्बुजम् । चिन्तयेद्ब्रह्मभूतंतम् पीतनिर्मलवाससम् ॥६॥ किरीटचारुकेयूरकटकादि विभूषितम् ॥ शार्ङ्गचक्रगदाखड्गशङ्खाक्षवलयान्वितम् ॥७॥ चिन्तयेत्तन्मयोयोगीसमाधायात्ममानसम् ॥ तावत्यावत्दृढीभूतातत्रैवनृपधारणा ॥८॥ एतदातिष्ठतोऽन्यद्वास्वेच्छयाकर्म्मकुर्व्वतः ॥ नापयातियदाचित्तंसिद्धांमन्येततांतदा ॥९॥

श्लोकार्थ,, जोकि भगवत मूर्त्त रूप सर्वकर आश्रयणीय है और इ

च्छा रहित स्वानंदब्रह्म है तिस में जो चित्तस्थापन किया जाता है इसीको धारणा कहते हैं ।१। सो मूर्त्त साक्षात् हरिरूप है तिसको हे राजन् चिन्तनकर सोई चिन्तन योग्य है श्रवणकर हे राजन् अनाधार धारणा नहीं होसकती ॥२॥ इसवास्ते प्रथम कुछ भी भगवान् के अवयव चिन्तनकरने प्रसन्न वदन और श्रेष्ट कमल पत्रवत् नेत्र शोभन कपोल और निर्मल विस्तीर्ण ललाट और तुल्य श्रेष्ट कुण्डल रूप भूषण युक्त हैं ऐसे ध्यान करे और शंख समान दीर्घग्रीवावत् श्री प्रिय चिन्ह और भृगुलता कर अंकित विस्तृत वक्षस्थलवत् हैं ॥४॥ और दिव्यवली विभङ्गि कर भग्रनाभि तथा दिव्य उदरकर युक्त दीर्घ अष्ट भुजायुक्त अथवा चतुर्भुजा युक्त तुल्य स्थित ऊरु जंघा कर युक्त (स्वस्तिक)-सर्व भक्तजन हितकर कमलवत् कर चरण युक्त निर्मल पीनवस्त्रयुक्त ब्रह्मस्वरूप विष्णुको चिन्तन करे ।५।६। हे राजन् योगीजन (तन्मय) ध्येय रूप वस्तु भाव को प्राप्त होकर श्रेष्ट किरीट बाहुभूषण कटकादिकर भूषित शार्ङ्ग नामक धनुष् चक्र गदा खड्ग शंख सुवर्णयव की मालायुक्त विष्णुको चिन्तन करे अपने मनको स्थापनकर-के जबतक दृढ़ न हो तब तक परमात्मा की मूर्त्ति में पुनः पुनः चित्तको स्थापन करे ।७।८। अब दृढ़ता का स्वरूप दिखलाते हैं इस ध्यान के अनुष्ठान करते अथवा स्वेच्छा पूर्वक और कर्म्म के करते जब चित्त ध्येय वस्तु सें उत्थान न हो तब जाने जो धारणा सिद्ध होगयी ॥ यह श्लोक योगभाष्य की व्याख्या में वाचस्पति मिश्र ने लिखे हैं परंतु श्लोक व्यास प्रणीत हैं जो व्यासभाष्य को पातंजल सूत्रों पर माना है वादीने तिसमें यह स्थूल ध्येय गोचर सवितर्क समाधि कही है इससे मूर्त्तिका पूजन ध्यान पातंजल सूत्र सें भी सिद्ध होगया इसका निषेधक

रता वादीकी प्रतारकता है ॥ प्रश्न ॥ भला सिद्ध हुआ तो हो परन्तु इस ध्यानका कुछ फल नहीं किन्तु निष्फल है ॥ उत्तर ॥ यहकहना तो केवल व्यर्थ है क्योंकि इस ध्यानका एकतो प्रत्यक्ष ही फलहैजो कि चित्तकी राजसी तामसी वृत्ति की निवृत्ति होकर प्रकाशरूपसत्त्व का प्रादुर्भाव होना और सत्त्वगुणकी वृद्धि सेंउर्द्ध्वलोककी प्राप्तिहोतीहै।

तदुक्तम् ॥ ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठंति राजसाः ॥ जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छन्ति तामसाः
गी ।अ०१४।श्लो।१८॥

अर्थ,, जो कि सत्त्व में स्थित हैं वे ऊर्ध्वलोकको प्राप्त होते हैं और जो राजसी हैं वे मध्यलोक में स्थित रहते हैं और जो जघन्यगुण, तमोगुण की वृत्ति में स्थितहैं वे अधोगति को प्राप्तहोते हैं । इससें सवितर्क ध्यान धारणा समाधि करनेवाले ब्रह्म लोकको प्राप्त होते हैं । इसीवास्ते पूर्व प्रकरण में सर्वलोकों से ऊर्ध्व सत्यलोक में चार प्रकारकी जाति वाले देवता । अच्युत १ शुद्धनिवास २ सत्याभ ३ संज्ञासंज्ञि ४। नाम सें निरूपण करे हैं अच्युत सवितर्क समाधि· शुद्धनिवास सविचार समाधि· सत्याभसानंदसमाधि· संज्ञासंज्ञि· सास्मिता समाधि· सुख युक्त कहे हैं इससे यह निर्णय होता है जो इस सालम्बन चार प्रकार- की समाधि में प्रवृत्त हैं वे ब्रह्मलोक में अच्युतादिदेव भावको प्राप्तहोते हैं कहो तो ऐसे उत्तम धर्मका अपनी प्रचलित बुद्धि सें वेद मंत्रोंको भंगकर निषेधकरना कितनी बड़ी धूर्त्तता है वादी में, संसार को दुःखजाल में डाल दिया । अपनी धूर्त्तता सें आपतो भ्रष्ट हुआ था परंतु संसारको भी अनवस्थित करदिया ऐसेंही सूक्ष्म तन्मात्रा विषय में जो समाधि है सो सविचार है क्यों कि स्थूल भूतोंको त्याग कर जो सूक्ष्म भूत स्वरूपसा

क्षात्कार वाली प्रज्ञा सो विचार है तिसकरके सहित जोसमाधि हैसो सविचार समाधि है सो समाधि, त्रितयानुगत है क्योंकि भूतसूक्ष्म रूपतन्मात्राओंको अहंकार कार्य्य होने सें अहंकारानुगतत्व है और अहंकार को अस्मिताअभिन्नअव्यक्तकार्य्यत्वहोनेसेंअव्यक्तो है परंतु यह दो प्रकारकी समाधिग्राह्य पदार्थ विषयक है और तृतीय समाधिग्रहण पदार्थ विषयक है क्यों कि सत्त्व प्रधान अहंकार सें इन्द्रियउत्पन्न हुए हैं इस सें इन्द्रिय सुखरूप हैं तिनके स्वरूप साक्षात्कार वालीजो प्रज्ञा है सोआनन्द वाल्हाद है सो जिस समाधि में हो सो समाधि सानंद हैऔर सत्त्व प्रधान अहंकार ही अस्मिता है इस वास्ते वोसमाधि इन्द्रिय विषयकभी है तोभी द्वितयानुगत है सो यह सानन्द समाधिग्रहण रूप इन्द्रिय गोचर होनेसें ग्रहण समाधि है और अस्मिताका स्वरूप निर्णीत है सो अस्मिता विशिष्ट आत्मारूप ग्रहीता है इसवास्ते चतुर्थ समाधि को ग्रहीतृगोचर होने सें ग्रहीतृ विषयक समाधि कहते हैं ॥ इसरीति सें प्रतीकोपासनाका स्वरूप और प्रतीकोपासना में प्रमाण निर्णीत होगये ।

अथाहंग्रहोपासनास्वरूप निरूपण पूर्वकाहंग्रहोपासना में मंत्रादि प्रमाणका निरूपणकरते हैं ॥ ४ ॥

और अहंग्रह उपासना का स्वरूप तो यह है जिस उपासना में अहं ऐसे अपने आत्मा का ध्येय वस्तु सें अभिन्न होके प्रतीत होवे सो अहंग्रह उपासना है । इसमें प्रमाण को निरूपण करते हैं जिस प्रमाण सें अहंग्रह उपासना में श्रद्धा पूर्वक प्रवृत्ति हो ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखम् ॥ योसावादित्ये पुरुषः । सोसावहम् । ओ३म् खम्ब्रह्म ॥ य० अ०

५० मंत्र। १७॥

अर्थ,, हिरण्मयेन पात्रेण,, ज्योतिर्मय पात्र तुल्य सूर्य्य मण्डलकर सत्य ब्रह्मका मुख, दर्शनद्वार आच्छादित है भाव यह है उपासनात्यागी पुरुष को दीखता नहीं परंतु मंत्रदर्शी दधीचि ऋषि कहता है जो यह आदित्य में पुरुष है मेरे को उपासना बल से प्रत्यक्ष सो यह मैं हूं मेरा और इस पूर्व वर्णित आदित्यान्तर्यामी का किंचित् भी भेद नहीं। और खं अर्थात् पूर्ण ब्रह्म वृहत् ॐकाररूप है॥ इसी अर्थ का प्रतिपादक ब्राह्मण है। तथाहि।

अथ य एषो ऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः। तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद। छां० उ० प्र १। खं ६॥

श्रुत्यर्थ,, जो परमेश्वर का विग्रह आदित्य मण्डल के अन्तर समाहित उपासकों को दीखता है सुवर्ण वर्ण श्मश्रु वाला और सुवर्णवत्प्रकाशमान केश वाला नख से लेकर शिखा तक सर्व ही सुवर्णवत् प्रकाशमान है तिसके अत्यन्त तेजस्वी कमलवत् नेत्र हैं उद इत्याकारक तिस देव का नाम है और वो देव सर्व पापों से उद्गत अर्थात् रहित है इस प्रकार परमात्मा को जानकर जो पुरुष अपने आत्मा से अभिन्न जानकर उपासना करता है सो भी सर्व पाप रहित देवभाव को प्राप्त होता है इस स्थान में मंत्र ब्राह्मण की एक रूपता वास्ते अहंग्रह उपासना ही विवक्षित है और इस स्थान में यह ही अर्थ है दूसरा अर्थ नहीं इस वास्ते व्यासजी अपने सूत्र से निश्चय कराते हैं क्यों कि किसी दुराग्रही को भ्रम न होवे॥

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ शा । अ १ । पा १ । सूत्र । २० ॥

सूत्रार्थ ,, आदित्यान्तर्गत उपास्यमान कोई देवता है अथवा ईश्वर है इस संशय की निवृत्तिवास्ते व्यासजी कहते हैं आदित्यान्तर उपास्यमान परमेश्वर है क्यों कि सर्व पापरहितत्वादि परमेश्वर के धर्मों का उपदेश होने से इस प्रकार मंत्र ब्राह्मण व्यास सूत्र कर अहंग्रह उपासना का स्वरूप निरूपण किया और पूर्व भी अनेक स्थान में निर्णीत है परंतु अहंग्रह उपासना में निष्कर्ष यह है जो एक किसी बी उपासना का उपासक को सेवन कर्त्तव्य है सर्व का नहीं क्यों कि चित्त व्याकुलता हेतु होने सें उपासना का फल तो यह है जो अपने आत्मा में उपास्य देव के स्वरूप का साक्षात्कार होना जब उपासक अहंग्रह ध्यान में प्रवृत्त नाना प्रकार के उपासना वाक्यों का अनुसंधान करेगा तब चित्त में व्याकुलता होगी और प्रतीकोपासक तो तत्तत्फल की कामना सें दो एक अथवा बहुत का भी अनुष्ठान कर सकता है परंतु अहंग्रह उपासना में प्रवृत्त दो में प्रवृत्ति सें अथवा बहुत में प्रवृत्ति सें विक्षिप्त होगा इससे एक ही अनुष्ठेय है यह व्यासजी ने तृतीयाध्याय के तृतीय पाद में विचार किया है ॥ एक प्रकार की अहंग्रह उपासना ऋग्वेद के ऐतरेय आरण्यक में निर्णीत है तिसका स्वरूप सज्जन पुरुषों के देखने वास्ते निरूपण करते हैं । और तिसके देखने सें जीव परमात्मा का अभेद भी प्रतीत होगा स्पष्ट रीति सें ॥ तथाहि ।

चत्वारः पुरुषा इति बाध्वः शरीर पुरुषश्छन्दः पुरुषो वेद पुरुषो ॥ महापुरुष इति ॥ आ ३ अ २ । खं । ३ ऐतरेयारण्यक ॥

अर्थ ,, बध्व नामक ऋषि का पुत्र बाध्व कहता है उपासनीय पुरुष

चार हैं शरीर पुरुष और छन्दः पुरुष और वेद पुरुष तथा महा पुरुष है॥

शरीर पुरुष इति यमवोचाम स य एवायं दैहिक आत्मा तस्य यो ऽयमशरीरः प्रज्ञात्मा स रसः॥ ऐतरेयारण्यक॥१॥

अर्थ,, बाध्व नाम महर्षि ने जिस पुरुष को शरीर पुरुष नाम सें कथन किया है सो जो यह दैहिक आत्मा अर्थात् देह रूप आत्मा है तिस ध्यातव्य पुरुष का जो यह अशरीर प्रज्ञात्मा अर्थात् मांसमय शरीर रहित चिद्रूप शरीर है सो रस अर्थात् सार है भाव यह है अहं मनुष्यः ऐसी प्रतीति का विषय शरीर पुरुष है और अहं चिद्रूपः शरीर पुरुष साक्षिभूतः द्रष्टास्मि ऐसी प्रतीति का विषय अशरीर पुरुष है तिन दोनो का शरीर पुरुष रूप सें ध्यान करे॥१॥

छन्दः पुरुष इति यमवोचामाक्षरसमाम्नायमेव तस्यैतस्या कारो रसः॥ ऐतरेयारण्यक॥२॥

अर्थ,, अग्निमीळे पुरोहितम्। इत्यादि अकार गकार नकारादि अक्षरों का जो समाम्नाय अर्थात् सम्यक् पाठ है सो छन्दः पुरुष शब्द सें कथन करा है तिस पुरुष का अकार सार है इस वास्ते इन दोनो का छन्दः पुरुष रूप सें ध्यान करना योग्य है॥२॥

वेद पुरुष इति यमवोचाम येन वेदान्वेद ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदं तस्यैतस्य ब्रह्मा रसः तस्माद्ब्रह्माणं ब्रह्मिष्ठं कुर्वीत यो यज्ञस्योल्वणं पश्येत्॥ ऐतरेयारण्यक॥३॥

अर्थ,, लोक में वेद वित् पुरुष जिस मन की सावधानता सें वेदों को जानता है। अग्निमीळे, इत्यादि ऋग्वेद है तिस कर होत्र कर्म कर्त्तव्य है अ-

र्थात् होताकर कर्त्तव्य कर्म ऋग्वेद सें कराजाता है इषेत्वोर्जेत्वादि य-
जुर्वेद है तिसकर अध्वर्युको कर्त्तव्य कर्म कराजाता है और अग्न आ-
याहीत्यादि सामवेद है तिसकर उद्गाता का कर्म कराजाता है ऐसे विवे
कयुक्त जो मन है सो वेद पुरुष है तिस वेद पुरुष का ब्रह्मा सार है अर्था-
त् हिरण्यगर्भ सूक्ष्म समष्टि की अहंग्रह उपासना कर हिरण्यगर्भ भाव
को प्राप्त जो वेद पुरुष रूप पुरुष है सो सार है अब प्रसंग सें ब्रह्मा ना-
मक चतुर्थ ऋत्विग् की विशेषता द्वारा हिरण्यगर्भोपासना की प्रशंसा
करते हैं जिस कारण से वेद पुरुष का ब्रह्मा सार है तिस हेतु सें ब्रह्मो
पासक को ब्रह्मा करे जो यज्ञ के " उल्वण " गुण दोष को देखे और दे-
खकर न्यूनता को पूर्ण करे ॥ ३॥

महा पुरुष इति यमवोचाम संवत्सर एव प्रध्वंसय-
न्नन्यानि । भूतान्यैक्यमावयन्नन्यानि तस्यैतस्या
सावादित्यो रसः ॥ ४॥

अर्थ " जिसको महा पुरुष नाम से कथन करा है सो यह संवत्स-
र है कालात्मा रूप जो कालात्मा ऐक्या अर्थात् ऐक्यं यथास्यात् तथा अ
न्यानि, किसी भूतों को नाश करता है और किनी को उत्पन्न करता है "
तिस कालात्मा का आदित्य सार है भाव यह है जैसे वृक्ष अपने सारां
श रूप रस कर भान होता है बहुतसी शोभा युक्त होकर तैसे यह श-
रीर पुरुषादि चारों अपने अपने रसों करके प्रकाशमान शोभते हैं ४
अब चार पुरुषों को ध्येयत्व कहकर अन्य गुण को ध्येयत्त्व रूप सें प्र
तिपादन करते हैं ॥ क्यों कि यह जो वक्ष्यमाण गुण है तिसको ध्येय
त्व बोधन वास्ते ही संपूर्ण पुरुषों का निरूपण करा है ॥

सयश्चायमशरीरः प्रज्ञात्मा यश्चासावादित्य एक-

मेतदितिविद्या तस्मात्पुरुषं पुरुषं प्रत्यादित्यो भवति॥

अर्थ,, शरीर पुरुष सारत्व रूपकर जो यह अशरीर प्रज्ञात्माकथनकरा और महा पुरुषसारत्वरूपजो यह आदित्यात्मा ईश्वरकथनकरा है यह दोनो एक रूपकर विद्यात्,, ध्यानकरे सोऽईश्वरात्मा अहंअस्मि ऐसे अहंग्रह उपासना करे साक्षात्कार पर्य्यन्त जिससे इन दोनो का वास्तव एकत्व है इसी वास्ते पुरुष २ प्रति संमुखआदित्य अवस्थित प्रतीत होता है॥ अब आदित्य मण्डल में और अपने शरीर में एक वस्तु बोधक मंत्र को प्रमाण देकर एकत्त्व को दृढ करते हैं।

तदप्येतदृषिणोक्तं चित्रं देवानामुदगादनीकंचक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः॥ आप्राद्यावापृथिवीअन्तरिक्षंसूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ ऋ०मं०१।सू०११५।मंत्र१।

अर्थ,, अध्यात्माऽधिदैवतत्त्वके एकत्त्व को मंत्र ने भी कथनकरा है देवताओं के मध्य में अनीक, मुख्य, चित्र, पूजनीय और मित्रवरुण अग्निकाचक्षुरूप सूर्य्य ‹‹ उदगात्,, उदेति उदय होता है और स्वर्ग पृथिवी अन्तरिक्षलोकको आप्रा, पूर्ण होकर वर्त्तमान है और स्थावर जंगम जगत् का आत्मा है॥ अब चतुष्टय पुरुष उपासक बाध्वऋषिकेमतको समास करते हैं।

एतामन्वु विधांसंहितां संधीयमानांमन्यइतिहस्माहबाध्वः।

अर्थ,, शरीर पुरुषादि अनुक्रम से उक्त प्रकारको अनुसरण करके चित्त में सम्यक् धार्य्यमाण संहिता अर्थात् एकता को मन्ये, चि-

न्तन करता हूं ऐसे बाध्व नामक महर्षि कथन करता भया । इस रीति की अहंग्रह उपासना ऐतरेय आरण्यक में कही है सो उपासना भी पूर्वउक्त संहिता के चालीसवें अध्याय के सतारवें मंत्र प्रतिपाद्य उपासना का विस्तार है चतुर पुरुष उपासना द्वारा ॥

अथ सत्य संभाषण प्रशंसा और प्रतिमा पूजक को जड़ पूजक कथन को तथा प्रतिमा को पाषाण कथन को और शूद्र को वेद विद्या अधिकारित्व कथन को मिथ्याभाषण में पर्य्यवसान निरूपण करते हैं ॥ ५ ॥ प्राजापत्यो हारुणिः सुपर्णेयः प्रजापतिं पितरमुपससार किं भगवंतः परमं वदन्तीति तस्मै प्रोवाच सत्येन वायुरावाति सत्येनादित्यो रोचते दिवि सत्यं वाचः प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात् सत्यं परमं वदंति ॥ तैतरीयारण्यक । प्रपाठक ॥ १० अनु ६३ ।

अर्थ ,, सुपर्णी नामक प्रजापति की भार्य्या का आपत्य आरुणि नाम पिता को प्राप्त होकर पूछता हुआ आप ऐश्वर्य्यादि संपन्न, सर्वोत्तम साधन क्या कथन करते हैं तिसके अर्थ प्रजापति उत्तर वाक्य कहते भये सत्य कर वायु अन्तरिक्ष में चलता है भाव यह है पूर्व जन्म में मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर सत्य वादिता को अपना उत्तम धर्म जानकर श्रद्धा पूर्वक सेवन करके वायु देवता भाव को प्राप्त होकर अपने ऐश्वर्य्य में वर्त्तमान सर्व जगत् को पवित्र करता है तैसे ही आदित्य आकाश में प्रकाशमान है पूर्व जन्म में सत्य धर्म का अनुष्ठान करके सत्य ही वाग् इन्द्रिय की प्रतिष्ठा है और अनृत अप्रतिष्ठा है क्यों कि अनृत वचन की स्थिति नहीं रहती और सत्य में ही प्रामाणिक व्यवहार की स्थिति है इससे सत्य को

ही सर्वोत्तम साधन कहते हैं ॥ सो सत्य क्या पदार्थ है जो प्रत्यक्ष अनु-
मान शब्द प्रमाण कर अनुभूत अर्थ को यथावत् कथन करना सर्व प्रा
णि समूह का उपकारक जानकर ॥ प्रश्न ॥ जब ऐसा सत्य बचन स
र्व को कथन करना उचित है तो मूर्त्ति पूजकों को पाषाण पूजक और मू-
र्त्ति को पाषाणादि कथन करने वाले वादी में क्या अपराध है जो उसको बु-
रा कहते हो और खण्डन करते हो ॥ उत्तर ॥ इस प्रश्न का उत्तर तो ह-
मने वारंवार निरूपण करा है तुम ख्याल नहीं करते क्यों कि यहां मूर्त्ति
मात्र का पूजन नहीं किन्तु मूर्त्ति पूजा का आधार है जिसको शास्त्रीय प-
रिभाषा सें पूजा का अवच्छेदक कहते हैं जिस किसी उपाधि कर अव-
च्छिन्न अर्थात् युक्त देव का पूजन होता है सो पूजा का अवच्छेदक होता
है परंतु वादी के अनुयायी तो स्थूल दृष्टि शास्त्रीय चक्षुशून्य हैं इससे
व्यर्थ प्रलाप करते हैं ॥ भला यह तो कहो तुम भी माता पिता आचार्य्य
का पूजनादि मानते हो तो तुम चेतन पूजक हो अथवा जड़ पूजक हो चे
तन पूजक हो तो जड़ शरीर सें पृथक चेतन का पूजन करना उचित है य
दि प्रत्यक्ष प्रमाण सें जड़ शरीर का पूजन देखकर तुमसें यह कहें कि तुम तो
जड़ के पूजक हो तब तुम यह ही उत्तर देवोगे जो जड़ तो जीव चेतन का नि
वास स्थान है पूजन तो हम चेतन का करते हैं तब यह ही निश्चय हुआ
जो जड़ तो पूजा का अवच्छेदक है सो दोनों स्थान में तुल्य है यदि यह क-
हो जो जीव चेतन तो देह में प्रत्यक्ष है सो असंगत है यदि जीव चेतन देह
में प्रत्यक्ष हो तो शब्द प्रमाण और अनुमान प्रमाण का जीव ज्ञान वास्ते
कथन शास्त्रकारों का व्यर्थ होगा इसी वास्ते पूर्व प्रकरण में वात्स्याय
न ऋषि ने आत्मा को अप्रत्यक्ष कह कर अनुमान प्रमाण और शब्द प्रमा
ण वेद्यत्व कहा है जब जीवात्मा भी शब्दादि प्रमाण गम्य हुआ तो ईश्वर दे

वता भी शब्दादि प्रमाण गम्य है और पूजा का आधार भी दोनो का तुल्य-
है तब वो कौनसी युक्ति है जिस से प्रतिमा पूजक तो जड़ पूजक और तुम
आचार्य्यादि मूर्त्ति पूजक चेतन पूजक हो ॥ और एक और भी विचार है
जिस स्थान में एक विषय में शब्द प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रमाण दोनों प्र
वृत्त होवें तिस स्थान में शब्द प्रमाण निर्दोष होने सें प्रवल और प्रत्यक्ष
प्रमाण सदोष होने सें दुर्वल होता है जैसे चन्द्र मण्डल में चक्षुरूप प्र-
त्यक्ष प्रमाण सें तो वितस्तिमात्र परिमाण चन्द्र मंडल प्रतीत होता है औ
र ज्योतिः शास्त्र रूप शब्द प्रमाण सें शत योजन विस्तृत चन्द्र मण्डल,
प्रतीत होता है तिस में चक्षुरूप प्रत्यक्ष को दूरत्व दोष सहित होने सें दु
र्वलता और निर्दोष शब्द प्रमाण को प्रवलता है तैसे मूर्ति में पाषाण
बुद्धि सदोष प्रत्यक्ष प्रमाण जन्य बाध्य है और वेद प्रमाण जन्य ईश्वर बु
द्धि बाधक है इस सें भी मूर्त्ति को पाषाण कहना वेद वचन विपरीत होने-
सें मिथ्या भाषण है युक्ति विचार वा श्रुति विचार सें सर्वथा मूर्त्ति में पा
षाण बुद्धि अथवा मूर्त्ति पूजा में पाषाण पूजा बुद्धि मिथ्याज्ञान भ्रमरू
प है ॥ इसी प्रकार शूद्र को वेदविद्याधिकारित्व ज्ञान भी वादी को
भ्रम है अथवा शूद्र को वेद विद्या का अधिकारित्व प्रतिपादन वादी
का प्रमाद है क्योंकि प्रामाणिक पुरुष को श्रुति स्मृति प्रमाण सें वि-
रुद्ध कथन करना असत्य संभाषण है और श्रुति स्मृति रूप प्रमाण
में वेद सें अतिरिक्त विद्या का अधिकारी तो शूद्र है परंतु वेद विद्या का
अधिकारी नहीं प्रतीत होता । तथाहि ।

श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च । शा । अ १ ।
पा ३ । सूत्र । ३८ ।

सूत्रार्थ,, लौकिक सामर्थ्य युक्त होने सें त्रैवर्णिक वत् शूद्र को वेद

विद्या का अधिकार है अथवा नहीं इस संशय की निवृत्ति वास्ते कहते हैं शूद्र को वेद विद्या का अधिकार नहीं क्यों कि श्रवण अध्ययन वास्ते निषेध होने सें तथा निषेध बोधक स्मृति प्रमाण सें शूद्र वेद विद्या-का अधिकारी नहीं है श्रवण निषेध बोधक वाक्य ॥

अथास्य वेद मुपश्रृण्वतस्त्र पुजतुभ्यां श्रोत्र पूरणं प-द्युह वा एतत् श्मशानं यच्छूद्रस्तस्मात् शूद्र समीपे ना-ध्येतव्यमिति।

अर्थ ,, अथ, यदि वेदाध्ययन करते द्विजातिओं के समीप शूद्र प्र-माद सें वेद को सुने तब राजा तिसके कान में सीसा अथवा लाख को ड-लवाय कर पूरण करे । क्यों कि पद्यु अर्थात् पाद युक्त श्मशान है जो शू-द्र है तिससे शूद्र समीप वेद अध्येतव्य नहीं यह श्रुति तो शूद्र को वेद श्रवण का निषेधक है ॥ स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम् ,, यह श्रुति अ-ध्ययन के निषेध का बोधक है ॥

बध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जप होम परश्च यः ॥ ततो राष्ट्र स्य हंतासौ यथा वन्हेश्च वै जलम् । अत्रिस्मृति १९ ॥

अर्थ ,, राजा करके वो शूद्र बध के योग्य है जो गायत्री जप और अग्नि होत्र परायण है क्यों कि तिस गायत्री जप अग्नि होत्र सें शूद्र देश का ना-शक होता है जैसे अग्नि का जल , और गायत्र्यादि मंत्र जप सें अतिरिक्त गुरु उपदिष्ट मंत्र जप तो शूद्र को भी कर्त्तव्य है । इसी वास्ते अथर्व वेदी-य भृगुशाखोपनिषत् नृसिंह तापनी में गायत्र्यादि अंग मंत्र उपदेश के निषेध द्वारा मंत्रराज की उपासना में स्त्री शूद्र का अधिकार शंकराच-र्यजी कहते हैं । तथाहि ।

सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रायनेच्छंति द्वात्रिंश

दक्षरं सामजानीयात् योजानीते सो ऽमृतत्वंचगच्छ-
तिसावित्रींलक्ष्मींयजुः प्रणवंयदिजानीयात् स्त्रीशूद्रः
सम्रतो ऽधोगच्छति । तस्मात् सर्वदानाचष्टेययाचष्टे
स आचार्य्यस्तेनैवमृतो ऽधोगच्छति । पू० ता० उप १।

खं ३।

शंकरभाष्य, सावित्रीं प्रणवंयजुर्लक्ष्मींस्त्रीशूद्राय 'स्त्रीच शूद्रश्च स्त्रीशूद्रंतस्मै स्त्रीशूद्रायनेच्छन्तीतिनिषेधंकुर्वन् प्रधानोपासनायांस्त्रीशूद्रस्याप्यधिकारं दर्शयति । द्वात्रिंशदक्षरं सामजानीयादितिद्वात्रिंशदक्षराणांसामसंबन्धंविधत्ते । योजानीते इत्याद्युक्तार्थम् सावित्रींलक्ष्मींयजुः प्रणवं यदिजानीयात् स्त्रीशूद्रःसम्रतः 'अधः' नरकं गच्छतीति प्रत्यवायदर्शनेननिषेधंद्रढयति । तस्मात् सर्वदा नाचष्टइतिकदाचिदपिनाचष्टइत्याचार्य्यस्य निषेधंदर्शयति । ययाचष्टे स आचार्य्यः 'तेनैव' कथनेनमृतो ऽधो गच्छतीति प्रत्यवाय दर्शनेन निषेधमेव द्रढयति ॥ ३॥

भावार्थ॥ सावित्री मंत्र जो कि इस उपासना का अंगभूत सविता का मंत्र है 'घ्रणिः सूर्य्य आदित्यः' सो यह मंत्र रेफको एक अक्षरमानकर अष्टाक्षर है । और प्रणव, ओंकार और 'ओंभूर्लक्ष्मीः स्वःकालकर्णीतन्नोमहालक्ष्मीः प्रचोदयात्' । यह यजुर्लक्ष्मी मंत्र है शंकराचार्य्यजी कहते हैं स्त्री शूद्र के वास्ते सावित्री आदितीन अंगमंत्रोंको आचार्य्य उपदेश करने की इच्छा नहीं करते ऐसे अंगमंत्र निषेधसे जानते हां जो प्रधान साम मंत्र की उपासना में अधिकार स्त्री शूद्र का भी है और द्वात्रिंशदक्षरं सामजानीयात् इस कथन सें बत्तीस अक्षर का साम मंत्र जानना तिसी को मंत्रराज भी कहते हैं तिसका स्वरूप यह है ।

'उग्रंवीरंमहाविष्णुंज्वलन्तंसर्वतोमुखं नृसिंहंभीषणंभद्रंमृत्युंमृत्युंनमाम्यहम्॥

जो स्त्रीशूद्र इन तीन अंगमंत्रोंकोजानेगा सो मरकर नरक में प्राप्त होगा इसवास्ते सर्वदा नहीं कथन करते और यदि दुराग्रह सें आचार्य्य कथन करे तब वो आचार्य्य नरकको प्राप्त होता है इससे सर्वदा निषेध को दृढ़ करते हैं इसस्थानमें यह वार्त्ता विचारकरनाजो शंकराचार्य्य अपने में सत्यवक्तृत्ताजनायगये क्यों कियदि उनको स्त्री शूद्रको वेदमंत्र उपदेशमें द्वेष होतातोमूल मंत्र में अधिकार नकहते केवल अंग मंत्रों में निषेध को देखकर मूलमंत्रमें अर्थसिद्ध अधिकारको बोधन करा है क्यों कि आचार्य्य वेदकी आज्ञासे अन्यथा एक मात्राभीनहींलिख सकते अब प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध हुईजो व्यास सूत्रस्वरूप निषेधकी मूलभूतश्रुति वाक्यतथास्मृति वाक्य सेंशूद्रकोवेद विद्याका अधिकारनहीं और जो यह कहा है स्त्री शूद्रौ नाधीयातां यह श्रुति किसी प्रामाणिकग्रंथकी नहींइसवास्ते कुए में पडो सो महा धूर्त्तता है क्योंकि 'श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च' यह व्यास सूत्रतोतुमारेकल्पित प्रमाणिकग्रंथका है इसकामूल तो कोई भीश्रुति बचनश्रवण और अध्ययनका निषेधकमानना होगा सो यह वचन भी अध्ययन श्रवण के निषेधक हैं तिनको तुमारे कल्पित प्रामाणिक ग्रंथ में तुम मिथ्या वादिओं को न देखने से अप्रामाणिक नहीं कह सकते और तुमने जो ग्यारह सौ सत्ताईस शाखा अपने ग्रंथ में (६०१ सत्यार्थप्रकाशकी पृष्ठ में देखो) मानी है सो अपने अन्तर्यामी को साक्षीकरके होतो देखलीनी सोतो दोचारभी नहीं देखी होंगी और जिन मूलवा-

क्यों के सूचक व्याससूत्र मिलें तिनको कल्पित्त कैसे कह सकते हैं। इसवास्ते शूद्र को वेद विद्या का अधिकारी कहना केवल वादीका-प्रमाद है ॥ प्रश्न ॥ वेदवचन मंत्ररूप प्रमाण सें सर्व को वेद विद्या का अधिकार कहते हैं क्यों कि वेद वाक्य की अपेक्षा सें ब्राह्मण बचन सूत्र स्मृति निर्बल हैं वेद वाक्य को चित्त को लगा कर देखिये॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूं वैसे तुम भी कियाकरो। यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्यों कि स्मृत्यादि ग्रंथों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णों को नहीं (उत्तर) (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्त्य वा स्त्रियादि (अरणाय) अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है सत्या० पृ ७४ स ३॥ इस प्रमाण कर शूद्र को वेद विद्या का अधिकारी कहते हैं। (उत्तर) प्रथम तो तुम सें यह प्रष्टव्य है जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र शब्द मंत्र में जाति के बोधक हैं अथवा जो कि तुमने पचीसवें वर्ष में परीक्षा सें नियत करी है ब्राह्मणादि जाति तिसके बोधक हैं (सत्या० पृ ८८ स ४) यदि प्रथम पक्ष क होगे तो ब्राह्मणत्वादि जाति सिद्ध होगयी जो कि तुमारी

स्वकपोलकल्पित वर्ण व्यवस्था है सो संपूर्ण दत्तजलांजलि होगयी और यह भी विचारना चाहिये जो यह उपदेश आदि में होना चाहिये अथवा अन्त मे होना चाहिये मध्य में कैसे क्यों कि ' इमाम् ' यह शब्द प्रयोग समीप वस्तु का बोधक है सो अबी तक चतुर्वेद विद्या समीप है नहीं वक्ष्यमाण है और यदि गुणकृत वर्ण व्यवस्था को मानकर मंत्र में ब्राह्मणादि शब्द कहेंगे तब ब्राह्मणत्त्वादि अन्य में ब्राह्मणादि शब्द प्रयोग करने सें ईश्वर भ्रान्त होगा क्यों कि तुमारे सिद्धान्त में तो पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण है सो अबी तक हुआ नहीं और जो पूर्ण विद्वान् है तिसको वेद विद्या उपदेश रूप ईश्वर की आज्ञा निष्फल है और शूद्र शब्द तमोगुण विशिष्ट का वाचक है तिसको भी वेद विद्या उपदेश की आज्ञा निष्फल है और अरण शब्दार्थ जो अति शूद्र है तिसमें तो सर्वथा उपदेश निष्फल है क्यों कि जैसे ऊखर भूमिका में वीज प्रक्षेप वा जल सेचन निष्फल है वैसे ही शूद्र और अतिशूद्र में उपदेश निष्फल है। इसवास्ते ऐसे असंगत अर्थ को ईश्वर की तो क्या कथा है विना वादी सें दूसरा पुरुष भी उपदेश नहीं कर सकता इसवास्ते इस मंत्र को समग्र लिखकर यथावत् अर्थ दिखलाते हैं। तथाहि ।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नमतु ॥ य० अ० २६ मंत्र २।

पद ॥ यथा इमाम् वाचम् कल्याणीम् आवदानि जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्याम् शूद्राय च अर्य्याय च स्वाय च अरणाय च प्रियः देवानाम्

दक्षिणायै दातुः इहभूयासम् अयम् मे कामः सम् ऋध्यताम् उपमाअद नमतु।

अर्थ,, इस मंत्र में इमां इस इदम् शब्द प्रयोग सें
अग्निश्च पृथिवीचसंनतेतेमे संनमतामदो वायुश्चान्त
रिक्षंचसंनतेतेमे संनमतामद आदित्यश्चद्यौश्चसंन-
तेतेमे संनमतामद आपश्चवरुणश्चसंनतेतेमे संनम
तामदः सप्तस १ सदो ५ अष्टमीभूतसाधनीसकामा २॥५
अध्वनस्कुरुसंज्ञानमस्तुमे ऽमुना॥१॥

इस पूर्व मंत्र में स्थित भूतसाधनीवाणी का अध्याहार करना तब मंत्र का यह अर्थ हुआ। यज्ञके अन्तसमय में यजमान अपने भृत्य को कहता है दक्षिणायै यथेमां भूतसाधनींकल्याणीं वाचंजनेभ्यः आवदानि तथात्वंकुरुइति शेषः। भाव यह है। (दक्षिणायै) दानके वास्ते जनोके अर्थ (इमांभूतसाधनींकल्याणींवाचं) भूतों को वशकरने वाली कल्याणीवाक् को दीयतांभुज्यतां इत्यादि रूप जैसे मैं कहताहूं तैसे तूकर किन जनो के अर्थ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र (अरण) पराए (स्वाय) अपने के अर्थ। भाव यह है। सर्व को प्रिय बचन पूर्वक दान देना ऐसे करने सें देवताओं का तथा (दातुः) परमेश्वर का मैं प्रिय होवेंगा इस संसार में यह मेरा काम धनादि लाभरूप समृद्धि को प्राप्त हो और (अदः) परलोक सुख (उपनमतु) प्राप्त हो और यदि गप्याचार्य्यका ही अर्थ मानेंगे तो कथन करने वास्ते परमेश्वर की वाणी भी माननी होगी जब वाणी हुई तो शरीर भी होगा। और वेदाविर्भाव प्रसंग में अग्नि आदिक ऋषिओं के अन्तर्वेद का प्रादुर्भाव परमेश्वर ने करा इस अपने लेखको भी झूठ ही कहना होगा क्योंकि जब इस मंत्र उप

देशवत् अग्नि आदिक को उपदेश कर सकते थे तो अन्तर्वेद का प्रादुर्भाव कहना असंगत है इससे गप्याचार्य्यजी औरों में अविद्यादिखलाते हुए अपनी अविद्या को नहीं देखते इसवास्ते शूद्र को वेद पठन पाठन का उपदेश कथन करना अशुचि में शुचिबुद्धि रूप अविद्या है।

पूर्व उक्त मंत्र का भावार्थ,, अग्नि और पृथिवी वायु और अंतरिक्ष आदित्य और द्यौः आप और वरुण यह अग्नि पृथिवी आदि आठ दो २ संनत नाम परस्पर संबद्ध हैं वे सर्व मेरे अमुक काम को संनमतां नाम वश करे तथा हे सर्वाधिष्ठान परमात्मन् तुमारे पंच ज्ञानेन्द्रिय और मनो बुद्धि यह सप्त संसद नाम आश्रय हैं तथा अष्टमी भूत साधनी अर्थात् सर्व भूतों को वश करने वाली वाणी आपका आश्रय है मेरे मार्गों को काम सहित करो और इष्ट से मेरा संयोग हो और जो ये कथन करते हैं परमेश्वर रचित शूद्रादि को परमेश्वर की वेद विद्या न बतलाने में क्या विषमता है तो उनसे यह पूछा चाहिये परमेश्वर रचित अपनी सुंदर रूपवती कन्या देने में क्या विषमता है जो कुलीन अधिकारी तिसका रक्षक पोषक उत्तम पात्र खोजा जाता है जिसको चाहिये तिसको ही देना चाहिये ग्राहक तो बहुत से हैं इससे शास्त्रीय सर्व व्यवहार में शास्त्रीय सामर्थ्य की अपेक्षा है जिस किसी को वेद विद्या कथन का हठ करना श्रुति स्मृति ऋषि मुनि की आज्ञा भंग कर आर्य्याभासों में महा अविद्या है ॥

अथ अवतार आक्षेप पूर्वक अनादि जीव जन्मवत् युक्ति तथा मंत्र प्रमाण कर ईश्वरावतार निरूपण करते हैं ॥ ६ ॥

पूर्व प्रतीकोपासना के प्रसंग में सामवेद मंत्र प्रमाण से और षड्विंश ब्राह्मणगत चक्रपाणये स्वाहा इस मंत्र प्रमाण से हस्त पादादि अव

यव सहित मूर्तिमान् अवतार सिद्ध होता है परंतु इसमें प्राचीन वेदान्ति मानी अपनी प्रचलित बुद्धि सें आक्षेप करते हैं ॥ तथाहि ।

प्रश्न ॥ ईश्वर तो बहुत सी श्रुति में अज और व्यापक श्रवण करा जाता है तब अवतार रूप जन्म लेना कैसे हो सकता है । उत्तर । कठवल्लि उपनिषद् में जीवात्मा भी अज और व्यापक श्रवण करा जाता है तब जीव का ही जन्म कैसे होता है इस का ही प्रथम निर्णय कर्त्तव्य है क्योंकि जीव के जन्म में विवाद नहीं सर्व के मत में स्वीकृत है परंतु अज और व्यापक श्रुति प्रतिपादन भी करती है । तथाहि ।

नजायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥ हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥ उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ॥ तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ २० ॥ कठ० उप० वल्लि २

श्रुत्यर्थ ,, (विपश्चित्) सर्व का द्रष्टा जीवात्मा जो कि पूर्व वात्स्यायन भाष्य में लिखा है ' सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वानुभावः ' इत्यादि वाक्य सें और ' यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः ' इत्यादि मैत्र्युपनिषद् सें निर्णीत है सो जन्म मरण रहित है और यत्न आप किसी से नहीं उत्पन्न होता और न इस से ' कश्चित् ' कुछ भी उत्पन्न होता है अज नित्य एकरस पुराण ' वृद्धि रहित है और शरीर के नाश सें इस का नाश नहीं होता । १८ । यदि कोई हनन कर्त्ता पुरुष हो हनन कर्त्ता आत्मा को चिन्तन करता है तैसे यदि कोई हत हुआ आत्मा को ह

त चिन्तन करता है वे दोनों आत्मा के यथावत् स्वरूप को नहीं जानते क्योंकि यह आत्मा न हनन करता है किसी को न हनन होता है किसी सें। १६। इस जन्तु की (गुहा) पंचकोशरूप गुफा में (निहित) स्थित यह आत्मा अणु सें भी अणुतर है तात्पर्य्य यह है दुर्लक्ष्य है इस से अणुतर कहा परंतु बड़े आकाशादि सें (महीयान्) महत्तर है (धातुःप्रसादात्) ईश्वर की प्रसन्नता सें (अक्रतुः) विषयभोग संकल्परहित पुरुष आत्मा को देखता है। (तदाआत्मनो महिमानं दृष्ट्वा वीतशोको भवति) यह अन्वय है।

अर्थ, आत्मा की महिमा, महत्त्व जन्मादि रहितत्व नित्यत्त्व एक रसत्व वृद्धिवर्जितत्त्व इत्यादि स्वरूप लक्षण विभूति को देखकर वीत शोक होता है ऐसे आत्मरूप प्राप्त हुए शोक की संभावना ही नहीं। इस स्थान में यह निर्णय हुआ जो अज और व्यापक ईश्वर बहुत सी श्रुति में सुना जाता है इससे ईश्वर का जन्मरूप अवतार नहीं बनता यह युक्ति ही वादी ने भी प्रतिपादन करी है। तथाहि। और युक्ति सें भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता जैसे कोई अनंत आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्यों कि आकाश अनंत और सब में व्यापक है इससे न आकाश वाहर आता और न भीतर जाता वैसे ही अनंत और सर्व व्यापक परमात्मा के होने सें उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता जाना वा आना वहां हो सकता है जहां न हो क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं सें आया और बाहर नहीं था जो भीतर सें निकला ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्या हीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा इसलिये परमेश्वर का जाना आना जन्म मरण क-

भी सिद्ध नहीं हो सकता सत्या० समु ७ पृ १८१ ॥ इस आक्षेपका प्रति बंधिउत्तर दिया जो श्रुति में जीवात्माको भी अजव्यापक मरणादि वर्जित प्रतिपादनकरा है तिसकाही जन्म निर्णयकरो और जिस कणाद ऋषि के मत सें वादी ने जीव का स्वरूप लिखा है मंत्र के नमिले पर तिस ऋषिके सूत्र (अ ७। आ १। सूत्र २२) में भी व्यापक आत्मा का स्वरूप लिखा है। वैसेही।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ यो। पा १। सूत्र २॥

इस सूत्र के भाष्य में व्यासभगवान् लिखते हैं।

"चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमादर्शितविषयाशुद्धाचानन्ताच"॥

भाष्यार्थ, ‘ चितिशक्ति ’ जीवचेतन अपरिणामी है ‘ अप्रतिसंक्रमा ’ क्रियारहित है ‘ दर्शित विषया ’ सर्वविषयोंका द्रष्टा है शुद्ध है औरअनंत ’ व्यापक है इस प्रकार व्यासतथा कणादऋषिकेमतमें जीवचेतन व्यापक है और जीवकाजन्मवे मानते हैं इससे व्यापक काजन्मनहीं होता यह कथनकैसे होगा क्योंकि व्यापक आत्माकाजन्म व्यास कणादतथाश्रुति वचन प्रति पाद्यव्यापकजीवात्माका जन्मतुम भी मानोगे क्योंकि वेदवचन तुमको भी मंतव्य है तब जीवात्मा के जन्मकी व्यवस्थाकर्त्तव्य है ॥ प्रश्न ॥ हम ऋषिबचनके बंधेहुए नहीं जैसा युक्तिसें बनसकता है वैसा मानते हां जन्ममरण आना जाना परिच्छिन्न पदार्थ में बनसकता है इसवास्ते जीवात्माकास्वरूप व्यापक नहीं मानते । उत्तर । तबतो यह विचार कर्त्तव्य है विभुपदार्थ सें भिन्न अणु परिमाणवान् वा मध्यम परिमाणवान् होता है आत्मा अणु परिमाण है अथवा मध्यम परिमाण है प्रथम पक्ष में

तो सारे शरीर में शीतल जल संयोगसें शीतस्पर्शकी प्रतीतिन हींहो
नीचाहिये क्यों कि आत्मा अणु है सो एक देश में स्थित होकर शीत
काज्ञानकर सकता है आत्मरहित अंगों में शीत स्पर्श काभान कैसे
होगा ॥ प्रश्न ॥ आत्मा यद्यपि एक देश में है तथापि जैसे कस्तूरी
कीगंध सर्वत्र विस्तृत होती है तथा आत्माका ज्ञान गुण सर्वत्रवि-
स्तृत है इस से शीत स्पर्श की सर्वत्र प्रतीति होसकती है अथवा
जैसे सूर्य्य प्रभा वाला द्रव्य है तथा आत्मा भी प्रभाव द्रव्य है। उत्तर।
यह नियम है गुण अपने आश्रय को त्यागकर अन्यत्र गमन नहीं कर
सकता क्यों कि गुण में क्रिया होती नहीं और कस्तूरी दृष्टान्त में भी-
कस्तूरी के सूक्ष्म अवयव विस्तृत होते हैं इसी वास्ते कस्तूरी कर्पूरादि
द्रव्य रक्षक तिसको बंधकर किसी आवरक पात्र में रखते हैं और ज
ब वो द्रव्य रक्षक प्रमाद सें आवरक पात्र में न रक्खें तो न्यून भी क-
स्तूरी कर्पूरादि हो जाते हैं और प्रभा कुछ गुण नहीं किंतु विरल प्रका-
श प्रभा है और घन प्रकाश सूर्य्य है ऐसे ही आत्मा को मानने सें ज्ञान
रूप ही सिद्ध होगा सो ज्ञान एकरस है कहीं सघन और कहीं विरल ऐ
सा कहना बनता नहीं यदि अनेकरस मानेंगे तो अनित्यत्व प्रसक्ति हो
गी और सर्वथा अणुवादी के मत में क्रिया तो जरूर माननी होगी तब
'अचलोयंसनातनः' इत्यादि भगवद् वचन विरोध होगा। और आ-
त्मा विनाशी क्रियावत्त्वात् घटवत् इस अनुमान प्रमाण सें विनाशि-
त्व प्रसक्ति तो अवश्य होगी। और मध्यम परिमाण पक्ष में स्पष्ट ही
जन्यत्व विनाशित्वादि दोष हैं। आत्मा जन्यः मध्यम परिमाणवत्त्वा-
त् आत्मा विनाशी मध्यमपरिमाणवत्त्वात् घटवत् इस वास्ते अनादि
जीवात्मा को मान कर मध्यम परिमाण कैसे मानेगा क्यों कि मध्यम

परिमाण मानने सें जन्यत्त्व की प्रसक्ति होगी इससे विना इच्छा सें भी वादी को श्रुति और कणादऋषि और व्यास वचनानुसार आत्मा को व्यापक और अज अवश्य मानना होगा जब व्यापक तथा अज जीवात्मा मानना पड़ा तो जन्म शंका ईश्वर वत् जीव में भी बन सकती है जो जीव का ही जन्म कैसे। इस शंका का समाधान शास्त्र संस्कार शून्य और अनुपासित ब्रह्म निष्ठ गुरु वादी वा वादी के अनुयायी तो कैसे कर सकते हैं इसवास्ते व्यास सूत्र लिखकर हम आपही समाधान करते हैं। तथाहि।

चराचरव्यपाश्रयस्तुस्यात्तद्व्यपदेशोभाक्तस्तद्भावभावित्त्वात् ॥ २॥ अ० २ पा० ३ सूत्र १६॥

उत्त्पद्यते जीवो म्रियते चेति तस्य जन्ममरणस्य व्यपदेशः प्रत्ययो भाक्तो गौणः कुत्रतर्हि मुख्य इत्याशंक्याह चराचरव्यपाश्रयस्तु मुख्यः चराचर शरीराश्रयस्तु जन्ममरण प्रत्ययो मुख्यः स्थावरजंगमानिहि भूतानि जायन्ते म्रियन्ते चाऽतस्तद्विषयौ जन्ममरण शब्दौ मुख्यौ संतौ तत्स्थे जीवात्मन्युपचर्य्येते तद्भावभावित्त्वात् शरीर प्रादुर्भावतिरोभावयोर्हिसतोर्जन्ममरण शब्दौ नासतोः। नहि देहसम्बंधादन्यत्र जीवो जातो मृतो वा केन चिल्लक्ष्यत इति सूत्रतात्पर्य्यम् ॥ एवञ्च जीवस्यैव जन्मनः प्रातीतिकत्त्वे परमेश्वरस्य जन्मावतारे श्रुतिस्मृति प्रतिपादिते सति परमेश्वर जन्मनः प्रातीतिकत्त्वे स्वीकारेऽजत्वश्रुतिर्वास्तवाजत्त्वमीश्वरे जीवे वा बोधयतु का हानिरितिनिर्विवादतया व्यासभगवदाशयं बुध्वा निरीक्षणीयं सूत्रसंकेतं विनाश्रुत्यर्थनिर्णयस्तु वर्षशतेन महतायत्नेनापि न भवतीति बोध्यम् ॥

भावार्थ,, जीव उत्पन्न हुआ और जीव मरता है ऐसे जन्ममरण की

प्रतीति होति है परंतु यह अनादि सिद्ध जीव में जन्म मरण प्रतीति गौण है तब मुख्य किसमें है इस वास्ते कहते हैं चर और अचर शरीर में मुख्य है क्यों कि स्थावर जंगम शरीर उत्पन्न होते हैं और मरते हैं इस से तिन शरीरों में जन्म मरण का शरीरस्थ जीवात्मा में उपचार होता है क्यों कि स्थावर जंगम शरीर के जन्म मरण के साथ आत्मा में जन्म मरण प्रतीति का अन्वय व्यतिरेक है जब स्थावर जंगम शरीर उत्पन्न होते हैं तब जीवात्मा में जन्म मरण प्रतीत होते हैं नहीं उत्पन्न होवें स्थावर जंगम भूत तब तो जीवात्मा में जन्म मरण प्रतीत होते नहीं क्यों कि देह सम्बंध से और स्थान में जीव के जन्म मरण किसी को प्रतीत होते नहीं यह सूत्र का तात्पर्य्य है तब प्रकरण में यह निश्चय हुआ जो जीवात्मा के जन्म को जब प्रातीतिक माना तब ईश्वर का जो अवतार रूप जन्म तिसके प्रातीतिक मानने में क्या हानि है और जो अजत्व बोधक श्रुति है सो वास्तव अजत्व को ईश्वरात्मा में अथवा जीवात्मा में बोधन करो क्या हानि है समसत्ता वाले विरोधी पदार्थ एक स्थान में नहीं रह सकते विषम सत्ता वाले तो एक अधिकरण में भी रह सकते हैं ऐसे व्यासजी का तात्पर्य्य जान कर श्रुत्यर्थ करना चाहिये सूत्र रूप संकेत सें विना तो बीच में ही भ्रमण करा करो निश्चय होना श्रुत्यर्थ कठिन है । इसी वास्ते वादी ने व्यासजी के तात्पर्य्य को न जानकर ईश्वरात्मा में जन्मादि असंभव मान कर जीवात्मा में वास्तव जन्म बनाने वास्ते जीव परिच्छिन्न माने हैं अपनि अचलित बुद्धि सें परंतु यह नहीं जानता जो अनादि का जन्म वास्तव माने सें अनादित्व ही भंग होगा क्यों कि पूर्व सिद्ध पदार्थ का वास्तव जन्म नहीं हो सकता जिस पदार्थ का किसी बी रूप सें अभाव हो तिसका जन्म वास्तव हो

ता है ॥ प्रश्न ॥ जीवका तो लिंगोपाधिविशिष्टरूप है तिसके धर्माध
र्मका फल जब स्थावर जंगम शरीर उत्पन्न हुआ तो जन्मका भान जी-
वात्मा में हो सकता है और ईश्वरात्मा में धर्माधर्म तो नहीं हैं तब धर्मा
धर्म का फल शरीर भी नहीं हो सकता जब शरीर का प्रादुर्भाव न हुआ
तो जन्म व्यवहार कैसे होगा । उत्तर । यह तुमारा कहना सच है धर्मा
धर्म सें जीव शरीर की उत्पत्ति होती है परंतु इस स्थान में यह निर्णत
व्य है जो धर्माधर्म स्वतंत्र ही जीव शरीर जन्म के हेतु हैं वा ईश्वर की इ-
च्छादि द्वारा शरीर के हेतु हैं । यदि स्वतंत्र होवें तो ईश्वर का अंगीकार
निष्फल होगा और स्वतंत्र फल देने को समर्थ भी नहीं हैं क्योंकि धर्मा
धर्म जड़ हैं इस वास्ते ईश्वर की इच्छादि द्वारा ही फल देते हैं यह मंत
व्य है जब ऐसे भी माना तब भी धर्माधर्म में कोई विचित्र शक्ति माननी चा
हिये जो पूर्ण काम ईश्वर में इच्छा करा देती है इसी वास्ते परमात्मा
जगत् की उत्पत्ति पालना संहार करता है जब धर्माधर्म की शक्ति के
प्रभाव सें ईश्वर में इच्छादि माने तो ईश्वर की इच्छा ऐसी हुई जो ऐ-
से २ शरीर सर्व को प्रतीत होवें तब उस इच्छा से जो शरीर साक्षात् शु
द्ध सत्त्व प्रधान प्रकृति सें हुआ तिसके जन्म कर परमात्मा में जन्म व्य
वहार हुआ इसी को परमात्मा का अवतार कहते हैं । तो जब तुमने
पूर्ण काम परमात्मा में जीव के धर्माधर्म सें इच्छादि द्वारा जगत् की उ
त्पत्ति पालना संहार का करता ईश्वरात्मा माना तो अवतार के मानने
में क्यों दुराग्रह करते हो । प्रश्न । जगत् की उत्पत्ति पालना संहार
कर्त्तृत्त्व बोधन करने वाले वाक्य तो अनंत हैं परन्तु अवतार बोधक
मंत्रों सें विना अवतार को कैसे माना जाय । उत्तर । अवतार बोध-
क वाक्य तो हमने पूर्व अनंत ही लिखे हैं क्योंकि यजुर्वेद की मैत्रायणी

शाखा के वाक्यों से जहां गुण त्रय के ब्रह्मा रुद्र विष्णु अवतार प्रथम गुणावतार कहे सो तो गुणावतार कहे जाते हैं और साम संहिता के मंत्र सें वामनावतार कहा तथा षड्विंश ब्राह्मण के मंत्र सें चक्रपाणि कहने सें अवतार कहा है अब और भी अवतार प्रतिपादक मंत्र लिखते हैं तिन को सुनकर अपनी चित्त की मलिनता को दूर कर प्रेम सें परमेश्वर के राम कृष्णादि नाम कीर्त्तन करो । तथाहि ।

रूपंरूपं प्रति रूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय ॥
इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता
दश ॥ म० ६ अ० ४ सू० ४७ ॥ मं० १८ ।

अर्थ,, इन्द्रः परमैश्वर्य्यवान् परमेश्वरो मायाभिः स्वाश्रितानंतशक्तिभिः 'पुरुरूपः' नृसिंह राम कृष्णादि रूपः 'ईयते' गम्यते कस्मै प्रयोजनाय स्वशक्तिभिस्तत्तद्रूपमाविष्क्रियते परमेश्वरेणेत्यत आह तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय अस्य स्वस्य भक्तवात्सल्यादि विशिष्टस्य रूपस्य प्रति चक्षणाय सर्वेषां पुरतः प्रख्यापनाय ईदृश गुण विशिष्टोऽहमिति सर्वेषां प्रत्यक्षबोधनाय ननु मायया रचितै रूपैः कथं स्वगुण प्रख्यापन मित्यत आह रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव यादृशं यादृशं रूपं प्रादुर्भावयति तत्सदृश एव भवतीति स्वशक्तिरचितस्य रूपस्य स्वानतिरिक्तत्वात् तन्निष्ठ भक्तवात्सल्यादि गुणानां स्वनिष्ठत्वादितिभावः ननु कति विधानी दृशानि रूपाणीत्यत आह युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश हि निश्चयेन अस्य परमेश्वरस्य हरयः संसारस्य दुःखस्यासुरैः प्रापितस्य हरणात् नाशनात् युक्ता जगद्रक्षणाय नियुक्ता शता शतानि नामानं तानि संति तथा दश नृसिंहादयो दश संतीत्यर्थः

भाषार्थ ॥ परमात्मा अपनी शक्तिओं कर अनंत अवतारादि रू

प होकर प्रतीत होता है अपने प्रभाव को प्रत्यक्ष कराने वास्ते जैसे जैसे रूपको माया प्रादुर्भाव करती है तत्सदृश होकर आपभी प्रतीत होता है और इस परमात्मा के जगत् रक्षक अनंत ही रूप जगत् की रक्षा में नियुक्त हैं और दशरूप तो अति प्रसिद्ध हैं ॥

विष्णोर्नुकं वीर्य्याणि प्रवोचंयः पार्थिवानि विममे रजांसि ॥ यो अस्कभाय दुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ ऋ० मण्ड १। अ २१। सू० १५४। मं १।

पद ॥ विष्णोः नुकं वीर्य्याणि प्रवोचंयः पार्थिवानि विममे रजांसि-यः अस्कभायत् उत्तरं सधस्थं विचक्रमाणः त्रेधा उरुगायः ॥ दीर्घतमा औचथ्यः । ऋषिः । विष्णुर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः ॥

अर्थ, नु इति वितर्के विष्णोः परमेश्वरस्य व्यापकस्य कंकानि वीर्य्याणि पराक्रमाणि प्रवोचं वदामि नैव शक्यन्ते वदितुं केनापि तेषाम प्रमितत्वात् । यः त्रेधा त्रि प्रकारं विचक्रमाणः पादन्यासं कुर्वन् सन् पार्थिवानि भूमि सम्बंधी निरजांसि रजोगुण प्रधानानि स्थावर जंगमानि भूतानि विममे शब्द यतिस्स माङ् मानेशब्देचेति धातोः रूपं विममइति किञ्चयः सधस्थं सह मध्ये तिष्ठतीति सधस्थस्तं सधस्थमन्तरिक्षं उत्तरं स्वर्गञ्च अस्कभायत् अरोत्सीत् उरुगायो बहुभिर्देवर्षिभिर्गीयत इति उरुगायः सर्वैः स्तुत्य इत्यर्थः ॥

भाषार्थ ॥ दीर्घतमा ऋषि कहता है विष्णु सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के कौन कौन से पराक्रम को कथन करें अनंत रूप परमेश्वर है और तिसके पराक्रम भी परिमाण रहित हैं जो परमात्मा तीन प्रकार से पाद न्यास करता हुआ भूमि में जितने स्थावर जंगम भूत हैं तिन सर्व को शब्द युक्त किया भाव यह है वामन भगवान् जब भूमि में अपने अलौकिक

पादको स्थापन करातब सर्व भूतों में शब्द होनेलगा जैसे परम वेगसें महान् पक्षि वृक्षपर पादस्थापन करे तब वृक्ष में स्थित दूसरे अल्प पक्षि शब्दकरते हैं तैसे वामनभगवान् जब पादभूमि में स्थापन करात बसर्वभूमिस्थभूतों में यथायोग्यशब्द हुआ और अन्तरिक्षतथास्वर्ग में पाद स्थापनकर तिनको निरोधकरा सर्व देवतातथा ऋषियों करकेस्तवन योग्य हैं ॥

प्रतद्विष्णुःस्तवते वीर्य्येण मृगोनभीमःकुचरोगिरिष्ठाः। यस्योरुषुत्रिषुविक्रमणेष्वाधिक्षिपंतिभुवना निविश्वा ॥ऋ०म०१अ२१।सू१५४।मं२॥

पद॥ प्रतत् विष्णुःस्तवते वीर्य्येण मृगःनभीमःकुचरःगिरिष्ठाः यस्य उरुषुत्रिषु विक्रमेणेषु अधिक्षिपंतिभुवनानि विश्वा॥

अर्थ, मृगोनमृगइवतद्विष्णुःवीर्य्येण पराक्रमेण प्रस्तवते स्तुतिं प्राप्नोति भीमःभयानकरूपधरःनृसिंहःअतएव मृगइवेत्युक्तिःसंगच्छते कुं पृथिवीं नृसिंहादि रूपेणचरतीतिकुचरःगिरौकैलासे शिवत्रिनेत्ररूपेणतिष्ठतीति गिरिष्ठाःयस्य विष्णोःत्रिविक्रमावतारेत्रिषुपादेषुविक्रमणेषुसत्सुविश्वासर्वाणि चतुर्दशभुवनानि अधिक्षिपंतिचलंतीवेत्यर्थः॥

भावार्थ, मृगवत् नृसिंह रूपधारी परमेश्वर अपने पराक्रमकर स्तुति को प्राप्त होता है पृथिवीमें विचरता है। नृसिंहादिरूपसें कैलासमें शिवरूपसे निवासकरता हुआ त्रिविक्रम अवतारमें तीन पाद न्याससे चतुर्दश भुवनकोकंपायमानकरता है ॥

विष्णोःकर्म्माणि पश्यत यतोव्रतानि पस्पशे॥ इन्द्रस्ययुज्यःसखा अथर्व०कां६।अनु०२६ मं२॥

अर्थ, भोजना विष्णोः परमेश्वरस्य कर्म्माणि सृष्टि पालना संहार रूपाणि तन्मध्ये ऽवतारजनितचरित्राणि यूयं पश्यत यतोयस्मात्सर्वो पिजनः परमेश्वरस्य जन्मकर्म्मसम्बंधीनिब्रतानिपस्य शेस्पृशतिसम नुतिष्ठतीत्यर्थः। इन्द्रस्य युज्यः स्वकार्य्येभक्त्यास्वाधीनीकृत्यनि योक्तुं योग्यः सखा अर्जुनस्य कृष्ण इव श्रीवामन इन्द्रस्य स्वर्गाधिपते रनुकूलः॥

भाषार्थ, हे जनो विष्णु सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के कर्म्मों को देखे सृष्टि पालना संहार के मध्य में जो परमेश्वर के जगत् रक्षा वास्ते अव-तार हैं तिनके चरित्र को देखो जिस्से सर्व ही जन परमेश्वर के जन्मकर्म सम्बंधि ब्रतों को सेवन करते हैं।

कृष्णंत एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदे कं॥ यदप्रवीतादधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः॥ ऋ० मण्ड० ४। सू० ७ मं० ९॥ अ० १।

पद॥ कृष्णम् ते एम रुशतः पुरः भाः चरिष्णुः अर्चिः वपुषाम् इत् एकम् यत् अप्रवीता दधते ह गर्भम् सद्यः चित् जातः भवसि इत् उ दूतः

अर्थ,, कृष्णंत एम इति हे भूमन् तेतब रुद्ररूपेण पुरस्तिस्रोरु शतो नाशयतः यद्वा पुरः स्थूल सूक्ष्म कारण देहान् ग्रस्तस्तुर्य्यस्व-रूपस्य यत्कृष्णं भाः सत्यानंदचिन्मात्रं रूपं तत् एम प्राप्नुयाम यस्य ए-क मित् एकमेव अर्चिर्ज्वालावदं शमात्रं समष्टिजीवं वपुषां देहानां अ नेकेषु देहेषु चरिष्णुर्भोक्तृरूपेण वर्तते यत्कृष्णं भाः अप्रवीता नास्ति प्रकर्षेण वीतं गमनं संचारो यस्याः सा अप्रवीता निरुद्धगतिर्निगडेग्र-स्ता देवकीत्यर्थः। कृष्णाय देवकी पुत्रायेति छांदोग्ये देवक्या एव

कृष्ण मातृत्व दर्शनात् सागर्भं स्वगर्भं दधते धारयति दध धारणे इत्य-
स्य रूपं ह प्रसिद्धं सः त्वं जातः गर्भतो बहिराविर्भूतः सन् सद्य इदु स-
द्य एव उ निश्चितं दूतः दुनोतीति दूतः मातुः खेदकरोऽति वियोग दुः
ख प्रदो भवसीत्यर्थः एतेन देवकी पतेर्वसुदेवस्य गृहे जन्म धृतमि
ति सूचितम् ॥

भाषार्थ, वामदेवादि जीवन् मुक्त कैवल्य पति भगवान् की प्रा
र्थना करते हैं हे भूमन् आपका जो सत्यानंद चिन्मात्र रूप है और रुद्र
रूप से तीन पुर को नाश करने वाला वा स्थूल सूक्ष्म कारण देह को ग्र-
सने वाला रूप तुरीयात्मा तिस कृष्ण भा रूप को हम प्राप्त होवें जिस
आपके स्वरूप की एक ही अर्चि अर्थात् ज्वालावत् अंश मात्र समष्टि
जीव अनेक देहों में चरिष्णु अर्थात् भोक्तृरूप कर वर्तमान है और जो कृ-
ष्ण भा को अप्रवीता अर्थात् निगड में ग्रस्त देवकी गर्भ रूप से धारण क
रती भयी इसी वास्ते छांदोग्य के तृतीय प्रपाठक में कृष्णाय देवकी पु-
त्राय ऐसे श्रीकृष्ण की देवकी माता सुनी जाती है हे भूमन् आप प्रसि
द्ध ही गर्भ से प्रादुर्भूत होकर तत्काल ही वियोग जन्य दुःख देने वाले
हुए इस कथन सें यह निश्चय कराया जो देवकी पति वसुदेव के गृह में
जन्म धारण किया और महेश्वरा वतार भी इसी मंत्र सें बोधन किया
तथा जीव को पूर्व निरूपित चिदंशत्व बोधन किया जानना ॥९॥

सद्यो जातस्य ददृशा नमोजो यदऽस्य वातो अनुवाति
शोचिः ॥ वृणक्ति तिग्मामत्सेषु जिह्वां स्थिरा चिद-
न्नादयते विजम्भैः ॥ ऋ० मं० ४ अ० १ सू० ७ मं० १० ॥

पद ॥ सद्यः जातस्य ददृशानम् ओजः यत् अस्य वातः अनुवाति-
शोचिः वृणक्ति तिग्माम् अत्सेषु जिह्वाम् स्थिरा चित् अन्नादयते विजम्भैः ॥

अर्थ, अनेनेदमेव प्रकटयति सद्योजातस्येति सद्योजातस्य शिशोः श्रीकृष्णस्य श्रोजः सामर्थ्यं ददृशे इति ददृशानं दृष्टपूर्वइत्यर्थः यत् शोचिर्ज्वाला अत्से षु शुष्कतृणेषु वातो अनुवाति संवर्द्धयति तत् अस्य शिशोः तिग्मां जिव्हां अनु इत्यनुकृष्यते तां प्राप्येत्यर्थः वृणक्ति वर्जयति तेन नश्यतीत्यर्थः स्थिरा चिदन्नायया पायसाद्यन्नं तद्वदित्यर्थः तत्र हेतुमाह दयते विजम्भैरिति एवमयं सद्योजातो विजंभैर्हिंस्रै र्हेतुभिर्विशेषणै र्दयत्ते तैः पीडितं लोकं पालयति। अतो कारुणिको ऽयमेव शरणीय इत्यर्थः॥

भाषार्थ,, इस द्वितीय मंत्रकर श्रीकृष्णको शरणीयत्व ही प्रकट करते हैं जो कि तात्कालिक जात श्रीकृष्ण के सामर्थ्य को हमने देखा है कदाचित् किसी असुरकर शुष्क तृणों में अग्निकी ज्वाला वृद्ध भयी और वायुकर प्रौढ़ हुई पश्चात् वो ज्वाला श्रीकृष्ण की विव्हा-को प्राप्त होके नाश होजाती भयी उस अग्नि ज्वाला के पानमें दृष्टान्त कहते हैं जैसे पायसादि स्थिर अन्नको शीघ्र ही भक्षण करलेते हैं वैसे ही असुर प्रज्वालित अग्नि ज्वालाको पान कर गये इससे हिंसक हेतुओं सें यह श्रीकृष्ण रूप साक्षात् भगवान् पीडित लोककी अपनी शक्ति रूप विशेषणों कर रक्षा करते हैं इससे महा कृपालु यह ही शरण करने को योग्य हैं ॥१०॥ इस रीति सें अवतार प्रतिपादक अनेक मंत्र हैं परन्तु ग्रंथकी वृद्धि के निषेध वास्ते सज्जन पुरुषों को रीतिमात्र जनाई है सो इन मंत्रों में से प्रथम मंत्रमें त्रिधा विक्रमण पृथिवी में यावत् शरीर कंपन पूर्वक शब्द कराना अन्तरिक्ष स्वर्ग में पाद स्थापन करना द्वितीय में मृग तुल्य नृसिंह रूप सें पृथिवी में विचरना तृतीय में इन्द्रका सखा रूप सें उपकारक होना चतुर्थ में देवकी प

ति वसुदेव गृह में जन्म लेना पंचम सें अग्निज्वाला का पान कर अप
ने भक्तों की रक्षा सें प्रपंच का पालक होना और इन पांच मंत्रों सें प्रथम
एक मंत्र सें परमेश्वरावतारों को असंख्येयत्व कहा इत्यादि प्रमाणों
को सुनकर भी जो दुराग्रह सें ईश्वर का अवतार न मानें तो अपनी अ-
विद्या सें पड़ो कुए में हमारी क्या हानि है । कोई कुतर्की यह आक्षेप
करते हैं जो प्रतिमा कित्तनी लंबी और कितनी चौड़ी और कितने अ-
वयवों वाली बनानी चाहिये इस शंका का उद्धार भी इसी प्रकरण-
में होगया क्यों कि परमेश्वर के अवतार अनंत हैं जैसी २ आकृति अ
वतारों की इतिहास पुराणादि सें मालूम होवें तिस २ आकृति के प्र-
तिबिम्ब को धारण करने वाली प्रतिमा बनानी चाहिये जब वेद मंत्रों
सें परमेश्वर के अवतार निश्चित होगये तो तिन मंत्रों के व्याख्यान रूप
इतिहास पुराण को न मानना महा धूर्तता है ॥

अथ पराभिमत ईश्वर को औपाधिक स्वीकार में भी औ
पाधिक शब्द के अवयवार्थ निरूपण से सर्व इष्ट सिद्धि
और वाद्यभिमत स्वतंत्र जड़ प्रकृति को उपादान कारण
ताखण्डन और पराभिमत जीवस्वरूप को अनात्मता नि-
रूपण करते हैं ॥७॥

महाबीर प्रसाद मंत्री कलकत्ता आर्य्य समाज का पांच सहस्र रूपया
मूर्ति पूजा वेद मंत्रों सें समाधान करता को देने की मिथ्या प्रतिज्ञा वाला
अब बहुत विद्वज्जनों के उद्योग को देखकर अपने गुरु वादी की चाल-
को आश्रय करके यह लिखता है ॥

तद्ब्रह्म हि निराकारमेव वेदे प्रतिपादितमाकारकल्प
नं त्वौपाधिकारोपणमात्रमेव न तु वास्तविकं तदाकृ-

तिमद्रूपम् । १ १६ जनवरीसन् १८८६ पृ ४ पंक्ति ८,,
अर्थ, सोब्रह्मवेद में निराकारही प्रतिपादनकराहै परंतु आकारकल्पना तो औपाधिक आरोपणमात्र है वास्तव आकारवत् रूप ब्रह्मका नहीं। तात्पर्य्य तिसका यह है निराकारतो ब्रह्मका वास्तव रूप है और आकार वत् रूप जो कि पूर्व मंत्रों में प्रतिपादन करा है सो आरोपित है यह पक्षही शंकरभगवान् का है तात्पर्य्य अन्तरीवतिसकाय ह है जो कि शंकर मतको आश्रयकर विद्वज्जनों के प्रहारको बचाऊं कुछ शंकरमत में विश्वास नहीं काहेते वादीके जाल में फसा है तिसमें यह विवेचन करना चाहिये जो औपाधिक शब्द का अर्थ क्या है इसवास्ते औपाधिक शब्दकी सिद्धि पूर्वक औपाधिक शब्दके अर्थको निरूपणकरते हैं पाणिनिऋषिके मतसें। तथाहि।

प्राग्वहतेष्ठक् ।४।४।१।तेनदीव्यतिखनतिजयति
जितम् ।४।४।२।तरति।४।४।५।चरति।४।४।८॥

सूत्रों का अर्थ यह है तद्वहति इससूत्रसे पूर्वठक् प्रत्ययकाअधिकारजानना।१। तृतीया विभक्त्यन्त पद सें ठक् प्रत्यय हो दीव्यति खनति जयति जितम् इनअर्थों में।२। ऐसेहीतरति इसअर्थ में तृतीया विभक्त्यन्त पदसें ठक् प्रत्यय हो।५। औरचरति नाम गच्छतिअथवा भक्षयति इसअर्थमें ठक् प्रत्यय हो।८। इससेइनसूत्रोंसें उपाधि शब्द से ठक् प्रत्यय करने सें औपाधिक शब्दके अवयवार्थ करने से संपूर्ण इष्टअर्थ सिद्ध होते हैं। तथाहि। १ उपाधिना स्वसामर्थ्येननानाविधैरूपैः क्रीडतीत्यौपाधिकः। अथवा उपाधिना दीव्यतिनाम विजिगीषतीत्यौपाधिकः वाउपाधिना व्यवहरतीत्यौपाधिकः वाउपाधिनाद्योतत्त इत्यौपाधिकः वाउपाधिनास्तौतिभक्तजनान् प्रशंसती

त्यौपाधिकः वाउपाधिनामोदतइत्यौपाधिकः वाउपाधिनामदत्ती
त्यौपाधिकः वाउपाधिनाशेते क्षीराब्धावित्यौपाधिकः वाउपाधि-
ना इच्छतीत्यौपाधिकः वाउपाधिनागच्छति प्राप्नोतिजानातीत्यौपा
धिकः अथवा उपाधिनाखनति दुष्टजनान् हिरण्यकशिपु प्रभृतीन्
नाशयतिनिर्मूलं नखैर्विदारयतीत्यौपाधिकः वाउपाधिनाजयति स-
र्वोत्कर्षेण वर्त्तते इत्यौपाधिकः वाउपाधिनाजितं सम्पादितं रूपमित्यौ
पाधिकं वा उपाधिनातरति समुद्रं रावण बधायेत्यौपाधिकः वाउपा-
धिना चरति जानाति गच्छति प्राप्नोतीत्यौपाधिकः वाउपाधिनाभक्ष-
यति सर्व मुपसंहरति स्वस्मिन् विलापयतीत्यौपाधिकः ऐसे औप-
पाधिक शब्द के अवयवार्थ विचारसें सनातन धर्मावलंबियोंका इष्ट
अर्थ साकार रूप परमात्मा का सिद्ध होता है जिसका निषेध करना-
आर्य्याभासों की अविद्या है जो कि आर्य्याभासों ने जगत् की उत्पत्ति पाल
ना संहार कर्त्ता परमेश्वर माना है सोभी औपाधिक शब्द वाच्य है इस
स्थान में यह निर्णेतव्य है आरोपित औपाधिक रूप परमात्मा का अवा
स्तव कहा वहां आरोपकरताकौन है तथा उपाधि आरोपनिमित्त कौन
है यदि जीव परमात्मा के औपाधिक रूपका आरोप कर्त्ता कहें तो संभ-
वे नहीं क्यों कि जीव आरोपित रज्जु सर्पादि लोक में प्रतीति मात्र शरीर-
होते हैं तथा वेद में जीव को ईश्वर स्वरूप कल्पकत्त्व अप्रसिद्ध है। इस
वास्ते परमेश्वर के औपाधिक रूपका कल्पक जीव नहीं होसकता ज
ब जीव न हुआ तो अपना कल्पक आप है इसी वास्ते परमेश्वर का नाम
स्वयंभू है तथा आत्मयोनि स्वयंजात इत्यादि नाम हैं अब उपाधि भी नि
र्णेतव्य है जिस उपाधि से परमेश्वर का औपाधिक रूप आरोपित प्रती-
त होता है। परमेश्वर से भिन्न है अथवा अभिन्न है वा उभय विलक्षण अ-

चिन्त्य शक्ति है। प्रश्न। अभिन्न पक्ष तो असंगत युक्ति विरुद्ध है क्यों कि जड़ और चेतन का अभेद प्रमाण विरुद्ध है और उभय विलक्षण कोई वस्तु ही नहीं इससे ब्रह्म से भिन्न जड़ प्रकृति जगत् उपादान कारण परमेश्वर के आरोपित रूप का प्रदर्शक उपाधि है। तथाहि।

अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांबह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः॥ अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेतेजहात्येनांभुक्तभोगामजोऽन्यः॥

यह उपनिषद् का वचन है। सत्या० पृ २०९ । उत्तर। वादीने सत्या० पृ ६९, दश उपनिषद् मानी है और यह वचन है श्वेताश्वतर उपनिषद् का तब ब्रह्म भिन्न जड़ प्रकृति साधने वास्ते श्वेताश्वतरउपनिषद् भी वादी को माननी पड़ी और, सत्या० पृ ९, कैवल्य उपनिषद् का वचन लिखा है और। सत्या० पृष्ठ १९८, अपाणि, इत्यादि वचन श्वेताश्वतर का माना है। और, सत्या० पृ० १९६, समाधि, इत्यादि वचन मैत्र्युपनिषद् का माना है॥ जब अपने अर्थ की सिद्धि करने वास्ते और उपनिषद् भी मानने पड़े तो दश उपनिषद् ही प्रमाण मानने वादी का अज्ञान है और जब मंत्र के न मिलने से इष्ट अर्थ की सिद्धि वास्ते उपनिषद् वचन स्वीकार करे तो मंत्र ही स्वतः प्रमाण मानता हूं और को परतः प्रमाण मानता हूं यह प्रतिज्ञा भंग होगयी प्रतिज्ञा भंग करके भी जड़ प्रकृति की सिद्धि इस श्रुति से नहीं होसकती। तथाहि।

पद॥ अजाम् एकाम् लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानाम् सरूपाः अजः हि एकः जुषमाणः अनुशेते जहाति एनाम् भुक्तभोगाम् अजः अन्यः॥

सिद्धान्तरीति का श्रुत्यर्थ,, अजावत् अजारूप जो एक लोहित

शुक्लकृष्ण रूपवाली प्रकृति है अर्थात् रक्त शुक्लकृष्ण रूपवाली तेज जल पृथिवी रूप सद्रूप ब्रह्म कार्य्य भूतत्रय रूप प्रकृति अपने समान रूपवत् बहुतसी प्रजाको उत्पन्न करती को अनुत्पन्न साक्षात्कार एक अज अर्थात् जीव सेवन करता हुआ तिसके पश्चात् गमन करता है अर्थात् अपने करणग्राम सें भोक्ता है प्रकृति को और भुक्त भोग इस प्रकृतिको उत्पन्न साक्षात्कार जीव दूसरा त्याग देता है अब इस स्थान में यह विचारो जो रक्त शुक्ल कृष्ण रूपवाली प्रकृति है सो अनादि अर्थात् अजन्य है यह किसकी बुद्धि में आ सकता है विमता प्रकृतिः जन्या रूपवत्त्वात् घटवत् इस अनुमान सें सादि सिद्ध होती है। इसवास्ते इस श्रुति वचन सें अनादि प्रकृति नहीं सिद्ध हो सकती और इस वाक्य से पूर्व वाक्य को देखने सें ब्रह्मतादात्म्यापन्न भिन्नाभिन्न विलक्षण प्रकृति सिद्ध होति है। तथाहि ।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥ श्वेताश्वतरउपनिषद् अध्याय १ मंत्र ३

श्रुत्यर्थ,, वे ब्रह्मवादि ब्राह्मण योगाभ्यास करके परमात्मा में अनुगत अर्थात् प्रविष्ट होकर देव परमात्मा की आत्मरूप शक्ति तादात्म्य सम्बंध से वर्त्तमान अपने कार्य्यों करके आच्छादित्त को योगज प्रत्यक्ष सें देखते हुए इस कहने से भिन्ना भिन्न विलक्षण अचिन्त्य शक्ति सिद्ध होगयी। प्रश्न। पूर्व उक्त श्रुति में यदि जन्य प्रकृति का ग्रहण करोगे तो अजात्व कैसे। उत्तर। इस श्रुति में कल्पना करके अजात्त्व है अजावत् अजा है जैसे लोक में कोई अजा नाम छागी लोहित शुक्लकृष्ण रूपवाली अपने तुल्य प्रजा पैदा करे और तिसके पश्चात् कश्चित् अजगमन करता है कश्चित् अजछाग भुक्तभोग को त्याग देता है तद्व

त् यह प्रकृति है इस प्रकार की अजात्व कल्पना ही सूत्रकार व्यास-जी अपने सूत्र सें बोधन करते हैं। तथाहि।

कल्पनोपदेशाच्चमध्वादिवदविरोधः॥ शा। अ १। पा ४। सूत्र १०

सूत्रार्थ, अजावत् अजा ऐसी कल्पना का उपदेश अजा मंत्र में होनेसें अविरोध है जैसे प्रकरणान्तर में असधु आदित्य को देव मधु कहा है और अधेनु वाग् को धेनु कहा है केवल कल्पना करके देवताओं का मोदन हेतु होने सें मधु और सर्वकामना पूरक होने से धेनु आदित्य और वाक् को कहा है।

वादीकृत अजाश्रुत्यर्थ, प्रकृति और जीव तथा परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सर्व जगत् के कारण हैं इनका कारण कोई नहीं इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फसता है और उसमें परमात्मा न फसता और न उसका भोग करता है। सत्या० पृ २०६॥ इस वादी के श्रुत्यर्थ सें यह सिद्ध हुआ जो प्रकृति जीव परमात्मा इन तीनो का जन्म नहीं होता ऐसे श्रुति व्याख्यान सें यह निश्चय होता है वादी ने एक अज शब्द जीववाचक है और द्वितीय अज शब्द ईश्वर का वाचक है इस श्रुति में यह निश्चय करा है परंतु यदि ईश्वर का इस श्रुति में ग्रहण करेंगे तो 'जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः' इस श्रुति भाग की असंगती होगी क्यों कि 'भुक्तोभोगो यया सा भुक्तभोगा तां भुक्तभोक्तां एनां प्रकृतिं जहाति' भोग लिया है भोग पूर्वकाल में जिसकर तिस प्रकृति को त्याग देता है ऐसे अर्थ होने सें परमेश्वर में सुख दुःख साक्षात्कार रूप भोग मानना असंगत

है इसवास्ते इस श्रुति वाक्य में अनुत्पन्न साक्षात्कार और उत्पन्न साक्षात्कार जीवों का ग्रहण है और जीव चेतन को इस वचन में जन्म रहित कहा और स्थानान्तर में जीव के जन्मादि वादी ने स्वीकार करे हैं । तथाहि ॥ प्रश्न ॥ जीव शरीर सें भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न १ । उत्तर । परिच्छिन्न जो विभु होता तो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति मरण जन्म संयोग वियोग जाना आना कभी नहीं हो सकता । सत्या० पृ० १८३ ॥ इस वादी के लेख सें जीव के जन्मादि सिद्ध होते हैं और अजा श्रुत्यर्थ से जन्म का अभाव प्रतीत होता है इस अपने विरोध परिहार वास्ते वादी को किंचित् विचार कर्त्तव्य रहा सो नहीं करा यह भी तिसकी अविद्या है और जीव परिच्छिन्न माना है तिसमें अनंत दोष हैं सो पूर्वही निर्णीत हैं परिच्छिन्न जीव को मानना जैन मत है यदि परिच्छिन्न परिमाण जीव है तो कौन से शरीर के तुल्य मानोगे यदि पुरुष शरीर तुल्य माना तो हस्ति चींटी आदि शरीर में प्रवेश की व्यवस्था नहीं होगी यदि संकोच विकाश स्वभाव मानोगे तो विकारित्वादि प्रसक्ति सें विनाशी वा जन्य सिद्ध होगा इससे सर्वथा वादी स्वीकृत परिच्छिन्न अनादि नहीं सिद्ध हो सकता । और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति वाला जीव माना तिसमें देखना चाहिये जाग्रत् क्या पदार्थ है जागृ निद्राक्षये इस धातु के अर्थ सें निद्रा के नाश का नाम जाग्रत् और निद्रा का नाम सुषुप्ति और मध्य अवस्था का नाम स्वप्न है निद्रा का लक्षण पतंजलि जी लिखते हैं ॥ तथाहि ॥

अभाव प्रत्ययालंबना वृत्तिर्निद्रा ॥ यो । पा । १ । सूत्र १०

सूत्रार्थ, अभाव का जो प्रत्यय कहिये कारण अज्ञान तिसको आ

लंबन करने वाली जो मनकी वृत्ति तिसका नाम निद्रा है अब देखना चाहिये वादीका अज्ञान जो जाग्रत् तो मनकी प्रमाणादि वृत्ति है और केवल विपर्य्यय वृत्ति स्वप्न है जिसकी वृत्ति हैं तिसका आश्रय भी वो है इससे जीवात्मा में जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति जाना आना मानना वादी का अज्ञान है इससे वादी में अनात्मा में आत्म बुद्धिरूप अविद्या है। इस वास्ते ऐसा आत्मा सुखी दुःखी जागने सोनेवाला बेर बेचनी वाली कोंजरी भी जानती है क्या यह आत्मा ही योगिजन कहा करते हैं इससे यह केवल जाल है जो मैं अमुक योगिराज सें योग सीखा था योग सीखा होता तो योगशास्त्र में प्रतिपाद्य इत्यादि विकार सहित मनको आत्मा न कहता। क्या ऐसे आत्मा के निश्चय से ब्रह्माभेद कहने से हृदि वेदना होती है ऐसे तुमारे आत्मा को कोई भी ब्रह्म नहीं। कहता किन्तु जन्मादि प्रबंधा रूढ़ लिङ्ग शरीर कहते हैं ब्रह्माभेद सुनकर उद्वेग मत करना। प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध हुई जब ब्रह्म भिन्न जड़ अनादि प्रकृति रूप उपाधि न सिद्ध भयी और कल्पक भी ब्रह्म भिन्न दूसरा न हुआ तब अपनी विचित्र शक्ति कर अपने रूपका कल्पक आपही सिद्ध हुआ अब अपनी विचित्र शक्ति निर्मित अनंत परमात्मा अवतार औपाधिक रूप ध्येय सारूप्य सामीप्यादि मोक्षप्रद सिद्ध हुए। अवतारो नास्ति परमेश्वरस्य यह कथन केवल मूर्खता का सूचक है यह वार्त्ता भी सिद्ध हुई॥

अथ पूर्वपक्ष प्रविष्ट श्रुति वचनों करके वादिपक्ष खण्डन और नेह नाना, इत्यादि तथा सर्वं खल्वु, इत्यादि श्रुति का वादि कृत व्याख्यान खण्डन और यथावदर्थ प्रतिपादन और वादि संमत सगुण

निर्गुणखण्डनादि निरूपण करते हैं ॥ ८ ॥ ॥

वादी ने ब्रह्म को जगत् उपादान कारणता निषेध करने वास्ते और ब्रह्म भिन्न प्रकृति के उपादानता की सिद्धि वास्ते अद्वैत वेदान्ती की तरफ़ से स्वकल्पित पूर्वपक्ष लिखा है परंतु उस पूर्वपक्ष प्रविष्ट वाक्यों कर वादी का मत खण्डन हो सकता है सो जैसे खण्डन होगा तैसे निर्णय होगा अबी तो वादी कल्पित पूर्व पक्ष दिखलाते हैं ॥

। प्रश्न । सदेवसोम्येदमग्रआसीत् । १ । असद्वाइदमग्रआसीत् २ आत्मावाइदमग्रआसीत् ३ ब्रह्मवाइदमग्रआसीत् ४ ।

ये उपनिषदों के वचन हैं ० हे श्वेतकेतो । यह जगत् सृष्टि-के पूर्व सत् १ असत् २ आत्मा ३ और ब्रह्म रूप था पश्चात् ४

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति १ सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति २

यह तैत्तिरीयो पनिषद का वचन है (इन दो दूटों को तैतिरीय वचन कथन भी वादी का असंगत है क्यों कि प्रथम श्रुति वचन छांदोग्य का और द्वितीय तैतिरीय का है) वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहु रूप होगया है १ । २ ।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ।

यह भी उपनिषद का वचन है जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है उसमें दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्म रूप है । सत्या । पृ २१० । यह पूर्वपक्ष अपने आप कल्पना करके वेदान्ती अद्वैत वादी ब्रह्म से अभिन्न प्रकृति वादि के मत का लिखा है परन्तु ऐसी आनुपूर्वी श्रुति बचनों की कहीं नहीं

देखी जाती किन्तु टूटटूट वचन जहांतहां के लेकर कल्पना करा है सो जहां २ की श्रुति की टूट २ लेकर लिखी है सो दिखावेंगे सर्व इत्यादि जो दो टूटों की एक श्रुति कल्पना करी सो भी अपनी प्रचलित बुद्धि सें कल्पना करी है यदि किसी ग्रंथ की हो तो तिसका पता लिखना चाहिये था परंतु पता लिखा नहीं और जो कदाचित् किसी ग्रंथ में हो तो भी दो श्रुति वाक्य मिलाकर ऐक्य वाक्यता के वास्ते हैं सो जैसे ऐक्यवाक्यता है तैसे दिखलाते हैं फिर दूसरी श्रुति वचनों के पते लिखकर प्रकरणानुकूल अर्थ करेंगे। जैसे वादीने ही।

सर्वंखल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।

यह छांदोग्य की श्रुति लिखी और

नेहनानास्तिकिंचन

यह कठ की श्रुति लिखि सो ठीक है परन्तु यह दोंनों श्रुति वचनही वादी के मन के ध्वंसक हैं तथाहि नेह इत्यादि श्रुति का अर्थ वादी ने यह लिखा है " इस चेतन मात्र अखण्डैक रस ब्रह्म रूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है किन्तु येसब पृथक् २ स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं। सत्या० पृ० २१० में देखो ॥ अब इस श्रुति के अक्षरों के अर्थ में दृष्टि देना चाहिये। इह नाना किंचन नास्ति ऐसा अन्वय होने सें। इह अर्थात् इस ब्रह्म में नाना किंचन अर्थात् कुछ भी पृथग्भूत वस्तु नास्ति नहीं है जैसे लोक में कहते हैं " इह मृदि घटादिकं किंचन नाना नास्ति अर्थात् पृथग्भूतं नास्ति किन्तु मृदेव घटादि रूपेण प्रतीयते " पृथग् अर्थान्तर नहीं है किन्तु मृत्तिका ही घटादि रूप करके प्रतीत होती है और इस ब्रह्म में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है किन्तु येसब पृथक् २ स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं इतना कौन से पद का अर्थ है।

किन्तु किसी श्रुति प्रविष्ट पदका अर्थ नहीं केवल अपने मनकी घडंत-घड़ी है वादी ने और परमेश्वर के आधार में स्थित हैं इसका तो यह अर्थ प्रतीत होता है जो कोई परमेश्वरका आधार है तिसमें स्थित हैं तो क्या परमेश्वर का भी कोई आधार दूसरा है सो तो असंगत है क्यों कि सर्वका आधार तो परमात्मा आप है तिसका दूसरा आधार कौन है और जो यह कहा नाना वस्तुओं का मेल नहीं सो भी असंगत है क्यों कि पंच भूतों के मेल विना कोई भी कार्य्य सिद्ध होता नहीं इसी वास्ते त्रिवृत्त करण पंचीकरण होकर सर्व कार्य्य होते हैं इस से वादी का श्रुत्यर्थ प्रत्यक्षादि प्रमाण विरुद्ध है । और समग्र श्रुति को देखना चाहिये जिससे साफ़ २ वादी का अर्थ, जाल प्रतीत होवे और वादी के मत का खण्डन श्रुति ही करती है ऐसा प्रतीत हो विना विचारे मूर्खों को वादी की कल्पना सच्ची प्रतीत होती है ॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ॥ मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ कठ० उ० वल्ली ४। मं। ११।

श्रुत्यर्थ॥ विवेक युक्त मन करके ही अखण्डैकरस ब्रह्म प्राप्त होने के योग्य है इह ब्रह्मणि किञ्चन नाना नास्ति इस ब्रह्म में कुछ भी पृथग्भूत वस्त्वन्तर नहीं है जो सर्वाधिष्ठान सर्व प्रपंच का सारांश ब्रह्म है तिसमें नाना इव पृथग्भूत वस्तु तुल्य कुछ भी ब्रह्म भिन्न आत्मा को वा प्रपंच को देखता है सो मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है भाव यह है भेददर्शी को अखण्डैक रस ब्रह्म के बोधन होने से पुनः पुनः जन्ममरण होगा इससे इसी श्रुति सें वादी स्वीकृत वास्तव भेद पक्ष का खण्डन होता है-अब सर्वं इत्यादि श्रुति का वादी यह अर्थ लिखता है। हे जीव तू ब्रह्म

की उपासना कर जिस ब्रह्म से जगत् की उत्पति स्थिति और जीवन हो ता है जिसके बनाने और धारण सें यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्म से सह चरित है उसको छोड़ दूसरे की उपासना न करनी ॥ अब इस श्रुति पदों को समझ कर देखना जो कितना जाल है वादी की व्याख्या में ॥

पद ॥ सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म तज्जलान् इति शान्तः उपासीत् ॥

अर्थ,, इदं सर्वं ब्रह्म यह संपूर्ण ब्रह्म है । इदं शब्द प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध वस्तु का बोधक है जैसे कोई पुरुष कहे यह संपूर्ण कटक स्वस्तिक कुण्डलादिक सुवर्ण हैं सो यहां सुवर्ण कटकादि का उपादानोपादेयभाव है ॥ शंका ॥ इसका अर्थ यह नहीं किन्तु यह संपूर्ण ब्रह्म अर्थात् ब्रह्म में स्थित हैं ऐसी शंका निवृत्ति के वास्ते तज्जलान् यह विशेषण है अर्थ यह है तस्मात् जायते तस्मिन् लीयते तस्मिन् अनिति चेष्टते तज्जलान् भाव यह है तिस ब्रह्म से ही उत्पन्न होकर तिसी में लीन होता है और तिसमें ही चेष्टा करता है जिसमें कार्य्य का लय होता है सो उपादान कारण होता है यथा किसी निमित्त सें मेघ का जल ओले होकर फिर ओले जल में लीन होजाते हैं अर्थात् जल रूप होजाते हैं और कटकादि सुवर्ण में लीन होकर सुवर्ण होजाते हैं कंटक ओले - आदि का आदि मध्य अन्त में सुवर्ण वा जल ही तत्त्व है इसी प्रकार जब जगत् का तज्जलान् यह विशेषण कहा तो ब्रह्म जगत् का उपादान कारण निश्चय होगया तब ब्रह्म में जगत् स्थित है परंतु ऐसे है जैसे सुवर्ण जल में कटक और ओला है इसी वास्ते ब्रह्म और जगत् के अभेद का साधक सर्वं ब्रह्म यह सामानाधिकरण्य भी श्रुति में संगत होता है जब ऐसा सर्वात्मा ब्रह्म है तब ऐसे ही उपासना करनी योग्य है यह उपासना क

विधायक श्रुति है अब कहना चाहिये जब ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण श्रुतिसें निश्चित होगया तब ब्रह्मभिन्न प्रकृति मानना असंगत है और ब्रह्मसे सहचरित है यह कथन तो सर्वथा असंगत है काहेते सर्वं ब्रह्म इसवाक्यसें इस अर्थकी प्रतीति संपूर्ण व्याकरण के ज्ञाता वादी से विना और किसको होसकती है और जब इस समग्र श्रुति-को देखेंगे सत्पुरुष तब ब्रह्मजगत् का उपादान कारण स्पष्ट प्रतीत होगा। तथाहि।

सर्वंखल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत॥ अथ खलुक्रतुमयः पुरुषोयथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषोभवतितथेतः प्रेत्यभवतिसक्रतुंकुर्व्वीत॥१॥ मनोमयः प्राणशरीरोभारूपः सत्त्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्म्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः॥२॥ एषमआत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वायवाद्वासर्षपाद्वाश्यामाकाद्वाश्यामाकतण्डुलाद्वा एषम आत्मान्तर्हृदयेज्यायान् पृथिव्याज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान् दिवोज्यायानेभ्योलोकेभ्यः॥३॥ सर्वकर्म्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एषम आत्मान्त हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीतियस्यस्यादद्धानविचिकित्साऽस्तीतिहस्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः॥४॥ छांदोग्य० उप० प्रपा० ३॥

अर्थ,, उपासीत यहां तक श्रुत्यर्थ होगया अब शिष्य पूछता है कैसे उपासना करे उत्तर, सक्रतुंकुर्वीत, सो उपासक क्रतु अर्थात् निश्चय

रूप संकल्प करे जो यह वार्त्ता ऐसी ही है अन्यथा नहीं ऐसे निश्चय क
रके ब्रह्मकी उपासना करे निश्चय करने से क्या होगा यहां कहते हैं वेद
भगवान् अथ खलु नाम जिस हेतु सें क्रतुमय पुरुष है अर्थात् संकल्प प्र-
धान पुरुष होता है जैसे संकल्पवाला इसलोक में पुरुष होता है वैसेही
प्राण वियोग सें उत्तर काल में होता है अर्थात् जैसे भावकी अपने में भाव-
ना करता है वैसे भावको प्राप्त होता है अब या दृशगुण विशिष्ट ब्रह्म इ-
स श्रुति में उपास्य है वैसे गुणों को दिखलाते हैं वेदभगवान् मनोमय-
अर्थात् मनः प्रधान मन उपाधि विशिष्ट प्राण शरीरः प्राण अर्थात् ज्ञान औ
र क्रिया शक्ति विशिष्ट सोई है शरीर जिसका ऐसा ब्रह्म उपास्य है ॥ भा
रूप, प्रकाश स्वरूप और सत्य संकल्प है इस विशेषण से संसारी जी
वकी व्यावृत्ति बोधन करी आकाशवत् व्यापक और सर्वकर्मा अर्था-
त् सर्व विश्व है कर्म्म नाम कार्य्य जिसका और दोषरहित सर्वकाम-
ना युक्त और सुखकर सर्वगंधयुक्त और दिव्य सर्वरसयुक्त (सर्वम्
इदम् अभिआत्तः, इस सर्व को चारों ओर से व्याप्त होरहा है (अवा
की अनादरः, वाग् उपलक्षित सर्व इन्द्रिय वर्जित है (नास्ति आदरो
ऽभिलाषा कस्मिन्नपि पदार्थे यस्य सः, अर्थात् आप्तकाम है (एषमे
आत्मा, यह मेरा स्वरूप भूत आत्मा है यह ध्यान का आकार है भावय
ह है अपने जीवात्मामें पूर्ववर्णित ईश्वरात्मा का आरोप करके उपास-
ना करे इसी उपासना को अहंग्रह उपासना कहते हैं जो ऐसी उपासना
करते हुए उपाधि विलापद्वारा स्वरूप साक्षात्कार होजाय तो सद्यो मु-
क्ति होती है और जो जन्म पर्य्यन्त साक्षात्कार न हो तो ब्रह्मलोक प्राप्ति
द्वारा मुक्ति होती है मन उपाधिक उपास्य का स्वरूप वर्णन करते हैं हृ-
दय में अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म है और धान यव श्यामाक और श्यामाकतं

इत्यु इस सर्व से सूक्ष्म है परिच्छिन्न परिमाण पदार्थों से भी सूक्ष्मतरक हने सें अणु परिमाणत्वशंका का निरास करते हैं यह मेरा आत्मा पृथिवी अन्तरिक्ष सर्व लोकों सें अधिकतर है ऐसेही पूर्वउक्त मनोमयत्त्वादिगु-णविशिष्ट ईश्वरध्येय है इसीवास्ते षष्ठ सप्तम अध्यायों में जैसे तादा-त्म्य उपदेश करा है तत्त्वमसि आत्मैवेदं सर्वमिति वैसे इस स्थान मेंन हीं उपदेश करा किन्तु ध्येय वस्तु का इस तृतीयाध्याय में उपदेश कर के पश्चात् षष्ठ सप्तम में ज्ञेय वस्तु का उपदेश करेंगे ॥ परन्तु यहांय-ह शंका हो सकती है जो इस स्थान में गुण विशिष्ट ध्येय नहीं जैसे कि-सीने कहा राज पुरुषको ले आना अथवा चित्रगु को ले आना तिस स्थान में विशेषण जो राजा वा चित्रगौ तिन को नहीं ले आते वैसे ही मनोमय-त्वादि विशेषण को छोड़ के केवल ईश्वर मात्र ध्येय है इस शंका कीनि वृत्ति वास्ते सर्व कर्म्मा इत्यादि फेर श्रुति में ग्रहण करा है भाव श्रुति का यह है इस उपासना में उक्त गुण विशिष्ट ही उपास्य है पदों के अर्थ पूर्व करे हैं (एषम आत्मान्तर्हृदये) यहांतक ॥ (एतद्ब्रह्मैतमि तः प्रेत्या भिसम्भवितास्मीति) यह उपास्य देव ब्रह्म है इसको इस शरीर से प्रा-ण को त्यागकर प्राप्त होउंगा (इति) ऐसे (यस्यस्यादद्धा) सत्यमे वेवंस्यामहं प्रेत्य) अर्थ यह है जिस उपासक को यह दृढ़ निश्चय है शास्त्राचार्य्य उपदेश स्वानुभव सें सत्यही मैं ऐसे ब्रह्म भाव को प्राप्त-होउंगा ऐसे जिसको संशय नहीं सो उपासना के फल को प्राप्त होगा य ह शाण्डिल्य ऋषि कहता भया पुनरुक्ति विद्या समाप्ति को बोधनक रती है जब इस श्रुति के अर्थ को सज्जन पुरुष विचारेंगे और दयानंद लिखित श्रुत्यर्थ को विचारेंगे तब सत्या सत्य की परीक्षा हो जायगी देखिये ब्रह्म भिन्न अनादि प्रकृति सिद्धि के विषय में तो यह श्रुति का

उपन्यास करा और इसी से सर्व प्रपंच का उपादान कारण ब्रह्म सर्वात्मा सर्व कर्म्मत्त्वादि विशिष्ट निश्चय होता है कहो तो ऐसे असंगतलेख को कौन बुद्धिमान पसंद करेगा और जो यह कहा,, अपने गुण सें सगुण और दूसरे के गुण न होने सें निर्गुण होता है ॥ सत्या० पृ० २०० में देखो ॥ यह कथन तो सर्वथा असंगत है काहेत्ते ॥

एक द्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारण मिति कर्मलक्षणम् । वै अ १ आ १ सूत्र । १७ ॥

सूत्रार्थ,, एक द्रव्याश्रयत्व और अगुणत्त्व और संयोग विभागेषु स्वोत्पत्त्यनंत्तरोत्पन्नानपेक्षत्त्व इतने कर्मलक्षण हैं भाव यह है एकद्रव्य के आश्रित हो तथा गुण रहित अर्थात् निर्गुण हो और संयोग विभागों में अपने सें अनन्तर उत्पन्न की अपेक्षा शून्य हो सो कर्म का लक्षण है यहां जो वैशेषिक दर्शन में कणाद महर्षि ने कर्म का लक्षण निर्गुण करा है सो लक्षण आकाशादि सर्व द्रव्यों में आसक्त है तब तो निर्गुण लक्षण वैशेषिक शास्त्र का दयानंद की रीति सें अति व्याप्ति दोषयुक्त है - क्यों कि ब्रह्म के निर्गुणतावत् आकाशादि में भी निर्गुणता हो सकती है स्पर्शादि गुणों के अभाव होने सें यदि इस स्थान में अगुण शब्द सें यावत् गुण शून्य विवक्षित है यह कहें तो निर्गुण शब्द भी यावत् गुण-शून्यत्त्व का बोधक है इस वास्ते अपने गुण सें सगुण और दूसरे के गुण न होने सें निर्गुण यह कथन दयानंद का विद्याहीनता का बोधक है और ऐसे सगुण वा निर्गुण का उपयोग उपासना में नहीं किन्तु जितने गुण श्रुति प्रतिपाद्य हैं उतने गुण विशिष्ट ही तिस २ उपासना प्रकरण में उपास्य हैं कुछ अपने मनःकल्पित गुणों करके उपास्य नहीं और ऐसे सगुण निर्गुण का कथन ही कौंन शास्त्र वा वेदवचन में है

जैसा वादी ने कथन किया है इससे केवल मिथ्या कल्पना है । प्रकरण में वार्ता यह है । सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन इस मिले हुए दो श्रुति वचन को असंगत कहा सो तिसका ही कथन असंगत है क्यों कि ऐसा श्रुति वचन ज्ञेय प्रकरण में संभव हो सकता है प्रथम श्रुति तो उपासना प्रकरण की गुण विशिष्ट ब्रह्म का बोधक है और द्वितीय श्रुति निषेध को प्राप्ति पूर्वक होने से गुणों का निषेध करती है अर्थात् ब्रह्मसत्तातिरिक्तसत्ताशून्यत्व बोधन करती है जब इन श्रुति वचनों की एक वाक्यता हुई तब ब्रह्म में सर्वात्मत्व का निर्णय होगया । ऐसे शंकराचार्य्यादि सत्पुरुषों के वचनों को न समझकर निषेध करना वा दूषण देना वादी की महा मूर्खता है ॥ अब जो प्रथम श्रुति लिखी वेदान्ति पूर्व पक्ष में तिसका यथावत् स्वरूप लिखकर दिखलाते हैं जिस श्रुति वचन से ही वादी का प्रकृति को स्वतंत्रता ब्रह्म भिन्नता पक्ष खण्डन होता है । अनादि और ब्रह्म भिन्न जड़ प्रकृति को उपादान कारण मानना वादी का वेदार्थाज्ञान का सूचक है ॥ तथाहि ॥

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत । १ । कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳ स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति । सत्त्वेव सोम्येद मग्र आसीत् । एकमेवाद्वितीयम् । २ । तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत ॥ छां० उप० अ० ६ ॥

पद ॥ सत् एव सोम्य इदम् अग्रे आसीत् एकम् एव अद्वितीयम् तत् ह एके आहुः असत् एव इदम् अग्रे आसीत् एकम् एव अद्वितीयम् तस्मात् असतः सत् जायत कुतः तु खलु सोम्य एवम् स्यात् इति ह उवाच

कथम् असतः सत् जायेत इति सत् तु एव सोम्य इदम् अग्रे आसीत् ए-
कम् एव अद्वितीयम् तत् ऐक्षत बहु स्याम् प्रजायेय इति तत् तेजः अ-
सृजत ॥

अर्थ,, उद्दालक ऋषि श्वेतकेतु अपने पुत्र से कहते हैं हे सोम्य यह
प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध वस्तु मात्र सृष्टि से पूर्व काल में सद्रूप ही होता भ-
या भाव यह है सत् रूप वस्तु के साथ तादात्म्यापन्न होता हुआ जैसे वृ-
क्ष, उत्पत्ति से प्रथम बीज भावापन्न था वैसे सद्वस्तु जो सर्व का बीज है
तद्रूप ही यह प्रथम था सो सत् वस्तु कैसा है एक मेव अर्थात् कार्य्य
भावा पन्न वस्त्वन्तर रहित है निश्चय करके (अद्वितीय) निमित्त का-
रणान्तर वर्जित है केचित् वादि ऐसा कहते हैं यह नाम रूप प्रपंच-
प्रथम (असत्) अभावमात्र था (एकमेव) कार्य्य वस्त्वन्तर वर्जित
निमित्तादि रहित था तिस असत् अभाव मात्र से यह सत् नाम रूप वस्तु
हुआ है तिनों का कहना ठीक नहीं कहते हे सोम्य यह कैसे हो सकता
है (असतः) अभाव मात्र से सत् हो इस वास्ते सत् ही कार्य्य भावा प-
न्न वस्त्वंतर वर्जित निमित्त कारणान्तर वस्तु रहित होता भया सो सत्
वस्तु आलोचन करता भया भावी जगत् को अपने संकल्प में देखा औ-
र इच्छा करी मैं बहुत सा होकर प्रतीत होंवो प्रजा रूप को धारण करों
सो तेज को सर्जन करता भया ॥ इसी प्रकार के बहु भाव को संहिता मं-
त्र में भी प्रतिपादन करा है ॥ तथाहि ।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ॥
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥ ऋ ।म०६॥सू४७।मं१८॥

पद ॥ रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव तत् अस्य रूपम् प्रति चक्षणाय इन्द्रः

मायाभिः पुरुरूपः ईयते युक्ता हि अस्य हरयः शतादश ॥

अर्थ,, सो परमेश्वर ही सर्व नाम रूपस्वरूप उपाधि को अपनी विचित्र शक्ति सें प्रगट करके (रूपं रूपं) उपाधि २ प्रति (प्रतिरूपः) उपाधि सदृश रूपह्होकर प्रतीत हुआ (तदस्यरूपं) तिस अपने रूपको (प्रतिचक्षणाय) बोधन के वास्ते भाव यह है जब अन्तःकरण उपाधिक जीवभाव अपने में आरोप करेगा तथा शास्त्र शास्त्र भाव को प्राप्त होगा तब सच्चिदानंद स्वरूप की प्रतीति होगी इस प्रकार उपासक भाव की प्राप्ति कहकर उपास्य भाव प्राप्ति प्रगट करते हैं मंत्र के उत्तरार्द्ध सें (इन्द्रः परमेश्वरः परमैश्वर्य्यवान् मायाभिः स्वाभिन्न शक्तिभिः पुरुरूपः नृसिंह रामकृष्मादि रूपः ईयते नाम प्रतीयते हि यस्मात् अस्य परमेश्वरस्य हरयः संसारदुःखं हरंतीति हरयः अवतार रूपाणि युक्ताः जगद्रक्षणार्थं नियुक्ताः शता शतानि नामानंतानि दश दशरूपाणित्वति प्रसिद्धानि)

भावार्थ,, परमात्मा अपनी शक्तिओं कर बहुत रूप प्रतीत होता है नृसिंह रामकृष्मादि रूप सें इसीवास्ते इस परमेश्वर के संसार दुःख जो कि असुरादि अधर्मिओं करके प्रापित हैं तिसके निवारक होने सें हरि नाम सें कथन करे हुए अवतार रूप जगत् की रक्षा में नियुक्त हैं शतानि-अर्थात् अनंत और दशरूप तो अति प्रसिद्ध हैं

अथवा (मायाभिः) माया जनित जीवोपाधि तादात्म्या ध्यास कर के अनेक जीव रूप प्रतीत होता है वास्तव रूप कर प्रज्ञान घन होते ही और इस जीव भावापन्न परमेश्वर के (हरंति विषयान् प्रकाशयंतीति हरयः इन्द्रियाणि) विषयों को प्रकाश करते हैं इन्द्रिय इसवास्ते हरि हैं सो सर्व प्राणिओं के भेद सें अनंत और एक २ प्राणि के दश हैं।

ऐसे ज्ञेय प्रकरणानुसार इस मंत्रका अर्थ करें तबभी वादी को अनि-ष्ट अर्थ ही सिद्ध होगा क्योंकि परमेश्वर को जीव रूपता मानने में द्वैत मतका भंग होगा और पूर्व उक्त अर्थ में अवतारों का होना भी वादी-का अनिष्ट है इससे अन्यथा अर्थ संभव ही नहीं। इस प्रकार मंत्रब्राह्मण कर परमेश्वर को ही जगत् उपादानता और निमित्त कारणता वैसेही अनंत अवतार रूपता और जीव रूपता सिद्ध होगयी। यहांयह विचारना जब सत् वस्तु में आलोचकत्त्व अथवा बहुभवन कामना हुई तो चेतनत्त्व सिद्ध होगया इससे इस श्रुति में सत् शब्द-को जड़ प्रकृति का बोधक मानना वादी की महा सुषिप्ति है इस श्रुति प्रकरण पठित सत् शब्द को जैसे प्रकृति की बोधकता वादी ने लिखा है सो दिखलाते हैं॥

तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितं सोम्य विजानीहि नेदम मूलंभविष्यतीति तस्यक्वमूलं स्यादन्यत्रान्नादेव-मेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सो म्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायत नाः सत्प्रतिष्ठाः॥ छां० उप० प्रपा० ६॥

अर्थ,, जब अन्नरसादि कार्य्य देह प्रसिद्ध हुआ तब यह जो शुङ्ग देह है सो उत्पतितं, उत्पन्न है जैसे बट बीज से बटका वृक्ष उत्पन्न होता है तैसे यह देह भी मूल शून्य नहीं ऐसे तू जान सो इस देह का अन्न से विना कौन मूल है किन्तु अन्न ही मूल है इसी प्रकार हे प्रिय श्वेतकेतो, अन्न रूप विकार से जल और जलकर तेज जान तेज से सन्मूल अन्विच्छ नाम जान इस प्रकार सत मूलकारण वाली संपूर्ण प्र

ज्ञा है और सत् वस्तु ही आयतन, स्थितिस्थान है और सत् ही प्रतिष्ठा, लयाधार है और वादी ने खल्लु पर्य्यन्त श्रुति भाग को त्याग कर शेष श्रुति का यह अर्थ लिखा है ॥ हे श्वेतकेतो! अन्नरूप पृथिवी कार्य्य से जल रूप मूल कारण को तू जान, कार्य्य रूप जल से तेजो रूप मूल और तेजो रूप कार्य्य से सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान, यह ही सत्य रूप प्रकृति सब जगत् का मूलघर और स्थिति का स्थान है। सत्या॰ समु॰ ८। पृ॰ २१०। इस प्रकार सत् शब्द को प्रकृति वाचक मान कर सर्व जगत् का मूल कारण-प्रकृति को माना है इस स्थान में सत्य रूप और नित्य प्रकृति यदि चेतन रूप है तो ब्रह्म रूप ही प्रकृति सिद्ध होगी यदि जड़ प्रकृति ब्रह्म भिन्न अभिमत है तब तो वादी का महा मोह है क्यों कि जड़ प्रकृति में ईक्षण और बहुभवन संकल्प कैसे होगा इसी वास्ते प्रकृति को जगत् कारणत्व का व्यासजी सूत्र से निषेध करते हैं ॥

ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥ शा॰ अ॰ १। पा॰ १। सू॰ ५॥

पद ॥ ईक्षतेः न अशब्दम् ॥

अर्थ,, (सर्व वेदान्त प्रतिपाद्य समन्वय सूत्र बोध्य ब्रह्मणोऽन्यत् जड़ प्रकृति परमाणवादिकं न कारणं कस्मात् अशब्दं नाम अशब्दत्वात् वेदा प्रतिपाद्यत्वादितियावत् कस्माद्वेदा प्रतिपाद्यत्वमीक्षतेरीक्षणवतः कर्तृत्वश्रवणात्)

भावार्थ, तत्तु समन्वयात् इस चतुर्थ व्यास सूत्र प्रतिपाद्य सर्व उपनिषद्वचन तात्पर्य्य विषय ब्रह्म से भिन्न तत्तद्वादि परिकल्पित जड़ प्रकृति परमाणु आदि जगत् के कारण नहीं क्यों कि अशब्द, अर्थात् वेद करके अप्रतिपाद्य होने से और वेदा प्रतिपाद्यत्व में हेतु ई

क्षते :) यह है भाव यह है ईक्षण वाले को कर्तृत्त्व श्रवण करा जा-
ता है सोईक्षण चेतन का धर्म है जड़ का धर्म नहीं इससे जड़ प्र-
कृति को यदि सत् शव्द बोध्य मानेंगे तो सत् शव्द वाच्य वस्तु में ई-
क्षण तथा बहुभवन कामना का बाध होगा इस वास्ते छांदोग्य ष-
ष्ठाध्याय में सत् शव्द प्रतिपाद्य ब्रह्म है सोई जगत् की उत्पत्ति स्थि-
ति लयाधार है तिससे भिन्न जड़ प्रकृति नहीं और वादी का जराभा
ण्ड पना देखना ॥ सर्वं खलु० यह वचन ऐसा है जैसा कि कहीं
की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा ऐसी लीला का है ॥
सत्या० समु० ८ पृ० २१० ॥ यहां यह प्रष्टव्य है कौन से ग्रंथ का यह
वाक्य है क्या शंकर भगवान् कृत तीन प्रस्थान का वाक्य है अथवा
तत्त्वबोध सें लेकर अद्वैत चन्द्रिका पर्य्यन्त किसी ग्रंथ का होता तो
तिसका पता लिखना योग्य था तब नकल बनती और यदि किसी
भी ग्रंथ में हो तो वादी ने अर्थ नहीं जाना इन श्रुति वचनों का क्यों कि
अनधीत वेदान्त प्रकरण वादी महाशयों का अभिप्राय कैसे जान स
कता है यथा इन श्रुति वचनों का अर्थ बन सकता है तथा पूर्व नि
र्णीत है ॥ और जरा अपनी तरफ भी देखना योग्य है क्यों कि अजा०
इत्यादि श्रुति का पूर्व प्रकरण पर तंत्र प्रकृति साधक० ते ध्यान०
इत्यादि छोड़कर और उत्तर छोड़कर बीच में सें काट करा और सोम्या
न्नेन इस वचन का पूर्व उत्तर छोड़कर बीच सें काट करी इससे यह
नकल वादी को ही लज्जित करती है ॥ अब वादी लिखित दूसरी श्रुति
का पूर्व उत्तर लिखकर दिखलाते हैं जिस श्रुति वचन सें ही वादी
स्वीकृत ब्रह्म भिन्न प्रकृति को उपादान कारणता सिद्धान्त का खण्ड
न होता है ॥ तथाहि ॥

सोऽकामयत ॥ बहुस्यां प्रजायेयेति । सतपोऽतप्यत सतपस्तप्त्वा । इद१ सर्वमसृजत । यदिदंकिञ्च । तत्सृष्ट्वा । तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य । सच्चत्यच्चाभवत् । निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्चनिलयनञ्चानिलयनञ्चविज्ञातञ्चाविज्ञातञ्चसत्यञ्चानृतञ्चसत्यमभवत् यदिदंकिञ्च । तत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येषश्लोकोभवति । असद्वा इदमग्रआसीत् । ततोवै सदजायत । तदात्मान१ स्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यतइति । तै० उप० ॥

अर्थ,, सो पूर्व प्रकरण प्रतिपाद्य आकाशादि भूत कारण स्वरूप आत्मा कामना करता हुआ बहुरूप होकर प्रतीत होवों और प्रजा रूप को धारण करों सो आत्मा (तपोऽतप्यत) आलोचन करताहुआ आलोचन कर सर्व नाम रूप प्रपंच को रचता हुआ यत्किंचित् वस्तु है पश्चात् तिस सर्व वस्तु को सर्जन कर सो आपही तिस सर्व वस्तु को जीव रूपकर प्रविष्ट हुआ तिसको प्रविष्ट होकर (सत्) पृथिव्यादिभूत (त्यत्) वायु आकाश रूप हुआ (निरुक्तंचानिरुक्तञ्च) निर्वचन योग्य और निर्वचना योग्य (निलयनञ्चानिलयनञ्च) लयाधार औरलयानाधार (विज्ञातंचाविज्ञातञ्च) प्रत्यक्षादि विषय और प्रत्यक्षादि का अविषय (सत्यंचानृतंच) व्यावहारिक सत्य और प्रातिभासक (सत्यमभवत्) यह संपूर्ण पृथिव्यादि प्रातिभासिक वस्तु पर्य्यन्त सर्व वस्तु सत्य रूप परमात्मा ही हुआ अपनी अचिन्त्य शक्तिकर जो कुछ वस्तुमात्र है तिसको सत्य कथन करते हैं भाव यह है सत्य का कार्य्य होने से सत्यकह-

लाती है। इस में वक्ष्यमाण यह श्लोक भी प्रमाण है यह सर्ववस्तु (असत्) अनभिव्यक्त नाम रूप केवल कारणतादात्म्यापन्न था अब तिस से सद्रूप होकर प्रतीत हुई सो आत्मा अपने आपको जगत् रूप अपनी अपूर्व शक्ति सें करता भया। जैसे कोई योगसिद्धि युक्त योगिजन अपनी शक्ति सें अनंत शरीर धारण करता है वैसे परमात्मा महायोगी महा शक्ति संपन्न अपने आत्माको ही जगत् रूप करा इसी वास्ते जगत् को सुकृत कहते हैं सुकृत अर्थात् स्वयंकृत कहा जाता है।

अथ तत्स्रष्ट्वा, इत्त्यादि श्रुति वचन के सिद्धान्त व्याख्यान में वादिकृत कुतर्क खण्डन और अभेद में वादिकृताक्षेप खण्डन निरूपण करते हैं॥ ९॥

तत्सृष्टा तदेवानुप्राविशत् इस श्रुति का अर्थ यह करा जो परमेश्वर ने जगत् रचकर जीव रूप अपने आत्माकर प्रवेश करा इस स्थान में जीव का परमात्मा सें अत्यन्त भेद मानने वाले वादी का यह आक्षेप है॥ प्रश्न॥ जो तुम पद पदार्थ और वाक्यार्थ जानते तो ऐसा अनर्थ कभी न करते क्यों कि यहां ऐसा समझो एक प्रवेश और दूसरा अनु प्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश है परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के साथ अनु प्रविष्ट के समान होकर वेदद्वारा सब नाम रूपादि की विद्या को प्रकट करता है और शरीर में जीव को प्रवेश करा आप जीव के भीतर अनु प्रविष्ट हो रहा है जो तुम अनु शब्द का अर्थ जानते तो वैसा विपरीत अर्थ कभी न करते॥ सत्या० समु ७ पृ० ९८६॥ में देखो॥ उत्तर॥ यह वादी का लेख ही तिस में व्याकरण शास्त्र का अज्ञान बोधन कराता है। तथाहि।

अनुर्लक्षणे।१।४।८४।

यह अष्टाध्यायी का सूत्र है ॥

अर्थ, लक्षण अर्थ में अनु उपसर्ग कर्म प्रवचनीय संज्ञा वाला हो। कर्म प्रवचनीय युक्ते द्वितीया।२।३।८॥पा०नीय० सू।

अर्थ, कर्म प्रवचनीय संज्ञक पद सें जो युक्त है दूसरा पद तिस-में द्वितीया विभक्ति हो। अब इस सूत्र के उदाहरण को जो कि इसी सूत्र के महाभाष्य में लिखा है तिसको देखें सज्जन पुरुष, (शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत् शाकल्येन सुकृतां संहितामनु निशम्य देवः प्रावर्षत् ॥ महाभाष्य । अ १। पा ४ आ ४।)

अर्थ इस भाष्य उदाहरण का यह है शाकल्य ऋषि ने सुष्टु कृत करी जो संहिता नाम सीमा तिसको देखकर देव वर्षण करता हुआ। प्रथम उदाहरण का अर्थ द्वितीय वचन सें अपने आपही भाष्यकार ने करा है क्यों कि भाष्यकार की यह शैली है अपनी कठिन उक्ति का आपही व्याख्यान करते हैं जैसे वेद भगवान् ने संक्षिप्त अर्थ मंत्रों का ब्राह्मण भाग सें व्याख्यान करा है ब्राह्मण भाग को ऋषिकृत वेद सें पृथक्-कहना वादी की अविद्या है ऐसें मानें तो महाभाष्य में भी जो व्याख्यान वाक्य हैं सो किसी दूसरे के होने चाहियें प्रकरण में वार्त्ता यह जान-नी० तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत् इस श्रुति वचन में भी अनु लक्षण अर्थ में है तब यह अर्थ सिद्ध हुआ जो तिस जगत् को रचकर और तदेवानु निशम्य प्राविशत् तिस जगत् को देखकर प्रवेश करता हुआ। (लक्ष्यते ऽनेनेति लक्षणं) जिस करके कुछ भी लखा जाय सो लक्षण है जैसे भाष्य उक्त उदाहरण में शाकल्य कृत सीमा का जो देव करके दे

खना सोवर्षणका लखापक होने सें लक्षण है और प्रकृत श्रुति रूप उदाहरण में जो परमेश्वर करके स्थूल सूक्ष्म संघात का अपने में देखना है सो प्रवेश का लखापक है भाव यह है जो उपाधि संग सें मनुष्यो ऽहं हिरण्यगर्भो ऽहं विराडहं ऐसी प्रतीति होती है सोई प्रवेशका बोधक है तिस प्रतीति सें प्रवेश कहा जाता है वास्तव प्रवेश नहीं- जैसे बृहदारण्यक श्रुति में जो अहंकार को अपने में देखकर अहं-नाम वाला परमात्मा हुआ अहंकार को अपने में जो देखना यह ही प्रवेश का लक्षण है यथा अहंकार नामवाले परमात्मा का बोधक वाक्य है तथा तिस वाक्य को लिखकरके तिसके अर्थ को दिखलाते हैं।

आत्मै वेदमग्र आसीत् पुरुषविधः सो ऽनुवीक्ष्य नान्य दात्मनो ऽपश्यत् सो ऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततो ऽहन्ना माभवत्। बृ॰उ॰अ॰ ३। ब्रा॰ ४॥

अर्थ,, इदं मनुष्यादि शरीर जानं अग्रे इसकी उत्पत्ति सें पूर्व पुरुषाकार आत्म रूपही होते हुए सो पुरुषाकार आत्मा (अनुवीक्ष्य) देखकर आत्मा सें पृथक् वस्तु को न देख अहम् अस्मि ऐसा सर्व सें प्रथम उच्चारण करता हुआ तिस उच्चारण से ही अहं नाम वाला होगया इसी प्रकार जो अपने में हिरण्य गर्भादि पिपीलिकातक देहोंका स्फुरण होकर प्रतीत होना सोई प्रवेश है और अनु शब्द का अर्थ जहां पश्चात् होता है वहां प्रवेश और अनुप्रवेश दोनो मुख्य होते हैं जैसे राजा प्रासादे प्रविशति अमात्यो ऽनु प्रविशति) राजा मंदिर में प्रवेश करता है पश्चात् अमात्य प्रवेश करता है और वादि मत में जब जीवने प्रवेश करा तब परमेश्वर तो व्यापक होने सें प्रथम ही प्रविष्ट है और जो कहा जीवको प्रवेश कराकर आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट होरहा है सोभी

असंगत है अनु प्रविष्ट होरहा है क्या प्रथम प्रविष्ट न था सो तो पहले भी जीव में प्रविष्ट था पश्चात् प्रविष्ट ही कैसे कह सकते हैं । देखो जैसे शरीर के गृह में प्रवेश होने सें शरीरान्तरगत अन्न जलादि वा-आकाशादि वा मनो बुद्धि आदिक (अनुप्रविष्ट) पश्चात् प्रविष्ट हैं वा साथ ही प्रविष्ट हैं बस जब साथ ही प्रविष्ट हुए तो जीवान्तर वर्त्ति ईश्वर भी अनु प्रविष्ट नहीं किन्तु सह प्रविष्ट है वा (युगपद प्रविष्ट है ऐसा कहना चाहिये अनु प्रविष्ट कहना असंगत है और यह भी नही भूलना जो जन्मादिवत् प्रवेश भी जीव में आरोपित है (देहस्थत्वेनोपलब्धिः प्रवेशः) देह में स्थित रूप सें जो प्रतीति सोई प्रवेश है और वादी तो अपने आपको पूर्ण वैयाकरण मानी है तब यह विचारणीय है जो लक्षण अर्थ में अनुको इस श्रुति में नहीं मानेंगे किन्तु पश्चात् अर्थ में मानेंगे तो प्रवेश और अनुप्रवेश दोनो मुख्य होने चाहिये तैसे तदेव इसके स्थान में तस्मिन्नेव इस प्रकार सप्तमिविभक्ति होनी चाहिये जैसे राजा प्रासादे प्राविशत् अमात्योऽनु प्राविशत्-यह प्रयोग होते हैं तैसे यहां भी तस्मिन्नेवानु प्राविशत् ऐसा प्रयोग होता सो तो वेद भगवान् ने नहीं करा इससे वादि कृत श्रुति व्याख्यान व्याकरण अनभिज्ञता का बोधक है ॥

प्रश्न ॥ जब ऐसे पूर्वउक्त प्रकार सें परमात्मा को ही जीवरूप मान तो सर्वक्लेश सुख दुःखादि परमात्मा में ही होगये तब तो हद्द का वेदसिद्धान्त का निरूपण करा तैसे जब उपाधि विशिष्ट परमात्मा को जीव रूप कहा तो क्या ईश्वर के टुकड़े कर दिये ऐसा तुमारा सिद्धान्त हमारी समझ सें बाहिर है ॥

उत्तर ॥ तब हम तुमारे सें ही पूछते हैं ॥

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमयतियमात्मा न वेदयस्यात्माशरीरम् ॥

इस श्रुति प्रमाण से ईश्वर की जीवात्मा में स्थिति मानि है और जीवात्मा ही ईश्वर का शरीर माना है तब तो जैसे शरीर के ज्वरादि दुःख से जीवात्मा दुःखी होता है तैसे जीव अनंत हैं तिन सर्व के अनंत दुःख संपूर्ण ईश्वर में प्रतीत होंगे और शरीर के सर्व दुःख भी ईश्वरात्मा में होने चाहिये जैसे एक गृह में मिरच के धूम्र से तिस गृह में स्थित दोनो पुरुषों को दुःख होता है वैसे जीव परमेश्वर दोनों ही एक शरीर में दुःखित होंगे यदि शरीर में ईश्वर को नहीं मानोगे तो ईश्वर को व्यापकत्त्व का भंग होगा यदि यह कहो परमात्मा जीव से सूक्ष्म है जीव के अन्तर्गत है इस वास्ते शरीर दुःख सें दुःखी नहीं होता तब तो यह कहना चाहिये वाहिर क्या नहीं है सो तो संभवे नहीं ईश्वर को व्यापक होने सें इससे यावत् दुःख ईश्वर में प्राप्त होंगे। तैसे और भी समझो जो जीवात्मा में ईश्वर की स्थिति कैसे होगी क्यों कि तुमारा तो यह कहना है जो व्यापक वस्तु है सो एक स्थान में कैसे आ सकती है जैसे व्यापक आकाश मुठी में नहीं आ सकता इसी प्रकार ईश्वर जीव में कैसे स्थित होगा यदि स्थित कहोगे तो जीव रूप अधिकरण निरूपित आधेयत्त्व विशिष्ट अंश को ही कहोगे तो व्यापक परमेश्वर के टुकड़े कर दिये तुमने, अन्यथा विना किंचित् विशेषण के व्यापक ईश्वर की एक स्थान में स्थिति का असंभव है और यह भी कहना चाहिये ईश्वर दयालु है वा नहीं यदि नहीं दयालु तो क्रूरता विशिष्ट होगा इस वास्ते दयालु ही कहना होगा तो दयालु नाम उसका है जो अपने सामने किसी के दुःख को देख के दुःखी होता है तब तो ई-

श्वर दयालु हुए बी दुःखी जरूर होगा इस प्रकार तुमारे स्वीकृत ईश्वर में अनन्त दोष प्रतीत होते हैं तो तुमारा सिद्धान्त भी हमारी समझ से पृथग्भूत है ॥

प्रश्न ॥ ईश्वर सर्व जीव तथा तिसके धर्म अधर्म का और तिनसे जन्य सुख दुःखादि का द्रष्टा है जो द्रष्टा होता है सो दृश्य के गुण दोष सें लिप्त नहीं होता जैसे सूर्य्य प्रकाश सर्व जगा पडता है परंतु लिप्त नहीं होता तैसे परमेश्वर सर्व के धर्मादि को देखता है और तिसके फल को देता है परंतु दुःखी नहीं होता और दयालु भी है परंतु जीववत् दयालु नहीं किन्तु जैसे जिसके धर्मादि हैं वैसा फल देता है परमेश्वर में दयालुता यह है जो अन्यथा कारित्व न होना इससे भिन्न दयालुता नहीं और निराकार व्यापक है इसवास्ते टुकडे नहीं हो सकते ॥

उत्तर ॥ तब अद्वैत मत में भी इसी प्रकार विचार करना चाहिये चेतन को अद्वैत सिद्धान्त में दुःखादि का साक्षी ही माना है और निराकार निरवयव ही माना है तिसमें दुःखादि आरोप करना वा टुकड़े कहने अन्तःकरणादि उपाधि सें यह तुमारा ही अज्ञान है । और जो उपाधि क्रिया सें चेतन में बंध मुक्त व्यवहार वा ज्ञानी अज्ञानित्वादि व्यवहार कहा सो भी अत्यंत असंगत है काहेते जिनके सिद्धान्त में जन्मादि व्यवहार तथा बंधादि व्यवहार कल्पित आरोपित है उनके तो आरोपित पदार्थ सें स्वाभाविक रूप विगड़ता नहीं किन्तु वैसे का वैसा ही बना रहता है परन्तु तुमारे मत में तो परमात्मा में अन्तर्यामीत्वादि धर्म वास्तव हैं तो कहना चाहिये वादि मत में जीवात्मा परिच्छिन्न क्रियावान् वा व्यापक अक्रिय है व्यापक अक्रिय कहोगे तो-

वादी के मतका भंग होगा परिच्छिन्न क्रियावान् ही कहना होगा तो जब कोई जीवात्मा ईश्वर करके नियम्य अथवा प्रेर्य्य है तो तिस जीव निरूपित नियामकत्त्व अथवा प्रेरकत्त्व धर्म व्यापक ईश्वरात्मा में है अथवा तज्जीवाधिकरण निरूपिताधेयत्त्व विशिष्ट ईश्वरांश में है यदि व्यापक में है वो धर्म तब तो एक जीवापराधजन्य दुःख जनक कर्म में प्रेरकत्त्व धर्म सें सर्व जीवों की दुःखजनक कर्म में प्रवृत्ति होनी चाहिये क्यों कि वो दुःख जनक कर्म में प्रेरकत्त्व धर्म व्यापक ईश्वर में सर्वत्र वर्तमान है इस वास्ते तज्जीवाधिकरण निरूपिताधेयत्त्व विशिष्ट ईश्वरांश में मानोगे तब तो जब कोई जीवात्मा पूर्व से पश्चिम को गया तो पूर्व देशस्थ तज्जीवाधिकरण निरूपिताधेयत्व विशिष्ट ईश्वरांश में प्रेरकत्त्व अन्तर्यामी त्वादि धर्म नाश होगये और पश्चिम देशस्थ में प्रेरकत्त्वादि धर्म उत्पन्न होगये तब एक क्षण में प्रेरकत्व विशिष्ट और द्वितीय क्षण में प्रेरकत्त्व अंतर्य्यामित्त्वादि रहित होगया ईश्वर इस वास्ते वेद प्रतिपाद्य सर्व जीव निरूपित अन्तर्यामित्त्वादि एक प्रकार के कहें तो सर्व जीवों की एकसी प्रवृत्ति होनी चाहिये इस से वेद बोध्य अर्थ युक्ति सें दूर नहीं हो सकता मनुष्य की बुद्धि कहां तक पहुंचेगी यदि एक मनुष्य युक्ति को स्थापन करेगा तब दूसरा उससे अधिक बुद्धिमान् उसकी युक्ति खण्डन कर के अपनी युक्ति को स्थापन कर देगा इस वास्ते श्रुति में परमात्मा को (निरवद्य निरंजन) निर्दोष अज्ञानादि रहित कहा है तिस परमात्मा में कोई अपनी प्रचलित बुद्धि सें दोष लगावे तो असंगत है और प्रकरण में वार्त्ता यह है जीव और ईश्वर का प्रवेश नहीं क्योंकि जीव का तो प्रकरण में निरूपण ही नहीं किन्तु जगत् स्रष्टा का पूर्वउ-

क प्रकार सें अवेशवत् प्रवेश है।

अथ ईश्वर का २१ प्रकार शरीर और जड़ प्रकृतिपक्षखण्डन और ब्रह्मकोउपादानता और अहंब्रह्मास्मि, इस वाक्य के अर्थको मंत्र ब्राह्मण से निरूपण करते हैं ॥१०॥

और तुमने जैसे परमेश्वर का जीव पर भेद बोधन वास्ते यस्यात्मा शरीरम् इस श्रुति वचन सें जीवात्मा शरीर कहा है तैसे।

यस्य पृथिवी शरीरम्।१। यस्यापः शरीरम्।२। यस्याग्निः शरीरम्।३। यस्यान्तरिक्षं शरीरम्।४। यस्य वायुः शरीरम्।५। यस्य द्यौः शरीरम्।६। यस्यादित्यः शरीरम्।७। यस्य दिशः शरीरम्।८। यस्य चन्द्रतारकं शरीरम्।९। यस्याकाशः शरीरम्।१०। यस्य तमः शरीरम्।११। यस्य तेजः शरीरम्।१२। यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम्।१३। यस्य प्राणः शरीरम्।१४। यस्य वाक् शरीरम्।१५। यस्य चक्षुः शरीरम्।१६। यस्य श्रोत्रं शरीरम् १७। यस्य मनः शरीरम्।१८। यस्य त्वक् शरीरम्।१९। यस्य विज्ञानं शरीरम्।२०। यस्य रेतः शरीरम्।२१। यस्य विज्ञानं शरीरं।

इसके स्थान में माध्यंदिनीय शाखा में यस्यात्मा शरीरं यह पाठ है अर्थ विज्ञान और आत्म पदका जीवोपाधिरूप बुद्धि है इससे यह श्रुति जीव पर भेद का साधक नहीं किन्तु बुद्ध्युपाधिक और कारणोपाधिक के भेद का साधक है और पृथिव्यादि सर्व वस्तु परमेश्वर का शरीर हैं और परमेश्वर करके नियम्य हैं अब देखना चाहिये

सारे अन्तर्यामि ब्राह्मण में सें यस्यात्मा शरीरम् यह एक श्रुति वादीके भेद को सिद्ध करेगी और बीस श्रुति परमात्मा के शरीरको-बोधन नहीं करेंगी तबतो विवेक नेत्रहीन वादीके पीछेही सर्व संसार चलेगा परन्तु यह वार्त्ताकैसे होगी जो पुरुष श्रुति स्मृतिनेत्रहीन स्वयं अन्ध हैं वो चलो वादीके पीछे दलदल भूमिका में गिरने वास्ते परन्तु सचक्षुः कैसे चलेंगे एक प्रकरण में सें एक वाक्य अपने अनुकूल जानकर मानना और दूसरे को न मानना यह केवल विद्या हीनता का बोधक है सत्पुरुष ऐसी वार्ता को कैसे मानेगा इसवास्ते (नतस्य प्रतिमा अस्ति । यजुः अ ३२। मं ३॥ इस मंत्रका जो यह अर्थ करें तिसकी मूर्ति नहीं तो मूर्त्तिनाम शरीरका है सो तो पृथिव्यादि रूप इक्कीस प्रकार का सिद्ध होगया इससे विरोध होगा यां ते प्रतिमा नाम इस मंत्र में उपमा का है परमेश्वर निरूपम है यह मंत्र भागका अर्थ है और इस मंत्र के उत्तर भाग और पूर्व मंत्र लिखकर विशेष विचार पूर्वकरदिया है । इस प्रकार प्रसंगात्नुप्रसंग सें तैतरीयो पनिषद् वाक्य सें ब्रह्मकोजगत् कीउपादान कारणता सिद्ध होगयी । अब जो तृतीय श्रुति ऐतरेयोपनिषद् की लिखी है । वेदान्ति पूर्वपक्ष में तिस को लिखकर अर्थ दिखलाते हैं जिस सें स्वतंत्र प्रकृति को उपादानकारणवाद निराकरण होता है ॥

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचनमिषत् सईक्षतलोकान्नुसृजा इति ॥ ऐतरेय० उ० ॥ ० ॥

पद ॥ आत्मा वै इदम् एक एव अग्रे आसीत् न अन्यत् किम् चन-मिषत् सः ईक्षत लोकान् उसृजै इति ॥

अर्थ ,, यह जो सर्व नाम रूप वस्तु प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध है सो अग्रे) नाम रूप प्रपंच की उत्त्पत्ति से पूर्वकाल में वे निश्चय करके आत्म रूप ही होती भयी और (मिषत्) क्रियावत् अन्यत् वस्तु न होती भयी भाव यह है प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध वस्तु आत्मतादात्म्यापन्न था जैसे कटकादि की उत्त्पत्ति से पूर्वकाल में कटकादि सुवर्णतादात्म्यापन्न थे सोऽआत्मा आलोचन कर (उ) विचार पूर्वक संकल्प करता हुआ जो लोकों को रचना करों । इस श्रुति भाग से आगे लोक सृष्टि बोधक श्रुति है इस श्रुति सें भी परमात्मा ही सृष्टि का उपादान कारण निर्णय होता है काहे ते प्रथम काल में यावत् कार्य्य का आत्मा में तादात्म्य कहा है और कार्य्य का तादात्म्य उपादान कारण में होता है इस से आत्म शब्द बोध्य ईश्वर ही जगत् का उपादान कारण इस श्रुति से भी सिद्ध होता है जड़ प्रकृति को जगत् की उपादानता मानना श्रुत्यर्थ के अज्ञान का सूचक है ॥

अब वादी लिखित चतुर्थ वाक्य को देखना योग्य है जिस वाक्य से वादी लिखित अहं ब्रह्मास्मि इस वाक्य का अर्थ क्षार समुद्र में वह जाता है ॥ तथाहि ।

तदाहुर्यद्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यन्ते किमु तद्ब्रह्माऽवेद्यस्मात्तत्सर्व्वमभवदिति । ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेवावेत् अहं ब्रह्मास्मीति तस्मा त् तत्सर्व्वमभवत् तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथा ऋषीणां तथा मनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्य्यश्चेति तदिदमप्येतर्हि य एवं वेदाऽहं ब्रह्मासी

त्तिसद्दद ँ सर्वंभवति । वृह० उ० अ ३। कां० ६ ॥

(तदाहुः) सर्व वेद वचन प्रतिपाद्यवस्तु को वेदवित् प्रश्न उत्तर सें प्रतिपादन करत्ते हुए । प्रश्न । जिस ब्रह्म विद्या करके मनुष्य अपने आत्मा में सर्वात्मता मानते हैं (किमुत्तद्ब्रह्मा ऽवेद्यस्मात्तत्सर्वमभवदिति) त्तिस ब्रह्म को कैसे जानते हैं जिसे जानने सें प्रसिद्ध सर्वात्म भाव होते हैं । उत्तर देने वास्ते प्रथम जीव का वास्तव रूप वर्णन करते हैं कार्य्य उपाधि विशिष्टत्व रूप करके प्रतीयमान यह जीव चैतन्य कार्य्य उपाधि के प्रादुर्भाव सें प्रथम ब्रह्म ही था इसी वास्ते छांदोग्य उपनिषद् के षष्ठाध्याय में

(सत्तासोम्य तदासंपन्नोभवतिस्वमपीत्तोभवति)

यह कहा है श्रुत्यर्थ यह है (तदा) सुषुप्ति काल में हे प्रिय श्वेत केतो जीवात्मा (सत्ता) सत् रूप ब्रह्म के साथ (संपन्न) तादात्म्यापन्न अर्थात् अभेदापन्न होता है भाव यह है (स्वमपीतोभवति) अपने स्वरूप भूत ब्रह्म चैतन्य को प्राप्त होता है यदि जीव चैतन्य ब्रह्म सें पृथक् वस्त्वंतर होता तो सुषुप्ति काल में उपाधि के विलय में ब्रह्म भाव को प्राप्त न होता इससे प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध हुई जो उपाधि कृत ही जीवात्मा का ब्रह्म से भेद है वास्तव नहीं किन्तु वास्तव अभेद है इसी वास्ते वृहदारण्यक श्रुति में उपाधि की उत्पत्ति सें पूर्व जीवात्मा को ब्रह्म रूपता कहा है सो ब्रह्म रूप जीवात्मा अपने सर्वात्म रूप आत्मा को ही केवल जानता है अहं ब्रह्मास्मि केवल चैतन्य ज्योति ब्रह्म रूप हों मेरा जाग्रत स्वप्न में केवल उपाधि कृत भेद है वास्तव रूप ब्रह्म है त्तिस बोध सें जब अपने वास्तव ब्रह्म भाव को देखा तब सर्वात्म भाव को प्राप्त होगया उपाधिकृत परिच्छिन्न भाव को

विस्मरण करके (तत्) तिस ब्रह्म भाव को जो जो देवताओं के मध्य जानता हुआ तथा ऋषिओं के मध्य जानता हुआ सो सो सर्वात्म भाव को प्राप्त होगया तैसे ही ऋषि वामदेव तिस ब्रह्म को देखकर सर्वात्म भाव को तत्काल ही अपने आप में मंत्रों सें गायन करता हुआ (अहंमनुरभवं सूर्य्यश्च) सर्वात्मा ब्रह्म रूप मैं अपनि विचित्र शक्ति सें-मनु और सूर्य्य होता भया इसी प्रकार यदि कोई इस काल में भी इस जीवात्मा को ब्रह्म जानता है अर्थात् जलतरंगवत् इन दोनों के अभेद को जानता है सो भी ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है। इस प्रकार ब्राह्मण भाग कर कहे सर्वात्म भाव को मंत्रों सें भी गायन करा है। तथाहि

अहंमनुरभवंसूर्य्यश्चाहंकक्षीवाँऋषिरस्मिविप्रः।-
अहंकुत्समार्ज्जुनेयंन्यृंजेऽहंकविरुशनापश्यतामा॥
ऋ०मं०४।अ३।सू२६मं१।

पद। अहम् मनुः अभवम् सूर्य्यः च अहम् कक्षिवान् ऋषिः अस्मि विप्रः अहम् कुत्सम् आर्जुनेयम् निऋंजे अहम् कविः उशना पश्यतमा॥

अर्थ,, वामदेव ऋषि आत्मानुभवसें सर्वात्म भाव को प्रगट करता है मनु सूर्य्य कक्षिवान् ऋषि मैं हूं और (अहं विप्रःकुत्समआर्जुनेयंन्यृजे) मैने ही ब्राह्मण रूप परशुराम होकर कार्त्तिकवीर्य्य-के पुत्र सहस्त्र बाहु कुत्सित ब्राह्मण द्रोही को निरंतर भजर्न करा है। और उशनाकवि शुक्राचार्य्य भी मैं हूं हे जनो मेरेको देखो इस मंत्र सें परशुराम परमेश्वर का अवतार भी सिद्ध होगया॥

गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहं देवानांजनिमानिविश्वा।शतंमा पुरआयसीररक्षन्नधश्येनोजवसानिरदीयम्ऋ०मं०

४ अ ३ सू २७ मं १।

पद॥ गर्भेनुसन् ननुएषाम् अवेत् अहम् देवानाम् जनिमानि वि श्वा शतम् मापुरः आयसीः अरक्षन् अधः श्येनःनिरदीयम्॥

अर्थ,, गर्भ में वर्तमान ही वामदेव अपने सर्वात्मानु भव को प्रकट करता है (ननु) निश्चय करके इन अग्नि आदि देवताओं के - (विश्वा) संपूर्ण जन्मों को मैं जानता हूं पूर्वकाल में लोहमय शृंखला तुल्य अज्ञान जन्य शृंखला (अधः) इस संसार जाल में ही राखती हुई अब स्वरूप साक्षात्कार के प्रभाव से मैं अज्ञान जन्य दृढ़ाध्यास को वेगकर श्येन पक्षिवत् भेदन करता भया। भाव यह है पूर्वजन्म में वेदविद्या श्रवण करते भी जब भावी जन्म प्रतिबंध सें स्वरूप साक्षात्कार न हुआ तो अकृतार्थ ही रहा परन्तु अब प्रतिबंध निवृत्त होते - ही पूर्वकृत श्रवण सें साक्षात्कार हुआ तो सर्व बंध भ्रम तत्काल ही निवृत्त होगये। इस स्थान में यह विचार करना वादी ने वृहदारण्यक श्रुति में सें (ब्रह्मवाइदमग्रआसीत्) इतना श्रुति भाग ही वेदान्ति पूर्व पक्ष में लिखा है और पूर्व भाग तथा उत्तर भाग को छोड दिया परन्तु इतने श्रुति टूट सें कुछ अर्थ नहीं सिद्ध होता केवल वादी की धूर्तता है और यदि अहं ब्रह्मास्मि इस वाक्य का वादी मैं ब्रह्म में स्थित हूं यह अर्थ ही करेगा तो इस ज्ञान सें सर्वात्मभाव प्राप्ति का कथन देवता ऋषि मनुष्यों को असंगत होगा इस वास्ते यहां अखंडार्थ ही उपक्रमोपसंहारादि सें प्रतीत होता है और ऋग्संहिता के दो मंत्र भी इस अर्थ की बोधकता में संगत होंगे अन्यथा सर्वात्मभाव गायन सें और गर्भ में साक्षात्कार सें विरोध होगा इस वास्ते वादी की कल्पना सर्वथा वेद वाह्य असंगत है और वादी के जाल बद्ध

दल दल भूमिका में मगन इन मंत्रों के अर्थ में संभावना कैसे करेंगे जो कि गर्भ में सर्वात्म भाव वामदेव ने अनुभव करा और आत्मा इस मंत्र ब्राह्मण सें ब्रह्म सें अभिन्न निश्चय हुआ और संसार दुःख भ्रम मात्र है अज्ञान काल में प्रतीत होता है बोध सें निवृत्त होता है वामदेव दृष्टान्त सें इन अर्थों में विकल्प जाल फैलावेंगे परन्तु इनकी प्रज्ञा ही कितनी है जो आपही मिथ्यार्थ प्रकाश की दलदल भूमिका में कानतक धसगये और चोटी कट गयी निकासने में भी योग्यता नहीं रही। अपनी तुच्छ बुद्धि अनुसार वेद भगवान् को करा चाहिते हैं ऐसे नहीं करते जो कि अपनी तुच्छ प्रज्ञा को वेद अनुसार करें तो आश्चर्य्य नहीं जो बढ़ जाय परन्तु विपरीत मार्ग में चलते हैं कैसे होगा।

अथ मंत्र ब्राह्मण को वेदत्व और पंचकोश और महावाक्यार्थ और इस विषय में वाद्युक्ति खण्डन निरूपण करते हैं॥ ११॥

अब वादी के महा वाक्यार्थ में विलाप को दिखलाय कर यथावत् अर्थ को दिखलाते हैं। तथाहि।

प्रज्ञानं ब्रह्म। १। अहं ब्रह्मास्मि २ तत्त्वमसि ३ अयमात्मा ब्रह्म। ४।

यह वेद वाक्य ही नही हैं किन्तु ब्राह्मण ग्रंथों के वचन हैं और इनका नाम महा वाक्य कहीं सत्य शास्त्रों में नहीं लिखा यह वादी का पक्ष है। सत्या० समु ७। पृ० १८४॥ में देखो) इस लेख सें दो वार्त्ता प्रतीत होती है एक तो इन वाक्यों की महावाक्य संज्ञा प्रमाणक नहीं और दूसरा इनको वेदत्त्व नहीं वहां यह प्रष्टव्य है। यदि प्रमाण

क संज्ञा सें व्यवहार कर्त्तव्य है तो तुमने जो ईश्वर की न्यायकारी संज्ञा कल्पना करी है सो कौन से मंत्र वा ब्राह्मण वा शास्त्रादि ग्रंथों में लिखी है ॥ प्रश्न ॥ परमेश्वर यदि न्यायकारी नहीं तो क्या अन्यायकारी है ॥ उत्तर ॥ परमेश्वर को न्यायकारी तो हम भी मानते हैं परंतु यह संज्ञा कौन से शास्त्र में लिखी है यह कहना चाहिये - क्यों कि तुमारा यह सिद्धान्त प्रतीत होता है जो शास्त्रीय संज्ञा सें व्यवहार कर्त्तव्य है इसी वास्ते महावाक्य संज्ञा में आक्षेप करा है तब तो परमेश्वर में भी शास्त्रीय संज्ञा सें व्यवहार कर्त्तव्य है ॥ प्रश्न ॥ न्यायकारि अन्वर्थ संज्ञा है अर्थात् अर्थानुसारी संज्ञा है (न्यायं नाम उचितं यथा योग्यं कर्त्तु शीलं यस्य सन्यायकारी) यथा योग्य उचित सत्य २ करने का जिसका स्वभाव है सो न्यायकारी है ऐसा ईश्वर है।

उत्तर। इसी प्रकार को महावाक्य में समझना चाहिये यह महावाक्य संज्ञा भी अन्वर्थ संज्ञा है महद्बोधकं वाक्यं महावाक्यं अथवा महच्च तद्वाक्यंच महावाक्यं यह अन्वर्थ संज्ञा है भाव यह है महत् जो अखण्ड चैतन्य वस्तु तिसके बोधक होने सें महावाक्य हैं और द्वितीय पक्ष में महत् वाक्य हैं इससे महावाक्य हैं प्रथम पक्ष में तो महत् शब्द की महद्बोधक इतने अर्थ में लक्षणावृत्ति है और द्वितीय पक्ष में ब्रह्म बोधकत्त्वही वाक्यों में महत्त्व है क्यों कि ब्रह्म (महत्) देश काल वस्तु परिच्छेद रहित है ऐसे ब्रह्म के बोधक होने सें महावाक्य हैं भाव यह है भेद भ्रम निवारक वाक्य को अद्वैत सिद्धान्त में महावाक्य कहते हैं अपनी परिभाषा सें। यद्यपि केवल जीव चैतन्य और केवल ब्रह्म चैतन्य के बोधक वाक्य भी वेद सिद्धान्त में वास्तव त्रिविध परिच्छेद रहित अर्थ के बोधक हैं क्यों कि जीव चैतन्य और ब्रह्म चै

तन्य को वास्तव ऐक्य होने से तथापि वे वाक्य भेद भ्रमके निवारक नहीं इसी वास्ते केवल जीव चैतन्य और केवल ब्रह्म चैतन्य बोधक वाक्यों को परिभाषा से अवान्तर वाक्य कहते हैं जैसे पाणिनिऋषि के मत में वृद्धि शब्द परिभाषा से आऐ औ का बोधक है वैसे ही शंकराचार्य्य व्यासादि अद्वैत सिद्धान्ताचार्य्यो के मत में महावाक्य शब्द भी भेद भ्रम निवारक वाक्यों में पारिभाषिक है इस वास्ते जैसे प्रामाणिक ग्रंथों में अप्रसिद्ध न्यायकारी संज्ञा से अन्वर्थ संज्ञा मानने से परमेश्वर अन्यायकारी नहीं हो सकता वैसे ही पूर्व उक्त प्रकार से महावाक्य संज्ञा को अन्वर्थ संज्ञात्व होने से तुमारे स्वीकृत ग्रंथों में अप्रसिद्धि से महावाक्यों को अमहावाक्यत्व नहीं हो सकता यदि शास्त्र प्रसिद्ध संज्ञा से ही व्यवहार कर्तव्य होता तो व्याकरण महाभाष्यकार चतुर्थ यदृच्छा शब्द क्यों मानते इस वास्ते इनको महावाक्यत्व सिद्ध होगया और वादीकृत शब्द समुदायकी जो सत्यार्थ प्रकाशादि संज्ञा मानी है वादी ने सो कौन से सत् शास्त्र में लिखी है यदि नहीं लिखी तो अन्वर्थ संज्ञा मानकर यदृच्छा शब्द के अन्तर भाव कहना होगा और कोई प्रकार नहीं संभव हो सकता इसी प्रकार महावाक्य संज्ञा भी संगत होने से महावाक्य संज्ञा को अप्रामाणिकत्वाक्षेप कहना सर्वथा असंगत है यदि सर्व संज्ञा प्रामाणिक अपेक्षित होंवे तो अपने ग्रंथ की सत्यार्थ प्रकाशादि संज्ञा में और ईश्वर की न्यायकारी आदि संज्ञा में वादी को प्रमाण कहना चाहिये इस वास्ते संज्ञा में आक्षेप करना ही भाष्यकार स्वीकृत यदृच्छा शब्दानभिज्ञता को वादी में जनाता है। पूर्व प्रकार से प्रज्ञानं ब्रह्म इत्यादि वाक्यों की महावाक्य संज्ञा सिद्ध होगयी अब यह विचार कर्त्तव्य है जो इन वाक्यों को

अथवा तद् घटित ब्राह्मण ग्रंथों को वेदत्व है अथवा नहीं इस संशय की निवृत्ति वास्ते वेद शब्द के अवयवार्थ विचार पूर्वक वेद संज्ञा का अवधारण करके पश्चात् उसके संज्ञी का निर्णय होगा।

चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः। जाति शब्दा गुण शब्दाः क्रिया शब्दा यदृच्छा शब्दाश्चतुर्थाः॥ म० अ० १। पा० १। आ० २।

अर्थ, चार प्रकार सें शब्दों की प्रवृत्ति होती है अर्थात् शब्द की प्रवृत्ति निमित्त चार हैं जाति गुण क्रिया और रुढि जिसका रूढि प्रवृत्ति निमित्त है सो यदृच्छा शब्द कहा जाता है गो अश्वादि शब्द जाति प्रवृत्ति निमित्त हैं और नील पीत हरित कपोत श्यामादि शब्द गुण प्रवृत्ति निमित्त हैं पाचक धावक लावक अध्यापक पाठकादि शब्द क्रिया प्रवृत्ति निमित्त हैं और जो शब्द लौकिक अथवा शास्त्रीय संकेत सें अर्थ के बोधक हैं वे यदृच्छा शब्द हैं जैसे किसि देश में बालक शब्द के स्थान में डीकरा और कन्या शब्द के स्थान में डीकरी अथवा लड़का लड़की बालोंडा लौंडी इत्यादि और भी जानने और शास्त्रीय संकेत सें आ ऐ औ में संकेतित वृद्धि शब्द अथवा भेदभ्रम निवारक वाक्य में संकेतित पूर्वउक्त महा वाक्य शब्द यदृच्छा शब्द है तिसी को पारिभाषिक शब्द भी कहते हैं परन्तु वेद शब्द जाति शब्द है वा क्रिया शब्द है वा गुण शब्द है वा यदृच्छा शब्द है यह विचार कर्त्तव्य है जब वेद शब्द में विद ज्ञाने धातु सें करण में प्रत्यय करें तो (वेत्यनेनेति वेदः) ऐसी व्युत्पत्ति सें ज्ञान साधन का नाम वेद होता है सो ज्ञान साधन यावत् प्रमाण हैं इससे यावत् प्रमाण वेद शब्दार्थ हो सकते हैं परंतु ऐसे अर्थ में वेद शब्द

ज्ञान क्रिया प्रवृत्ति निमित्तक है और जब वेद शब्द में भाव में प्रत्यय करें तो वेदनंवेदः) ऐसी व्युत्पत्ति होने सें नित्याऽनित्य साधारण ज्ञान मात्र का नाम वेद होता है ऐसे अर्थ में ज्ञानत्व जाति प्रवृत्ति निमित्तक है वेद शब्द इस वास्ते जाति शब्द है और किसी स्थान में दर्भ मुष्टि का वाचक है वेद शब्द जैसे (वेदंकृत्त्वावेदिं करोति) इस कर्म काण्ड की श्रुति में दर्भ मुष्टि का वाचक है वेद शब्द परन्तु इस अर्थ में परिभाषिक होने सें यदृच्छा शब्द है और ॥

पुंसि संज्ञायांघः प्रायेण । ३ । ३ । ११८ । पा० सू० ।

अर्थ, प्रायेण) वहुधा धातु से घ प्रत्यय हो परंतु प्रकृति प्रत्यय समुदाय सें जब संज्ञा प्रतीत हो और सो शब्द पुंलिङ्ग हो । जब इस सूत्र से घ प्रत्ययान्त वेद शब्द माने तब वेत्त्यनेनेतिवेदः) व्युत्पत्ति तो इसी प्रकार की होगी परन्तु वेद संज्ञावत् ज्ञान साधन वेद शब्द का अर्थ है इस अर्थ में शास्त्रीय संकेत वत्त्वेसति ज्ञान साधनत्वंवेदत्वं यह वेद शब्दार्थ हुआ परन्तु इस अर्थ में वेद शब्द शास्त्रीय परिभाषा से अर्थ का बोधक होने सें यदृच्छा शब्द है इस स्थान में ज्ञान साधन । १ । ज्ञान २ दर्भमुष्टि ३ वेद संज्ञावत् ज्ञान साधन ४ यह चार अर्थ वेद शब्द के हैं तिस में तीन अर्थ तो प्रकृत में उपयोगि नहीं चौथा अर्थ माने सें शब्द राशि का बोधक वेद शब्द हो सकता है परन्तु वेद संज्ञा अथवा वेदत्व धर्म मंत्र ब्राह्मण समुदाय रूप का है यह तो वादी से अतिरिक्त सर्व का सिद्धान्त है और केवल मंत्र संहिता की वेद संज्ञा है यह वादी का मत है और ब्राह्मण ग्रंथ वेद के व्याख्यान रूप हैं उन-

को वेदत्त्व नहीं ब्राह्मण ग्रंथों को व्याख्यान रूप तो बहुधा और भी मानते हैं परन्तु वेद संज्ञा भी इनकी मानते हैं वेदत्त्व धर्म का निषेध नहीं करते और वादी वेदसंज्ञा का ही ब्राह्मण में निषेध करता है कपट वादी के मन में यह है यदि ब्राह्मण ग्रंथ को भी वेद माना तो मेरे मत का खण्ड न विद्यावान् जलदी करदेंगे क्योंकि छांदोग्य वृहदारण्यकादि उपनिषद् ब्राह्मण भाग की वर्त्तमान काल के विद्वज्जन बहुधा जानते हैं और शंकराचार्य्यादि आचार्य्यों ने इनका विस्तार स्फुट कर रक्खा है इस वास्ते ब्राह्मण ग्रंथ को वेदत्त्व का ही निषेध करना चाहिये तब तो जो जो वाक्य इन ग्रंथों में मेरे कल्पित मत का निषेध करेगा उस २ वाक्य को त्याग देंगे आक्षिप्त कथन करके परन्तु अब तो भगवत्कृपा सें वो समय प्राप्त हो गया है जो वादी का कल्पित मत मंत्र संहिता सें ही खण्ड न कर सकते हैं वादी की प्रज्ञा ही कितनी है जो प्रथम ही छल में प्रवृत्त हुआ है छल की असल ही कितनी है ॥

मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् । यह कात्यायन प्रतिज्ञा सूत्र सें दोनो भाग को वेदत्त्व सिद्ध होता है और वादी यह कहता है जो यह कात्यायन का वचन माने तो वेद सनातन कभी नहीं होसकें क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं किन्तु विशेष जिस २ शब्द से विद्या का बोध होवे उस २ शब्द का प्रयोग किया है किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं । यह वादी का बड़ा प्रबल हेतु है ब्राह्मण को अवेदत्त्व मानने में शास्त्र संस्कार शून्य जनों का व्यामोहक। पर-

तु इस हेतु से यदि ब्राह्मण भाग को सादित्त्व माने तो मंत्र भाग को भी सादित्त्व होना चाहिये क्यों कि मंत्र भाग में भी मनुष्यों के ऋषिओं के नाम और कथा प्रसंग हैं। तथाहि।

भोजायाश्वं संमृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या शुंभमाना भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्। ऋ० सं० म० १०। अ० ९। सू० १०७। मं १०।

इयमृक्। नि० दै० अ ७ पा २ खं ३) भाष्ये व्याख्याता।

पद। भोजाय अश्वं संमृजन्ति आशुम् भोजाय आस्ते कन्या शुम्भमाना भोजस्य इदम् पुष्करिणी इव वेश्म परिष्कृतम् देवमाना इव चित्रम्॥

अर्थ, दक्षिणा नाम प्रजापति की दुहिता दाता की प्रशंसा करती है पूर्व जन्म कृत दान प्रभाव से भोजराज को यह विभूति की प्राप्ति भयी है राजा भोज के वास्ते भृत्य समूह आशु अर्थात् शीघ्रगामी अश्व को (संमृजन्ति) स्नान कराकर संमार्जन करते हैं और अत्यन्त शुभायमान कन्या साकांक्ष औरों को त्याग कर भोज के वास्ते स्थित है और भोज का (वेश्म) गृह विमानवत् संस्कृत कमलनीवत् निर्मल चित्र अर्थात् पूजनीय है इस मंत्र में भोजराजा की कथा सूचन करी है और मनुष्य भोज का नाम तथा गुण का वर्णन करा है इसको वेदत्त्व नहीं होना चाहिये और यह मंत्र ऋग्वेद संहिता का है इसको वेदत्त्व और सनातनत्त्व कैसे होगा वादी के मत में॥

यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता त्रितंजूती सपर्य्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभंतामन्यके समे। ऋ० म० ८। सू ४१ मं ६॥ ॥

पद । यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिः इव श्रिता त्रितम् जूती सपर्य्यत व्रजे गावः न संयुजे युजे अश्वान् अयुक्षत नमंताम् अन्यके समे ॥

अर्थ, नाभाक ऋषि कहता है (यस्मिन् विश्वानि काव्यानि श्रितानि चक्रे नाभिरिव) यह अन्वय है जिस परमेश्वर में संपूर्ण काव्य बाल्मीक रामायण भारतादिक पर्य्यवसानता को प्राप्त हैं भाव-यह है लौकिक वाणिओं करके परमात्मा ही प्रशंसनीय है जैसे चक्र में नाभि रहती है एक देश में वैसे ही परमात्मा को लेशते सर्व काव्य वर्णन करें हैं हे जनो (त्रितम्) गुणत्रय के नियन्ता को (जूती) बुद्धि करके (सपर्य्यत) पूजन करो जो परमात्मा कृष्ण भाव को प्राप्त होकर (संयुजे) नंद के वास्ते (गावोन) गौओंवत् (युजे) अर्जुन के वास्ते अश्वों को रथ में (अयुक्षत) संयुक्त करता हुआ जो कि (समे) सर्व (अन्यके) शत्रु हैं वे (नभंताम्) हिंसित होंवें इस अभिप्राय सें । इस स्थान में गावः) इस पद के और व्रजे इस पद के सद्भाव सें और अश्वान् इस पद के प्रभाव सें संयुज-और युज पद सें नंद और अर्जुन का ग्रहण होता है इस मंत्र में नंद-अर्जुन कृष्ण के ग्रहण सें तथा सर्व काव्य बाल्मीक भारत की कथा सूचित करने सें सादित्त्व वादी के मत में होना चाहिये और सादि कथा प्रसंग सूचक मंत्र घटित ऋग्वेद संहिता को अनादित्त्व का भंग होना चाहिये इससे सादि इतिहास मनुष्य नाम घटित ब्राह्मण ग्रंथ को सादित्त्व कहने सें संहिता ग्रंथ को भी सादित्त्व होना चाहिये इस वास्ते वादी का हेतु ही वादी स्वीकृत वेद के अनादित्त्व का-नाशक है और एक मंत्र और है कृष्ण लीला का बोधक तिसको भी

सादित्व प्रसक्ति वादी के मत में होवेगी। तथाहि।

यत्र मंथां विवध्नते रश्मीन् यमित वाइव उलूखलसु-
तानाम वेद्विन्द्र जल्गुलः। ऋ० सं० मं० १। अ० ६ सू० २८
मं ४॥

पद। यत्र मंथां वि वध्नते रश्मीन् यमित वैइव उलूखल सुताना-म् अवेत् उइन्द्र जल्गुलः॥

अर्थ,, हे इन्द्र परमैश्वर्य्यवान् परमेश्वर ऐसे मात्तृजन सरल-चित्तों को उनिश्चय करके आप पालन करते हैं क्यों कि आप ज-ल्गुल हैं (जडानिगाव इन्द्रियाणि येषांते जड गावोऽति मूढाः गो-पजनाः तान् ल्गाति स्वीयत्त्वेनादत्ते जड्गुलः अकार लोपो डकारे ल-कारश्च छान्दसः परिगृह्णीतानां पालन भावश्यक मिति भावः)

अर्थ, जिन के इन्द्रियग्राम जडी भूत हैं ऐसे गोपजनों को जो अ-पने स्वीकार करा है इस से आप जल्गुल हैं स्वीकृत का पालन क-रना उचित ही है क्यों कि जिस उलूखल में केवल मंथन करने वा-ला पात्र बांधा जाता है तिस उलूखल में उलूखल वद्ध सुत को वा-स्तव कर अवद्ध को बंधन योग्य जानके तिसके (यमितवाइव) नि-यम न वास्ते केवल रश्मी नाम रसिओं को विशेष करके बांधती हैं ऐसे सर्व मात्त जन को आप पालन करोगे जरूर क्यों कि आप शर-णागत पालक हैं। भाव यह है जब गोपीजनों ने श्रीकृष्ण के करे च-रित्रों को यशोदा गोपी के प्रति निवेदन करा तो यशोदा श्रीकृष्ण-को उलूखल के साथ बांधने लगी परन्तु भगवान् का शरीर चैतन्य ज्योति मात्र कैसे बंधन में आता है केवल रसिओं को बांधती भयी परन्तु भ्रम से जाना जो बांधे गये। अब देखना चाहिये इस मंत्र-

को भी श्रीकृष्ण जन्म से पश्चात् भावी कहना होगा तब तद् घटित-संपूर्ण ऋग्संहिता को ऋषि रचित्त ही वादी कहेगा जैसे ब्राह्मणभाग में आख्यायिका देखकर मनुष्य रचित कहा वैसेही मंत्रभागको भी मनुष्य रचितत्त्व होना चाहियें वादीके मत में ईश्वररचितत्त्व-कैसे इस प्रश्न का उत्तर वादी के अनुयायी तो कैसे कहसकते हैं शास्त्र संस्कार शून्यता सें परन्तु हम उत्तर दिखलाते हैं जिस से मंत्र ब्राह्मण समुदाय को सादित्त्व शंका निवृत्ति होती है ॥

शव्द और अर्थ स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप सें सनातन हैं औरइन-दोनो का सम्बंध भी सनातन है जैसे लोक में कविकृत शव्द रचना प्रमाणान्तर सें अर्थ को देखकर होती है ऐसे वेद में नहीं किन्तु अनादि शव्द ही अनादि सम्बंध सें स्वसंबद्ध अनादि अर्थ को जनाते हैं अर्थ तो लौकिक शव्दों का भी सनातन है क्यों कि स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप सें किसी न किसी रूप सें शव्द तथा अर्थ वने रहते हैं जैसे वृक्षकवि तो स्थूल रूप सें होता हैं और जब स्थूल रूप सें न होवे तो सूक्ष्म रूप सें होता है और जैसे चातुर्मास्य में पृथिवी में सें तात्कालिक औषधि होती हैं और चातुर्मास्य के अभाव हुए सूक्ष्म रूप सें रहती हैं अत्यन्ताभावक बिनहीं होता तैसे जो २ इतिहास बोध्य अर्थ हैं सो २ कदाचित् स्थूल भाव को प्राप्त होकर कालान्तर में सूक्ष्म रूप कर रहते हैं लौकिक ग्रंथ रचना तो शव्दार्थ सम्बंध के अनादि होते ही महा शव्द रचना कुछ भी विलक्षण पुरुष की बुद्धि सें होती है और महाभारतादि में अर्थ तो जो इतिहासादि रूप कथा संदर्भ है सो वैसा ही रहता है और शव्द रचना कुछ-किंचित् विलक्षण होती है और वेद में तो शव्द की आनुपूर्वी भी वैसे

ही रहती है और ब्राह्मण ग्रंथों में जो ऐतरेय ऋषि आदि के नाम हैं सो ऋषि नाम तो जैसे मंत्र ऋषि दृष्ट होने से ऋषि नाम से प्रसिद्ध हैं तैसे ही ब्राह्मण ग्रंथ भी जिस ऋषि ने देखा है तिसके नाम से प्रसिद्ध हैं यदि ऋषि नाम से ब्राह्मण ग्रंथ को ऋषि रचितत्त्व मानें तो मंत्रों में भी ऋषि नाम प्रसिद्धि से ऋषि रचितत्त्व प्रसंग होगा। और शब्द तथा अर्थ और सम्बंध अनादि अनंत हैं इस अर्थ में महाभाष्य प्रमाण है। तथाहि ॥

कथं पुनरिदं भगवतः पाणिनेराचार्य्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्। सिद्धे शब्दार्थसम्बंधे सिद्धे शब्देऽर्थे सम्बन्धे चेति ॥

इत्यादि भाष्य का अर्थ पूर्व प्रकरण में कर दिया है सो जानलेना। प्रश्न ॥

वैदिकाः खल्वपि। शन्नो देवीरभिष्टये। इषेत्वोर्जेत्वा। अग्निमीळे पुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतये इति।

इस प्रकार व्याकरण महाभाष्य में वैदिक उदाहरणों में केवल संहिता के वाक्य ही लिखे हैं यदि ब्राह्मण भाग को वेदत्त्व होता तो ब्राह्मण ग्रंथ का भी वाक्य कोई लिखते इस से ब्राह्मण भाग को वेदत्त्व नहीं। इन मंत्र प्रतीकों का अर्थ यह है (नः अस्माकं देवीः आपो देव्यः शं सुखकरं भवन्तु अभिष्टये वांछितार्थ प्राप्तये भवन्तु) जो आप देवता हैं वे हमारे को सुखकर होवो इष्टअर्थ की प्राप्ति के अर्थ होवो। १।

हे शाखे तुमको (इषे) अन्न के वास्ते और (ऊर्जे) बल तथा

प्राण के वास्ते छेदन और मार्जन करता हूं ।२। देवता के पुरोहित अग्नि की स्तुति करता हूं ३ हे अग्ने (वीतये) पुरोडाशादिभक्षण के वास्ते (आयाहि) आगमन कर ।४। और ब्राह्मण ग्रंथोंमें मंत्रों की व्याख्या करी है इस वास्ते ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं ।

उत्तर । यह संपूर्ण वादी का लेख ही व्याकरण शास्त्र के सर्वथा अज्ञान को वादी में प्रगट करता है । तथाहि ।

चत्वारो वेदाः साङ्गा सरहस्या बहुधा विभिन्ना एक शतमध्वर्युशाखाः सहस्त्र वर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् । नवधाऽथर्वणो वेदः । महाभाष्य ।अ१।पा१।आ१।

अर्थ, शब्द शास्त्र के विषय का जहां भाष्यकारने निरूपण-किया है तिसमें वेदों का अव धारण करते हैं निरुक्तादि अंग और प्रणव कल्पादि रहस्य ग्रंथ सहित चार वेद हैं इस स्थान में यह विचारना जो वेदके उपकारी ग्रंथ हैं वेद व्याख्यान रूप तिन ग्रंथों सें मूलग्रंथ में भेद नहीं हो सकता जैसे निरुक्त में अनेक मंत्रों की तो साक्षात् पद २ की व्याख्या है और वास्तव वेदस्थ यावत् क्लिष्ट पदों का व्याख्यान रूप है परन्तु निरुक्त ग्रंथ शाखा नहीं माना किन्तु निरुक्तादि अंग सें सांग कहा है तथा रहस्यग्रंथ को भी शाखा नहीं कहा किन्तु रहस्यग्रंथ सें वेद को सरहस्य कहा है इस वास्ते जहां २ मंत्र व्याख्या है तिस २ ग्रंथ को वादी अभिमत व्याख्यारूपता शाखात्त्व नहीं अन्यथा निरुक्त को भी व्याख्यारूपता होने सें शाखात्त्व होना चाहिये इससे शाखा ग्रंथ वेदों के व्याख्यान हैं यह वादी का कथन असंगत है किन्तु जैसे शाखा मूल सहितका

नाम वृक्ष है तैसे शाखा ग्रंथ वा मंत्र रूप मूलग्रंथ सहित ही वेद रूप वृक्ष है शाखा मूल समुदाय में वृक्षत्त्ववत् शाखा ग्रंथ मूलग्रंथ समुदाय में वेदत्व है । वेद ग्रंथ शाखा के भेद कर बहुधा विभिन्न हैं । यदि व्याख्यान का नाम शाखा होता तो वेद ग्रंथों के सादि अथवा अनादि भेद सें व्याख्यान अनन्त हैं तब तो शाखाओं की गणना ही नहीं हो सकती ॥

प्रश्न । ब्राह्मण ग्रंथों सें शाखा ग्रन्थ न्यारे हैं अथवा ब्राह्मण ग्रंथ का ही शाखा नाम है ॥ उत्तर ॥ ब्राह्मण ग्रंथों का ही शाखा नाम है यदि शाखा ग्रंथों सें न्यारा ब्राह्मण भाग होता तो शब्द शास्त्र के विषय निरूपण प्रसंग में ब्राह्मण ग्रंथों को भाष्यकार पृथक् दिखलाते पृथक् तो दिखलाए नहीं इस से ब्राह्मण ग्रंथ का ही नाम शाखा है । शंका ।

वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावा-
न्शब्दस्य प्रयोगविषय ” इति ।

इस भाष्य में इतिहास और पुराण पद सें ब्राह्मण भाग को दिखलाय दिया है भाष्यकार ने ।

समाधान । यदि इस भाष्य में इतिहास पुराण पद सें ब्राह्मण भाग का ग्रहण करोगे तो भारतादि इतिहास पुराण रूप शब्दशास्त्र के विषय की अनुक्ति से न्यूनता होगी भाष्यकार के वाक्य में यदि इनी इतिहास पुराण पदों सें दोनो प्रकार के इतिहास पुराण को स्वीकार करोगे तो ।

इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्रा-
णि व्याख्यानान्यनुव्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्व-

सितानि बृ०उ०अ०४ब्रा०४॥

इस बृहदारण्यक वाक्य प्रतिपाद्य विद्या आदि नाम प्रतिपाद्य ब्राह्मण की अनुक्ति सें भाष्यकार प्रतिपाद्य शब्द विषय की न्यूनता होगी इस से ब्राह्मण ग्रंथों का शाखा नाम है सो शाखा ग्रहण सें ग्रहीत हैं । बृहदारण्यक वाक्य का अर्थ यह है । अष्ट प्रकार का ब्राह्मण होता है । इतिहास १ पुराण २ विद्या ३ उपनिषद् ४ श्लोक ५ सूत्र ६ व्याख्यान ७ अनुख्यान ८ । जिस में कोई कथा प्रसंग होता है सो इतिहास १ और जिस में जगत् की पूर्व अवस्था का निरूपण होता है सो पुराण २ जो किसी उपासना वा आत्म विद्या का प्रतिपादक वाक्य है सो विद्या ३ और उपास्य देव के रहस्य नाम का नाम उपनिषद् तत्प्रतिपादक वाक्य यहां उपनिषद् है ४ जो श्लोक नाम सें मंत्र कहे जाते हैं वे श्लोक हैं ५ और जो संक्षिप्त अर्थ का प्रतिपादक वाक्य है सो सूत्र है ६ और जिस वाक्य में तिसका विस्तार होता है सो व्याख्यान है ७ और जिस वाक्य में व्याख्यान को भी स्फुट किया जाता है सो अनुव्याख्यान होता है ८ यह अष्ट प्रकार का ब्राह्मण इस परमात्मा का ही निश्वसित है भाव यह है अनायास से मंत्रवत् ऋषि द्वारा परमात्मा सें आविर्भाव होकर पश्चात् लीन होजाता है प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध हुई शाखा ग्रंथ ब्राह्मण रूप हैं तिस से न्यारे नहीं और बृहदारण्यक श्रुति में ब्राह्मण भाग को परमात्मा के निश्वासवत् कहने सें मनुष्य रचितत्त्व का निषेध किया यदि मनुष्य रचित ग्रंथ भी परमात्मा के निश्वसित होवें तो यावत् लौकिक वैदिक शब्द मात्र को निश्वसितत्त्व कहते केवल मंत्र ब्राह्मण को निश्वसि-

तत्व न कहते मंत्र भाग को निश्वसितत्त्व प्रतिपादक श्रुति भाग यह है ।

अस्य महतो भूतस्य निश्वसित मेतद्यदृग्वेदोयजुर्वेदःसामवेदोऽथर्वांगिरसः ।

यह श्रुति पूर्व उक्त अष्टविध ब्राह्मण प्रति पादक श्रुति का पूर्व भाग है ।

श्रुत्यर्थ ,, इस महद्भूत परमात्माके ऋग् यजुः साम अथर्वांगिरस) अथर्वण वेद यह संपूर्ण निश्वसित हैं । एकाधिक शत शाखा यजुर्वेद है सहस्त्र शाखा सामवेद है और एकाधिक विंशति शाखा (बाह्वृच्यं) ऋग्वेद है नव शाखा अथर्वण वेद है । जब इस प्रकार भाष्यकार के वाक्य से सर्व शाखा सहित को वेदत्व हो गया तो पूर्व संहिता उदाहरण उपलक्षण हैं और भी जानना यदि ब्राह्मण भाग को वैदिकत्त्व न होता किन्तु लौकिकत्त्व होता तो लौकिक उदाहरणों में कोई ब्राह्मण ग्रंथ का वाक्य वैदिक वाक्यवत् लिखते सो तो लिखा नहीं किन्तु गौरश्वः शकुनिर्मृगः) इत्यादि लिखे हैं ऐसी आनुपूर्वी शब्दों की कहीं ब्राह्मण ग्रंथ में आती नहीं इस से ब्राह्मण ग्रंथको अवेदत्व कथन करना वादीका महा मोह है इस पूर्व उक्त विचार सें पतंजलि ऋषि के प्रमाण सें और अष्टविध ब्राह्मण को निश्वसितत्त्व बोधक श्रुति प्रमाण सें ब्राह्मण भाग को वेदत्व निश्चय होगया । १ । और (

(मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्)

नामैवेति नामधेयम्) मंत्र तथा ब्राह्मण का वेद नाम है । इस कात्त्यायन प्रतिज्ञा सूत्र के मानने में वेद को सनातनत्व भंग दोष-

वादी ने दिया था तिस का जब सम्यक् समाधान होगया तब इस वचन को भी अवश्य मानना चाहिये जब यह वचन प्रामाणिक हुआ तो कात्यायन ऋषिके मत में भी ब्राह्मण भाग को वेदत्त्व हो गया । २ । और जैमिनि ऋषि को भी ब्राह्मण भाग में वेदत्त्व इष्ट है । तथाहि ।

तच्चोदकेषु मंत्राख्या ० पू० मी० अ २ पा १ सू ३२ ॥

अर्थ ,, तस्य मंत्रस्य चोदका उपदेशका अध्यापकास्तच्चोदकास्तेषु मंत्राख्या मंत्रसंज्ञा प्रसिद्धास्तथाच मंत्रोऽयमिति शिष्टव्यवहार विषयत्वं मंत्रत्वमिति मंत्रलक्षणंलब्धमिति भावः)

भावार्थ यह है मंत्रों के जो अध्यापक हैं शिष्ट पुरुष तिनों में मंत्र संज्ञा प्रसिद्ध है इस वास्ते जो मंत्रोऽयम् ऐसे व्यवहार का विषय होता है सोई मंत्र है यह मंत्र का लक्षण लब्ध होता है ।

शेषे ब्राह्मण शब्दः । पू० मी० अ २ । पा १ । सू ३३ ॥

अर्थ ,, जिस वेद भाग में मंत्रोऽयम् ऐसे व्यवहार नहीं होता तिसमें ब्राह्मण शब्द प्रयोग होता है अर्थात् सो वेद भाग ब्राह्मण है ।

प्रश्न । मंत्रातिरिक्त को ब्राह्मण कहने से ब्राह्मण भाग को वेदत्व कैसे सिद्ध हो सक्ता है । उत्तर । (तद्भिन्नत्वे सति तत्समान जातित्वं तच्छेषत्त्वम्) तिस से भिन्न होते तिसके तुल्य जाति वाला हो सो तच्छेष होता है जैसे किसीने कहा ब्राह्मण शेष को भोजन कराना वहां ब्राह्मण शेष भोजित ब्राह्मण भिन्न और ब्राह्मणवृत्ति ब्राह्मण त्व धर्म वालों का ग्रहण होता है क्षत्रियत्त्वादि धर्म विशिष्ट का बोध नहीं होता और यथा किसी ने कहा सुवर्ण शेष को ले आना तब वो पुरुष जो बचा है सुवर्ण सो ई ले आता है और-

र जैसे किसी ने कहा अन्न शेष अभ्यागत को देदेना तो वो परिशिष्ट अन्न को ही देदेता है यावत गृहवृत्ति पदार्थों को नहीं देता क्योंकि विजातीय होने सें इसी प्रकार जब पूर्व सूत्र सें मंत्र पदकी अनुवृत्ति करके मंत्र शेषे ब्राह्मण शब्दः यह कहा तो मंत्र भिन्न और मंत्र समान जाति जो वेदत्त्व तिस वाला ब्राह्मण शब्द का अर्थ है इस रीति सें ब्राह्मण में वेदत्त्व जैमिनि ऋषिको इष्ट है और यह अर्थ ही जैमिनिजी को इष्ट है इसी वास्ते भाष्यकार शबरस्वामी॰ (शेषे ब्राह्मणशब्दः) इस सूत्रके भाष्य में

(मंत्राश्चब्राह्मणंचवेदः)

यह सूत्र का अर्थ लिखते हैं· इस प्रकार मंत्र ब्राह्मण समुदाय को वेदत्त्व जैमिनि ऋषि को इष्ट है। ३। और जो यह कहा ब्राह्मण ग्रंथ में मंत्र की व्याख्या होने सें ब्राह्मण ग्रंथों को वेदत्त्व नहीं वहां यह निष्कर्ष है ब्राह्मण को व्याख्या रूपत्ता तो हमभी मानते हैं परन्तु तिसको वेदत्त्व भी मानते हैं यथा पातंजल महाभाष्य में अथ शब्दानुशासनम्) इत्यादि वाक्यों की भाष्यकार ने ॥अथेत्ययं शब्द अधिकारार्थः प्रयुज्यते। इत्यादि व्याख्या करी है तिस व्याख्या वाक्य को तथा मूल वाक्य कोपतंजलि प्रणीतत्त्व ही मानने सें दोनो को पातंजलमहाभाष्यत्त्व है तथा मंत्र मूल वाक्य और व्याख्या ब्राह्मण वाक्य को वेदत्व मानते हैं।

प्रश्न। ब्राह्मण भाग में सर्वत्र तो मंत्रों की व्याख्या नही देखी-जाती किसी स्थान में मंत्र की व्याख्या है और जहां व्याख्या नहीं प्रतीत होती तिस ब्राह्मण भाग को केवल व्याख्यान वादी के मत में ब्राह्मणत्व नहीं होना चाहिये यथा छांदोग्य षष्ठाध्याय में कोई भी

व्याख्यान वाक्य नहीं प्रतीत होता । उत्तर । जिस स्थान में मंत्र प्रतीक धर कर व्याख्यान नहीं किया वहां इतिहासादि से मंत्र उक्त संक्षिप्त अर्थ का विस्तार किया है क्यों कि व्याख्यान दो प्रकार का होता है एक तो संक्षिप्त अर्थ का विस्तार करना और दूसरा प्रतीक धर कर पदों का अर्थ करना यद्यपि ब्राह्मण भाग में मंत्रों की व्याख्या है तथापि पतंजलि कात्त्यायन जैमिनि ऋषि संमत ब्राह्मण भाग में वेदत्व है ।

प्रश्न । ब्राह्मण भागः मंत्रभाग कर्त्तृभिन्न कर्त्तृकः तद्व्याख्यानत्त्वात् अष्टाध्यायी व्याख्यान महाभाष्यवत् । इस अनुमान से ब्राह्मण ग्रंथ को ईश्वरोक्तत्व नहीं हो सकता क्यों कि जो जिसका व्याख्यान होता है सो तिस से भिन्न कर्त्तृक होता है जैसे अष्टाध्यायी का महाभाष्य व्याख्यान पाणिनि भिन्न पतंजलि प्रणीत्त है और तिससे पश्चात् भावी है इसी प्रकार मंत्र व्याख्यान ब्राह्मण भी मंत्र पश्चात् भावी है और तिससे भिन्न कर्त्तृक है ॥

उत्तर ॥ इसका तो पतंजलि कृत् अपनी संक्षिप्तार्थ उक्ति के व्याख्यान वाक्य में व्यभिचार है और मंत्र में भी कहीं ब्राह्मण व्याख्यान रूपता है तब तो मंत्र को भी ब्राह्मण भाग से पश्चात् भावी मानोगे तो मंत्र को अनादित्त्व का भंग होगा जिस स्थान में ब्राह्मण मूल और मंत्र व्याख्या है सो दिखलाते हैं । तथाहि ।

ब्रह्मविदाप्नोति परम् ।

यह ब्राह्मण वाक्य है तैतरीय उपनिषद् का

अर्थ, ब्रह्म वित् परको (आप्नोति) प्राप्त होता है इस वाक्य में ब्रह्म का और ब्रह्म ज्ञान का पर प्राप्ति रूप फल का संक्षेपते निर्णय

किया है इस वाक्य के अर्थ को मंत्र सें विस्तृत किया है। तथाहि।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मयो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा-विपश्चितेति॥

अर्थ, सत्य ज्ञान अनंत रूप ब्रह्म है यह तो ब्राह्मण वाक्य स्थित ब्रह्म पद का व्याख्यान है परमे व्योमन् गुहायां निहितं यो वेद यह वित् पद का व्याख्यान है विपश्चिता ब्रह्मणा सह सोऽश्नुते सर्व्वान् कामान् इतना परमाप्नोति। इसका अर्थ है।

(सत्य) नाश रहित (ज्ञान) प्रकाश रूप जड़ विलक्षण है (अविद्यमानोऽन्तोपरिछेदो यस्मिन् तदनन्तं ब्रह्म) जिस में परिच्छेद नहीं है सो अनन्त है देश परिच्छेद और काल परिच्छेद और वस्तु परिच्छेद ऐसे तीन प्रकार का परिच्छेद है अत्यंता भाव का जो प्रतियोगि होता है सो देश परिच्छेद युक्त होता है जैसे पृथिव्यादि पदार्थ अत्यंता भाव के प्रतियोगी हैं और ब्रह्म अत्यन्ताभाव का प्रतियोगि नहीं इस वास्ते पृथिव्यादि वत् देश परिच्छेद युक्त भी नहीं और प्रागभाव अथवा ध्वंस का जो प्रतियोगि होता है सो काल परिच्छेद युक्त पृथिव्यादिवत् होता है और ब्रह्म उत्पत्ति नाश रहित है इस से काल परिच्छेद युक्त नहीं और जो अन्योऽन्या भाव का प्रतियोगि होता है सो वस्तु परिच्छेद युक्त होता है जैसे यावत्प्रपंच ब्रह्म कार्य्य अन्योऽन्या भाव का प्रतियोगी है। क्यों कि यावत् आकाशादि प्रपंच का "आकाशो न पृथिवी पृथिवी न आकाशः" इत्यादि रीति से आपस में अन्योऽन्या भाव प्रतीत होता है जैसे घटो मृत्तिका न" और कटकादिकं सुवर्णा न यह प्रतीति नहीं होती क्योंकि घट यदि

मृत्तिका नहीं तो और क्या है और कटकादिक यदि सुवर्ण नहीं तो और क्या है किन्तु घट कटकादिक मृत्तिका सुवर्ण रूपही हैं भाव-यह है मृत्तिका का अन्योऽन्याभाव घट में नहीं और सुवर्ण का अन्योऽन्या भाव कटकादि में नहीं तैसे यावत्प्रपंचो ब्रह्म न ऐसी प्रतीति होती नहीं क्यों कि यदि प्रपंच ब्रह्म नहीं तो और क्या है किन्तु ब्रह्म का ही मायिक आकार प्रपंच है भाव यह है प्रपंच में ब्रह्म का अन्योऽन्या भाव नहीं जब प्रपंच में ब्रह्म का अन्योऽन्याभाव न हुआ तो ब्रह्म वस्तु परिच्छेद युक्त नहीं इस से ब्रह्म अनंत है इसी वास्ते ।

(पुरुष एवेद ७ सर्वयद्भूतंयच्चभाव्यं । उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति) यजुः । अ ३१ । मं २ ।

इत्यादि वेद वचन भी संगत होते हैं । और वादी ब्रह्म को अत्यंताभाव प्रति योगि और प्रागभाव प्रध्वंस प्रतियोगि तो यद्यपि नहीं मानता तथापि अन्योऽन्या भाव प्रतियोगि मानता है क्यों कि जीव जगत् जड़ प्रकृति में ब्रह्म का भेद मानता है तिसके मत में अनन्त श्रुति और पुरुष एवेत्यादि श्रुति का बाध होगा और ब्रह्म विकारी भवितुमर्हति अन्योऽन्याभाव प्रतियोगित्त्वात् पृथिव्यादिवत् इस अनुमान सें विकारत्व प्रसक्ति होगी ।

अब ब्रह्म में अनंतत्व के स्पष्ट करने वास्ते जगत् कारणता श्रुति में कही है सोभी प्रकृत में दिखाना योग्य है अन्यथा ब्रह्म का स्वरूपलक्षण संदिग्ध रहेगा सो जैसे ब्रह्म में कारणता को बोधन किया है तिस को दिखलावेंगे और कारण श्रुति सें अनंत

र गुहा का निरूपण होगा और ब्रह्मज्ञान का फल भी निश्चय होगा ॥

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योऽन्नम् अन्नाद्रेतो रेतसः पुरुषः सवा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥

अर्थ,, (तस्मात्) मूल वाक्य सूचित ब्रह्म भिन्न (एतस्मात्) मंत्र वाक्य कर व्याख्यात सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म रूप आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ आकाश से वायु और वायु से अग्नि और अग्निसे आप और आपसे पृथिवी और पृथिवी से ओषधि और ओषधि से अन्न और अन्न से रेता और रेता से पुरुष सो यह पुरुष अन्नर सविकार है भाव यह है जब आकाशादि पुरुष पर्य्यन्त वस्तु ब्रह्म उपादान० कारण वाली है इस से ब्रह्म रूप है तिस वस्तु में ब्रह्म का अन्योऽन्याभाव नहीं इस वास्ते ब्रह्म को अनंतत्व सिद्ध होगया अब गुहा को निरूपण करते हैं ब्रह्मज्ञान के साक्षात्कारत्व प्रसिद्धि वास्ते ॥

तस्येदमेव शिरः । अयं दक्षिणः पक्षः । अयमुत्तरः पक्षः । अयमात्मा । इदं पुच्छं प्रतिष्ठा ॥

अर्थ,, यद्यपि ब्रह्म चराचर प्रपंच का उपादान कारण होने सें सर्वत्र अनुस्यूत है तथापि बोध पुरुष शरीर में हो सकता है इस वास्ते पुरुष सरीर में पंचकोश वेद भगवान् दिखलाते हैं और पुरुषाकार आत्मा को पक्षि रूप सें निरूपण करते हैं क्यों कि (

(आत्मा वै जायते पुत्रः)

इस श्रुति प्राप्त जो पुत्रात्मत्त्व भ्रम तिसकी निवृत्ति के अर्थ पुरुषाकार शरीर की आत्मत्त्व रूप सें उपासना के वास्ते तिस अन्नमय को शका शिर तो शिर है और दक्षिण भुजा दक्षिण पक्ष वाम भुजा वाम पक्ष मध्यस्थल आत्मा अर्थात् मध्यस्थान और कटि से अधोभाग प्रतिष्ठा रूप पुच्छ है ॥ इस अन्नमय कोश को आत्मत्त्वकर के उपासना से पुत्र में आत्मत्त्वभ्रम निवृत्त होजाता है पुत्रादि में आत्मत्त्व भ्रम सें पुत्रादि छठा कोश हैं ॥

तस्माद्वा एतस्मादन्नर समयात् अन्योऽन्तरात्माप्राणमयः। तेनैषपूर्णः। सवाएष पुरुषविधएव। तस्य पुरुष विधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राणएव शिरः। व्यानोदक्षिणः पक्षः आकाशात्मा पृथिवीपुच्छं प्रतिष्ठा॥

अर्थ, (तस्मात्) समष्टि रूप अन्नर समय से (एतस्मात्) व्यष्टि रूप अन्नर समय से भिन्न अन्तरात्मा प्राण मय है तिस प्राण मय अन्तरात्मा करके समष्टिव्यष्टि रूप यह अन्नमय परिपूर्ण है भाव यह है अन्न मय रूप समष्टि व्यष्टि शरीर का यह प्राणमय शरीरी है इसी प्रकार पूर्व २ कोश शरीर और उत्तर २ कोश शरीरी है यह सर्वत्र जानना जब इस श्रुति वाक्य में तत् शब्द से समष्टि और एतत् शब्द से व्यष्टि का ग्रहण करा तब समष्टि व्यष्टि से आत्मा का विवेचन होजायगा सो यह अन्नमय कोश पुरुषाकार प्रसिद्ध है व्यष्टि रूप इसी प्रकार समष्टि को भी पुरुषाकार जानना तिसके पुरुषाकार होते पश्चात् यह प्राण मय भी पुरुषाकार है यथा सांचे में द्रवी भूत ताम्र प्रविष्ट हुआ तदाका-

र होता है तद्वत् यह प्राणमय भी अन्नमयाकार है तिस प्राणमय कोश का प्राण तो शिरस्थानापन्न है और व्यान रूप वृत्ति दक्षिण पक्ष स्थानापन्न है और अपान वृत्ति वाम पक्ष स्थानापन्न है और (आकाश) आकाशस्थ समान वायु आत्मा मध्य देह समान है और पृथिवी देवता प्रतिष्ठा रूप पुच्छ है ॥

तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात् अन्योऽन्तर आत्मा-मनोमयः । तेनैष पूर्णः । सवा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुष विधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य यजुरेवशिरः । ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः आदेश आत्मा अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा ॥

अर्थ, परोक्ष अपरोक्ष समष्टि व्यष्टि रूप इस प्राणमय से अन्य अन्तरात्मा मनोमय है तिस मनोमय करके यह प्राणमय पूर्ण है सो यह प्राण मय पुरुषाकार है तिस पुरुषाकार के पश्चात् यह मनोमय भी पुरुषाकार है तिस मनोमय का यजुर्वेदाकार जो वृत्ति है सो तो शिर है ऋगाकार दक्षिण पक्ष है सामाकार उत्तर पक्ष है वेदत्रयवृत्ति विधिवाक्य आदेश है तदाकार वृत्तिमध्य है अथर्वांगिरसाकार वृत्ति प्रतिष्ठा रूप पुच्छ है ॥

शंका – यजुरादि वेदाकार वृत्तिओं को मनोमय कोश के अङ्ग रूपता कहा सो संभवे नहीं क्यों कि वेद को शब्द रूप होने सें किंचित्त काल स्थायिता है और तदाकार वृत्ति भी किंचित् काल स्थायी है और मनोमय कोश बहुकाल स्थायी है स्थूल सूक्ष्म रूप सें क्यों कि सुषुप्ति में भी सूक्ष्म रूप से स्थिर है तव किं-

चित कालस्थायी और बहुकालस्थायी का अवयवावयवी भाव सं भवेनहीं ।

समाधान— यजुरादि वेद का स्वरूप भी केवल किंचित् काल स्थायी ही नहीं किन्तु पराबाणी परिसमाप्ति पर्य्यन्त है इससे स्थायी है और तदाकार वृत्ति भी स्थूल सूक्ष्म साधारण रूपकर बहुकालस्थायी है । वेद रूप शब्द को चार प्रकार सें मंत्र बोधन करता है ।

चत्त्वारि वाक् परिमिता पदानितानि विदुर्ब्राह्मणा येमनीषिणः ॥ गुहात्रीणि निहितानेङ्गयन्तितुरीयंवाचोमनुष्यावदन्ति । अथर्वणवेद, कां॰६ । अनु॰ ५ । प्रपा॰२१ । मं २७ ॥

अर्थ, वाक् के चार परिमित अर्थात् विद्वज्जनानुभूत (पद) अंश अथवा भाग हैं तिनको मनन शील ब्राह्मण जानते हैं तीनभाग तो गुप्त स्थान में स्थित हैं सर्वथा चेष्टा रहित हैं चतुर्थभाग को मनुष्य उच्चारण करते हैं ॥ भाव यह है बाणी चार प्रकार की है- वैखरी मध्यमा पश्यंती परा और शब्द वाच्य अर्थ का अपने वाचक शब्द सें तादात्म्य सम्बंध है अर्थात् वाच्य वाचक का अभेद है वैखरी वाणी कारण सूक्ष्म विशिष्ट स्थूल का बोधक है इस से स्थूल रूप है मध्यमा स्थूल रहित कारणात्मा युक्त सूक्ष्म का बोधक है इससे सूक्ष्मरूपहै और कारणात्मा दो प्रकार का है: एकतो किंचित् बहिर्मुख सृष्टि संकल्प विशिष्ट है सो तो पश्यंती बाणी बोध्य होने से पश्यंती रूप है और सृष्टि संकल्प रहित: केवल साक्षी रूप पराबाणी बोध्य होनेसें परा रूप है ॥

तस्यैषएव शारीर आत्मायः पूर्वस्य । तस्माद्वाएत स्मान्मनोमयात् । अन्योऽन्तर आत्माविज्ञानमयः । तेनैषपूर्णः । सवाएषपुरुषविधएव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्यश्रद्धैवशिरः । ऋतंदक्षिणःपक्षः । सत्यमुत्तरःपक्षः योगआत्मा महः पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येषश्लोकोभवति । विज्ञानंयज्ञंतनुते । कर्म्माणि तनुतेऽपिच ॥

अर्थ, (तस्य प्राण मयस्य पूर्व निरूपितस्य एष एव शारीरआत्मा (यः) मनोमयः) पूर्व निरूपित प्राणमय कोशका जोयह प्रसिद्ध मनोमय है सो शरीर में होने वाला आत्मा है अर्थात् प्राण मय शरीर है और मनोमय शरीरी है इस समष्टि व्यष्टि मनोमय से अन्य अन्तरात्मा विज्ञान मय है और विज्ञान मयकरके मनोमय पूर्ण है सो यह मनोमय पुरुषाकार पूर्व वर्णित है तिसके पुरुषाकार के पश्चात् यह विज्ञान मय भी पुरुषाकार है। यजुरादि वेदार्थाकार निश्चय रूपवृत्तिमदन्तःकरण विज्ञान मय कोश है तिसका कर्त्तव्य अर्थ में विश्वास रूप श्रद्धाशिर और यथा शास्त्र कर्त्तव्य निश्चय रूपऋतदक्षिणपक्ष है वाक और शरीर संपादित धर्म रूप सत्यवाम पक्ष है चित्तवृत्तिनिरोधरूप योग मध्य भाग है यथा शरीर के हस्तादि अवयव अङ्ग हैं तद्वत् श्रद्धादि योग के अङ्ग हैं समष्टि बुद्धि महत्तत्त्व रूप महः अधिष्ठान रूप प्रतिष्ठा पुच्छ है तिस विज्ञानमय के स्वरूप का प्रकाशक एक श्लोक रूप मंत्र है विज्ञान ही वैदिक और लौकिक कर्म्म को विस्तार करता है इस से विज्ञानमय को शही कर्त्ता है

ग्रौर कर्म्म फल सुख दुःख का भोक्ता है इस विज्ञान मयको
श में ही वादी को ग्रात्मत्त्वभ्रम है तिसते सूक्ष्म ग्रौर तदन्तर
गत्त ग्रानन्द मय कोश है तिस में वादी को ईश्वरत्त्वभ्रम है।
तथाहि ।

सत्या० समु० ७ पृ १६४। में देखो)

जीव परमेश्वर सें स्थूल ग्रौर परमेश्वर जीव सें सूक्ष्म होने सें परमेश्वर व्यापक ग्रौर जीव व्याप्य है । इस वादी के लेख सें स्पष्ट बुद्धिमान् को प्रतीत होता है जो कि वादी विज्ञान मय कोश को जीवत्त्व ग्रौर ग्रानन्द मय कोश को ईश्वरत्व कहता है इस स्थान में यह विचार कर्त्तव्य है जो मैत्रायणी शाखा में

(यश्चेतामात्रःक्षेत्रज्ञः प्रतिपुरुषः)

ग्रौर पातंज लसूत्र में

(द्रष्टादृशिमात्रःशुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः)

इत्यादि जीव चेतन निर्णीत है ग्रौर

सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म)

इत्यादि ब्रह्म चेतन निर्णीत है इन में स्थूलता ग्रथवा सूक्ष्मता तो किसी प्रमाण सें निश्चय होती नहीं किन्तु विज्ञान मय कोश कार्य्य होने सें स्थूल ग्रौर ग्रानंद मय कोश को कारण होने सें सूक्ष्मता है ग्रौर जीवो विकारः स्थूलत्त्वात् घटादिवत् इस ग्रनुमान सें जब वादी ग्रभिमत जीव को विकारत्त्व होगया तो जीव को ग्रनादित्व उपपादन ही ग्रसंगत होगा जब ऐसे युक्ति सें ग्रनादित्त्व विरुद्ध कार्य्यत्व प्रसक्ति वाले को वादी ने जीव माना तो हम तिससे ग्रथवा तिसके भक्तों सें पूछते हैं यदि इन दोनों के ग्र-

धिष्ठान

(ब्रह्मपुच्छंप्रतिष्ठा)

इस वाक्य प्रतिपाद्य ब्रह्म को अद्वैत वादी अखण्ड रूप त्रिविधपरिच्छेद रहित बोधन करो तो तुमारी क्या हानि है तुम अपने भ्रम को दृढ़ करके राखो और यह तुमारी केवल धूर्तता है जो अद्वैत सिद्धान्त को न समझ कर अस्तव्यस्त बकना और सत्या० समु ७। पृ १९९। में देखो)

ब्रह्म के सत् चित् आनंद और जीव के अस्ति भाति प्रियरूप में एकता होती है। ऐसी प्रति वादी की उक्ति मान कर यह कहा है। वादी ने। किंचित् साधर्म्य मिलने से एकता नहीं होसकती जैसे पृथिवी जड़ द्रव्य है वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और द्रव्य हैं इतने से एकता नहीं होती इनमें वैधर्म्य भेद कारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्धरूक्षता काठिन्यादि गुण पृथिवी और रस द्रवत्व कोमलत्त्वादि धर्म जल और रूप दाहकत्त्वादि धर्म अग्नि के होने से एकता नहीं। जैसे मनुष्य की आकृति दोपग और कोडी की आकृति अनेक पग आदि भिन्न होने से एकता नहीं होती वैसे परमेश्वर के अनन्तज्ञान अनंत बल क्रिया निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीव से और जीव के अल्पज्ञान अल्प बल अल्पस्वरूप सभ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्म से भिन्न होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं क्यों कि इनका स्वरूप भी परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उस से कुछ स्थूल होने से भिन्न है। यह वादी का लेख है परन्तु यह लेख चैतन्य रूप सत्यानन्द आत्मा में भेद-का साधक नहीं किन्तु विज्ञान मय कोश और आनंद मय कोशके

भेद का साधक है क्यों कि इन दोनो में हीं किंचित् स्थूलता और सू- क्ष्मता वाह्यता आन्तरता बन सकती है । और पृथिवी को गन्धरूक्ष- ता काठिन्य रूपसे जल सें भेद कहा है तिस में यह प्रष्टव्य है जो पृ- थिवी का जल सें अत्यन्त भेद है अथवा औपाधिक भेद है यदि अत्यं- त भेद है तो जल से पृथिवी की उत्पत्ति नहीं होगी जैसे रेत से अत्यं- त भिन्न तेल की उत्पत्ति नहीं होती इसी प्रकार जल से पृथिवी की उत्पत्ति के असंभव होने सें (अद्भ्यः पृथिवी यह श्रुति असंगत होगी वादी के मत में इस वास्ते जल और पृथिवी का औपाधिक किंचित् ही भेद है जैसे दुग्ध से दधि का और अग्नि को दाहकत्त्वादि धर्मयु- क्त होने सें जलादि तिस से भिन्न कहे सो कथन भी असंगत है क्यों कि अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी) इत्यादि श्रुति का बाध होनेसे और अनन्त पृथिवी कार्य्य औषधि में दाहकत्त्वादि धर्म हैं तिनको पृथि- वीत्व नहीं होना चाहिये और मनुष्य कोडी का भेद भी किंचित् विकार सें हैं वास्तव भेद नहीं यदि वास्तव भेद हो तो कुष्टिः मनुष्यो न ऐसी प्र- तीति होनी चाहिये इस वास्ते सर्वथा शास्त्र संस्कार शून्यता से वादी का प्रलाप है और जो जीव को परिच्छिन्न माना है सो भी सर्वथा शा- स्त्राबोध मूल कहै क्यों कि जीवोऽनित्यः परिच्छिन्नत्त्वात् घटादिव- त् इस अनुमान से अनित्यत्त्वापत्ति दोष सें परिच्छिन्नत्त्व कथन भी असंगत है वेद सिद्धान्त में परमाणवादि अस्वीकृत हैं इस से व्य- भिचार की संभावना नहीं इस वास्ते वादी भांग खाकर शास्त्राज्ञा- नरूप दल दल भूमिका में धसकर अस्तव्यस्त बकता है ॥

वादोक्त निश्चलदास पर आक्षेपाभास) और निश्चलदास का पाण्डित्य देखो ऐसा है „ जीवो ब्रह्म भिन्न श्चेतनत्त्वात् „ गु-

न्हो ने वृत्ति प्रभाकर में जीव ब्रह्म की एकता के लिये अनुमान लिखा है कि चेतन होने से जीव ब्रह्म से अभिन्न है यह बहुत कम समझ पुरुष की बात के सदृश बात है क्यों कि साधर्म्य मात्र से एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती वैधर्म्य भेदक होता है जैसे कोई कहे कि " पृथिवी जलाभिन्ना जड़त्वात् " जड़ के होने से पृथिवी जल से अभिन्न है जैसा यह वाक्य संगत कभी नहीं हो सकता वैसे निश्चलदासजी का भी लक्षण व्यर्थ है क्यों कि जो अल्प अल्पज्ञता और भ्रान्तिमत्त्वादि धर्म जीव में ब्रह्म से और सर्वगत सर्वज्ञता और निर्भ्रांतित्वादि वैधर्म्य ब्रह्म में विरुद्ध हैं इससे ब्रह्म और जीव भिन्न २ हैं जैसे गन्धवत्त्व कठिनत्त्वादि भूमि के धर्म रसवत्त्व द्रवत्त्वादि जलके धर्म से विरुद्ध होने से पृथिवी और जल एक नहीं। वैसे जीव और ब्रह्म के वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म एक न कभी थे न हैं और न कभी होंगे इतने ही से निश्चलदासादि को समझ लीजिये कि उन में कितना पाण्डित्य था।

सत्या० समु० ११ पृ० । २९६ ।

यह वादी ने महा विद्वान् निश्चलदास पर आक्षेप करा है सो यह आक्षेप करना ही वादी में महा मूर्खता को जनाता है क्यों कि प्रथम दृष्टान्त रूप जल पृथिवी में भेद सिद्ध करा है सो भी श्रुति विरुद्ध है यदि पृथिवी जल से अत्यन्त भिन्न होती तो श्रुति में जल का कार्य्य पृथिवी को न लिखते जैसे घट में गोलाकारत्त्व और कटक में वलयाकारत्त्व के होने से मृत्तिका सुवर्ण से भेद नहीं इसी प्रकार जलकार्य्य पृथिवी में कठिनत्त्व अथवा स्वकीय धर्म गन्धवत्त्व होने से वास्तव भेद नहीं हो सकता यथा दधि

और दुग्ध में औपाधिक धर्म मधुरत्त्व और आमलत्त्व के भेद सें अत्यन्त भेद होता तो जैसे कटकार्थी की दुग्ध के उपादान करने में प्रवृत्ति नहीं होती तथा दधि अर्थी की भी दुग्ध के ग्रहण के वास्ते प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये और कठिनत्त्व प्रसिद्ध जल रूप ओले में भी देखा जाता है और रसवत्त्व द्रवत्त्व पृथिवी में भी फल भावापन्न और घृत भावापन्न में देखा जाता है और जब वेद प्रमाण सें जल कार्य्यत्त्व का पृथिवी में निश्चय होगया तो पृथिवी जला भिन्ना जल कार्य्यत्त्वात् यद्यत्कार्य्यं तत्तद भिन्नं यथा सुवर्ण कार्य्य कटकादि इस अनुमान प्रमाण सें अभेद हो सकता है वादी को अनुमान प्रयोग की बुद्धि हो तो अनुमान प्रयोग बनाता और जो वादी ने जड़त्त्व हेतु अभेद का साधक लिखा है सो तो आकाशादि में व्यभिचारी है और यदि गन्धवत्त्व हेतु सें पृथिवी को जल सें भिन्न सिद्ध करें तो भले ही करो परन्तु यदि वास्तव भेद विवक्षित होगा तब तो जल कार्य्यत्त्व बोधक श्रुति का बाध होगा इस से किंचित् औपाधिक ही भेद जल ओले वत् मानना चाहिये । और जो वृत्ति प्रभाकर के अनुमान को दूषित करा है वादी ने सो तो केवल मूर्च्छा में आगये क्यों कि यदि वृत्ति प्रभाकर को वादी किसी ब्रह्म निष्ठ गुरु से पढ़ता तो शायत उसका अभिप्राय जान जाता परन्तु विना जाने दूषण देना महा मूर्खता है क्योंकि, जीवो ब्रह्मा भिन्न श्चेतनत्त्वात् इस अनुमान का दृष्टान्त ही नहीं लिखा और न्याय शास्त्र की पर्य्यादा सें कोई दूषण लिखा नहीं केवल इतना ही बाधन करा जीव तो अल्प अल्पज्ञ सभ्रान्ति है और ब्रह्म सर्व गत सर्वज्ञ निर्भ्रान्ति है ॥ सो यह कथन भी विज्ञान मय कोश और आनन्द मय को

श का भेद साधक है जो पातंजल सूत्रादि प्रतिपाद्य जीव और सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म इस मंत्र प्रतिपाद्य ब्रह्म के भेद का साधक नहीं अब यह विचारो जो अनुमान में जीव शब्द किस का वाचक है यदि सुखी दुःखी संसारी अल्प अल्पज्ञ का वाचक मानकर ब्रह्मा भेद का निषेध करे वादी तो निषेध करना असंगत है क्यों कि तिसको तो ब्रह्म भिन्नत्त्व हम भी मानते हां दूषण क्या हुआ और यदि पातंजल सूत्र श्रुति वाक्य प्रतिपाद्य जीव पक्ष है तो तिस में ब्रह्म भेद बाधित है इसि वास्ते निश्चलदासजी ने ब्रह्मवत् यह दृष्टान्त लिखा है दृष्टान्त वो होता है जहां हेतु साध्य की व्याप्ति का निश्चय होता है यत्र चेतनत्त्वं तत्र ब्रह्मा भेदः)

इस व्याप्ति का निश्चय ब्रह्म में हैं क्यों कि चेतनत्व और ब्रह्मा भेद ब्रह्म में निश्चय सर्वथा हो सकता है और जीव में चेतनत्त्व-वादि को संमत है तो ब्रह्मा भेद भी विना इच्छा सें मानना पड़ा और जो यह कहा किंचित् साधर्म्य मिलने सें एकता नहीं होती इस-कथन सें सत् चित् आनन्द जीव ईश्वर के धर्म माने तिस में यह प्रष्टव्य है इनका धर्मी सत् चित् आनन्द रूप है अथवा तद्भिन्न है यदि सत् चित् आनन्द का धर्मी भी सत् चित् आनन्द रूप है तो एक में धर्मी धर्म भाव कहां देखा है यह शास्त्र संस्कार शून्य वादी को कहना चाहिये सो तो अभेद में किंचित् औपाधिकादि भेद विना कहीं देखा नहीं यदि सत् चित् आनंद का धर्मी इन सें भिन्न है तो असत् जड़ दुःखरूप होगा तिसका जीव सें भेद सिद्ध करो हमारी क्या हानि है चेतन मात्र में भेद कदापि नहीं सिद्ध होता इस वास्ते सत् चित् आनन्द को धर्म कथन वादी का अज्ञान है यदि स

तच्चित् आनन्द ब्रह्म के धर्म होते तो

(सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म आनन्दोब्रह्म)

इत्यादि ब्रह्म स्वरूप लक्षण प्रतिपादक श्रुति वाक्यव्यर्थ होता इस वास्ते केवल मिथ्या प्रलाप से विना और कुछ भी वादी-के वाक्य में नहीं थोडे से व्युत्पन्न को देख के हासी आती है।

विज्ञानमय कोश का स्वरूप निरूपण होगया अब आनन्दमय कोश का स्वरूप श्रुति सें निरूपण करते हैं। तथाहि।

तस्यैषएव शारीरआत्मा। यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात्। अन्योऽन्तर आत्मानंदमयः। तेनैषपूर्णः। सवाएष पुरुषविधएव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्यप्रियमेवशिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोदउत्तरःपक्षः आनंदआत्मा ब्रह्मपुच्छंप्रतिष्ठा॥

अर्थ,, (तस्य पूर्वस्य विज्ञानमयस्ययएषः प्रसिद्धोवक्ष्यमाण आनंदमयः सएव शारीर आत्मा) पूर्व निर्णीत विज्ञानमय का जो यह प्रसिद्ध वक्षमाण आनंदमय है सोई शरीर में होने वाला आत्मा है भाव यह है विज्ञानमय शरीर है और आनंदमय शरीरी है और समष्टि व्यष्टि विज्ञानमय सें अन्य अन्तर आत्मा आनंदमय है तिस आनंद मय करके यह विज्ञानमय पूर्ण है सो यह विज्ञान मय श्रद्धादि अवयव से पुरुषाकार निर्णीत है तिसके पश्चात् आनंदमय भी पुरुषाकार है जो इष्ट पदार्थके दर्शनजन्य आनन्द है सो तो आनंद मयका शिर और आनंद ही पदार्थके लाभसें किंचित् उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त मोद है सो दक्षिण पक्ष है औ

र पदार्थ के भोग जन्य प्रकृष्ट हर्ष प्रमोद है सो वाम पक्ष है और सा
मान्य आनन्द मध्य भाग है और ब्रह्म सत्चित् और एकरस नित्य आ
नन्द रूप प्रतिष्ठा रूप पुच्छ है इस स्थान में पुच्छ शब्द आधार का
बोधक है सर्वाधिष्ठान ब्रह्म आनन्दमय कोश का पुच्छवत् पुच्छ
है आधार रूप ॥ इस स्थान में जो सत्यं ज्ञान मनंतं ब्रह्म इस श्रुति
में ब्रह्म निर्णीत है सोई पुच्छ वाक्य में प्रतिपाद्य है (योवेद निहितं
गुहायां परमेव्योमन्) इस मंत्र भाग प्रतिपाद्य गुहा निरूपण पूर्व-
क ब्रह्म ज्ञान प्रकार कहा और सत्चित् आनंद ब्रह्म को सर्वाधार
ता बोधन करा वादी कल्पित सत्चित् आनंद को धर्म रूपता खं-
डित होगयी और ब्रह्म को अनंतत्त्व सिद्ध होगया जब सर्व प्रपंच ब्र
ह्मकर व्याप्त है कटक कुण्डलादि जैसे सुवर्ण कर व्याप्त हैं तद्वत्
तब ब्रह्म को यावदभाव का अप्रतियोगित्त्व रूप अनंतत्त्व सिद्ध होग
या। अब ज्ञान स्वरूप निरूपण पूर्वक ब्रह्म ज्ञान का फल दिखलाते
हैं (सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणाविपश्चितेति) इस मंत्र-
भाग के अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

तथाहि। सयश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः।
सय एवं वित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमा-
त्मानमुपसंक्रम्य। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य
एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य एतं विज्ञानमयमा-
त्मानमुपसंक्रम्य एतमानंदमयमात्मानमुपसंक्रम्यइ
माँल्लोकान् कामान्नीकामरूप्यनुसञ्चरन् एतत्सामगा
यन्नास्ते। हा ३ वुहा ३ वुहा ३ वुअहमन्न १ महमन्न १
महमन्नम्। अहमन्नादो २ ऽहमन्नादो २ ऽहमन्नादः।

अह १ श्लो १ कक्रुदह १ श्लो १ कक्रुदहं १ श्लो १
कक्रुत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋता ३ स्य । पूर्वं देवे-
भ्यो ऽमृतस्यना ३ भायि । योमाददातिसइदेवमा ३
वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमा ३ द्मि । अहं विश्वंभुवन
मभ्यभवां ३ सुवर्णज्योतीः । यएवंवेद ॥ ॥

अर्थ,, पूर्व उक्त प्रकार से चराचर प्रसिद्ध जो यह पुरुष में है औ र आदित्य उपलक्षित यावत् देवशरीर में वर्त्तमान चिदात्मा है सए क रूप है जो प्रसिद्ध अधिकारी इस प्रकार एक तत्त्व साक्षात्कार करता है सो इसलोक से उत्थान होकर अन्नमय प्राणमय मनो मय विज्ञानमय आनन्दमय इन पंचकोश को (उपसंक्रम्य) पू र्व २ को शमे आत्म त्वाध्यास की निवृत्ति वास्ते उत्तर २ कोशको (आत्मत्वेनस्वीकृत्य) आत्मत्व करके स्वीकार कर ।

भाव यह है पुत्रादि में आत्म भाव निवृत्ति के अर्थ अन्नमय कोश को आत्मत्वेन उपासना करे इसी प्रकार पूर्व २ मे आत्मत्वभ्र म निवृत्ति करके पश्चात् आनंदमय का जो अधिष्ठान ब्रह्म चैत- न्य तिसको अनुभव करके (कामतो ऽन्नं यस्य सकामान्नीतथा कामतो रूपं यस्य सकाम रूपी) सर्वात्म भाव को अनुसंधानक रता हुआ वक्ष्यमाण साम को गायन करता विचरता है हा वु श ब्द आश्चर्य्य का द्योतक है बड़ा आश्चर्य्य है मै ही अन्न और अन्ना द अर्थात् अन्न का भोक्ता हूं और अन्न अन्नाद के संघात का कर- ता हूं और अमृततत्त्व की (नाभि) अधिष्ठान (ऋतस्य) मूर्त्तामू- र्त्त प्रपंच का अधिष्ठाता (प्रथमज) हिरण्यगर्भ हूं देवताओं से पूर्व होने वाला अन्न रूप को जो अतिथि आदि के अर्थ मेरो को देता,

है तिसकी मै सर्वात्मा ब्रह्म रक्षा करता हूं और जो पाप जीवन केवल अपने आपही भोक्ता है सर्व साधारण अन्न को तिसको मै कालात्मा शीघ्रही भक्षण करता हूं और मै अपने स्वत:सिद्ध रूपकर स्वयं प्रकाश सर्व भुवन का तिरस्कार करता हूं यदि कश्चित् अधिकारी इस प्रकार जानेगा सो भी सर्वात्म भाव को प्राप्त होगा यह सर्व श्रुति वचन ब्रह्मविदाप्नोति इस से लेकर य एवं वेद इस पर्य्यन्त तैतरीयारण्यकस्थ तैतरीय उपनिषद् में है इस प्रकार मंत्र ब्राह्मण समुदाय से अखंड वस्तु का निर्धारण करा महावाक्यार्थ निरूपण में उपयोगि जानकर पूर्व विचार से प्रज्ञानं ब्रह्म ' इत्यादि वाक्यों को महावाक्यत्त्व और वेदत्व सिद्ध होगया और जो वादी का इस स्थान में प्रलाप है तिसको दिखलाकर खंडन करते हो ।

अहं मै ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मस्थ अस्मि हूं यहां तात्स्थ्योपाधि है। जैसे " मंचा:क्रोशन्ति " मंचान पुकारते हैं । मंचान जड हैं उनमें पुकारने का सामर्थ्य नहीं इसलिये मंचस्थ मनुष्य पुकारते हैं इसीप्रकार यहां भी जानना । कोई कहे कि – ब्रह्मस्थ सब पदार्थ है पुनः जीव का ब्रह्मस्थ कहने में क्या विशेष है ? इसका उत्तर यह है कि सब पदार्थ ब्रह्मस्थ हैं परन्तु जैसा साधर्म्य युक्त निकटस्थ जीव है वैसा अन्य नहीं और जीव को ब्रह्म का ज्ञान और मुक्ति में वह ब्रह्म के साक्षात्सम्बन्ध में रहता है इसलिये जीव का ब्रह्म के साथ तात्स्थ्य वा तत्सह चरितो पाधि अर्थात् ब्रह्म का सहचारी जीव है । इस से जीव और ब्रह्म एक नहीं जैसे कोई किसी से कहे कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधि हैं वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वर में प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है वह क

ह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवका-शस्थ हैं जो जीव परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभाव करता है वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है ॥

सत्या॰ समु ७। पृ॰ १९४ ॥

यह वादी ने अहं ब्रह्मास्मि इस वाक्य का अर्थ करा है इस कथन से अपनी अविद्वत्ता को स्पष्ट कर दिया है क्यों कि अपनी उक्ति सें आप विरुद्ध बकता है (यआत्मनितिष्ठन्) इत्यादि श्रुतिमें जीवात्मा को आधारता और ब्रह्म को आधेयता कहा है और इस-वाक्य में ब्रह्म पद की ब्रह्मस्थ अर्थ में लक्षणा करने सें (ब्रह्मणि तिष्ठतीति ब्रह्मस्थः) इस व्युत्पत्ति कर पुरुषा धार मंचवत् ब्रह्म आधार प्रतीत होता है तब एक बृहदारण्यक में किसीवाक्यमें ब्र-ह्म आधार और जीव आधेय और किसी वाक्य में जीव आधार और ब्रह्म आधेय यह प्रतीत होता है ऐसे विरुद्ध अर्थ को स्वीकार करना वादी की अविद्या है इस प्रकार विरुद्ध अर्थ को वादी अपने॰ आप ही लिखता है। तथाहि ।

यआत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मान वेदयस्या त्मा शरीरम् । यआत्मनोऽन्तरोयमयत्ति । एषतआ-त्मान्तर्यास्यमृतः।

यह बृहदारण्यक का वचन है । महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी सें कहते हैं कि हे मैत्रेयि । जो परमेश्वर आत्मा में अर्थात् जीव में स्थित और जीवात्मा से भिन्न है जिस को मूढ़ जीवात्मानहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में व्यापक है । जिस परमेश्वरकाजीवा

त्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है वैसेही जीव में परमे श्वर व्यापक है जीवात्मा सें भिन्न रह कर जीवके पाप पुण्यो का साक्षी होकर उनके फल जीवों को देकर नियम में रखता है। वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है।

सत्या॰ समु ७ पृ॰ १६५।

यह वादी का लेख है यह कथन तो सर्वथा असंगत है परन्तु इस लेख से जीवात्मा को आधारता और ईश्वरात्मा को आधेयता और अहंब्रह्मास्मि इस वाक्य में ब्रह्म पदबोध्य ईश्वर में आधारता और जीव में आधेयता तो ऐसे असंगत अर्थ को सिवाय वादी से कौन लिख सकता है और एक महा मूढ़ता यह प्रकट करा जो उद्दालक याज्ञवल्क्य के संवाद की श्रुति को मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के संवाद की कहना जिसको इतना शहूर नहीं सो कैसे नहीं अर्थका अनर्थ करेगा। और जो जीव को ब्रह्म के निकटस्थ और मुक्ति में साक्षात्सम्बंध में रहने वाला और ब्रह्म सहचारी अर्थ इसकाय ह है ब्रह्म के साथ विचरने वाला कहा सोतो सर्वथा मिथ्या प्रलाप वादी के मत का विघातक है क्यों कि यदि जीव निकस्थ और दूसरे पदार्थ दूरस्थ और मुक्ति में साक्षात्सम्बंध और बंध में परंपरा सम्बंध और जीव के साथ रहनेवाला है तो ब्रह्म एक देशी परिच्छिन्न क्रियावत् होगा और जो जीव को ब्रह्म का अविरोधि रूप अथवा ब्रह्म को जीव का अविरोधी रूप कहा तो क्या जीव भिन्न पदार्थ ब्रह्म के विरोधी हैं उनोने क्या ब्रह्म से तकरार करा है और वो एक अवकाश ब्रह्म सें भिन्न कौन है जिसमें समाधि काल में

ब्रह्म और जीव स्थित हैं सर्व का आधार ब्रह्म यदि किसी दूसरे अवकाश में रहेगा तो परिच्छिन्नत्वादि दोष युक्त होगा इससे अहं ब्रह्मास्मि इस वाक्य का व्याख्यान वादी का तिस में सर्वथा विद्या हीनता का वोधक है और जो यह लिखा जो जीव परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभाव करता है वही साधर्म्य युक्त होता है ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है। इस स्थान में यह निर्णतव्य है वो गुण कर्म स्वभाव कौन हैं जिनके अनुसार अपने गुण कर्म करने चाहिये । यदि सत्य कामत्व सर्वज्ञत्व सर्व शक्तित्व नियंतृत्व धर्मादिफल प्रदत्त्व यह गुण और सृष्टि पालना संहार कर्तृत्वादि कर्म्म कहो तो इस गुणकर्म के अनुसार अर्थात् तत्सदृश गुण कर्म कहोगे तबतो यह गुण कर्म वादी के मत में मोक्ष में भी होने नहीं तो बंधकाल में कहां से होंगे यदि न्यायकारित्व कर्म और दयालुत्वादि गुण परमेश्वर में प्रसिद्ध हैं तत्सदृश गुण कर्म अपने में करना चाहिये यह कहो तो किस प्रमाण सें परमेश्वर को न्याय कारी दयालु जाना है यदि जीवों में सुख दुःख को देखके अनुमान होता है जो कोई सुख दुःख दाता न्यायकारी दयालु है सो तो ठीक नहीं - क्यों कि मूल प्रमाण सें विना अनुमाना भास हो जाता है मीमांसक कर्म्म वादी सुखदुःख दाता कर्म को कह सकता है इससे शव्द प्रमाण सें न्यायकारी दयालु निश्चय होगा तबतो परमेश्वर के अवतार माने विना न्यायकारी दयालु परमेश्वर कबी नहीं सिद्ध हो सकता सो तो महामाया मोहित वादी ने माना नहीं, तो परमेश्वर के गुण कर्म्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म्म

स्वभाव करने चाहिये यह कथन असंगत है इससे यह समझ
ना जो परमेश्वर के नृसिंहादि अनन्त अवतार और अवतारकृ
त न्यायकारित्वादि कर्म्म दयालुतादि गुण शास्त्र प्रमाण सें नि
श्चय करके अपने में प्रह्लादादिवत् निरहंकार ता परमेश्वर-
आश्रय सें विनासर्व तरफ सें निराशता पूर्ण विश्वास परमात्मा
में और साहंकारता सें हिरण्यकशिपु प्रभृति को अनर्थ प्राप्त
होना जब इस प्रकार परमात्मा के और परमात्मा के भक्तों के
गुण कर्म्म का अनुसंधान करेंगे तो परमेश्वर के अनुकूल गुण
कर्म्म कर सकते हैं । यथा केन में यक्ष और उमा भगवतीका
आविर्भाव हुआ तिस में यह प्रसंग है एक समय पर देवासुर
संग्राम हुआ था तब परमात्मा ने दैवी संपत्ति देवताओं में सम
झ कर विजय श्री देवताओं को दयी तब देवताओं ने अहंका
र करा जो हमारा बड़ा प्रभाव है जब इस प्रकार आसुरी सम्पत्ति
युक्त देवता ही हुए तो परमात्मा देवताओं पर दयालुता करके-
एक अलौकिक यक्ष रूप को देव सभा के संमुख प्रादुर्भाव कि
या तब देवता अलौकिक ईश विग्रह को देख चकित होकर अ
ग्निदेव को भेजा निर्णय करने वास्ते तब अग्नि जाकर चकित हो
खडा रहा यक्ष रूप बोले तू कौन है क्या सामर्थ्य रखता है अग्नि
देव कहते हैं मेरे में यह सामर्थ्य है यदि संकल्प करों तो याव
त् पृथिवी में स्थित वस्तु को दग्ध कर सकता हूं तब यक्ष रूप
भगवान् ने एक तृण को धरा और कहा इसको दग्ध कर परन्तु
अग्निदेव जब परमेश्वर ने सर्वसामर्थ्य हरलीनी तब दाहन क
र सका इसी प्रकार वायु भी जब भग्न बल होकर फिर आया औ

र इन्द्र देव पहुंचे तो यक्ष रूप तिरोधान कर इन्द्र की भक्ति देख- कर उमा रूप होगये उमा द्वारा सर्व समाचार इन्द्र ने जाना ।

अब देखना चाहिये जब ऐसे २ परमात्मा के चरित्र जानेगे तो परमेश्वर को प्रिय अपने गुण कर्म कर सकते हैं और वादी ने तो परमेश्वर के अनुकूल गुण कर्म हच्छे करे हैं क्यों कि

सत्या० पृ० ६८)

अपने आप ही दश उपनिषद् को मानकर तिनके अर्थ को जलांजलि देकर अस्तव्यस्त बकना काहे ते के न माना है और तिसके तृतीय खण्ड प्रतिपाद्य परमेश्वर के अवतार को निषेध करता है कहो तो तिसके वाक्य में कौन श्रद्धा करेगा और जो पूर्व ही वादी ने श्रुति भेद साधक लिखी है तिसी श्रुति को जब समग्र देखेंत ब उसी सें अभेद निश्चय होता है ।

तथाहि । य आत्मनितिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्माशरीरम् । य आत्मनोऽन्तरो यमयति । एष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टोद्रष्टाऽश्रुतःश्रोताऽमतोमन्ताऽविज्ञातो विज्ञातानान्योऽतोऽस्तिद्रष्टानान्योऽतोऽस्तिश्रोतानान्योऽतोस्ति मन्तानान्योऽतोस्ति विज्ञातैषत आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्त्तम् । बृ० उ० अ० ५। ब्रा ७॥

अर्थ,, लोक प्रसिद्ध भेद का प्रथम श्रुति अनुवाद करके पश्चात् प्रमाणान्तराज्ञात अभेद को प्रतिपादन करती है जो आत्मा में - अर्थात् विज्ञानोपाधिक कर्त्तृ भोक्तृ रूप कर निर्णीत संसारी जीव में कारणोपाधिक ईश्वर स्थित होकर तिस विज्ञानोपाधि का-

कारण होने से तिससे अन्तर है और जिसको वो जीव नहीं जानता जिसका जीवात्मा शरीर है और वो ईश्वर जीव को अन्तरस्थित ही प्रेरणा करता है इतने श्रुति भाग से औपाधिक भेद कहा - अब उत्तर श्रुति भाग कर वास्तव अभेद कहते हैं याज्ञवल्क्य उद्दालक से कहते हैं हे उद्दालक जो अन्तर्यामी अमृत तत्पदलक्ष्य अदृष्ट द्रष्टा और अश्रुत श्रोता और अमृतमन्ता वैसे ही अविज्ञात - विज्ञाता है (एषतेआत्मा) यह तेरा स्वरूप है और (एषत- आत्मा) इस वाक्य का वादी ने , वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है । यह अर्थ लिखा- है सो असंगत्त है क्यों कि पूर्व वाक्य कर इसी अर्थ को बोधन करा है इस से यह महा वाक्य है भेदभ्रम निवारक होने से और हे उद्दालक इस चैतन्य ज्योति से भिन्न द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं इस वाक्य से जीव ईश्वर द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता के भेद का निषेध करा पुनः दृढता करते हैं (एषत आत्माअन्तर्यामीअमृत:) यह अन्तर्यामी अमृत तेरा स्वरूप है इस से जो भिन्न वस्तु है सो आर्त्त) विनाशी है इस वाक्य के अर्थ से यह जनाया (यत्रब्रह्मभिन्नत्वंतत्रविनाशवत्त्वं) जिसको ब्रह्म भिन्नत्त्व है तिसको विनाशवत्त्व है यदि जीव को ब्रह्म भिन्न मानेंगे तो तिसको विनाशवत्त्व होगा तब जीव को अनादि अनंतत्त्व कल्पना असंगत होगा इससे जीव को ब्रह्म रूप करके ही अनादि अनंतत्त्व है । वादिकृत तत्त्वमसि वाक्य में लीला को दिखलाते हैं । तथाहि ।

प्रश्न - अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे । १ (तत्) ब्रह्म (त्वं) जीव (असि) हैं । हे जीव (त्वं) तू (तत्) वह ब्रह्म-

(असि) हैं (उत्तर) तुम तत् से क्या लेते हो " ब्रह्म " ब्रह्म पद की अनुवृत्ति कहां से लाये । १ ।

सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयंब्रह्म ॥

इस पूर्व वाक्य से तुमने इस छान्दोग्य उपनिषद का दर्शन भी नहीं किया जो वह देखी होती तो वहां ब्रह्म शब्द का पाठ नहीं है ऐसा झूंठ क्यों कहते किन्तु छान्दोग्य में तो "

सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् "

ऐसा पाठ है वहां ब्रह्म शब्द नहीं ।

प्रश्न— तो आप तच्छब्द से क्या लेते हैं ?

(उत्तर) सयएषोणिमैतदात्म्यमिद ँ सर्वंतत्सत्यंसआत्मातत्त्वमसिश्वेतकेतो

इतिछान्दो० ॥

वह परमात्मा जानने योग्य है जो यह अत्यंत सूक्ष्म और इस सब जगत् और जीव का आत्मा है वही सत्य स्वरूप और अपना आत्मा आपही है । हे श्वेतकेतो प्रिय पुत्र "

तदात्मकस्तदन्तर्यामीत्त्वमसि)

उस परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त है ॥

सत्या०समु ७ पृ० १९५ ।

यह वादी ने तत्त्वमसि वाक्य का व्याख्यान लिखा है परन्तु इस स्थान में जिस अद्वैत वादी के साथ प्रश्न उत्तर हुआ है वादी का जाने वो वेदान्ती अपूर्व वादी ने पैदा करा जिसको वादी के वृहदारण्यक बोधवत् छान्दोग्य का बोध है क्यों कि वादी को यदि वृहदारण्यक का बोध होता तो उद्दालक याज्ञवल्क्य के संवाद में मैत्रेयी

सम्बाद न लिखता और छान्दोग्य श्रुति में सत् शब्द को प्रकृति वाचक न लिखता इससे ' यादृशी सीतला देवी तादृशः खर बाहनः) जैसा प्राचीन वेदान्ति मानो वादी है वैसा ही तिसको पूर्व पक्षी मिला है जिसने छान्दोग्य का दर्शन भी नहीं करा तिसके मतका ही खण्डन करा होगा यदि शंकर मत का खण्डन करता तो किसी शंकर मत ग्रंथ का वाक्य लिखता और यदि यह कहे जो शंकर मतका ही खण्डन करा है तो शंकराचार्य्य जी ने क्या छान्दोग्य का दर्शन भी नहीं करा था सो तो महा धूर्त्तता है क्यों कि शंकरकृत व्याख्यान तो अति प्रसिद्ध है जिसकी एक पंक्ति का अर्थ भी वादी न जान सके खण्डन की असल ही क्या है यदि किसी ऐसे अव्युत्पन्न खसदृश के साथ सम्बाद वादी का हुआ तो शंकर मत कैसे खण्डन होगया तब तो शंकर मत का आक्षेप करना वादी की मूर्खता है यदि शंकर मत खण्डन करने की सामर्थ्य होती तो कोई शंकराचार्य्य जी की पंक्ति प्रकरण लिखकर खण्डन करता । यदि शंकराचार्य्य के ग्रंथ का वादी को बोध होता तो "

जीवे शौचविभक्षद्वाचिद्विभेदस्तुतयोर्द्वयोः । अविद्यातच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥ १ ॥ कार्य्योपाधिरयंजीवः कारणोपाधिरीश्वरः । कार्य्यकारणतांहित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥ २ ॥

ये संक्षेप शारीरक और शारीरक भाष्य में कारिका हैं) सत्या० पृ० १९६) यह न लिखता क्यों कि इन दोनो बचनों का संक्षेपशारीरक और शारीरक भाष्य में पता भी नहीं किन्तु प्रथम वचन

तो वार्त्तिक कार सुरेश्वरा चार्य्य का है प्रमाण रूप कर ग्रंथों में बहुत जगा लिखा जाता है और द्वितीय वचन अथर्वणोपनिषदों की श्रुति है प्रमाण विध या बहुत ग्रंथों में लिखी जाती है परन्तु संक्षेप शारीरक शारीरकभाष्य में प्रमाण विध या भी उपन्यास नहीं करा केवल वादी का मिथ्या प्रलाप है वेदान्त ग्रंथ स्वप्न में भी नहीं देखे तो वैसा ही खण्डन करेगा इस विपरीत लेख से ही दयानंद के बोध की परीक्षा होती है और जो यह कहा तच्छब्द से किसी की अनुवृत्ति क्या तच्छब्द अनुवृत्ति के वास्ते है यदि अनुवृत्ति का बोधक होता तो असंगत होता क्यों कि अनुवृत्ति प्रकरण केवल से वैसे ही हो सकती किन्तु (सर्व नाम्नामुत्सर्गत: प्रधान परामर्शित्त्वम्) सर्व नाम संज्ञक शब्दों को प्रधान अर्थ की परामर्शित्व अर्थात् ज्ञापकता होती है सो इस प्रकरण में सत् एक अद्वितीय रूप वस्तु ब्रह्म प्रकरण प्रतिपाद्य होने सें प्रधान है तिसका लक्षक तत्पद है किसी पद की अनुवृत्ति का बोधक नहीं वादी की शंका और समाधान असंगत है । क्यों कि प्रथम एक पद से एक पद की अनुवृत्ति बोधन करनी फिर दूसरे पद से अर्थ को बोधन करना महा गौरव है और तत्सत्यं (सआत्मा) इस श्रुति वाक्य का अर्थ यह किया (वही सत्य स्वरूप और अपना आत्मा आपही है । और (तत्त्वमसि) इस वाक्य का अर्थ वादी ने यह करा है । उस परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त है इस वादी के लेख को असंगत निश्चय कराने वास्ते सर्व श्रुति को लिखकर प्रकरणानुसार अर्थ दिखलाते हैं । तथाहि ।

अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्‌मनसि सम्पद्यते-

मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां स य एषो ऽणिमा । ऐतदात्म्यमिदं सर्व्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो । छान्दोग्य० ३ प्र ६ ।

अर्थ,, हे सोम्य इस म्रियमाण पुरुष के वाग् उपलक्षित संपूर्ण इन्द्रिय वृत्ति मन में लीन होजाती है और मन किंचित् काल अन्तर ही संकल्पादि सहित होकर जब पुरुष लंबे लंबे श्वास लेता है तब प्राण में लीन होता है प्राण भी किंचित् काल देह में यथावत् चलकर तेज में लीन होता है तेज भी किंचित् काल रहता है तब उस तेज से ही निश्चय करते हैं जो जीवता है फिर तेज भी परम मूल कारण जो सत् ब्रह्म है तिस में लीन होता है और वादी यह कहता है अपनी प्रचलित बुद्धि सें जो ब्रह्म का पाठ नहीं सो सर्वथा विद्या हीनता का बोधक है क्यों कि ब्रह्म शब्द के पाठ न होने पर भी सत् का प्रकरण तो संपूर्ण षष्ठाध्याय है यदि ब्रह्म सत् नहीं तो क्या असत् शून्य रूप है सो तो असंगत है किन्तु सद्रूप है इस से ब्रह्म का ही प्रकरण है जो यह पर देवता सद्रूप ब्रह्म है सो (अणिमा) अत्यन्त सूक्ष्म है जिस में मरण समे जीव लीन हुआ है मरण समे में सर्व वागादि उपाधि का ब्रह्म में लय कथन का तात्पर्य्य यह है ब्रह्म को सर्व की उपादानता बोधन करना क्यों कि उपादान में ही कार्य्य का लय होता है दूसरा भी तात्पर्य्य है वागादि उपाधि के लीन हुए से जीव का स्वरूप केवल ब्रह्म है इस से ब्रह्म जीव का भेद केवल उपाधिकृत है क्यों कि उपाधि के अभाव काल में जीवत्व भाव प्रतीत होता नहीं (इदं सर्वं ऐतदात्म्यम ।) एषः सद्रूपः आत्मा अन्तरात्मा यस्य सर्वस्य आकाशादि विराट् पिण्डान्तस्य वस्तुमात्रस्य सः प्रपं

चः एतदात्मा एतदात्मनोभावः सत्ता रूपोऽर्थः । इदं सर्ववस्तु-मात्र मैतदात्म्यम् । एतेन प्रपंचस्य ब्रह्म सत्तातिरिक्त सत्ताशून्य त्त्वमपि बोधितम् । यथा गन्धवत्त्वमित्यत्र गन्धवच्छब्दोत्तर वृत्ति भाव प्रत्ययस्य गन्ध रूपार्थ बोधकत्वं तथा प्रकृते ऐत दात्म्य मित्त्यत्रैतदात्म बोधकत्त्वं भाव प्रत्ययस्य तथाच सर्व वस्तु मात्रस्यात्मनः, एतदात्म शब्द प्रतिपाद्यस्य ब्रह्मण इदं सर्व मिति पद प्रतिपाद्येन प्रपंचेन सह समान विभक्तिकयोः पद योर भेद संसर्गेणान्वये प्रपंचस्य ब्रह्म सत्तातिरिक्त सत्ता शून्यत्त्वमेव निश्चित मिति भावः)

भावार्थ,, सर्व वस्तु का आत्मा वास्तव रूप जो सद्वस्तु ब्रह्म है (तत्सत्यं) सो नाश रहित है और (सआत्मा) सोई जीव है यहां सद्वस्तु ब्रह्म को उद्देश्य करके आत्मा विधेय है और तत्त्वमसि यहां भी पुनः तच्छब्द बोध्य सद्ब्रह्म को उद्देश्य कर के त्वं शब्द बोध्य जीवात्मा श्वेत केतु संबोध्य चेतन विधेय है इसका पुनः कथन करने का यह भाव है जो कि पूर्व सआत्मा इस वाक्य में आत्मा शब्द जीवात्मा का बोधक है और उत्तर वाक्य में भी त्वं पद बोध्य आत्मा है अर्थान्तर नहीं इस प्रकार एकता दृढ़ होती है और केचित् भेद भ्रान्ति युक्त वास्तव भेद वादि- यह कहते हैं तत्त्वमसि) इस वाक्य में तस्यत्वं तत्त्वम् इत्यादि समास करके भेद को सिद्ध करते हैं तिनके भ्रम दूर करने वास्ते सआत्मा यह पृथग् अभेद बोधक वाक्य का उपदेश करा है क्यों कि इस वाक्य में समास की संभावना ही नहीं हो सकती और उद्देश्य विधेय भाव स्थल में भिन्न पदजन्य उपस्थि-

ति पदार्थों की शाब्द बोध में कारण देखी है यदि समास कर ए
क पद होगा तो विभिन्न पद जन्य पदार्थोपस्थिति के अभाव से
उद्देश्य विधेय भावही नहीं होगा और पूर्व वाक्य में अभेद और
उत्तर वाक्य में भेद यह कथन असंगत होगा और वादी ने तत्स-
त्यं स आत्मा इसका (वही सत्य स्वरूप और अपना आत्मा आ-
प है) यह अर्थ लिखा है भाव वादी का यह है स शब्द आत्म-
शब्द दोनो ब्रह्म के बोधक हैं यदि इस वाक्य में अपना आत्मा
आप है यह अर्थ ही विवक्षित्त हो तो य आत्म नितिष्ठन् इस श्रु
ति वाक्य मे भी अपने आत्मा में आपही स्थित है अपना नियंता-
आत्मा आपही है इस अर्थ के करने से तुमारा भेद ही दत्तजलांज
लि होजायगा यदि इस श्रुति में आत्म निय हपद जीवात्मा का-
बोधक है तब स आत्मा इस श्रुति में भी आत्मा शब्द जीवात्मा-
का बोधक है जैसे एक में आधाराधेय भाव असंभव है वैसेही
आत्म आत्मवत्त्व भी एक में असंभव है और उत्तर वाक्य से विष
मता होगी क्यों कि तत्त्वमसि का उस परमात्मा = अन्तर्यामी से तू
युक्त है यह अर्थ करा तब कहना चाहिये कैसे युक्त है यह ही
कहना होगा जो तेरे अन्तर अन्तर्यामी है तो जीव का आत्मा हुआ
परमेश्वर, तो अपना आत्मा आप कैसे हो सकता है यदि अपना
आत्मा आप हुआ तो जीव परमात्मा से अभिन्न सिद्ध होगया वादी
के मुख से और यह भी बिचार करो जो परमात्मा से कौन वस्तु यु
क्त नहीं सर्व वस्तु परमात्मासे युक्त हैं यदि निकटस्थ जीव को-
कहोगे तो परमात्मा में व्यापकत्त्व का भंग होगा और वाक्य में यु-
क्त अर्थ का बोधक पद ही कौन है और यह भी विचार करना जहां

अत्यन्त भेद होता है वहां समान विभक्ति वाले शब्दों का प्रयोग होता नहीं जैसे घटः पटः इस शब्द प्रयोग करता को भ्रान्त कहते हैं तैसे यदि जीव परमात्मा का अत्यंत भेद है तो तत्त्वम् अहं ब्रह्म प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म यह शब्द प्रयोग कैसे होंगे- और जहां अत्यन्त अभेद होता है वहांभी समान विभक्तिक शब्द प्रयोग होता नहीं जैसे घटः कलशः। यह प्रयोग होता नहीं इसी प्रकार जब स शब्द तथा आत्मा शब्द ब्रह्म के ही बोधक होगये तो (सः) ब्रह्म आत्मा ऐसा शब्द प्रयोग नहीं होना चाहिये पुनरुक्ति दोष होने से परन्तु जहां औपाधिक भेद और वास्तव अभेद होता है वहां ऐसा शब्द प्रयोग होता है जैसे नीलोघटः। इस वाक्य में नीलत्व घटत्त्व धर्म से भेद है वास्तव नील रूप वत् व्यक्ति एक वस्तु है तैसे स आत्मा तत्त्वम् इस स्थान में भी जीवत्त्व परमेश्वरत्त्व रूप उपाधि का ही भेद है वास्तव एक व्यक्ति सत् चित् आनन्द रूप है।

प्रश्न — जीवत्व और परमेश्वरत्त्व उपाधि का नाम कैसे होगा यह दोनो तो धर्म हैं।

उत्तर — ऐसे समझो श्रुति में जब वाक् मन प्राण तेज यह कार्य्य रूप उपाधि के होते जीव कहा और इनके अभाव में कारणात्मा ब्रह्म पर देवता रूपता कहा तब यह निश्चय हुआ जो कार्य्य उपाधि तत्संस्कार विशिष्ट सदंश है सो तो जीव और कारणोपाधि विशिष्ट सदंश परमेश्वर है इतने सें यह निश्चय हुआ जो उपाधि विशेषण और चित सत् वस्तु विशेष्य और भाव अर्थ में त्व प्रत्यय का यह स्वभाव है विशेषणी भूत वस्तु का बो

धक होता है जैसे नील शब्द जब नीलवत् गुणी का बोधक है तब नीलत्त्व पद नील गुण मात्र का बोधक होता है तैसे जीव विशेषण कार्य्य उपाधि जीवत्त्व है और परमेश्वर उपाधि-कारणत्व संपादक विचित्र शक्ति परमेश्वरत्त्व है और वास्तव व्यक्ति सच्चिदानंद वस्तु अखण्ड है ऐसे अखण्डार्थ बोधक होने से इनकी महावाक्य संज्ञा पारिभाषिक है और दुराग्रह छोडकर यह भी समझना इस स्थान में अस्मि पद और असि पद वर्त्तमान काल के प्रयोग हैं यदि समाधिस्थ होकर वा गुण कर्म परमेश्वर के अनुकूल करके पश्चात् कह सकता तो वर्त्तमान काल के प्रयोग न होते इस वास्ते यहां ऐसा उपदेश है जैसा कि कर्ण को सूर्य्य भगवान् का कुन्ति पुत्रत्त्व उपदेश है भ्रम सिद्ध राधा पुत्रत्त्व की निवृत्ति वास्ते मै इस स्थान में समाधि अथवा परमेश्वर के प्रिय चरित्र के अनुसंधान से अपने गुण कर्म को परमेश्वर के प्रिय करने का निषेध नहीं करता किन्तु वेद बोध्य अर्थ को यथार्थ समझ कर अनुष्ठान करना चाहिये यह कहता हूं। और वादी ने (तदात्मकस्तदन्तर्यामीत्त्वमसि) उस-परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त हैं, यह कहा सो असंगत है काहे ते एक विज्ञान से सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा उद्दालक ऋषि ने जो कि उपदेश के प्रारम्भ में प्रथम करी है तिसका भंग होगा और इस प्रकार का अर्थ प्रकरण विरुद्ध है यह प्रकरण अन्तर्यामी का नहीं किन्तु म्रियमाण जीवका जो वास्तव रूप है जहां से तेज आदि जगत् उत्थान होने से जीवत्त्व भाव होता है और तिनकी लीनता में जीवत्त्व भाव निवृत्त होता है तिसका प्रकरण-

है और वादी की संस्कृत सें कुछ और अर्थ निकलता है और भाषा में कुछ और कहता है। उस परमात्मा अन्तर्यामी सें तू युक्त हैं यह तो भाषा में कहा है इस भाषा वाक्य की तो संस्कृत यह है। अमुना परमात्मना अन्तर्यामिणात्वं युक्तोऽसि)

अब देखना चाहिये यदि इस प्रकार का संस्कृत वाक्य श्रुति में हो तो ऐसा भाषा वाक्य होवे सो इस प्रकार का संस्कृत-वाक्य श्रुति में नहीं है और उसके मनः कल्पित संस्कृत का तो (तत्सत् आत्मा स्वरूपंयस्य तव सतदात्मकः) सो सत् है आत्मा अर्थात् स्वरूप जिसका ऐसा तूं हैं यहां तो अभेद ही होगया और (तदन्तर्यामीत्वमसि) सचासौ अन्तर्यामी तदन्तर्यामीत्वमसि) सो अन्तर्यामी तूं हैं इस प्रकार इस संस्कृत वाक्य सें भी अभेद ही प्रतीत होता है अब कहना चाहिये जिस वादी को अपनी संस्कृत और भाषा में अन्तराय नहीं मालूम पड़ता तो वो सिवाय बकवादि के पण्डित कैसे हो सकता है इससे वादी का कथन सर्वथा निर्युक्तिक है और प्रकरण विरुद्ध प्रतिज्ञा हानिकर होने सें सर्वथा उपेक्षणीय है जब प्रौढ़ युक्ति और श्रुति प्रमाण सें अहंब्रह्मास्मि और तत्त्वमसि इन वाक्यों का अर्थ निरूपण हुआ तो प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म इत्यादि सर्व महावाक्य के अर्थ का निर्णय होगया और इतने ही महावाक्य हैं यह नियम नहीं किन्तु भेद भ्रम निवारक यावत् हैं वे महावाक्य ही हैं। प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म इन वाक्यों में प्रकरण अनुसार प्रज्ञान शब्द और आत्मा शब्द अवस्था त्रितय साक्षी का बोधक है और अयं-शब्द अखण्ड चैतन्य में अपरोक्षता का बोधक है इस प्रकार त्रि

विध परिच्छेद वर्जित अखंड चैतन्य के बोधक सर्व महावाक्य होगये और औपाधिक भेद और वास्तव अभेद सिद्ध होगया यदि औपाधिक भेद वास्तव अभेद का बाधक होवे अथवा उपाधि से टुकड़े होवें तो आकाश का वास्तव अभेद का बाध और घटादि उपाधि सें आकाश के टुकड़े होजाने चाहिये इस से उपाधि सें चेतन के टुकड़े और चेतन में वास्तव भेद कल्पना वादी का मिथ्या प्रलाप है । अथ ब्रह्मचर्य्य प्रभाव और वादि कल्पित नियोग निराकरण निरूपण करते हैं । १२।

अब सर्व कल्याण का मूल भूत जो ब्रह्मचर्य्य है = तिसकी प्रशंसा बोधक वाक्य को दिखलाते हैं ॥ तथाहि ।

अथ यद्यज्ञ इत्या चक्षते ब्रह्मचर्य्य मेवतद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येवयो ज्ञातातं विन्दते ऽथयदिष्ट मित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्य मेवतद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येवेष्ट्वात्मानमनुविन्दते । १।

अर्थ, जिसको यज्ञ इस नाम से उत्तम साधन कहते हैं सो भी ब्रह्मचर्य्य है क्यों कि ब्रह्मचर्य्य करके ही जो वेद विद्या को जानता है सो यज्ञ को जानकर प्राप्त होता है और जिसको इष्ट इस नाम से कथन करते हैं सो भी ब्रह्मचर्य्य है क्यों कि ब्रह्मचर्य्य करके परमात्मा का पूजन कर पश्चात् प्राप्त होता है ।

अथ यत्सत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेवतद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येव सतआत्मनस्त्राणं विन्दते ।

अर्थ,, जिसको सत्रायण नाम से उत्तम साधन कहते हैं तिसको भी ब्रह्मचर्य्य ही जानना चाहिये क्यों कि ब्रह्मचर्य्य करके ही विद्यमान आत्मा की रक्षा करता है । भाव यह है ब्रह्मचर्य्य विना

आत्मा की रक्षा होती नहीं इस वास्ते ब्रह्मचर्य्य सर्व उत्तम साधन है॥

अथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेवतद्ब्रह्मचर्य्येणह्येवात्मानमनुविद्यमनुत्ते ॥ २॥ अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेवतदेषह्यात्मानननश्यति यंब्रह्मचर्य्येणानुविन्दन्ते ॥ अथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेवतदरश्चहवैण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवितदैरंमदीयᳲसरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितᳲहिरणमयम् ॥ ३॥ तद्यएवैतावरंचण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्य्येणानुविन्दन्तितेषामेवैषब्रह्मलोकस्तेषाᳲसर्वेषुलोकेषुकामचारोभवति। ४॥ छां अ ८ खं ५

अर्थ,, जिसको मौन इस प्रकार कथन करते हैं सो भी ब्रह्मचर्य्य ही है क्योंकि ब्रह्मचर्य्य करके ही आत्मा को भालकर मनन करता है ॥ २॥ और जो अनाशकायन कहा जाता है सो भी ब्रह्मचर्य्य है क्योंकि वो आत्मा नाश नहीं होता जिसको ब्रह्मचर्य्य करके पश्चात् प्राप्त होता है और जो अरण्यायन ऐसे कहा जाता है-सो भी ब्रह्मचर्य्य ही है क्योंकि अर और ण्य नामक स्वर्ग से लेकर तृतीय ब्रह्म लोक रूप दिव में अर्थात् स्वर्ग से पर महर्लोक और महर्लोक से पर जनलोक और जन लोक से पर तपोलोक में अर्णव हैं और तिस में ऐरमदीय नामक सर है और सोमसवन नामक अश्वत्थ है और अपराजित नामक ब्रह्मा का पुर है प्रभु परमात्मा कर निर्मित हिरणमय अर्थात् सूर्य्यवत्प्रकाशमान स्थान है

जो कोई ब्रह्मचारीजन ब्रह्मचर्य्य के सेवन से उन अर्णवों को प्राप्त होते हैं तिनकी सर्वलोकों में कामचारता अर्थात् स्वेच्छा पूर्वक दिव्यदेह योग से यथेष्ठा चरण होता है उनही श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य्य साधनानुष्ठान करने वालों का ब्रह्मलोक है अब देखना चाहिये ब्रह्मचर्य्य साधन सर्व साधनों का शिरोमणि है क्योंकि जितनी संसार के पदार्थों की वासना है सो सर्वही जब यह पुरुष ब्रह्मचर्य्य से प्रच्युत हो स्त्री संसर्ग की इच्छा करता है तब आराः घेरती है और देखो इस ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर ही ऋषि मुनि-सिद्धि को प्राप्त हुए हैं और जब ब्रह्मचर्य्य का सेवन करने का संकल्प करता है तबही सर्व = वासना जाल टूट जाता है । इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक युक्ति सिद्ध सर्व प्रपंच वासना निवर्त्तक ब्रह्मचर्य्य के लोप करने वास्ते वादी ने जो धूर्त्तता करी है सो देखो ॥

इमांत्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगांकृणु ॥ दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशंकृधि ॥ ऋ॰ म॰ १० अ॰ ७ सू॰ ८५ मं ४५ ।

ऋग्वेदादि दलदल भूमिका में इस मंत्र की वादी ने यह व्याख्या करी है । इदानीं नियोगस्य संतानोत्पत्तेश्च परिगणनं क्रियते कतिवारं नियोगः कर्त्तव्यः कियन्ति संतानानि चोत्पाद्यानीति । तद्यथा । इमांत्वमिन्द्र हे इन्द्र विवाहित पते मीढ्वः हे वीर्य्य दान कर्त्तस्त्वमिमां विवाहित स्त्रियं वीर्य्य सेकेन गर्भ युक्तां कुरु । तां सुपुत्रां श्रेष्ठ पुत्रवतीं सुभगां अनुत्तम सुख युक्तां कृणु कुरु दशास्यां अस्यां विवाहितस्त्रियां दश पुत्रानाधेहि उत्पादय नातोऽधिकमिति ईश्वराज्ञास्ति तथा हे स्त्रि त्वं विवाहित पतिं गृहीत्वैकाद

श्चापति पर्य्यन्तं नियोगं कुरु इतीश्चरा ज्ञास्ति ॥

भावार्थ,, अब नियोग और संतानोत्पत्ति का परिगणन करते हैं कितनी वार नियोग कर्त्तव्य है और कितनी संतान करनी चाहिये ईश्वर आज्ञा देते हैं हे इन्द्र अर्थात् विवाहित पते हे-वीर्य दान करने वाले इस विवाहित्त स्त्री को वीर्य्य सेचन सें गर्भ युक्त कर और तिस स्त्री को सुपुत्र) अर्थात् श्रेष्ठ पुत्रवती और अनुतम सुख युक्त कर और दश पुत्र इसमें से उत्पन्न कर इससे अधिक नहीं करने यह ईश्वर की आज्ञा है और हे स्त्रि तू विवाहित्त पति को ग्रहण कर एकादश पति पर्य्यन्त नियोग करना यह ईश्वर की आज्ञा है इस स्थान में यह विचार कर्तव्य है यह परमेश्वर सत्य संकल्प की आज्ञा यदि सर्व स्त्री पुरुष के प्रति है तब तो सर्व स्त्री पुरुष के दश दश पुत्र से कमती पुत्र-होने नहीं चाहिये यदि दश २से कमती होंगे तो परमेश्वर का संकल्प निष्फल होगा और जब परमेश्वर ने स्त्री के वास्ते एकादश पत्ति की आज्ञा दिया तो एक समे पर ग्यारा पति को क्यों ना-करेगी ईश्वर की आज्ञा तो होगयी अब विलंब क्यों करे युवावस्था की निवृत्ति में तिसके एकादश पति व्यर्थ होजायंगे एक के मरे पीच्छे दूसरे को करना इस अर्थ का वाचक पद ही कौन है यदि एक दो आदि के मरे पीच्छे एकादश पूरे करे तो तबभी परमेश्वर को सत्य संकल्प होने से दश मरकर ग्यारवां रहना चाहिये इस वास्ते यह वादी की ही मिथ्या कल्पना है ईश्वर का ऐसे असंगत अर्थ में संकल्प कैसे हो सकता है यदि ईश्वर की आज्ञा यदि पूर्व २ मरता जाय तो ग्यारां तक पहुंचना ऐसी

हो तो क्या ईश्वर को संशय ज्ञान हुआ करता है सो तो संभवे- नहीं ईश्वर को त्रिकाल दर्शी होने से इससे यह कल्पना सर्व- था मिथ्या है । और वादी ने सत्यार्थ प्रकाशा भास में) समु ४ पृ १९२) यह अर्थ इस मंत्र का किया है) हे (मीढ्व इन्द्र) वी र्य्य सिंचने में समर्थ ऐश्वर्य्य युक्त पुरुष तू विवाहित स्त्री वा वि धवा स्त्रियों को श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्य युक्त कर इस विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारवीं स्त्री को मान हे स्त्री । तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों सें दश संतान उत्पन्न कर और ग्यारवें पति को समझ । इस वादी के अर्थ सें भूमिका उ- क्त अर्थ तो असंगत होगया क्यों कि भूमिका में एकादश पति - स्त्री के वास्ते कहै और दश पुत्र पैदा करने पुरुष के वास्ते कहा और मिथ्यार्थ प्रकाश में दश पुत्र ग्यार वां पति अथवा ग्यारवीं - स्त्री परन्तु मंत्र में तो पतिं एकादशं कृधि यह पद है स्त्रियं एका दशीं कृधि ऐसा पद नहीं परन्तु इस अर्थ के करे भी ईश्वर को स त्य संकल्पत्व भंग और यदि पूर्व पुरुष वा स्त्री नाश हो तो वि- धवादि नियोग सें दश पुत्र पूरे करने इस प्रकार ईश्वर को त्रिकाल दर्शित्वा भावा पत्ति दोष बज्र लेप है क्यों कि नियुक्त वा विवाहित स्त्री पुरुष का कोई भी पुत्र न हो तो ईश्वर संकल्प व ध्य होगा इस वास्ते अपनी कल्पना की विघातक भी वादी की कल्पना असंगत है । इस वास्ते इस स्थान में यह समझना चा हिये जो यह मंत्र विवाह काल का है । और इन मंत्रों की अनुक्रम- णि का में यह लिखा है ।

(नृणां विवाहमंत्रा आशीः प्रायाः)

विवाह मंत्र जो हैं वे मनुष्यों के प्रार्थना रूप हैं बहुधा तब मंत्र का सिद्धान्त अर्थ यह है हे इन्द्र परमैश्वर्य्य युक्त देव (मीढ्वः) सर्व सुख कारी पदार्थों की वृष्टि करने वाले इस स्त्री को भी पुत्रवती धनवती करो और दश इसमें पुत्रों को धारण करो भाव यह है दश पुत्र पैदा करने के अदृष्ट इस स्त्री में स्थित करो और ग्यारवां पति को करो अर्थात् जीवित पुत्र और जीवित पति इसको करो अब देखना चाहिये जब मनुष्य की प्रार्थना माना तो सत्य अथवा असत्य दोनो प्रकार की हो सकती है और एक मंत्र इस मंत्र के साथ का और लिखता हूं जिस से इस मंत्र में प्रार्थना स्पष्ट प्रतीत होवे विवेकी पुरुषों को । तथाहि ।

सम्राज्ञीश्वशुरेभवसम्राज्ञीश्वश्र्वांभव । ननांदरि सम्राज्ञीभवसम्राज्ञी अधिदेवृषु ॥ ऋ म० १० अ० ७ सू० ८५ । ४८

अर्थ,, श्वशुर और श्वश्रू और नन्द और देवरों में (सम्राज्ञी) अधीश्वरी हो भाव यह है सुसर सास नन्द और देवर इन सर्व की नियन्त्री ग्रह में हो इस उत्तर मंत्र की संगति सें पूर्व मंत्र में भी केवल प्रार्थना है नियोग का प्रसंग ही कौन है यदि नियोग का विषय इन मंत्रों में वर्णन करेंगे तो सुसर में भी सम्राज्ञी कहने से सी भी नियोग कर्त्ता लोक वेद विरुद्ध प्रसक्त होगा इससे वादी ब्रह्मचर्य्य साधन के लोप में प्रवृत्त होकर अस्तव्यस्त बककर मूर्खजनों के नेत्रों में धूड डालकर अन्धकरता है । प्रश्न । इस विषय में बहुत प्रमाण हैं देखो और सुनो ॥

कुहस्विद्दोषाकुहवस्तोरश्विना कुहाभिपित्वंक

रत: कुहोषतुः ॥ कोवांशयुत्रा विधवेव देवरं म-
र्य्यंनयोषाकृणुत्ते सधस्थ आ । ऋ० मं० १०। सू० ४०।
मं २।

अर्थ, हे अश्विना) स्त्री पुरुषौ जैसे (देवरं विधवेव) देवर को विधवा और (योषामर्य्यन्न) विवाहिता स्त्री अपने पति को (सधस्थे) समान स्थान शय्या में एकत्र होकर सन्तानोत्पत्ति को - (आकृणुते) सब प्रकार से उत्पन्न करती है वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विद्दोषा) कहां रात्रि और (कुहवस्तोः) कहां दिन में वसे थे ? (कुहा भिपित्वं) कहां पदार्थों की प्राप्ति (करतो) की ? और (कुहोषतुः) किस समय कहां वास करते थे ? (कोवांशयुत्रा) तुमारा शयन स्थान कहां है ? तथा कौन वा किस देश के रहने वाले हो । इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में स्त्री पुरुष संगही में रहैं और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति करलेवै ” यदि किसी का छोटा भाई ही नहीं हो तो विधवा नियोग किस के साथ करे ? । उत्तर । देवर के साथ परन्तु देवर शब्द का अर्थ जैसा तुम समझे हो वैसा नहीं देखो निरुक्त मे- ॥

देवरः कस्माद्द्वितीयो वर उच्यते । अ ३ पा ३ खं ३

देवर उसको कहते हैं कि जो विधवा का दूसरा पति होता है चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई ——— अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्ण वाला हो जिससे नियोग करे उसी का नाम देवर है ॥ सत्या० समु ४ पृ ११४ । यह अर्थ इस मंत्र का करके और निरुक्त प्रमाण को देकर नियोग सिद्ध करा है ॥ उत्तर ॥ इस मंत्र में अश्विना इस पदसे-

स्त्री पुरुष का ग्रहण करके केवल जाल रचा है क्यों कि यदि स्त्री पुरुष के प्राकृत व्यवहार का इस मंत्र में प्रतिपादन होता तो नियोग प्रतिपादक मंत्र होता सो तो इस मंत्र मे अश्विना शब्द स्त्री पुरुष का वाचक नहीं किन्तु देवताओं का प्रतिपादक है क्यों कि स्त्रीपुरुष की बाचकता में प्रमाणा भाव होने से और निरुक्त विरोध होने सें तथाहि ।

अथा तो द्युस्थाना देवतास्तासामश्विनौ प्रथमा गामिनौभवतो ऽश्विनौ यद्व्यश्नुवातेसर्वं रसेनान्योज्योतिषा ऽन्यो ऽश्वैरश्विना वित्यौर्णवाभस्तत्कावश्विनौद्यावापृथिव्या वित्येके ऽहोरात्रावित्येके सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके राजानौ पुण्यकृत्तावित्यैतिहासिकाः । निरुक्त । दैवतकाण्ड । अ १२ । पा १ । खं १ ।

अर्थ,, अबद्युस्थान देवताओं का व्याख्यान करते हैं सर्वद्युस्थान देवताओं के मध्य अश्विनौ दो देवता प्रथम यज्ञ में आगमन करते हैं अब अश्विनौ शब्द का निर्वचन करते हैं जो सर्व को व्याप्त होते हैं वे अश्विनौ हैं । एक रस करके और एक ज्योति करके व्याप्त होता है और और्णवाभ नामक आचार्य्य तो कहता है जो अश्वों करके यावत् जगत् को व्याप्त होते हैं वे अश्विनौ हैं सो अश्विनौ शब्द का अर्थ कौन कौन है इस में मत भेद का निरूपण करते हैं केचित् द्यावा पृथिवी को अश्विनौ कहते हैं क्यों कि पृथिवी रस करके यावत् जगत् को व्याप्त है और द्यौ ज्योति कर व्याप्त है अथवा अहोरात्र अश्विनौ हैं यह केचित् कहते हैं क्यों दिन प्रकाश कर यावत् जगत् को व्याप्त है और रात्रि निन्द्रा करके यावत् जगत् को व्याप्त हो-

ती है और केचित् सूर्य्य चन्द्र को अश्विनौ कहते हैं और अश्वों कर व्याप्ति वालों का नाम अश्विनौ है तब इस में दो पक्ष हैं इतिहास के ज्ञाता तो पुण्य कृत राजाओं का नाम अश्विनौ है यह कहते हैं और निरुक्त कार के मत में अश्विनी कुमार देवताओं का नाम अश्विनौ कहा जाता है इन देवताओं के प्रतिपादक मंत्र लिखक र निरुक्त दैवत काण्ड में विस्तार करा है परन्तु स्त्री पुरुष काना म अश्विना कहीं भी नहीं प्रतिपादन करा इससे स्त्री पुरुष का-नाम अश्विना लिख करके वादी ने मंत्रार्थ का लोप करा है सो जैसे मंत्र का यथार्थ अर्थ है तिसको निरुक्त भाष्यकार दुर्गाचा-र्य्य का व्याख्यान लिखकर स्पष्ट करते हैं जिस से वादी का जाल सर्व को प्रतीत होजाय क्यों कि प्रबल प्रमाण लिखे से विना निश्चय नहीं होगा। "कुहस्विद्दोषा" इति कक्षीवतो दुहिता घोषा नाम, तस्या इयमार्षम्। आश्विनी जगती। प्रातरनुवाकाश्विनयोः शस्यते। हे अश्विनौ "कुहस्वित् दोषा" "क्व" नु युवां "रात्रौ" "भवथः" "कुहवस्तोः" "क्व" वा "दिवा" भवथः युवाम्" येन नापि रात्रौ अस्माकं दर्शन मुपगच्छथः, नापि दिवा। स्विदिति परिदेवनायाम्, ईर्ष्यायांवा "कुह" क्वच 'अभिपित्वम्' "अभिप्राप्तिं" स्नानभोजनाद्यर्थं 'कुरुथः" १ "कुह" क्वा 'उषतुः' "वसथः" सर्वथा न विज्ञायते वामागमन प्रवृत्तिः"। किञ्च 'कोवां शयुत्रा' कतमो युवां यजमानः शयुत्रा 'शयने" १ किं विधवा इव देवरम्, यथा विधवा मृत मर्तृका काचित् स्त्री शयने रहस्यतितरां यत्नवती देवर-मुपचरति, स हि परकीयत्वात् नार्य्या दुराराध्यतरो भवति, यत्ने

नोप चर्य्यते, नतथानि जोभर्त्ता। तस्मात् तेनोप सिमीते अश्वि नौ तथा मर्य्यं, मनुष्यं देवरम् सैवमृत भर्तृका (योषा) आकृ णुते आभिमुख्येन कुरुते कोवाम् एवम् आभिमुख्येन (सधस्थे) सहस्थाने, समाने सह योगिना चात्म ना कृत्त्वा परिचचार। १। येनेह नोप गतवन्तौ स्थो ऽस्मद्दर्शन मिति॥ एव मस्यामृचि देवरेण कनीयसाज्यायां सावश्विना वुपमीयेते विधवयाच यजमा नः॥

भावार्थ,, कक्षीवान् ऋषि की घोषा नामा कन्या तो इसमंत्र का ऋषि है अश्विनी कुमार देवता हैं और जगती छन्द है और अश्विनी कुमारों के प्रातरनु वाक में यह ऋचा स्तवन करी जाती है अर्थात् अश्विनी देवताक जो प्रातरनुवाक है तिसमें इसमंत्र का विनियोग है सोवो घोषा अश्विनी देवताओं को प्रत्यक्ष करके कहती है हे अश्विनो तुम दोनो रात्रि में कहां थे और (वस्तोः) नाम दिन में कहां थे जिस से नरात्रि और न दिन में हमारे दर्शन को प्राप्त हुए स्वित् यह अव्यय विलाप वा ईर्ष्या में है और स्नान भोजनादि वास्ते कहां प्राप्ति करी और कहां निवास करा सर्वथा तुमारा आगमन प्रवृत्ति नहीं जानी जाती और शयुत्रा, शयन में देवर को विधवावत् कौन यजमान तुमको परिचरण करता हुआ क्यों कि परकीय पति होने से दुराराध्य देवर को मृतभर्तृका यत्न से आराधन करती है तद्वत् तुमको किस यजमान ने आराधन करा और यथा एकान्त स्थान में वो मृतभर्तृका नारी मनुष्य को अपने शरीर के साथ सम्बंध कर परिचरण करती है तद्वत्तुमको किसने परिचरण करा जिसकर हमारे दर्शन को नहीं प्राप्त

हुए । इस ऋचा में अल्प देवर कर महान्त अश्विनी कुमार उप मेय होते हैं और विधवा करके यजमान उपमेय होता है । शंका । इस दुर्गाचार्य्य के व्याख्यान सें स्पष्ट नियोग प्रतीत होता है क्यों कि दृष्टान्त निर्णीत ही होता है जब विधवा की उपमा यजमान को और देवर की उपमा अश्विनी कुमारों को दयी तब तो नियोग स्पष्ट प्रतीत होगया ।

समाधान ॥ यह समझो दुर्गाचार्य्य ने (सहि परकीयत्वात् नार्य्या दुराराध्यतरो भवति) यह भी कहा है जब उसको परकीयत्व कहा तो दूसरी का पतित्त्व होगया और तुमारे सिद्धान्त में तो (स्त्री शून्य पुरुष और पति रहित स्त्री का जब नियोग हुआ तो परकीयत्त्व कहां हुआ इसवास्ते इस स्थान में जो मनुजी ने व्यवस्था करी है सोई समझनी चाहिये वेनवत् वर्णसंकर में क्यों प्रवृत्त होना चाहिये । जैसे मनुजी ने व्यवस्था करी है उसी को समझना चाहिये । तथाहि ।

यस्या म्रियेत कन्याया वाचासत्ये कृते पतिः । तामनेन विधानेन जोविन्देत देवरः । मनु अ० ९ श्लोक ६९ ॥

अर्थ,, जिस कन्या का पति वाक् करके सत्य दान के संकल्प होते यदि मरजाय तो उस कन्या को वक्ष्यमाण रीति सें उस स्त्री का अपना देवर स्वीकार करे ॥ और वादी ने इस श्लोक के केवल उत्तर भाग को लिखकर विधवा विवाह करना सिद्ध किया है और उत्तर भाग के श्लोक भी छोड़ दिये हैं क्यों कि इस कपट से यदि समग्र श्लोक लिखें तो मेरे इष्ट बिधवा नियोग की सिद्धि

नहीं होगी ॥

यथाविध्यधिगम्यैनांशुक्लवस्त्रांशुचिव्रताम् । मिथो भजेता प्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥ मनु अ॰ ९ श्लो॰ ७०

अर्थ,, जिस कन्या का सत्य वाक् हुए विवाह से पूर्व पति मर गया है तिसको विवाह बिधि से तिसका देवर स्वीकार कर शुचिव्रत शुक्ल वस्त्रा को एक २ वार ऋतु २ काल में सेवन करे और वो स्त्री उस-देवर को सेवन करे प्रसव पर्य्यन्त क्यों कि विवाह तो कन्या का अवश्य होना चाहिये इस विधि से जिसको वाक्दान कन्या का हुआ था तिसका ही वो आपत्य होता है यदि कोई इस प्रकार शंका करे जो ऐसा आग्रह क्यों होना चाहिये जो कि उसके देवर को॰ ही विवाह करना चाहिये अविवाहित कन्या का दूसरे स्थान पर क्यों न दान कर देना चाहिये इसका उत्तर ।

न दत्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः । दत्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥ मनु । अ-९ । श्लो॰ ७१ ।

अर्थ,, किसी को कन्या बाणी मात्र से देकर फिर न देवे बुद्धिमान् क्यों कि पुनः देकर अनंत मिथ्याभाषण जन्य दोष को प्राप्त होता है अब देखना चाहिये जब इस प्रकार का अन्यत्र देने का निषेध है तो उस देवर का यदि आगे विवाह होगया हो वा न हुआ-तो उसको अपनी संतानार्थ कर्त्तव्य है तब उस देवर का वो विधवा यत्न से जरूर परिचरण करेगी अब देखना चाहिये दश पुत्र पैदा करने वाला नियोग कहां से सिद्ध होता है । और नियोग का-

इस प्रकार से विलक्षण रीति से निषेध करा है । तथाहि ।

नान्यस्मिन्विधवानारीनियोक्तव्याद्विजातिभिः। अ न्यस्मिन्हि नियुञ्जानाधर्मंहन्युः सनातनम् ।मनु अ० ९ श्लो० ६४ ।

अर्थ,, अन्य पुरुष में विधवा नारी नियोग करनी योग्य नहीं द्विजातिओं को क्यों कि यदि अन्य पुरुष में नियुक्त करेंगे तो सनातन धर्म को नाश करेंगे इस प्रकार जब नियोग का निषेध है तो पूर्व उक्त प्रकार का देवर और पूर्व उक्त प्रकार की विधवा का ही दृष्टान्त है और यदि कोई वाक्य नियोग प्रतिपादक होवे तो कालान्तर विषयक वा द्विजाति अतिरिक्त विषयक है रहो क्या हानि है ।

अयंद्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः । मनुष्याणामपिप्रोक्तोवेनेराज्यंप्रशासति । मनु। अ० ९ श्लो० ६६

अर्थ, यह पशु धर्म नियोग विद्वान् द्विजों ने निन्दित करा है, और मनुष्यों में भी जब वेन ने राज्य करा है उस समे में उसने कामोपहत होकर भ्रातृभार्य्यादि के गमन करने वास्ते चलाया है अथवा अपने आप अधर्मि होने से प्रजा को धर्म में न कर सकने से (नियोग प्रवृत्त करा है । सर्वे राजाश्रिता धर्मा राजा धर्मस्य धारकः इस वचन से) और इस वचन का भाव यह है जितने धर्म हैं वे राजा के आश्रय हैं यदि राजा सनातन धर्म को प्रजा में चलाया चाहे तो ग्राम २ नगर २ में धर्म पुस्तकों की कथा हो तो शीघ्र ही धर्म का प्रचार हो और सर्व मनुष्य धर्म में चलें जैसे वर्त्तमान राजा पशु-

धर्म की प्रशंसा करता है तदनुयायी वादी भी करता है और जो नि रुक्त प्रमाण द्वितीय पति को देवरत्त्व साधक लिखा है सो प्रक्षिप्त है इसी वास्ते निरुक्त ग्रंथ का सम्पादक महाशय लिखता है ती- न पुस्तकों में यह पाठ नहीं है इसी वासते ( ) ऐसी बन्धनी के वीच में इस पाठ को दे दिया है और भाष्यकार ने इसकी व्याख्यान हीं करी और मूलकार यास्क ने दूसरा अर्थ देवर पद का किया है । तथाहि ।

देवरोदीव्यतिकर्म्मा "

और भाष्य में इसका व्याख्यान करा है तथाहि । "देवरः" इ- त्येषशब्दो "दीव्यति कर्म्मा" दीव्यत्यर्थः सहि भर्तुर्भ्राता नि- त्य मेव तया भ्रात्र भार्य्यया देवनार्थे व्रियत इति देवर इत्युच्यते। यह भाष्य में उस मूल निरुक्त का व्याख्यान करा है अब देखना चाहिये यदि यास्क मुनि कृत वो पाठ होता तो फिर देवर शब्द का अर्थ क्यों लिखते और यदि (देवरः कस्माद्द्वितीयो वर उच्य- ते) यह पाठ यास्क मुनिकृत होता तो दुर्गाचार्य्य व्याख्यान क्यों न करते इस से यह पाठ सर्वथा प्रक्षिप्त है यदि होवे तो मनुक्त द्वितीय वर का बोधक है वादी उक्त (एक विधवा स्त्री दो अप- ने लिये और दो २ अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान क र सकती है और एक मृत स्त्रीक पुरुष भी दो अपने लिये और दो २ अन्य चार विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है । इस प्रकार के द्वितीय वर का बोधक नहीं वादी का आशय यह है जो एक विधवा स्त्री चार पुरुषों से नियोग कर दश संतान पैदा करे दो अपने वास्ते और दो २ उन चार पुरुषों वास्ते इस नियोग में देख

ना चाहिये वेश्यापना तो पूरा है और दश संतान चार पुरुषों से त-
व होगी जब दो २ तो तीन से करे और एक से चार करे तो दूसरे ती
नो ने क्या पाप करा है जो उनसे दो २ करे और वे नियुक्त पुरुष आ-
पस में तकरार जरूर करेंगे जो सबी एक २ चाहेंगे मैं चार संतान क
रूंगा और इसी प्रकार जब एक पुरुष ने चार विधवाओं से दश सं
तान करा तो तीन स्त्री से दो २ संतान और एक से चार करा तब ती
न स्त्री कहेगी जो हमने क्या अपराध करा है जो हमारे में दो २ औ
र इसमें चार पैदा करा और जब संतान का विभाग होगा तब दो २
संतान वाले स्त्री पुरुष को तो वे दो २ मिले और चार संतान वाले १
स्त्री पुरुष कहेंगे जो हमारे को अपने बल से पैदा करी समग्र संता-
न मिलना चाहिये क्यों कि दूसरे तीन स्त्री पुरुष को अपनी समग्र
संतान मिली है यदि न्यायाधीश पास जायँगे तो वो सब का आधा-
२ करेगा तब एक स्त्री पुरुष पास पांच २ संतान होजायगी तब
वादीउक्त दो २ सन्तान विभाग निष्फल होगा अब देखना चाहि
ये इस प्रकार शास्त्र विरुद्ध और व्यभिचार प्रसक्ति वाला असंभ-
व लेख को लिखने वाले वादी को पंडित कहना चाहिये वा मूर्ख
कहना चाहिये ।

प्रश्न । उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुप-
शेष एहि । हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्व
मभिसंबभूथ ॥ ऋ० म० १० । अ० २ सू० १८ मं० ८ ।

अर्थ, हे नारि विधवे तू (एतंगतासुम्) इस मरे हुए पतिकी
आशा छोड़ के (शेषे) वाकी पुरुषों में से (अभिजीवलोकम्)
जीते हुए दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस

बात को विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः तुभ्य विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। ऐसे निश्चय युक्त अभिसंबभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे। इस मंत्र में नियोग प्रतिपादन करा है। उत्तर। यदि इस मंत्र के यथार्थ अर्थ को जानते तो ऐसा बकवाद न करते अब जैसे इस मंत्र का यथार्थ अर्थ किया है सायणाचार्य्य वैदिक मार्ग स्थापक ने सो देखिये॥

पद॥ उत्। ईर्ष्व। नारि। अभि। जीवलोकम्। गतासुम्। एतम्। उप। शेषे। आ। इहि। हस्तग्राभस्य। दिधिषोः। तव। इदम्। पत्युः। जनित्वम्। अभि। सम्। बभूथ।

भाष्य॥ हे नारि मृतस्य पत्नि जीवलोकं जीवानां पुत्र पौत्रादीनां लोकं स्थानं गृहमभिलक्ष्योदीर्ष्व। अस्मात्स्थानादुत्तिष्ठ। ईरगतौ। आदादिकः। गतासुमपक्रान्त प्राण मेतं पतिमुपशेषे। तस्य समीपेस्वपिषि। तस्मात्त्वमेहि। आगच्छ। यस्मात्त्वं हस्तग्राभस्य पाणि ग्राहं कुर्वतो दिधिषो गर्भस्य निधातुस्तवास्य पत्युः सम्बंधादागतमिदं जनित्वं जायात्वमभिलक्ष्य संबभूथ संभूतास्यनु मरण निश्चयमकार्षीः तस्मादागच्छ॥ अत्रार्थे कल्पसूत्रमप्यनुसंधेयम्। तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासी जरद्दासो वोदीर्ष्व नार्य्यभिजीवलोक मिति॥

भावार्थ,, हे नारि मृत की पत्नी तू (जीवलोक) पुत्रपौत्रादि

स्थान गृह को जाने का विचार कर इस स्थान से उठ और तू गत प्राण पति के समीप सोती है इस हेतु से तू आ अपने घर को गमन कर और जिस पाणिग्रहण करने वाले तथा तेरे में गर्भ को स्थापन करने वाले तेरे पति के सम्बंध से प्राप्त तेरे में जनित्व अर्थात् जायात्व को अभिलक्ष्य जान कर मरण निश्चय को भी पश्चात् तैने किया है इससे चलो गमन करो अपने गृह में और इस अर्थ में कल्प सूत्र का भी अनुसंधान करना चाहिये कल्प सूत्र में यह लिखा है तिस स्त्री को देवर जो पति स्थाना पन्न है समीप रहने वाला अथवा वृद्ध दास उठावे उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकम् इत्यादि ऋचा से । अब देखना चाहिये इस मंत्र में कैसे नियोग प्रतीत होता है उलटा पति के मरण से पीछे तत्काल इस प्रकार की वार्त्तालाप ही लोक निन्दित है तो मंत्र में लोक निन्दित वार्त्ता कैसे हो सकती है इस वास्ते केवल वर्णसंकर करने वास्ते ही वादी ने वेदार्थ का नाश करा है ॥

प्रश्न । अदेवृघ्न्यपतिघ्नी हैधि शिवा पशुभ्यः सुयमाः सुवर्चाः । प्रजावती वीरसूर्देवृकामास्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य्य ॥ अथर्व० कां १४ । अनु २ मं० १८ ॥

अर्थ,, हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवर को दुःख न देने वाली स्त्री तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (शिवा) कल्याण करने हारी (सुयमाः) अच्छे प्रकार धर्म नियम में चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्व शास्त्र विद्या युक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादिक सहित (वीरसूः) शूर वी

र पुत्रों को जनने (देवृकामा) देवर की कामना करने वाली (स्योना) और सुख देने हारी पति वा देवर को (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्र को (सपर्य) सेवन किया कर ॥

उत्तर। इस मंत्र सें तो नियोग की गन्ध भी तो नहीं मालूम पड़ती तो नियोग कहां से सिद्ध हुआ ॥

प्रश्न। जब इस मंत्र में देवृकामा यह स्त्री का विशेषण हुआ तो नियोग स्पष्ट प्रतीत होता है ॥

उत्तर। जरा बुद्धि रूप नेत्र खोल के देखो कामना विद्यमान पदार्थ की होती है अथवा अविद्यमान की तिसमें विद्यमान की कामना व्यर्थ है तिसको सिद्ध होने सें जैसे विद्यमान पति वाली में पति कामा यह प्रयोग होता नहीं किन्तु अविद्यमान की - कामना होती है जैसे पति शून्य प्रौढ कन्या में पति कामा यह - प्रयोग होता है तैसे यदि वो स्त्री पति रहित है और देवर गृह में विद्यमान है तो देवृ कामा नहीं कही जाती क्यों कि देवर को विद्यमान होने से तब भी पति कामा कह सकते हैं यदि देवर को ही पति किया चाहिती है तब भी देवरि पति कामा ऐसा प्रयोग हो सकता है सो तो मंत्र में किया नहीं इस से इस प्रयोग सें नियोग नहीं हो सकता। किन्तु यह उस स्थान में हो सकता है जिस स्त्री के देवर कोई नहीं वो चाहिती है यदि मेरे श्वशुर के बालक हो तो मैं भी देवर वाली होवों तब उस स्त्री को देवृकामा कह सकते हैं अब ऐसी स्त्री देवर कामना करने वाली में यदि देवृकामा यह प्रयोग कहा तो नियोग नहीं सिद्ध होता जैसे भ्रा

तृ रहित कन्या में भ्रातृकामा प्रयोग हो सकता है तद्वत् देव
र रहित स्त्री में देवृकामा प्रयोग होता है और जो एधि इस क्रि
या पदका पति वा देवर को प्राप्त हो यह अर्थ किया है सो तो
असंगत है क्यों कि अस भुवि अदादि गण की धातु का प्रयोग
है एधि सो धातु अकर्मक है तिसको कर्म की अपेक्षा नहीं य
दि भू प्राप्तौ इस धातु का प्रयोग होता तो कर्म की संभावना हो-
सकती सो तो चुरादिगणी है उसका ऐसा प्रयोग तीन काल भी
नहीं हो सकता और पति देवृ पद अन्यस्थान में सम्बंधित हैं
तिनका यहां सम्बंध में क्या प्रमाण है इस वास्ते एधि का अर्थ
(भव) अर्थात् गृहस्थाश्रम मे हो यह अर्थ है देवृकामा कह-
ने से प्रशंसा गम्यमान है क्यों कि ऐसा उत्तम स्त्री का स्वभाव हो
ता है जो अपने देवर को चाहिती है और एक दूसरी वार्ता इससे
निर्णय होगयी जब सपर्य यह गार्हपत्य अग्नि के विषय में प्रयो
ग करा तो सपर पूजायाम् कण्ड्वादि यह (निघण्टु अ ३ खं ५)
निघंटु में लिखा है जब अग्नि की पूजा वेद में सिद्ध हुई तो अग्नि
को देवत्त्व होगया जड़ को पूज्यत्त्व कैसे कहते इस से इस मं-
त्र से ही वादी का अग्नि को जड़ रूप कथन असंगत है। वृद्धि
की इच्छा करते मूल हानि का वृत्तान्त होगया ॥ और पूर्व मंत्र
में गता सुमेत मुपशेषे) इस मंत्र भाग में से उप पद को निका-
ल के एहि क्रिया पद से सम्बंध करके यह अर्थ किया है वादी
ने मरे हुए पति की आशा छोड़के (शेषे) वाकी पुरुषों से (अ
भिजीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पति को (उपेहि) प्राप्त हो,
यह सर्वथा असंगत है क्यों कि उपशेषे यह उप उपसर्ग पूर्वक

शीङ् स्वप्ने धातुका प्रयोग है तब यह अर्थ हुआ गतासु के स-मीप शयन करती है और यहां शेष प्रातिपदिक नहीं और आशा छोड़कर इस भाषा अर्थ का बोधक आशांत्त्यक्त्वा यह संस्कृतवाक्य है सो मंत्र में नहीं है और जब यह कहा जीवलोकको प्राप्तहो तो जीवों का लोक अर्थात् संघात को स्वीकार कर तब जितने चाहिये स्वीकार करे कुछ दशका नियम भी न रहा और चार कानियम भी न रहा इससे यह वादी का केवल मिथ्या प्रलाप है अ-संगत अर्थ को वेद कैसे कहेगा इस वास्ते जीवलोक शब्दार्थ पुत्र पौत्रादि स्थान है इस प्रकार वादी कृत व्याख्यान केवल मिथ्या प्रलाप है अब जैसे वादीने चार २ वा अधिक पति कहे हैं सो देखिये । वादि कृत ग्रंथ ॥

प्रश्न । एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं और विवाहित नियुक्त पतियों का नाम क्या होता है ।

(उत्तर) सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उ-त्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ।

ऋ० । मं० १० । अ० ७ सू० ८५ मं ४० ।

अर्थ,, हे स्त्रि जो (ते) तेरा (प्रथमः) पहिला विवाहित-पति तुझ को (विविदे) प्राप्त होता है उसका नाम-(सोमः) सुकुमारतादि गुण युक्त होने से सोम जो दूसरा नियोग मे (विविदे) प्राप्त होता है वह (गन्धर्वः) एक स्त्री से संभोग करने से गंधर्व जो (तृतीय उत्तरः) दो के पश्चात् तीसरा पति होता है वह (अग्निः) अत्युष्णता युक्त होने से अग्नि संज्ञक और जो (ते) तेरे (तुरीयः) चौथे से लेके ग्यारवें तक नियो

ग से पति होते हैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्य नाम से कहाते हैं ॥

सत्या० समु ४ पृ० ११६ यह वादी का केवल जाल है

अब जैसे इन मंत्रों का निरुक्त में व्याख्यान किया है सो निरुक्त ही लिखकर दिखलाते हैं और पूर्व प्रसंग के दिखाने वास्ते एक मंत्र के उत्तरार्द्ध को भी लिखकर तिसका निरुक्त तथा व्याख्यान भी लिखते हैं जिससे पूर्व प्रसंग सहित मंत्रों का अर्थ प्रतीत होजाय ।

यमोह जातो यमो जनित्त्वं जारः कनीनां पतिर्ज्जनीनाम् । ऋ० मं० १ अ० १२ सू० ६८ । मं ४ ।

यमइव जातो यमो जनिष्यमाणो जारः कनीनां जरयिता कन्यानां पतिर्जनीनां पालयिता जायानां तत्प्रधानाहि यज्ञसंयोगे न भवन्ति । तृतीयो अग्निष्टे पतिरित्यपि निगमो भवति । निरुक्त अ १० पा २ । ख ८ ।

निरुक्तभाष्यम् । "यमोह जातो यमो जनित्वम् । यस्य इदमेवंल्लक्षणमर्च्चिः, सएव यमः, अग्निः, सर्व मितं जातं जनिष्यमाणञ्च (कथमेतदवगम्यते पार्थिवोऽग्निर्यमशब्देनोच्यते, नमध्यमो नोत्तमोवा १ इति तावपि हियमावुच्येते यतो निगमान्तरेण विभज्य दर्शयति "यमाविहेहमातरा" ऋ मं० ६ । अ ५ सू ५९ मं २ । इत्यपि निगमो भवति इति । यत्रैषपादः, तस्मिन् मंत्रे शक्यते यम शब्देन अग्निरुच्यत इति विभावयितुम् ॥ व्यपदेशः । तद्यथा"

"बडित्था महिमावामिन्द्राग्नी पनिष्ठआ । समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमा विहेहमातरा" - ॥

इति भारद्वाजस्यार्षम् । बृहती ॥ बट् । इति सत्य नाम । हे इन्द्रा-

ग्नी, इन्द्या, सत्यम्, अमुना प्रकारेणय: सूक्ते महाभाग्य प्रकारोऽधिकृत:, त मित्येत्यभिनयेनोप दिशन् ब्रवीति । महिमा, महाभाग्यम्) वां, युवयो: (आपनिष्ठ:) सर्व तोऽतिशयेनस्तुत्य: । यौ युवा मेवमति महानुभावौ, तयो: (समान:) वां (जनिता, जनयिता सूर्य्य: । तौ युवामेवं कृत्वैक पितृकौ) एकजन्मानौ (यमौभ्रातरौ) यमलौ सहोत्पन्नौ इहइह मातरौ, इह च पृथिवीलोके, इहच, अन्तरिक्षलोके अवस्थितौ मातारौ सर्वस्य लोकस्य निर्मातारौ । एव मिह मंत्रे पितृत्त्वेन सूर्य्यो व्यपदिष्ट:) इन्द्राग्नी यमौ, इति यम शब्दो मध्यस्थान-पृथिवीस्थानयोरत्रापिद्वयोर्यमयोरिहचेहचनिर्माता विति प्रथमेन (इह) शब्देन अग्निर्यमइतिलक्ष्यते, तस्मादिहापि "यमोहजातो यमोजनित्वम्" इति युक्तं यद ग्निरेवोच्यते ।) जार:कनीनां पतिर्जनीनाम्" सएवाग्नि: जार:) जरयिता) कनीनाम्) कन्या भावस्य, यदाह्यग्नि सन्निधा वूढाभवन्ति, अथ तासां कन्या भावो जीर्णोभवति (पति: जनीनाम्) पालयिता जायानाम्) । कथम् १ । तत्प्रधाना:" सम्पद्यन्ते, अग्नौब्रतोपगमनात्, आ-ब्रत विमोकात् अग्नि पारतन्त्र्यात् ॥

यथा वैतासां यथाधिकृतोय मोह जातो यमो जनित्व मिति तथा यमपरो निगम: स्फुटत्तर:-" तृतीयो अग्निष्टेपति: (ऋ० । इत्यपि निगमोभवति । " सोम:प्रथमो विविदेइति-सूर्य्याया आर्षम् । विवाहे विनियोग: । हे कन्येत्व मुच्यसे । सोम: त्वां प्रथमो विविदे विन्नवान् प्राप्तवान् । सौम्ये प्रथम कौमारके । गन्धर्वो विविदेउत्तर:-) उपजायमान चारुताङ्ग

प्रविभागस्वरःसौष्ठवामीषदनङ्गाङ्गःसमाहृत हृदयां (गंधर्वो विश्वावसुः त्वांविविदे) विन्नवान् । अथ पुनरिदानीं वैवाहिके) उपगतायाःकर्मणि (तृतीयो अग्निष्टेपतिः ,, तृतीयस्तवायमग्निः । अत उद्वहनात् परम्,तुरीयः चतुर्थः । (ते) तवायं (मनुष्यजाः) पतिः । इत्येव मनेनापिमंत्रेण समवेतिजारत्वं पतित्वंचाग्नेः । एवंचेद् । यमोह जातो यमोजनित्वम् । इतियदधिकृतं सोग्निरेवेति सिद्धम् । अग्निर्मह्यमथो इमाम् , ऋ म० १० अ ७ । सू ८५ । मं ४१ । इतिचकेचिदधीयते निगमम् । उपचय हेत्वर्थम् । सनिरुच्यते- सोमोददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये । रयिंच पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथोइमां । ऋ । म० १० अ ७ । सू ८५ । स एव विवाहे विनियोगः) आर्षञ्च । सोमः) एतां प्रथमं कौमारादभ्युद्य) गन्धर्वाय) ददत् अदात् अथगन्धर्वः अप्येनामभ्युद्यस्वयौवनाधिकारात् अग्नये ददत् । अथ अग्निः अपि एनाम् अस्मिन् विवाहे संस्कृत्य) रयिंधनंच पुत्रान् चमह्यम्) अदात् ददाति । अथो) अपिच धनेनच पुत्रैश्चसह इमाम् । मह्यमदात् मह्यं ददाविति ॥

भावार्थ ,, यमोह जातो यमोजनित्वम्) इत्यादिमंत्र में यम शब्द के अर्थ को करते हैं जिसकी पूर्व उक्त स्वरूप (अर्चिः) ज्वाला है अर्थात् शत्रु वा राक्षसों को भय देने वाली और आत्म सम्बंधवत्पदार्थों को बल देने वाली है सोई अग्नि यम शब्दार्थ है और सो अग्नि ही जात तथा जनिष्यमाण अर्थात् वर्तमान औ र होनेवाली वस्तु मात्र है ॥

प्रश्न । यह कैसे जाना जाता है जो पृथिवी में स्थित अग्नि यम शब्द का अर्थ है और मध्य स्थित इन्द्र और स्वर्ग स्थित सूर्य्य देव यम शब्द वाच्य नहीं ।

उत्तर । सो दोनों मध्यम उत्तम भी यम शब्द वाच्य हैं क्यों कि मंत्रान्तर में विभाग करके यम शब्द वाच्य दिखलाए हैं. जिस मंत्र में यमा विहेहमातरा, यह पाद है तिसमें यम शब्द वाच्य भिन्न २ अर्थ प्रतीत होते हैं । तथाहि ।

बडित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठआ । समानोजनिता भ्रातरा युवं यमा विहेहमातरा ॥ ऋ म० ६ अ५ सू ५९ मं २॥

इस मंत्र का भारद्धाज ऋषि है और वृहती छन्द है अर्थ यह है बट् सत्य नाम है यह (३ अ१०खं) निघण्टु में लिखा है इन्द्राग्नी तुमारी महिमा इस प्रकार सत्य है अर्थात् सूक्त प्रतिपाद्य महाभाग्यता यथार्थ है क्यों कि अतिशय कर स्तवन योग्य है और तुमारे तुल्य ही तुमारा जनक सूर्य्य है और तुम दोनो इस प्रकार एक पितृक सहोत्पन्न भ्राता हो और पृथिवी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक में स्थित होकर सर्व के निर्माता हो इस प्रकार इस मंत्र में पितृत्त्व रूप से सूर्य्य निर्दिष्ट है और इन्द्राग्नी यम शब्द वाच्य हैं इस प्रकार इस मंत्र में इस पृथिवी लोकस्थ तथा अन्तरिक्ष लोकस्थ को यम शब्द वाच्यता कहा है इसवास्ते (यमोह जातो यमोजनित्वम्) इस स्थान में यम शब्द वाच्य अग्नि पृथिवी लोक में स्थित भी हो सकता है और अग्नि ही कन्या भाव के जीर्णकर्त्ता होने से जार है क्यों कि जब अग्नि संनि-

धान कर स्त्री का स्वीकार होता है तब कन्या भाव जीर्ण होता-है और अग्नि व्रत को धारण से और व्रतत्याग पर्य्यन्त जायाओं को अग्नि परतंत्र होने से तिनका पालक अग्नि जायाओं का पति कहा जाता है यथा पूर्व उक्त मंत्र अग्नि में कन्या भाव का नाशकत्व और जाया पालकत्व होने से (जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्) ऐसे कहा जाता है तथा अग्नि को जाया पतित्व बोधक स्पष्ट मंत्र है। तथाहि।

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः। ऋ० म० १० अ० ७ सू० ८५ मं० ४०॥

सूर्य्या नामक सूर्य्य भार्य्या इस मंत्र का ऋषि है और विवाह में विनियोग है। हे कन्ये प्रथम कौमार सौम्य अवस्था में तेरे को सोम देवता प्राप्त हुआ और जब चारु अङ्ग प्रत्यंग उत्पन्न हुए और दिव्य स्वर किंचित् अनङ्ग युक्त अंग कर हृदय प्रिय अवस्था में विश्वा वसु गंधर्व प्राप्त होता है और विवाह कर्म में तृतीय पति तेरा अग्नि है और विवाह से उत्तर मनुष्यजा पति है चौथा। इस स्थान में यह विचार करना जो मनुष्यजाः) यह शब्द (तुरीयः) इसके साथ समान विभक्तिक समान अर्थ वाला एकवचनान्त है इस वास्ते इससे बहुत्त पति बोधन करना असंगत है और जब तुरीय को मनुष्य जात्व कहा तो पूर्व तीन को अर्थ प्राप्त देवत्व है और एक मंत्र और इस मंत्र से अव्यवहित उत्तर है तिस के अर्थ को खियाल करके जब इसका अर्थ करेंगे तो वादी का साफ २ जाल प्रतीत होगा। तथाहि।

सोमोददद्गन्धर्वायगन्धर्वोददद्ग्नये । रयिञ्चपु-
त्रांश्चादादग्निर्मह्यमथोइमाम् ॥ ऋ म० १० अ ७ सू-
८५ । मं ४१ ।

अर्थ ,, सोमदेव इसको कौमार से (अभ्युह्य) सर्वथा अवयव संपत्ति करके विश्वा वसु गन्धर्व के अर्थ देता हुआ और गन्धर्वभी इसके यौवनाधिकार से सर्वथा संपन्न कर अग्नि के अर्थ देता हुआ अब अग्निदेव भी इस विवाह कर्म में इसको संस्कार युक्त कर मेरे अर्थ धन पुत्रों को देता है तथा इस स्त्री को देता हुआ अब देखना चाहिये वादी करके मिथ्या कल्पना किया सोम नामा विवाहिता का पति जीते जी गन्धर्व संज्ञक द्वितीय नियोग पति कोकैसे देगा तथा गन्धर्व भी द्वितीय पति अग्नि नामक तृतीयको और तृतीय चतुर्थ को कैसे दे सकता है इस वास्ते वादी किसी के जाल में आकर संकर करने में उद्यत हुआ या क्यों कि ऐसा मूर्ख तो न था जो एक मंत्र को देखे और दूसरे को न देखे इस से निश्चय होता है जो केवल जाल में फसकर अस्त व्यस्त बकता है अब पति के जीते ही नियोग में जो प्रमाण दिया है मंत्र तिसकी व्यवस्था भी कर्त्तव्य है परन्तु अबी वादी की व्यवस्था लिखते हैं ।

प्रश्न । नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पतिके भी १ ।

(उत्तर) जीते भी होता है ।

अन्यमिच्छस्वसुभगेपतिंमत् ऋ । म० १० । सू १०
मं१० ।

जब पति संतानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को - आज्ञा देवे कि हे सुभगे, सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री तू (म

त्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छाकर क्यों कि अब मुझ से संतानोत्पत्ति की आशा मत करे॥ सत्या० समु० ४ पृ ११७॥ इस स्थान में यह विचारणीय है जो समग्र मंत्र वादी ने क्यों नही लिखा यदि समग्र मंत्र लिखता तो इष्ट अर्थ वादी का सिद्ध न होता इस वास्ते छल करके एक पाद ही मंत्र का लिखा है इस वास्ते अब समग्र मंत्र तथा तिसका निरुक्त लिखकर दिखलाते हैं। तथाहि ।

आघाता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणव-
न्नजामि। उपबर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व
सुभगे पतिं मत्॥ ऋ० म० १० अ० १ सू० १० मं० १०॥

आगमिष्यन्ति तान्युत्तराणि युगानि यत्र जामयः करिष्यन्त्यजामि कर्माणि जाम्यतिरेकनाम बालिशस्य वासमान जातीयस्य वोपजन उपधेहि वृषभाय बाहुमन्य मिच्छस्व सुभगे पतिं मदिति व्याख्यातम्॥ निरुक्त अ ४ पा ३। खं ४॥ निरुक्त भाष्यम्॥ जामि, इति। एतदनेकार्थम्। भगिनी बालिशः, पुनरुक्तञ्चास्याभिधेयानि। प्रकरणा देवै तेषा मन्यतमस्मिन्नवतिष्ठते। यथानेनता वद्भगिन्युच्यते, तथेद मुदाहरणम्।

आघात्ता०मत् इति।

इयं यमी किल यमं प्रार्थयाञ्चकार, एहि मैथुनाय सङ्गच्छवहा इति, तामकामयमाना ऽसावनयर्चा प्रत्युवाच॥ आघाता गच्छान्। घा इत्यनर्थक एव, आगच्छान् आगमिष्यन्तीत्यर्थः। आह, कानि? उच्यते, तातानि उत्तराणि युगानि आगमिष्यन्तिते ऽपि कालानतावत् साम्प्रतं वर्त्तन्ते, इत्यभिप्रायः॥ तेषु किम्?

यत्रयेषुजामयः, भगिन्यः भ्रातृणाम् ' अजामियोग्यानि मैथुन सम्बन्धानि कर्माणि करिष्यन्ति । कलियुगान्तेहि तादृशःसङ्करो भवति न चेदं कलियुगं वर्त्तते इत्यभिप्रायः । यतो न तावदद्यापि सङ्कीर्णो वर्णसंकर धर्मः । स्वाचारा एवतावत् प्रजाः। अतो ब्रवीमि ' उपबर्ह्हि ' उपधेहि । कस्मै ' वृषभाय ' त्वो परिरेतः सेक्तु मन्यकुल जो योग्यः, तस्मै ' किमुपबर्हहि इति बाहुम् ' शयनीये सर्वथा प्रार्थ्यमानो ऽप्यहं तव पतिः न भविष्यामीति । यतो ब्रवीमि अन्यमिच्छस्व ' अन्य मन्वेषयस्व । हे सुभगे ' पतिं ' मत् मत्त इत्यर्थः । एव मेतस्मिन् मंत्रे, सूक्ते वा संवादाधिकाराज्जामि शब्दे न भगिन्युच्यते इत्युपपद्यते ॥ जामि ' इत्येतदेव स्वरान्तशब्द रूपम् " अति रेक नाम भवति पुनरुक्त नामेत्यर्थः । तदुत्तरत्र लक्षण तो भविष्यति तद्यत् समान्या मृचि समाना भिहारं भवति तत् जामि भवति ' इति पुनरुक्ता भिधानत्त्वेन । जामि शब्दस्य पर्य्येष्यो निगमः ॥ बालिशस्यवा " बालिशस्यै तदेव नाम । बालिशो मूर्खः सहिबाल इव शेते प्रमादित्वा द्धर्म कार्य्येषु । एतस्यापि पर्य्येष्यो निगमः । असमान जातीयस्यवा ' असमान जातीयो हि पुरुषस्य भगिन्याख्यो भ्राता, साहिस्त्रीत्वा देवातुल्य जाती यैव पुरुषस्य भवति । जामिरित्येतस्मिन् शब्दे मिः, इत्येष ' उपजनः " यदेवोक्तं भवति । ज इति तदेव जा मीति उभ यथापि मंत्रे प्रयोगो द्रष्टव्यः । अन्य मिच्छ स्वसुभगे पतिं मत् इति व्याख्यातम् निगद सिद्ध मेवैत दित्यर्थः ॥

भावार्थ,, यम यमी सम्बाद की यह ऋचा है यमी कहती है यमसे

जो कि हम दोनो समागम करें तो यम इस ऋचा से उत्तर देता है (आघाता गच्छान् उत्तरा युगानि) घा इसका तो कुछ अर्थ नही (ता) तानि (उत्तरा) उत्तराणि युगानि आगच्छान् आगमिष्यन्ति । हे यमि वे उत्तर युग आवेंगे जिन युगों मे (जामयः) भगिनियां (अजामि कृणवन्) भगिनि से भिन्न संबद्धित कर्म को करेंगी भाव यह है वो काल कलि के अन्त में आने वाला है जिसकाल में भगिनी से भिन्न स्त्री योग्य कर्म को भगिनी करेंगी परन्तु अबि तो संकर धर्म नहीं किन्तु अपने २ आचार में ही सर्वे वर्ण वर्तमान हैं इस वास्ते हे सुभगे मेरे से अन्य योग्य पति की इच्छा कर और उस (वृषभाय) योग्य के वास्ते (बाहुम् उपबर्हृहि) अपने पाणि को ग्रहण कराले अब देखना चाहिये प्रकरण को विचारे से जो कि नियोग प्रतीत इस मंत्र में होता है वा नहीं यह केवल वादी का जाल है इसी वास्ते समग्र मंत्र को वादी ने छोड़ दिया है इसी प्रकार वादी के ग्रंथ में सर्वत्र छल है ।

प्रश्न । जब इस प्रकार नियोग का सर्वथा निषेध किया तो बहुत सा व्यभिचार होगा ।

उत्तर । तुमारा नियोग तो व्यभिचार से भी अधिक है परन्तु यह विचार इस स्थान में प्रतीत होता है प्रथम कौमार अवस्थाता सोम देवता कर अधिष्ठित्त कही द्वितीय अवस्था विश्वा वसु गंधर्व कर अधिष्ठित और तृतीय अवस्था में कन्या को अग्नि अधिष्ठित कथन से ऐसा प्रतीत होता है जो कि जब योग्य होवे कन्या तब विवाह होना चाहिये अन्यथा तिस २ अवस्था अधिष्ठाता देवताओं का कोप होगा यदि कौमार अवस्था में ही विवाह की अग्नि-

के संस्कार होगये तो विश्वा वसु गन्धर्व के कोप से सौभाग्य वति कैसे होगी इस वास्ते कौमार अवस्था में विवाह संस्कार अवैदिक मर्य्यादा प्रतीत होती है जब योग्य अवस्था में विवाह होगा तो विधवा बहुत कमती होगी।

अथ विधवा कालक्षेपोपाय और नामोपासना महत्त्व और दमदानदया निरूपण करते हैं॥ १३॥

यदि जन्मान्तर के अदृष्ट वश से वैधव्य हो तो सर्व विघ्न निवारक भगवद् भजन करें भगवद्भक्ति का यह प्रभाव है जो कि योगिजनो के अनन्त विघ्न को निवारण करती है भगवद्भक्ति का प्रकार गीता में श्रीकृष्ण वाक्य से निर्णीत है। तथाहि॥

अवजानन्ति मांमूढा मानुषींतनुमाश्रितम्॥ परं भावमजानंतो ममभूतमहेश्वरम्॥ गीता अ॰ ९। श्लोक।११।

अर्थ,, पूर्व उक्त रीति से नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव और सर्व जंतुओं के आत्मा आनन्दघन अनन्त रूप होते भी अपने अज्ञान से मूढ़ पुरुष मेरी अवज्ञा करते हैं जो कि यह साक्षात् ईश्वर नही ऐसे कहकर मेरे प्रभाव को न जानकर निन्दा भी करते हैं क्यों कि मैने मनुष्य शरीर को धारण करके अनंत चरित्र प्राणि कर्म के अनुसार किये हैं और सर्व भूतों का नियंतृत्त्व रूप जो मेरा प्रकृष्ट भाव है तिसको नही जानते

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः॥ राक्षसी मासुरींचैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः। गी॰ अ॰ ९। श्लो॰ १२।

अर्थ,, भगवन्निन्दाजनित पाप से व्यर्थ आशा और निष्फल कर्मों वाले हैं और उनका जो ज्ञान है वो भी निष्फल है और भगवद्भज्ञान जनित दुरित करके विवेकरहित हैं और तामसी राजसी और शास्त्र ज्ञानभ्रंशक प्रकृति को आश्रय कर रहे हैं। इस प्रकार भगवद्‌ विमुखों की दशा निरूपण करी अब भगदनुवर्त्तियों की सुदशा निरूपण करते हैं॥

महात्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः। भज
न्त्यनन्यमनसोज्ञात्वाभूतादिमव्ययम्॥श्लो १३।

अर्थ,, जो शुद्धान्तःकरण सात्विकी प्रकृति वाले अनन्य मनोयुक्त हैं वे सर्वभूत कारण निर्विकार जानकर भजन करते हैं॥

सततंकीर्त्तयन्तोमांयतन्तश्चदृढव्रताः॥ नमस्य
न्तश्चमांभक्त्यानित्ययुक्ताउपासते॥ १४॥

अर्थ,, निरन्तर कीर्तन और दृढ़ व्रत युक्त होकर यत्न करनेवाले मेरे इस सगुण रूप को प्रीतिकरके प्रणाम करते हुए नित्य युक्त वो भक्तजन मेरी उपासना करते हैं।

मांहिपार्थव्यपाश्रित्ययेऽपिस्युःपापयोनयः।
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपियान्तिपरांगतिम्॥
गी० अ० ९ श्लो० ३२।

अर्थ,, हे पार्थ जो पाप योनि चांडालादि और स्त्री (वैश्य) केवल कृषि वाणिज्य में सर्वदा संलग्न चित्त और शूद्र यह संपूर्ण मेरा भक्तिभाव से आश्रय करके परम गति को प्राप्त होते हैं॥ इस वास्ते विधवा स्त्री भी परमेश्वर की मूर्त्ति का ध्यान पूजन करती अथवा भगवत्स्तोत्र पाठादि सें कालक्षेप करे तो ब्रह्मचर्य्य प्र-

भाव सें सद्गति को प्राप्त होवेगी।

प्रश्न। प्रतिमा में ईश्वर भावना यदि सद्भावना है तब तो शुक्ति में रजत भावना भी सद्भावना होनी चाहिये इस वास्ते जड़ में ईश्वर भावना भी विपरीत भावना है यदि विपरीत भावना हुई तो स्वयमेव अशुभ रूप है अशुभ कर्मो सें कैसे छुड़ाए सकती है॥

उत्तर। दृष्टान्त में शुक्ति रजत का उपादान उपादेय भाव नहीं है इस वास्ते शुक्ति में रजत भावना विपरीत भावना है और दार्ष्टान्त में प्रपंच ईश्वर का उपादान उपादेय भाव है इससे दृष्टान्त विषम है अब देखना चाहिये कटकादि में सुवर्ण भावना सद्भावना है अथवा विपरीत भावना है वहां सुवर्ण भावना सद्भावना और कटकादि भावना विपरीत भावना है आरोप विषयक होने से इसी प्रकार मूर्त्ति में ईश्वर भावना सद्भावना है वास्तव वस्तु विषयक होनेसे और पाषाणादि भावना विपरीत भावना है आरोप विषयक होने से इस वास्ते पाषाणादि भावना वादी मिथ्या वादी ईश्वर भावना वादी सद्वादी है यह निर्णय होगया। अथवा सर्व साधारण साधन नाम स्मरण करके कालक्षेप करना चाहिये। प्रश्न। नाम स्मरण किया करे वहां नामस्मरण क्या पदार्थ है। उत्तर। नाम मात्र को ब्रह्म बुद्धि से ध्यान स्मरण करना अथवा पंचरत्न स्तोत्रादि को ब्रह्म बुद्धि कर स्मरण करना ही नाम स्मरण है। प्रश्न। इसमें प्रमाण क्या है। उत्तर। छांदोग्य श्रुति प्रमाण है। तथाहि।

अधीहि भगवइति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्त ं होवाच यद्वेत्थ तेनमोपसीद ततस्तऊ

ध्वं वक्ष्यामीति ॥ १ ॥

अर्थ,, नारद ऋषि सनत्कुमार को प्राप्त होकर कहा हे भगवन् मेरेको (अधीहि) उपदेश करो तिस से सनत्कुमार कहते हैं हे नारद जो कुछ तू जानता है तिसको सुनाकर मेरेको प्राप्त हो पश्चात् तेरे को कहोंगा ॥

सहोवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्व्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ २ ॥

अर्थ, नारद कहते हैं हे भगवन् ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद चतुर्थ अथवर्ण वेद पंचम इतिहास पुराण वेदों का वेद व्याकरण (पित्र्य) श्राद्ध कल्प शास्त्र (राशि) गणित विद्या (दैव) उत्पात ज्ञान साधन शास्त्र और महाकालादि निधि शास्त्र (देवविद्या) निरुक्त (ब्रह्मविद्या) शिक्षाकल्पछन्दः शास्त्र (भूतविद्या) भूततंत्र (क्षत्रविद्या) धनुर्वेद (नक्षत्रविद्या) ज्योतिःशास्त्र (सर्पविद्या) गारुड विद्या (देवजनविद्या) गन्धयुक्ति नृत्य गीत वाद्य शिल्प शास्त्रादि और (वाकोवाक्य) तर्क शास्त्र (एकायन) नीति शास्त्र यह संपूर्ण विद्या मैने अध्ययन करी है और इन सर्व विद्याओं को जानता हूं।

सोऽहं भगवो मंत्र विदेवास्मि नात्म वित् श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्म विदिति सो

१ हं भगवः शोचामितंमा भगवाञ्छोकस्यपारं-
तारयत्वितित ७ होवाच यद्वै किञ्चैतदध्यगी-
ष्ठानामैवैतत् ॥ ३ ॥

अर्थ, हे भगवन् परन्तु मै केवल मंत्र वित् हूं आत्मवित् न हीं और मैने भवत्सदृश महात्माओं सें सुना है जो कि आत्म वित्पुरुष (शोक) अकृतार्थ बुद्धि को उत्तीर्ण होजाता है १ और मैतो अकृतार्थ बुद्धि युक्त हूं इसवास्ते हे भगवन् मेरी अ कृतार्थ बुद्धि को निवृत्त करके संसार से पार करो अब सनत्कु मार नारद से कहते हैं जो कुछ तैने अध्ययन करा है सो सं- पूर्ण केवल नाम है ॥

नामवा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्च
तुर्थ इतिहास पुराणः पञ्चमोवेदानांवेदःपित्र्यो
राशिर्दैवो निधि र्वा कोवाक्यमेकायनं देवविद्या
ब्रह्मविद्याभूतविद्याक्षत्रविद्या नक्षत्रविद्यासर्प
देवजनविद्यानामैतन्नामोपास्वेति ॥ ४ ॥

अर्थ,, यह श्रुति वाक्य पूर्व श्रुति वाक्य के समानार्थक है परन्तु पूर्व वाक्य में ऋग्वेदादि पद प्रथमान्त नही किन्तु द्विती यान्त हैं यह सम्पूर्ण ऋग्वेदादि नाम है इस वास्ते ब्रह्म बुद्धि करके नामकी उपासना कियाकर ।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ शा ॥ अ४ । पा १ ।
पा १ सू ५ ।

इस व्यास सूत्र प्रमाण से ब्रह्म बुद्धि से नामही उपासनीय है ।

सयोनाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतंतत्रास्य

यथाकामचारोभवति ॥ छां०उ०स०७ ॥

अर्थ,, यदि पूर्व उक्त ऋग्वेदादि रूपनाम को ब्रह्म दृष्टि से उपासना करता है तब यावत् नाम की गति है वहां इस उपासक का स्वेच्छा चरण होता है भाव यह है उपासना के प्रभाव सें वहां पहुंच सकता है ॥ इस स्थान में यह निर्धार हुआ जो ब्रह्मदृष्टि करके ऋग्वेदादि रूपका अभ्यास करता है अथवा पंचमवेद रूप इतिहास का अथवा इतिहासान्तरगत पंचरत्न गीता सहस्त्रनामादि अथवा और कोई परमेश्वर के नाम प्रतिपादक स्तोत्रादि अथवा केवल भगवन्नाम को ब्रह्म दृष्टि सें उपासना करता है सो ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥ केवल वेद के पाठ मात्र सें ब्रह्मलोक की प्राप्ति याज्ञवल्क्य शिक्षा में याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं ॥ तथाहि ॥

स्वरवर्णप्रयुंजानोहस्तेनाधीतमाचरन् ॥ ऋग्
यजुः सामभिः पूतोब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ ॥
श्लो०॥४२॥

अर्थ, स्वर तथा वर्ण का यथावत् प्रयोग करता हुआ हस्तचालन करके वेदाध्ययन का अनुष्ठान करके ऋग् यजुः साम कर पवित्र हुआ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है ॥ प्रश्न ॥ वेद पाठ अथवा और किसी स्तोत्र का पाठ मात्र केवल व्यर्थ है क्योंकि निषिद्ध होने से ॥ तथाहि ॥

स्थाणुरयंभारहारः किलाभूदधीत्यवेदंन विजानातियोऽर्थम् ॥ योर्थ ज्ञ इत्सकलंभद्रम
श्नुते नाकमेतिज्ञानविधूतपाप्मा ॥ यद्गृहीतम॰

विज्ञात्तं निगदेनैव शब्द्यते । अनग्नाविवशुष्के-
धोनतज्ज्वलति कर्हिंचित् । यह वचन निरुक्त ।
अ १ पा द ख १ नैघण्टुकं काण्डम्

अर्थ,, यो वेद मधीत्यार्थं न विजानाति किल निश्चये नायं भा
रहार:स्थाणुरभूत् यो ऽर्थज्ञ: स (इत्त) एव सकलं भद्रं अश्नु
ते ज्ञान विधूत पाप्मानाक मेति यह अन्वय है जो पुरुष वेद को
अध्ययन करे भी अर्थ को नहीं जानता सो पुरुष निश्चय कर-
के भार उठाने वाले स्थाणुवत् होता है और जो अर्थ का ज्ञाता
है सोई सकल कल्याण को प्राप्त होता है और वेदार्थ ज्ञान सें नि-
ष्पाप होकर स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ जो ग्रहण करा हुआ वेद
केवल पाठ मात्र करके उच्चारण करा अग्नि अन्य शुष्क काष्टव
त् प्रकाशित होता नहीं अर्थात् फल जनक नहीं होता ॥

उतत्व: पश्यन्न ददर्शवाचमुतत्व: शृणवन्न शृणो
त्येनाम् ॥ उत्तोत्वस्मैतन्वं विसस्रेजायेवपत्यउ-
शतीसुवासा: । ऋ म० १० । सू ७१ मं ४ ॥

इस मंत्र का व्याख्यान रूप महाभाष्य ॥

अपि खल्वेक: पश्यन्नपिन पश्यति अपिखल्वेक: शृणवन्नपि
नशृणोत्येनाम् ॥ अविद्वांसमाहार्द्धम् । उतोत्वस्मैतन्वंविस-
स्रे तनुं विवृणुते । जायेवपत्यउशतीसुवासा: । जायेव पत्येका
मयमाना सुवासा: स्वमात्मानं विवृणुत्ते । एवं वाग्वाग्विदे-
स्वात्मानं विवृणुत्ते । वाङ्नोविवृणुयादात्मानमित्यध्येयंव्या
करणम् । अ १ पा १ आ १ ॥

अर्थ,, मंत्र में त्व शब्द एक पद के अर्थ में है और उत अपि

अर्थ में है कोई एक अज्ञात पुरुष वाक् को देखता सुनता भी नहीं देखता और नहीं सुनता क्यों कि अर्थ का अज्ञान है किसी एक विद्वान् के वास्ते वाग्देवता प्रगट करती हुई स्व स्वरूप को अर्थात् वाच्य अर्थ को जनाती है जैसे कामना वाली स्त्री दिव्यवस्त्र को पहर कर अपने पति के वास्ते शरीर प्रकाशित करती है इस वास्ते वाग्देवता अपने स्वरूप को प्रकट करो हमारे अर्थ सर्वथा व्याकरण अध्ययन करने को योग्य है ॥

उत्तर ॥ इस स्थान में (इत्यर्थज्ञप्रशंसा) नि० अ० १ पाद खं ३ नं० का ।

इस निरुक्त को देखकर विचार करना अर्थ ज्ञाता की प्रशंसामें तात्पर्य्य है कुछ केवल पाठक की निन्दा में तात्पर्य्य नहीं । नहि-निन्दानिन्द्यं निन्दितुं प्रवृत्ता अपितु विधेयं स्तोतुम् ॥ इस न्याय से निन्दा में तात्पर्य्य नहीं अन्यथा उक्तनाम उपासना प्रतिपादक श्रुति सूत्र व्यर्थ होंगे और केवल वेद पाठ को ब्रह्मलोक प्राप्तिफलकत्व बोधक याज्ञवल्क्य शिक्षा वचन को व्यर्थत्व होगा और ईश्वर प्रणिधान पर्य्यन्त क्रिया योग प्रतिपादक पतंजलि सूत्र-व्यर्थ होगा । क्रिया योग प्रतिपादक सूत्र "

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः । यो० पा । २ सू० १ ।

भाष्य व्यासमुनिकृत " नातपस्विनो योगः सिध्यति । अनादिकर्म्म क्लेश वासना चित्रा प्रत्युपस्थित विषय जाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः सम्भेद मा पद्यते इति तपस उपादानम् । तच्च चित्त प्रसादन मबाधमान मनेनासेव्य मिति मन्यते । स्वाध्यायः प्रणवादि पवि

त्राणां जपः मोक्ष शास्त्राध्ययनं वा ईश्वर प्रणिधानम् सर्व क्रिया णां परम गुरावर्पणम् तत्फल संन्यासो वा ॥

अर्थ,, जो कि पुरुष तपो वर्जित है। तिसको योग नही सिद्ध होता क्यों कि अनादि कर्म्म और रागद्वेषादि क्लेश वासना और प्रादुर्भूत विषय जाल रूप अशुद्धि विना तप से नाश नही होसकती इस वास्ते तपका ग्रहण किया है और सो तप करना जो कि चित्त का अत्यन्त विक्षेपकारी नहो। भाव यह है राजसि तामसि तप से भिन्न जो सात्विकी तप है सो सेवनीय है सो भी तीन प्रकार का है शारीर १ वाङ्मय २ मानस ३ इस भेद सें तथाहि।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनंशौचमार्जवम् ॥ ब्रह्मचर्य्यमहिंसाच शारीरंतपउच्यते ॥ गी अ-१७ श्लो १४॥

अर्थ,, (देव) ब्रह्मा विष्णु शिव सूर्य्य अग्नि दुर्गादि (द्विज) ब्राह्मण (गुरु) पितृ मात्रा चार्य्यादि (प्राज्ञ) पण्डित्त विदित्त वेद तद्रुप करणार्थक इन सर्व का पूजन अर्थात् प्रणाम शुश्रूषादि करना और (शौच) शास्त्र मर्य्यादा से मृत्तिका जल कर शरीर शोधन करना और आर्जव दो प्रकार का है एक तो मानस और दूसरा शारीर अकुटिलता रूप भाव शुद्धि तो मानस है और विहित कर्म में तो प्रवृत्ति स्वभाव और निषिद्ध कर्म में निवृत्ति स्वभाव होना यह शारीर आर्जवता है और (ब्रह्मचर्य्य) निषिद्ध मैथुन से निवृत्तिः (अहिंसा) प्राणि पीड़ना का अभाव और चकार से अस्तेय और अपरिग्रह यह शारीर तप कहाजाता है ॥

अनुद्वेगकरंवाक्यंसत्यंप्रियंहितंचयत् ॥ स्वाध्या

याभ्यसनंचैव। वाङ्मयंतपउच्यते ॥ गी अ १७
श्लो १५।

अर्थ, (अनुद्वेगकर) किसी को भी न दुःख देने वाला और (सत्य) प्रमाण मूलक बाध रहित और (प्रिय) श्रोता को तत्का ल सुखदायक और (हित) प्रणाम में सुखदायक वाक्य और (स्वाध्यायाभ्यसन) यथा विधि वेदाभ्यास यह वाङ्मय तपक हा जाता है ॥

मनः प्रसादःसौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः। भाव संशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥ गी अ १७।
श्लो·१६॥

अर्थ,, (मनःप्रसादः) मनकी विषय चिन्ता व्याकुलत्वराहि- त्व रूपस्वच्छता (सौम्यत्व) प्रतिषिद्ध चिन्ता राहित्य और सर्व लोक हितैषित्व (मौन) एकाग्रता करके आत्म चिन्तन (आ त्मविनिग्रह) सर्व वृत्ति निरोध रूप मनका निग्रह (भावसंशु- द्धि) हृदय को काम क्रोध लोभादि मल निवृत्ति रूप शुद्धि अ थवा दूसरे के साथ व्यवहार काल में छल राहित्य रूप शुद्धि मा नस तप है यह तीन प्रकार का तप सात्विकादि भेद से तीन प्रका र का है ॥

श्रद्धया परयात्तमंतपस्तत्त्रिविधंनरैः ॥ अफलाकां क्षिभिर्युक्तैःसात्त्विकंपरिचक्षते ॥गी अ१७ श्लो१७।

अर्थ, फलाभिसंधि रहित समाहित पुरुषों कर परम आस्ति- क बुद्धि कर सेवन करा हुआ पूर्वउक्त त्रिविध तप सात्त्विक क- हा जाता है ॥

सत्कार मान पूजार्थं तपोदम्भे नचैवयत् ॥ क्रियते त
दिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ गी० अ० १७ श्लो० १८ ॥

अर्थ,, (सत्कार) यह उत्तम साधु बड़ा तपस्वी ब्राह्मण है इस प्रकार अविवेक युक्त पुरुषों कर करी स्तुति (मान) अभ्युत्थान प्रणामादि (पूजा) पाद प्रक्षालन अर्चन धन दानादि इनके अर्थ जो केवल अपने धार्मिक बोधन वास्ते तप है सो राजस कहा जाता है (चल) अल्प काल स्थायि फल जनक और (अध्रुव) फल जनकता नियम शून्य है।

मूढ़ग्राहेणात्मनोयत्पीड़याक्रियते तपः ॥ परस्यो-
त्सादनार्थंवातत्तामसमुदाहृतम् ॥ गी० अ० १७ । श्लो०
॥ १९ ॥

अर्थ,, अत्यन्त अविवेक करके देहकी पीड़ा कर परके नाश वास्ते जो तप है सो तामस कहा जाता है इसी वास्ते भाष्यकार व्यासजी कहते हैं चित्त प्रसाद का अबाधक तपही सेवन योग्य है। और पातंजल सूत्रस्थ स्वाध्याय) प्रणवादि पवित्र मंत्र का जप गायत्री जप और मंत्र राज जपादि और दिव्य स्तोत्र पाठ इत्यादि सर्व ही स्वाध्याय हैं और मोक्ष शास्त्र उपनिषद्द भगवद्गीतादि का अध्ययन भी स्वाध्याय है ॥ (

(ईश्वर प्रणिधान) परमेश्वर में सर्व कर्म समर्पण अथवा सर्व कर्म फल त्याग यह संपूर्ण क्रिया योग है। अब जो प्रजापति कर उपदिष्ट और सर्व कर्म और उपासना में उपयुक्त दम १ दान २ दया यह साधन हैं तिनका प्रजापति के वाक्य से निरूपण करते हैं ॥ तथाहि ॥

त्रयाः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्य्यमूषुर्दे वा मनुष्या असुरा उषित्वा ब्रह्मचर्य्यं देवा ऊचुर्ब्रवी तु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच द इति व्यज्ञा सिष्टा ३ इति व्यज्ञासिष्मेति होचुर्दाम्यतेति न आ-त्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासिष्टेति ॥१॥

अर्थ,, तीन संख्या वाले प्रजापति के पुत्र होते हुए वे प्रजाप-ति के पास ब्रह्मचर्य्य सेवन पूर्वक अध्ययन करते हुए देवता-मनुष्य असुर विद्याग्रहण कर समावर्तन समे में निश्चित श्रेय-कारी अर्थ को पूछा सर्व से प्रथम देवताओं ने हे भगवन् हमारे प्रति धारणीय अर्थका उपदेश करना उचित है तब प्रजापति द इस अक्षर का उपदेश किया और कहा तुम ऋत सम्पन्न हो इस उपदेश के अभिप्राय को दृढता वास्ते प्रथम आपही विचारो पश्चात् मेरे को सुनाकर निश्चय करना अब देवता विचार कर प्र जापति सें निवेदन करते हैं हे भगवन् आपने हमारे प्रति यह क हा है जो कि इन्द्रिय दमन करो प्रजापति स्वीकार किया यथार्थ है हमारा भाव तुमने जाना है ॥

अथ हैनं मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैत देवाक्षरमुवाच द इति व्यज्ञासिष्टा ३ इति व्यज्ञासि-ष्मेति होचुर्दत्तेति न आत्थेत्योमिति होवाच व्यज्ञासि ष्टेति ॥२॥

अर्थ, अब मनुष्य कहते हुए आप हमारे प्रति भी उपदेश की-जिये तब मनुष्यों के वास्ते भी उसी दकार का उपदेश करे से निश्च य किया मनुष्यों ने जो कि हमारे वास्ते दान का उपदेश हुआ और

प्रजापति ने स्वीकार किया जो कि हमारे भावको मनुष्यों ने जाना है यथावत् सन्देह रहित॥

अथहैनमसुराऊचुर्ब्रवीतुनोभवानितितेभ्योहैतदे वाक्षरमुवाचदइतिव्यज्ञासिष्टा ३ इतिव्यज्ञासिष्मे तिहोचुर्दयध्वमिति नआत्थेत्योमिति होवाचव्य- ज्ञासिष्टेति तदेतदेवैषादैवीवागनुवदतिस्तनयि- त्नुर्दददइतिदाम्यत्त दत्त दयध्वमिति तदेतत्त्रयं- शिक्षेद्दमंदानंदयामिति॥ वृह० उ० अ० ७ ब्रा० २॥

अर्थ,, अब असुर प्रजापति से कहते हुए हे भगवन् हमारे वास्ते भी उपदेश कीजिये तिनके प्रति कहते हैं दकार इसको यथावत् जानो तब प्रतिपादन करे दकार अक्षर को विचार कर कहते हैं प्रजापति सें हमारे वास्ते आपने दया का उपदेश किया है प्रजापति स्वीकार करके कहते हैं जो कि तुमने हमारे भाव को यथा- वत् जाना है इस स्थान में यह भाव है समान उपदेश को भी अ- पने २ दोष को देखकर विलक्षण अभिप्राय वर्णन किया देवता मनुष्य असुरों ने और प्रतिपादन करे भावको प्रजापति ने स्वीकार किया क्यों कि देवताओं को भोग प्रधान जानकर इन्द्रिय निग्रह का उपदेश उत्तम जानकर स्वीकार किया और मनुष्यों को लोभिष्ठ जानकर लोभ निवर्तक दान धर्म का उपदेश किया असुरों को क्रूर हिंसा प्रधान जानकर दया धर्म का उपदेश करके हिंसासें निवृत्त किया अब श्रुति आख्यायिका से निवृत्त होकर कहती है जो कि प्रथम काल के उपदेश को अद्यापि दैवी वाग् अनुवाद करती है मेघ गिरा सें दकार अक्षर का इस वास्ते इन तीनो की

शिक्षा करनी चाहिये जीव मात्रको दैवी वाग् का भाव यह है य
दि प्रजापति के उपदेश का सेवन न करोगे तो अनावृष्टिजन्य
अनन्त क्लेशोंको सहारोगे सर्वके पितामह की आज्ञा भंगकर
के इससे यह उचित है यथा शक्ति दम दान दया धर्म्म का अनु-
ष्ठान करो आवश्यक जानकर यह सर्व साधनों में सारभूत सा-
धन है सर्व साधारण इससे अवश्य कर्त्तव्य है ॥

अथ दान पितृश्राद्ध तीर्थ प्रभावादि और अग्निहोत्रा
दिकर्म्म को सफलतानिरूपण करते हैं ॥ १४ ॥ उच्चा
दि विदक्षिणावंतो अस्थुर्ये अश्वदाः सहते सूर्य्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्त्वंभजन्ते वासोदाः सोम प्रतिरंत-
आयुः ॥ ऋ० म १० अ ६ । सू १०७ मं २

अर्थ ,, ये दक्षिणा वंतस्तेदिविस्वर्गेउच्चाउच्चैर्यथास्यात् तथाअ
स्थुः ' तिष्ठन्तिये देय पदार्थवन्तस्तेस्वर्गेलोके) उत्कृष्टाः संत-
स्तिष्ठन्तीतिभावः ये अश्वदास्ते सूर्य्येण सहस्वर्गेतिष्ठन्तियाव-
त्सूर्य्यतावत् कालं स्वर्गे तिष्ठन्तीत्यर्थः किञ्चये हिरण्यदास्ते
अमृतत्त्वंक्रमेण मुक्तिंलभंते येवासोदास्ते (सोम) चन्द्रलो-
के आयुः प्रतिरंतः) वर्द्धयन्त इतिभावः ।

भावार्थ ,, जो सत्पुरुष देय द्रव्य का यथा शक्ति विभाग-
करते हैं वे ऊचे स्वर्गलोक में स्थित होते हैं और जो राजा महारा
जा अश्वों के दान करते हैं वे सूर्य्य पर्य्यंत उत्तम लोक में निवा-
स करते हैं और जो स्वर्ण दान करते हैं वे क्रम करके उत्तमलोक
की प्राप्ति द्वारा मुक्त होते हैं और जो वस्त्र दान करते हैं वे सोमलो
कमें आयु को वृद्ध करते हैं ॥ यह ऋग्वेद का मंत्र दान की प्रशं

सा करता है ॥

आविरभून्महिमाघोनमेषांविश्वंजीवंतमसोनिरमोचि॥
महिज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पंथादक्षिणाया-
अदर्शि ॥ ऋ०म०१० अ०६।सू०१०७।मं०१॥

अर्थ,, एषां श्राद्धादि कर्म कारिणां मघवत इन्द्रं माघोनं महि-महिमा आविर भूत् प्रादुर्भूतः किञ्च विश्वंजीवं विश्व संस्कंजीवं तमसो जन्म मरण प्रबंध रूप तमसो निरमोचि विमुक्तं कृतवंतः पितृभिः पितृभ्यो दत्तमेव महिज्योतिः अगात् प्राप्तं परिणत मित्यर्थः किञ्च दक्षिणाया दिशो मार्ग उरुर्विस्तृतः अदर्शि दर्शितः पितृदत्त श्राद्धादिभिः ॥

अर्थ,, श्राद्धादि कर्म करने वालों को इन्द्र तुल्य विभूति की प्राप्ति होती है और वे श्राद्धादि कर्म करने वाले अपने जीवात्मा का उद्धार करते हैं और वो पितृ दत्त श्राद्धादि दक्षिणायन मार्ग को दिखाय कर स्वर्ग में कर्त्ता को प्राप्त करते हैं । इस ऋग्वेद मंत्र प्रमाण से श्राद्ध निन्दक भी परास्त होगया ॥

वसून् वदन्तितु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् । प्र
पितामहास्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषासनातनी ॥ मनु०
अ ३ श्लोक।२८४॥

अर्थ,, वसु रुद्र आदित्य यह तीन प्रकार के देवता ही पिता और पिता मह और प्रपिता मह रूप हैं यह सनातन श्रुति कहती है इस प्रकार मन्वादि ऋषि कथन करते हैं । भाव यह है पिता-पितामह प्रपितामह को वसु रुद्र आदित्य रूप से ध्यान करके श्राद्धादि कर्त्तव्य हैं ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः
असुंयईयुरवृका ऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरोहवेषु ॥
ऋ० म० १०। अ० १ सू० १५। मंत्र १॥

उदीरतामवर उदीरतां पर उदीरतां मध्यमाः पितरः सोम्याः सोमसम्पादिनस्ते ऽसुं ये प्राण मन्वीयुरवृका अनमित्राः सत्यज्ञा वा यज्ञज्ञा वा ते न आगच्छन्तु पितरो ह्वानेषु माध्यमिकोयम इत्याहुस्तस्मान्माध्यमिकान् पितॄन्मन्यन्ते ॥ निरुक्त । अ० ११। पा० २ खं० ६ काण्डं दैवतम् ।

निरुक्त भाष्यम् ॥ उदीरतामवरे, इति शंखस्यार्षम् । पितृमेधे विनियोगः ॥ येतावत् अवरे पितरः पृथिवी माश्रिताः, ते तावत् उदीरताम्, ऊर्द्ध्वं गच्छन्तु । अथ पुनर्ये (परासः) परे, द्युलोक माश्रिताः, तेऽप्युदीरताम्, तेषामप्य प्रच्युति रस्तु मुच्यन्तांवातदधिकार प्रक्षये । उन्मध्यमाः) पितरोयेऽपिमध्यमाः मध्यस्थानाश्रयाः, तेप्यु दीरताम् उत्तमंलोक माश्रयताम् सोम्यासः सोमसम्पादिनः कर्मण्यङ्ग भाव मुप गच्छन्तोयेसोमंसम्पादयन्ति किम्प्रकाराः । असुंयईयुः प्राण मात्र मूर्त्तयः, अस्थूल विग्रहाः । अवृकाः । अनमित्राः) परंसाम्य मुपगताः, ऋतज्ञाः, यथावत् सत्यवेदितारः, यज्ञस्यवा । य एव मादि गुण युक्ताः पितरः तेनः, अस्माकम् नित्यम् । अवंतु (आगच्छंतु हवेषु) आह्वानेषु " इत्येतदाशास्महे ॥ माध्यमि कोयम इत्याहुः नैरुक्ताः । तस्मात् पितॄन् माध्यमिकान् मन्यन्ते सोहितेषांराजेति ॥

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषादुवस्य

ऋ॰ म॰ १० अ॰ १ सू॰ १४ मं॰ १

इति मंत्र प्रामाण्यात् यमस्य पितृराजत्वं भवति इवस्य परिचरेत्यर्थः ॥

भावार्थ ,, उदीरताम् ' इत्यादि मंत्र का शंख ऋषि है और-पितृमेध में इसका विनियोग है जो पित्तर अवर अर्थात् पृथिवी में स्थित हैं वे ऊपर गमन करो और जो स्वर्गलोक में स्थित हैं वे प्रच्युति रहित होवें अथवा अधिकार की क्षीणता में मुक्त होवें और जो मध्य स्थान स्थित हैं वे उत्तम लोक का आश्रय करो वे पितर सोम्यास हैं अर्थात् कर्म में अंग भाव को प्राप्त होकर सोम को सम्पादन करते हैं और स्थूल शरीर को त्यागकर प्राण मात्र मूर्त्ति वाले हैं (अवृक) अर्थात् शत्रुभाव रहित यथावत् सत्य वा यज्ञ के ज्ञाता हैं वे पितर आवाहन स्थानों में आगमन करो माध्यमिक यम है इस वास्ते पितरों को माध्यमिक ही मानते हैं निरुक्त कार क्यों कि यमराज को मध्य स्थान में स्थित होने से और तदनुवर्त्ति पित्तर भी मध्यस्थान में स्थित हैं ॥ यम को पितृराजता में वैवस्वतम् इत्यादि मंत्र प्रमाण है मंत्रार्थ यह है यावत् जनों का वैवस्वत यम के प्रति गमन होता है तिस यमराज को हवि करके परिचरण कर। इस प्रकार पूर्व उक्त मंत्र में प्राण मात्र मूर्त्ति युक्त कहने से और मध्यस्थान स्थिति कहने से वादी अभिमत जीवत पितरों से विलक्षण पित्तर पूजनीय कहे मंत्र प्रमाण और निरुक्त प्रमाण सें अब तो वादी का मुख बन्द होगा ॥

देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ मातृदेवोभव

पितृदेवोभव । आचार्य्यदेवोभव । अतिथिदेवोभ-
व॥ तै० व० प्र० ॥

अर्थ,, देव और पितृ कार्य्य से प्रमाद नहीं करना चाहिये माता और पिता है देव जिसका ऐसा तू हो और आचार्य्य है देव जिसका तथा अतिथि है देव जिसका ऐसा हो भाव यह है देव कार्य्य तथा पितृ कार्य्य अवश्यकर्त्तव्य है और माता पिता आचार्य्य अतिथि को देववत् मानना अब देखना चाहिये इस श्रुति में माता पिता आदि की पूजा से देव पितृकार्य्य को भिन्न कहने से जीवत मात्रादि पूजन से देव पूजन और पितृ पूजन भिन्न सिद्ध होगया और मिथ्या वादी वादी का मुख भी पिधान होकर शुष्क होगया । प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्ध हुई पितृ कार्य्य श्राद्ध वेद प्रमाण तथा निरुक्त प्रमाण सें सिद्ध हुआ और श्राद्धादि पितृ कार्य्य करता को स्वर्ग प्राप्ति रूप फल भी वेद प्रमाण से निर्णीत हो गया ।

प्रश्न ॥ यदि श्राद्ध से जीवत पितरों की तृप्ति हो तो परलोक प्राप्त पितरों की भी तृप्ति होगी सो जीवत पितरों की तृप्ति तो ब्राह्मण भोजन से होती नही यदि ब्राह्मण भोजन से तृप्ति कदाचित् किसी की हो तो रसते के वास्ते पक्क अन्न बांधना व्यर्थ है क्यों कि घर में प्रतिदिन नवीन अन्न पकाकर ब्राह्मण भोजन करा देने सें रस्ता चलनेवाले को तृप्ति होगी और तृप्ति होती नहो इस से मृत पितृकार्य्य व्यर्थ है और पितृ कार्य्य कारी स्वर्ग को प्राप्त होता है यदि तब तिसके जाने की सड़क भी कोई होनी चाहिये जिस रस्ते स्वर्ग में प्राप्त होजाय सो तो कोई देखने में आती नहीं इस वास्ते यह कल्पना मात्र है जो कि श्राद्ध कारी स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥

उत्तर ॥ इस स्थान में वादी से यह प्रष्टव्य है जो तुमने "मुक्ति के साधन ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान ब्रह्मचर्य्य से विद्या प्राप्ति आप्त विद्वानों का संग सत्य विद्या सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं ॥ सत्या० पृ० ६०३ ॥ यह ईश्वरोपासना वा धर्मानुष्ठानादि मुक्ति के साधन माने हैं वे तो अपने सेवन के उत्तर काल में नाश होजाते हैं कालान्तर भावी मोक्ष के कारण कैसे होवेंगे और धर्मानुष्ठान में दानादि भी मानोगे तो वेदानादि श्रेष्ठ पुरुषों को समर्पण करे हुए केवल उनके योगक्षेम के हेतु होजायेंगे तुमको क्या प्राप्त होगा और कालान्तर भावी मुक्ति के हेतु कैसे होंगे यदि इस वादी को इस प्रश्न का उत्तर न आवेगा तो दानादि त्याज्य कहेगा तब तो वादी पूरा ही वेदवेत्ता हो जायगा क्योंकि वादी के सिद्धान्त में मोक्ष पुरुषार्थ साध्य है भ्रमनिवृत्तिमात्र ज्ञान साध्य मोक्ष नहीं तब वो धर्मानुष्ठानादि चिरकाल स्थायी तो नहीं जो मोक्षपर्य्यन्त स्थिर रहें इस से धर्मानुष्ठानादि से कोई अदृष्ट विशेष मन्तव्य है जब अदृष्ट विशेष मन्तव्य है तो श्राद्धादि कर्म से भी कोई अदृष्ट विशेष होता है तिस से श्राद्ध में उद्देश्य पितरों की तृप्ति होती है और जो यह कहा जो कि जीवत की ब्राह्मण भोजन सें तृप्ति होनी चाहिये और रस्ते चलने वाले को घर के लोक पक्वान्न क्यों बांधे सो तो तुच्छ है क्योंकि जितनी सामग्री कार्य्य की जनक लौकिक वैदिक प्रमाण से निर्णीत है उतनी सामग्री से किंचिन् भी न्यून होगी तो कार्य्य होता नहीं जैसे लोक में पृथिवी जल संयोग और जल संयुक्त पृथिवी में बीज संयोग अंकुर उत्पत्ति में कारण है तथा विलक्षण काल भी अंकुर की उत्पत्ति में कारण है इसी वास्ते शी

तकाल में शाली बीज सर्व सामग्री के होते भी कार्य्य को नही पैदा करता क्यों कि विलक्षण काल रूप निमित्त के अभाव से इसी प्रकार ब्राह्मण भोजन श्राद्ध में कराया हुआ भी जिसकी तृप्तिका हेतु है तिसके जीवन काल से अतिरिक्त काल विशेष की अपेक्षा करता है सो वो काल विशेष वेद प्रमाण कर गम्य है और अदृष्ट विशेष का जनक है इससे यह केवल वादी की नास्तिकता की शंका है और जो स्वर्ग के जाने की सड़क पूछा है सो तो पितृयान मार्ग करके वेद में निर्णीत है शास्त्र संस्कार शून्य वादी को कैसे प्रतीत होगी अब जिस प्रकार का पितृयान मार्ग निर्णीत है सो दिखलाते हैं ॥

यइमेग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिस-
म्भवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्
दक्षिणैतिमासाᳬस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवंति ।
मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रम
समेषसोमः ॥ छा। ५। प्रपा० ५ खं १०

अर्थ,, गृहस्थ में स्थित जो पुरुष इष्ट और आपूर्त्त तथा दत्त की उपासना करते हैं अर्थात् अग्नि होत्रादि और वापी कूपादि और यथा शक्ति अन्न वस्त्रादि दान करते हैं वे धूम्रादि मार्ग से चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं धूम्रादि मार्ग अभिमानी को प्राप्त होकर रात्रि और रात्रि से कृष्ण पक्ष तिससे दक्षिणायन षड्मास को तिस से वर्ष और वर्ष रूप मासों से पितृलोक और पितृलोक से आकाश और आकाश से चन्द्र को इस चन्द्र को ही सोमलोक स्वर्गलोक बोलते हैं इसी मार्ग को पितृयान और दक्षिणायन भी कहते हैं ॥ इस स्थान में धूमरा-

त्रि आदि शब्द तिनके अभिमानी देवताओं के बोधक हैं यह वार्त्ता व्यास सूत्र में प्रसिद्ध है ॥

आपोभूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्। वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदं तश्चमसाँ अपिंशत। ऋ० म० १ अ० २२ सू० १६१। मं० ९।

अत्र ऋभ्वाख्य देवता स्तुति व्याजेन श्रेयः साधनानि विधीयन्ते हे ऋभवः। भवतां मध्ये, एकः कश्चित्तीर्थाश्रयेणैव प्राप्तदेव भाव आप एव भूयिष्ठा उत्कृष्टतमा इत्य ब्रवीत् एवं यज्ञादिना प्राप्त देवभावोऽन्योऽग्निर्भूयिष्ठ इत्य ब्रवीत् वधर्यन्ती, अव पूर्वाद्धजो विच् प्रत्यये भागुरि मतेना कार लोपे चेदं रूपं स्वरादि पाठाद्व्ययत्वं निपातत्वा दाद्युदा तत्वं च वधरित्ययं पालनार्थे अवगत्य धार यतीति योगात् तदर्थं यन्तीं गच्छन्तीं चेतो वृत्तिं दयां बहुभ्यः प्रमाणेभ्यो निश्चित्य एकः दपयैव प्राप्त देवता भावः प्रकर्षेण अब्रवीत् ते यूयं (ऋता) ऋतानि सत्या न्येवैतान्य बादीनि तीर्थ स्नाना दीनि देवता भाव प्राप्ति साधनानि वदन्त उपदिशन्तो यज्ञेषु च मसान् सोमयुक्तान् अपिंशत व्यभजंत। अत्रत्येव मुपाख्यायते, ऋभवो नाम त्रयो देवा एकं चम समासे दुस्तत्र वन्हि रपि तद्रूपं गृहीत्वा आगतस्ते तमति सारूप्यात् पृथग्ज्ञातुम शक्ता एकं चमसं चतुर्धा व्यभजंतेति यद्वा सत्य वादिनामेव तीर्थादि फलद मिति ऋता वदन्त इत्यस्यार्थः ॥

भावार्थ,, ऋभु देवता स्तुति द्वारा सद्गति प्राप्ति साधनों का उपदेश किया है मंत्र में। हे ऋभवः तुम में से कोई एक देवता तीर्थ सेवन कर देवभावको प्राप्त तीर्थ जल को सर्वोत्तम साधन क-

हता है वैसेही कश्चित् अग्निहोत्रादि अनुष्ठान से प्राप्त देवभाव तिसको सर्वोत्तम साधन कहता है इसी प्रकार कश्चित् प्राणिमात्र पर दया का अनुष्ठान कर देवभाव को प्राप्त होकर दया को सर्वोत्तम साधन बतलाता है इस प्रकार यथार्थ साधनो का उपदेश करते हुए चमसरूप यज्ञ पात्र को विभाग करते हो। इस स्थान में ब्राह्मण प्रसिद्ध इतिहास को सूचन किया है ऋभुनामतीन देवता यज्ञ में आवाहन किये हुए एक पात्र में स्थित हुए वहां अग्नि देव भी तिनके रूप को धारण कर प्राप्त हुआ तब वे ऋभुदेव अत्यंत समान रूपता से अग्नि को पृथक् न जानकर एक पात्र को चतुर्धा विभाग करते हुए। अथवा (ऋतावदन्तः) इसका यह अर्थ है जो कि संजितेन्द्रिय और सत्य वादी को ही तीर्थादि फल के देने वाले होते हैं असं जितेन्द्रिय असत्य वादी के तीर्थादि साधन निष्फल होते हैं॥

इमंमेगंगेयमुनेसरस्वतिशुतुद्रिस्तोमंसचतापरु-
ष्ण्या। असिक्न्यामरुद्वृधेवितस्तयार्जीकीयेशृणु-
ह्यासुषोमया॥ ऋ०म १० अ ६ सू ७५।मं ५।

प्रिय मेध पुत्रस्य सिन्धुक्षित आर्षम्। हे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि यूयम् (मे) मम स्तोमं सचत आसेवध्वम् परुष्ण्या सह मरुद्वृधे आर्जीकीये त्वमपि, असिक्न्या वितस्तया सुषोमया च सह आशृणुहि आभिमुख्येन स्थित्वा शृणुहि॥

निरु० का० दै० अ९।पा३खं ५॥

भावार्थ,, हे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि तुम संपूर्ण मेरे यज्ञ को संमुख होकर सेवन करो और यज्ञीय स्तुति को श्रवण क

री हे मरुद्वृधे हे आर्जीकीये परुष्णी असिक्नी वितस्ता सुषोमा के साथ मेरे यज्ञ को सेवन करो और सर्व प्रकार की स्तुति को-श्रवण करो ॥ इस स्थान में यह विचार कर्त्तव्य है यदि गंगा-दि नदी का अधिष्ठात्री देवता न होते तो सिंधु क्षित् ऋषि उनका यज्ञ में कैसे आवाहन करता तथा स्तुति श्रवण की प्रार्थना कै-से करता इस वास्ते गंगादि नदी को केवल पानी मात्र कहना वादी की मूर्खता है और तीर्थ स्नान सें देव भाव प्राप्ति ऋग्वेद के मंत्र में कैसे कहते और अग्निहोत्र का फल केवल वायु की शुद्धि कहना वादी की मूर्खता है यदि केवल वायु की शुद्धि ही फल होता तो देव भाव प्राप्ति कथन करना मंत्र में असंगत होगा । औ र अग्निहोत्र यदि गुरु की शिक्षा से विधि पूर्वक करे तो स्वर्ग प्रा प्ति होती है यह वेद में प्रतिपादन किया है तथाहि ।

तदेतत्सत्यंमंत्रेषुकर्माणिकवयोयान्यपश्यंस्ता
नित्रेतायांबहुधासन्ततानि ॥ तान्याचरथनियतं
सत्यकामाएषवः पन्थाः स्वकृतस्यलोके । १ ।

अर्थ,, यह वक्ष्यमाण अग्निहोत्र कर्म (सत्य) यथावत् किया हुआ फल जनने में व्यभिचारी नहीं जो कि मंत्रों में सर्वज्ञ पुरुषों ने कर्म देखे हैं वे त्रेतायुग में बहुधा प्रवृत्त हुए हैं ब्रह्माजी कहते हैं हे प्रजाओ तिनको नियम से आचारण करो तब सत्य काम होवोगे यह कर्म ही तुमको पुण्य लोक में प्राप्ति का मार्ग-है भाव यह है जब मंत्र ब्राह्मण रूप प्रमाण प्रतिपाद्य कर्मका सेवन करोगे तो कर्म ही धर्म की उत्पत्ति द्वारा पुण्य स्थान प्रा-प्ति का हेतु होगा ॥

यदालेलायते ह्यर्च्चिः समिद्धे हव्यवाहने ॥ तदा ज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धयाहुतम् ॥२॥

अर्थ,, जब अग्नि प्रज्वलित होवे और ज्वाला चलायमान होवे तब प्रथम (आज्यभाग) घृत की आहुति डाल अग्नि को प्रज्वलित कर अन्य आहुति का प्रक्षेप करके फिर घृत की आहुति विधि पूर्वक लोक मर्य्यादा से हवन करे तो श्रद्धा करके हवन होता है भाव यह है जिस प्रकार होम करने की रीति है वैसे हवन करे से अपूर्व उत्पन्न होता है ॥

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च ॥ अहुतमवैश्वदेवमविधिनाहुतमासप्तमाँस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥ ३ ॥

अर्थ,, जिसका अग्निहोत्र दर्श वर्जित है तथा पौर्णमास और चातुर्मास्य और नवीनान्य काल होम वर्जित है वा अतिथि सत्कार वर्जित है अथवा किसी काल में न किया हुआ वा वैश्वदेव यज्ञ वर्जित है अथवा (अविधिनाहुतम्) गुरु संप्रदाय पूर्वक विधि वर्जित किया हुआ जैसे कि आज कल के अग्निहोत्री मानी गुरु संप्रदाय से विना करते हैं ऐसे होम करने वालों का वो होम ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सर्वलोकों को नाश करता है और वे होम करता दुर्गति को इसीलोक में प्राप्त होते हैं ॥ इस प्रत्यवाय श्रुति का भाव यह है विधि पूर्वक अपने अधिकारानुसार परंपरा से होम करता को गुरु की दीक्षा पूर्वक होम करना उचित है ऐसा न करे जो कि अपने में उत्कृष्टता बोधन वास्ते वै-

से ही अस्तव्यस्त स्वाहा २ करने में प्रवृत्त होवें ॥

कालीकरालीचमनोजवाचसुलोहितायाचसुधूम्रवर्णा ॥ स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी चदेवीलेलायमानाइतिसप्तजिह्वाः । ४ । एतेषुयश्चरतेभ्राजमानेषुयथाकालंचाहुतयोह्याददायन् ॥ तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्यरश्मयोयत्रदेवानांपतिरेकोऽधिवासः ॥५॥ एह्येहीतितमाहुतयः सुवर्चसः सूर्य्यस्यरश्मिभिर्यजमानंवहन्ति ॥ प्रियांवाचमभिवदन्त्योऽर्च्चयन्त्यएषवः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥६॥

मु० उ० द्वि० मु० ॥

अर्थ,, काली १ कराली २ मनोजवा ३ सुलोहिता ४ सुधूम्रवर्णा ५ स्फुलिङ्गिनी ६ विश्वरूपी ७। यह सप्त जिह्वा हैं अग्नि-की (लेलायमाना) अत्यन्त चलाय मान हैं वे सर्व जिह्वा । ४ । जो इन सर्व प्रकार प्रकाशमान जिह्वाओं में यथा काल आहुति को ग्रहण करके होम का आचरण करता है तिसको इन आहुतिओं के देवता सूर्य्य रश्मि भाव को प्राप्त होकर जहां सर्व देवताओं का स्वामी निवास करता है वहां प्राप्त करती हैं ॥५॥ और दिव्य प्रकाश वाली वो आहुती देवता तिस यजमान को एहि २ शब्द को उच्चारण करती और प्रिय वाणी को कथन करती हुई पूजन करती हुई पुण्य लोक रूप यह ब्रह्म लोक तुमने संपादन किया है ऐसे कहकर वहां .... प्राप्त करती हैं सूर्य्य रश्मि द्वारा अब इस स्थान में यह द्रष्टव्य है जो कि उत्तम लोककी प्राप्तितो विधि पूर्वक अग्निहोत्र का फल इस श्रुति प्रमाण से-

निर्णीत है और वायु की ऋद्धि अग्निहोत्र का फल किस प्रमाण-
से निश्चय होता है जब निष्प्रमाण है तो वादी की कल्पना मिथ्या है
इस वास्ते अग्निहोत्र का फल वायु की शुद्धि कहने में वादी का भा-
व यह है जो उत्तम लोक की प्राप्ति अग्निहोत्र का फल कहेंगा तो
देवता सिद्ध होवेंगे और लोक छोड़ेंगे नहीं जब निष्फल कहें
गे तो छोड़ कर जलदी भ्रष्ट होवेंगे और इनका आग्रह भी छूट
जायगा ।

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्त
प एव द्वितीयो ब्रह्मचार्य्याचार्य्यकुलवासी तृतीयोऽ
त्यन्तमात्मानमाचार्य्यकुलेऽवसादयन् सर्व एते पु
ण्यलोका भवंति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ॥ छा०
प्रपा० २ खण्ड २३ ॥

अर्थ,, धर्म रूप वृक्ष के तीन स्कन्ध हैं यज्ञ अध्ययन दान यह
तो प्रथम स्कन्ध है १ और तप ही द्वितीय स्कन्ध है २ अत्यन्त-
अपने शरीर को आचार्य्य कुल में निवास करके ब्रह्मचर्य्य से शो
षण करने वाले ब्रह्मचारी का धर्म तृतीय धर्म स्कन्ध है । जैसे
वृक्ष के स्कन्ध पर आरूढ़ होकर फल को प्राप्त होता है वैसे ही
धर्म रूप वृक्ष के तीन स्कन्धों में से किसी एक स्कन्ध में आरू
ढ़ होकर फल को प्राप्त होता है यहां फल का बोधक वाक्य (स
र्व एते पुण्यलोका भवन्ति) यह है सर्व ही आश्रम के यथाव-
त् धर्म के अनुष्ठान करने वाले पुण्य लोक को प्राप्त होते हैं । औ
र इनमें से जो (ब्रह्मसंस्थ) ब्रह्म निष्ठ है सो साक्षात् मोक्ष होता
है ॥

चरन् गृहस्थः कथमेति धर्मान् कथं भिक्षुः कथमा
चार्य्यकर्मा वानप्रस्थः सत्पथे सन्निविष्टो बहून्य
स्मिन् संप्रति वेदयंति ॥१॥

अर्थ, ययाति और अष्टक राजर्षि का संवाद है वहां अष्टक ययाति से पूछता है गृहस्थ किस प्रकार धर्म को आचरण करता हुआ सद्गति को प्राप्त होता है और भिक्षु किस प्रकार धर्म्माचरण करता हुआ और (आचार्य्यकर्म्मा) ब्रह्मचारी किस प्रकार धर्माचरण करता हुआ वैसे ही वानप्रस्थ सत्पथ में प्रविष्ट वे संपूर्ण कैसे सद्गति को प्राप्त होते हैं क्यों कि इस धर्म के प्राप्ति मार्ग बहुत् से बोधन करे जाते है जो कि निश्चित अर्थ है सो आप निरूपण करो ।१। ययातिरुवाच ।

आहूताध्यायी गुरुकर्मस्वचोद्यः पूर्वोत्थायी चर-
मंचोपशायी । मृदुर्दान्तो धृतिमान प्रमत्तः स्वाध्या
यशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी ॥२॥

अर्थ,, पूर्व तो गुरु से जागे और पीछे सोवे और गुरु सेवा में स्वयमेव प्रवृत्त रहे और जब गुरु आज्ञा करें तब अध्ययन शील होवे और कोमल जितेन्द्रिय धैर्य्यवान् प्रमाद रहित वेद पठन शील ब्रह्मचारी सिद्ध होता है ॥२॥

धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन् भोज
येच्च । अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनि
षत्पुराणी ॥३॥

अर्थ,, धर्म मार्ग कर प्राप्त धन कर देव पूजन करे और सदाही दान करे सदाही अतिथिओं को भोजन करावे और अदत्त वस्तु

को न स्वीकार करे इस प्रकार के धर्म प्रतिपादक पराचीन उप-
निषद् गृहस्थों के धर्म को कथन करती है ॥ ३ ॥

स्ववीर्य्य जीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परो
पतापी ॥ तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां वसन्न
रण्येनियताहारचेष्टः । ४ ।

अर्थ,, हिंसा से निवृत्त और स्वसामर्थ्य से जीविका करने वा-
ला और परको न उपताप करने वाला यथा शक्ति परको देने वाला
मुनि मुख्य सिद्धि को प्राप्त होता है परन्तु बनमें नियत चेष्टा और
नियताहार पूर्वक निवास करता हुआ यह वानप्रस्थ के धर्म-
हैं ॥ ४ ॥

अशिल्पजीवीगुणवांश्चैव नित्यं जितेन्द्रियः सर्व-
तो विप्रयुक्तः । अनोकशायीलघुरल्पप्रचारश्चरन्
देशानेकचरः सभिक्षुः । ५ ॥ आदि पर्वान्तरगत-
संभवपर्वणि । अ० ९१ ॥ १ । २ । ३ । ४ । ५ ।

अर्थ,, देशों में एकला विचरने वाला अल्प संचार करने वाला
और शरीर यात्रा तिरिक्त संग्रह अन्य नियत स्थान निवास रहि
त सर्व से वियुक्त सदैव जितेन्द्रिय और गुणवान् हुए भी किसी
प्रकार की चातुरी से जीविका न करने वाला जो हो सो भिक्षु है ॥ ५
अनेक जन्म साहस्त्री संसार पदवीं ब्रजन् ॥ मोहश्रमं प्रयातोऽ
सौ वासना रेणु गुण्ठितः । १ । प्रक्षाल्यते यदा सोऽस्य रेणुर्ज्ञानो
त्थ वारिणा । तदा संसारि पांथस्य यातिमोहश्रमः शमम् । २ ।
मोहश्रमे शमं याते स्वच्छान्तःकरणः पुमान् । अनन्यातिशाय
बाधं परं निर्वाण मृच्छति । ३ । धर्म्मार्थ विमुखं लोकं दृष्ट्वाह्य

नंत हेतुभिः। अकारि साधु सिंहेन सत्यार्थस्य विवेचनम्॥

॥४॥

इतिश्री ज्वाला देवी सुखानन्दात्मज श्री गुरुदत्त सिंहकृ
पा प्राप्त निर्मल धर्म पवित्रितान्तःकरण साधुसिंह-
साधु विरचिते सत्यार्थ विवेके धर्म निरूपणं-
विक्रमीयैकोन विंशति शतोत्तर षट्च-
त्वारिंशत्तमे संवत्सरे ज्येष्ठकृष्ण-
पक्षसप्तम्यां बुधवासरे गंगा-
यमुनामध्ये डिभाई-
नामकनगरे-
समाप्ति-
मगात्॥

सम्बत् १९४६ ज्ये० कृ० ७ सप्तमी

ओ३म्

श्रीहरि"

विदित हो कियद "सत्यार्थ विवेक" नामक ग्रंथ सनातन धर्म्म के मंडन में बड़े परिश्रम पूर्वक निर्माण किया गया है- और इसके मुद्रित कराने में भी अत्यन्त परिश्रम हुआ है- और यद्यपि यह ग्रंथ किसी प्रकार के लाभउठाने की कांक्षा से मुद्रित नहीं कराया गया किन्तु केवल सनातन धर्म्मावलंवियों की पुष्टि और आधुनिकजनों के उपदेशार्थ ही यह कृत्य किया है परन्तु प्रायः छापेखानों में यथाभीष्ट प्रवंध वर देखभाल न होने के कारण ग्रंथ के आशय में वहुत कुछ अशुद्धता होजाया करती है। ॥

इसलिये सम्पूर्ण यंत्रालयों और पुस्तक विक्रेताओं से निवेदन है कि वे विना ग्रंथ कर्ता की आज्ञा के इसके छापने छपवाने का साहस कदापि न करें और गवर्नमेन्ट की आईन की आज्ञा कारण रक्खें - किमधिकम्-

सनातन धर्म्मानुरागादि
पण्डित माधुसिंह

सूचना

इस पुस्तक का मूल्य ३) रुपये नियत किया गया है परन्तु इसके ग्राहक महाशयों को निम्न लिखित भांति से विक्रय की जावेगी।

१। केवल एक पुस्तक के विक्रय करने वालों से पूरा मूल्य लिया जायगा

२। पांच प्रतियों के ग्राहकों को दुअन्नी प्रति रुपया कमीशन मिलैगा

३। दश या दश से अधिक के लेने वालों को प्रति सैकड़ा २०) रुपये कमीशन दिया जायगा -

---